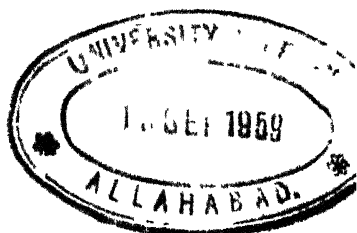


लो है के पंख

[उपन्यास]

हिंभाशु श्रीवास्तव



प्रकाशक
ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड
पटना-४

प्रकाशक एवं मुद्रक
ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड
पटना-४

आवरण-शिल्प
कृष्णचंद्र श्रीवास्तव

मूल्य
सवा सात रुपए

प्रथम बार
१९५८

समर्पित—

ज्ञानपीठ के उन सभी कंपोजीटर भाइयों को,
जिन्होंने यह कृति कंपोज की
और, जिनके साथ मेरा व्यक्तित्व संपृक्त है ।

वक्तव्य

अपनी कृति के संबंध में कलाकार का वक्तव्य शायद एकतरफा होता है—ऐसा मेरा विश्वास है। कलाकार जब अपनी कला के संबंध में कोई वक्तव्य देता है, तो मैं समझता हूँ, वह अपनी कला की वकालत कर रहा है और उस वकालत की दूरबीन से वह केवल अपना प्रकाश देखता है—अधकार नहीं।

कला का चरम तो उसे परम् में देखना होगा, अहम् में नहीं। यो कला के अनेक पड़ाव हैं, पर पूर्णविराम नहीं।

कोई भी कलाकार यह दावा नहीं कर सकता कि उसकी अमुक कृति 'मील का पत्थर' है। कलाकार की कौन-सी रचना 'मील का पत्थर' है—इसका निर्णय न तो कलाकार कर सकता है और न कोई आलोचक। काल की कसौटी ही कला की आयु निश्चित करती है—मेरा यह विश्वास खत्म न हो सकेगा।

१ दिसंबर, ५७
पटना

}

हिंभाशु श्रीवास्तव

लो हे के पंख

हिभांशु श्रीवास्तव

कथा-काल

[सन् १९२८ से १९५२-५३ तक]

माथा मुड़वाने के दिन बाबू नहीं थे । खेंखर काका के साथ मैंने माथा मुड़वाया । वे मेरे गोतिया थे । दादा को जला कर लौटने के बाद उस पट्टी के बिरादर शायद फिर अपनी रोजी और ठाकुर की खुशामद में लग गए । ऐसे मौके पर खबर देकर बाबू को बुलाना बहुत जरूरी था । खेंखर काका ने दादी से पूछा, “भगडू को भी बुलाना चाहिए न ?”

“हाँ, बुलाना तो चाहिए । बाप के मुँह में उसने आग न दी, घट में पानी भी दे दे, तो बहुत है ।” दादी बोली ।

आस-पास के गाँव अथवा ज़र-जवार में बाजार लगता, तो खेंखर काका जूता सीने का सारा सामान लेकर दिन के दो बजे से ही बाजार के एक कोने में जा डटते थे । हॉफ-सोल अथवा सुरतल्ला लगाने के लिए अक्सर नया चमड़ा नहीं मिल सकने के कारण, आदमी पहचान-पहचान कर किमिम-किमिम का चमड़ा निकाला करते । हर बाजार को आठ-दस गंडा बना लेते थे । कल मानुपुर का बाजार था । खेंखर काका आज दादी के पास एक पोसकाट लेकर आए । दोपहर का वक्त था । दादी पत्ता बुहारने वाली भाडू को कस रही थी । समय-समय पर मेरी दादी आम-लीजी, कटहल और महुए के बागीचों में जाकर पत्ते बुहारा करती थी—सूखे पत्ते, जो डाली छोड़ कर जमीन पर गिर पड़ते थे । कड़ी मिहनत के बाद जब पत्ते का एक बड़ा ढेर तैयार हो जाता, तो गाँव के किसी कानू को दे देती और उसके बदले कनुआइन सेर-आध सेर अनाज दे देती थी । हमारे यहाँ के कानू खेती के सिवा मकान छाने और बनाने का भी काम करते हैं । दीवार पर मिट्टी चढ़ाने में ये बड़े होशियार होते

हैं। इनकी औरते घरों में धुनमारी चलाती हैं और कुछ कनुआइनें धुनमारी चलाने के अलावे मजदूरी लेकर बाबू लोगों के घर का गेहूँ-जी भी पीसती हैं। मकई की नई फसल के दिनों में हर गाँव की धुनमारी में किसानों की औरते और लड़कियों की भीड़ लगी रहती है। इनलोगों के बीच मर्दों की कोई जगह नहीं होती। छोटे-छोटे बच्चें इनके पास बैठ सकते हैं। भूँजा खाने का इच्छुक किसान-युवक गमछे में मकई बाँधे आता है और उसे बाहर ही से कनुआइन का पुरकार कर दे देता है और जब तक कनुआइन भूँजा तैयार कर उसे लौटा नहीं देती, वह बाहर अकेला चुपचाप खड़ा रहता है। ऐसे मौके पर किसी अपने प्रेमी † नवही को देख, जो बाहर खड़ा रहता है, उसकी उठती हुई जवानी वाली चहेती धुनसारी में औरतो की भीड़ के बीच, इस मीठी जुदाई की पीड़ा को महसूस करती रहती है।

“पोसकाट लेता आया हूँ, चिट्ठी भेज कर बुला ही लो।” बोले खेंखर काका।

“लिखेगा कौन, भूलन बाबाजी के यहा चलना होगा।” दादी बोली।

“तुम्हारे पास भगडू का पता-ठिकाना है न?” अपने अँगोछे से पोसकाट को निकाल कर खेंखर काका ने पूछा। पोसकाट को वे अँगोछे के एक कोने में होशियारी से बाध कर लाये हुए थे। में पास ही बैठा अलमुनियम के कटोरे में आग में पकाई हुई मछली और मकई का भात खा रहा था। खेंखर काका बोले, “तुम कहाँ जाओगी, में मंगरुआ को लेकर चला जाऊँगा। में उनके जूते में बराबर चिप्पी लगाया करता हूँ। पैसे के लिए आज तक मुँह न खोला। मुझसे भी इकार न करेंगे। तुम भगडू का पता-ठिकाना दे दो।” और, उन्होंने मुझसे कहा, “मंगरुआ, तू जल्द खा ले। भूलन बाबाजी के यहाँ चलना होगा।”

मैंने जल्दबाजी शुरू कर दी। मछली कोटों से भरी थी, नहीं तो मैं निगल भी जाता। लेकिन, दादी ने काका से कहा, “मेरे पास पता-

ठिकाना नहीं है। एक कागज में भगडुआ अपना पता लिखवा कर दे गया था, सो भी मैंने रखने के लिए भूलन बाबाजी को दे दिया है। अपने घर में बाक्स-पेटी कहाँ है.....।”

“अच्छा, तब तो बाबाजी से पता भी मिल जायगा। मगर क्या लिखवाऊँगा, सो तो बतलाओ।”

तभी खेखर काका की यह बात सुन कर दादी रौने लगी। काका सब कुछ समझ गये। औरत बूढ़ी हो या जवान, अपना एहवात सबको प्यारा होता है। दादी किस मुँह से दादा की हत्या का सनेस लिखवाती ? काका ने जबतक मुझे इशारा दिया, मैंने कटोरे का खाना खत्म कर दिया। पानी पीकर कुरते के छोर में मुँह पोछ कर मैं खदेरन पासी के घर के सामने से होता हुआ, खेखर काका के साथ, भूलन बाबाजी के दरवाजे पर पहुँचा।

भूलन बाबाजी गोव के लोअर प्राईमरी स्कूल में गुरुअई करते थे। सुभाव से बिल्कुल गाय। हमलोग जब उनके दरवाजे पर पहुँचे, तो पूछने से पता चला कि वे घर में नहीं, स्कूल में हैं। हमलोग स्कूल में गए। वहा स्कूल के ओसारे में एक चउकी पर बाबाजी बैठे थे। सामने चउकी पर ही एक बॉस की छड़ी पड़ी थी। सामने पहुँचते-पहुँचते खेखर काका ने कहा, “गोर लागी बाबाजी !”

जवाब में भूलन बाबाजी ने हमलोगों को असीस दिए और तब अँगोछे से पोसकाट को निकालते हुए खेखर काका बोले, “इसी के बाप के यहाँ एक चिट्ठी लिख कर उसको बुला दीजिए। मरनी का तो कोई नहीं जानता था, सराध में तो आ जाय बेचारा।” खेखर काका का इशारा मेरी ओर था। कुछ लड़के किताब खोल कर चिल्ला-चिल्ला कर पढ़ रहे थे और कुछ सिलेट पर लिखे पहाड़े को गला फाड़-फाड़ कर याद कर रहे थे। कुछ इसी हो-हल्ला में गप-सप भी भिड़ाये हुए थे। भूलन बाबाजी ने एक बार उनकी ओर देख कर कहा, “चुप रहो, हल्ला मत करो।”

बावाजी के मुँह से इतनी बात सुनते ही लड़कों में शांति छा गई और खेखर काका बावाजी से बातें करने लगे।

“जतन गोहरांव में न मारा गया ?”

“जी, सरकार !”

“सुना, ठाकुर भगड़ू को खेत देनेवाले हैं ?”

“सुना तो मैंने भी है सरकार, बच्चा बाबू ने तो मुझसे ही कहा था ।”

“खेत मिल गया, तो भगड़ू का भाग्य पलट जायगा ।”

“सो तो है बावाजी, वे लोग किसी गरीब की ओर फूटी आँखों से भी देख ले, तो…… ।”

तभी बच्चों ने शोरगुल बढ़ाया—

“...करीम की बकरी के तीन बच्चे हैं...करीम की बकरी के तीन...।”

“रामनाथ है प्यारा लड़का, सबका बड़ा दुलारा लड़का...”

रामनाथ है प्यारा लड़का SA...।”

“एक आढ़ा अढ़इया, दु अढ़ाई पाँच, एक आढ़ा अढ़इया...।”

यह बात ठीक है कि इस बीच भूलन बावाजी ने बच्चों का धीरे-धीरे पढ़ने का हुकुम दे दिया था । मगर, जब बच्चे शोर करने लगे, तो बावाजी ने बाँस की छड़ी उठाई और एक ओर से सबका दुखभंजन करने लगे । लेकिन, बावाजी ने ज्योंही दुखभंजन शुरू किया, कि बच्चें सटक सीताराम हो गए । लड़कों का दुखभंजन होते देख खेखर काका बोले, “जाने दीजिए बावाजी, अब मत मारिए...।”

भूलन बावाजी फिर शांत होकर चउकी पर, आकर बैठ रहे । छड़ी उन्होंने अपने सामने रख ली और तब खेखर काका से कहा, “इसमें शक मत करो खेखर । ये लोग बनिया नहीं, राजा हैं । भगवान ने क्या नहीं दिया है ? ईश्वर की कृपा से……।”

“सरकार क्या झूठ कहेंगे ? दूध-पूत और लछमी भी कोई से छिपती है...?” खेखर काका ने बीच ही में कहा ।

“तो क्या कहते हो, भगड़ू को चिट्ठी लिख दूँ ?”

‘हा, देवता ! बुला दीजिए, बेचारा बाप को पिंडा-पानी तो दे जाय । इसकी दादी ने कहा है, उसका पता-ठिकाना भी आप के ही पास है ।”

“हाँ, है तो ।” कहकर बाबाजी स्कूल की उस कोठरी में घुस गए, जिसमें बहुत कागज रखा हुआ था । न-जाने, किधर से और कैसे उन्होंने मेरे बाबू का पता खोज लिया और फिर चउकी पर आकर बैठते हुए बोले, “हाँ, मिल गया पता । लाओ, पोस्टकार्ड ।”

मुझे अच्छी तरह याद नहीं कि खेखर काका ने चिट्ठी में और क्या-क्या बातें लिखवायी, मगर इतनी याद जरूर है कि उन्होंने बाबू को चिट्ठी देखते ही गाँव पर बुलाया था । चिट्ठी लिखवा कर मैं खेखर काका के साथ वहाँ से चला आया । बदरी पासी के घर के पास आने पर एका-एक रुक कर खेखर काका ने मुझसे कहा, “तू घर चला जा । मैं मानुपुर जाकर चिट्ठी लेटर-वाक्स में गिराऊँगा ।”

खेखर काका मानुपुर चले गए और मैं अपने यहाँ लौट आया । बाबू भोज के एक रोज पहले आए । साथ में नगदनरायन एक पैसा नहीं ले आए थे । खेखर काका से बतलाया था कि वहाँ कारखाने में महीना लगने के आठ रोज बाद दरमाहा मिलता है और अभी महीना भी नहीं पूरा हुआ था । वे किसी मोदी से आने रुपया सूद के हिसाब से पाँच रुपये कर्ज लेकर चल पड़े थे । जहाँ मेरा घर था, वहाँ जुर-जुवार तक में धान की फसल नहीं होती थी । न कोदो, न सोंवा । रब्बी और भदई पर सारा दारोमदार था । ठाकुर के अलावे ठाकुर-घराने में भी कई लोगों को दरभंगा और निर्मली में धान के खेत थे, मगर उनके होने या न होने से हमलोगों को क्या वास्ता ? जवार से कई कोस आगे टप कर, बसंत में हर बुध-शुक और एतवार को भारी बाजार लगता था । इधर से उत्तर की बस्तियों में धान की अच्छी फसल होती थी । गँरखा, पहाड़पुर, परसा, फेरसा, फुलवरिया और खोदाईबाग के इलाकों में बड़ा धान उपजता था । यहाँ की मिट्टी को लोग हमारे यहाँ ‘धनहर माटी’ कहते हैं ।

खेखर काका ने बाबू से कहा कि बसंत बाजार में चिउरा और माढा सस्ता मिलेगा। पैसे को बहुत जोगाकर खर्च किया जा रहा था ; क्योंकि बाबू को, कलकत्ते लौटने के लिए, बच्चा बाबू के दिए हुए रुपये में से ही पाँच रुपये लेने थे। इसलिए आज बाजार का भी दिन था। बसंत चलने की बात तय हो गई। वहाँ का बाजार हमारे गाँव से लगभग चार कोस की दूरी पर था। दोपहर से दिन ढलते-ढलते में, बाबू और खेखर काका बसंत बाजार चले। माढा और चिउरा बाँध कर ले आने के लिए बाबू ने अपनी कलकत्ता चादर और दादा की एक पुरानी मैली धोती ले ली थी। यह धोती दादा को ठाकुर के यहाँ से किसी की उतारन होकर मिली थी। घर से अपने गाँव के बाहर-ही-बाहर हमलोग निकले। सबसे पहले डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क मिली, बगल में ही आमी बाजार। मगर आज यहाँ बाजार का दिन नहीं था। हलवाईयों के मिठाई बेचने के छोटे-छोटे चौकोर चबूतरों पर या उनके आस-पास अनेकिया साँढ़ टहल रहे थे। सड़क से होकर हमलोग उत्तर की ओर चले। पहले रेलवे-लाइन मिली और उसको पार करते ही हराजी गाँव। यह गाँव भी बहुत बड़ा है। इसकी भी कई पट्टियाँ हैं। धारीपुर, जैतीपुर, पानापुर, दरियादीयरी और न-जाने क्या-क्या !

इस गाँव को पार करने के बाद आगे चारों ओर खेत-ही-खेत थे। सरसों के पीले-पीले फूल धरती की शोभा बढ़ा रहे थे। अब यहाँ से बाबू और खेखर काका इस तरह बात करने लगे।

“अब यही चिंता है खेखर भाई कि घर में कोई मरद नहीं रहा। घर में दो-दो औरते हैं। भले-बुरे के समय इनका बुरा हाल होगा। मगर आका क्या, दस बरस का यह लौंडा क्या संभालेगा और क्या नहीं ? पेट साला ऐसा है कि यह एक दिन के लिए माननेवाला नहीं। मालिक लोग जैसे हैं, जानते ही हो। तोप के मुँह पर खड़ा रहना और इस गाँव में बसना दोनों बराबर है। खंसी की माँ चाहे जितनी † खरजि-

† एक प्रकार का औरतों का पर्व, जो वे संतान की रक्षा के लिए करती हैं।

उतिया करे, खस्मी चीक के हाथ से भला कब तक बचेंगे, अंबिका-स्थान में खंस्ती का बल भला कैसे रुकेगा ?” बाबू बोले ।

“सो तो में भी जानता हूँ सगड़ू, मगर अब ठाकुर तुमलोगो पर जरूर नजर फेरेंगे ।” तब खेखर काका ने कहा ।

“अजी छोड़ो भी...ये क्या नजर फेरेंगे ? वही बीस रुपये दे दिए, इसी से तुम खुश हो गए, खेखर भाई ? मेरे बाबू की जान की कीमत यही बीस रुपये । तुमलोग तो गाँव में रहते हो, इन पैसेवालों का हाल क्या जानो । ये लोग बड़े बावन बीर होते हैं । दुःख न मानना खेखर भाई, मैं तो शहर में रह कर अँखफोड़ हो गया हूँ । तुम्हें तो याद होगा, मेरी पलानी का एक कोना बॉस के सड़ जाने से गिर रहा था । उनकी कोठी से एक बॉस काटते हुए पकड़ा गया, तो बँधवाकर पिटवाया था । वह चोट मुझे भूलती है ?”

“बात सही है सगड़ू ! मगर, गाँव छोड़ कर जाओगे कहाँ ?”

“हाँ, जाऊँगा कहाँ ? शहर भी तो पैसे वालो का ही है । जादे दरमाहा मिलता तो माँ, मगरू और मगरू की माँ को भी ले जाता । इधर साल-डेढ़-साल से दस-पाँच रुपये काट-कपट कर घर भी भेजता हूँ । जब शुरू-शुरू में यहाँ से भाग कर गया था, तब तो और बुरी हालत थी । तब हफ्ता बँटता था । उसमें एक पैसा भी बचाना मोमकिल था ।”

“एक बात बतलाऊँ तुम्हें ?” खेखर काका धीरे-से बोले बाबू की ओर ध्यान से देखकर ।

“बतलाओ ।”

“तुमसे तो शायद काकी ने कह भी दिया होगा ।”

“क्या ?”

“तुम्हें नहीं मालूम है, सच बतलाना ।”

“ना, माँ ने मुझसे कुछ नहीं कहा है ।”

“तुम्हारे भाग ने पल्टा खाया है । ठाकुर तुम्हें खेत... ।”

“क्या कहा, ठाकुर मुझे खेत ..?” बाबू ने तपाक में पूछा। खुशी से शायद उनकी धिप्पटी बढ़ होने-लौने वाली।

“हाँ, जतन काका के काम-कीर्गिया और काफन के लिए गायें देने समय कहा था कि झगड़ू को कलकसे जाने की कोई जम्मत नहीं। यही खेत दे दूँगा। जाँते-बोये, खाये और मजे से पड़ा रहे। बले-कुदले के लिए हमलोग मौजूद ही हैं।”

“यह सच्ची बात कह रहे हो, खेखर भाई?”

“सच। बच्चा बाबू ने मुझसे काकी के सामने कहा था। मगराआ की माँ ने भी सुना, पूछोगे न।”

“तब तो सचमुच मेरा भाग्य पलट जायगा, खेखर भाई।” इसके बाद बाबू कुछ सोच कर बोले, “मगर एक बात है ..।”

“क्या?” खेखर काका ने पूछा।

“मालिक को तो चकले का चकला खेत है। दस-पंद्रह बीघे भी दे देगे, तो बड़ा मोसकिल हो जायगा।”

“मोसकिल क्यों होगा?”

“अरे, मेरे पास बैल जो नहीं हैं। न हल है, न हंगा है। मालिक ने तुम्हें कुछ बतलाया है, कितना खेत देगे?”

“नहीं, यह तो नहीं बतलाया। मगर, चार पगानी के सालभर खाने के लायक तो जरूर ही देगे।” खेखर काका ने कहा।

इस प्रकार की बातें होती रही और हमलोग सामने के गाँव परतापपुर के नजदीक पहुँचे। आस-पास कई लंबे-लंबे चारागाह थे। झुंड-के-झुंड गाय-भैंसे चर रही थीं। चरवाहे छोकड़े भैंसों की पीठ पर बैठे मस्ती में गा रहे थे। खेतों के बीच की पगडडियों में उगी घासों को कुछ घसगढ़नी खुरपी से गढ़ रही थीं। जब तक हमलोग परतापपुर गाँव में घुस न गये, तब तक एक चरवाहे का गीत हमलोगों को सुनायी पड़ता रहा—

पाकल-पाकल पनवाँ, खिअवले गोपीचनवाँ,
 पारितिया लगा के, हो गोपीचनवाँ...
 सबका के भेजे हकीमवाँ, छुव रे महीनवाँ—
 करेजऊ के भेजे—
 हो रे काला पनिया, करेजऊ के भेजे..

बाद इसके बाजार में कोई खास बात नहीं हुई। अपने अदाज से बाबू और खेखर काका ने माढ़ा-चिउरा खरीद लिया। मोट्टा की छोटी-सी गठरी मेरे माथे रखी गई। हमलोग अपने गाँव लौटे, तब तक रात हो गई। कई लोगों की दालानों में होली गायी जा रही थी—

सदा आनंद रहे यहि दुवारे,
 मोहन खेलत होरी हो।

माल की झनझनाहट और ढोल की धबधबाहट से कान में छेद हो रहे थे। मैं शायद बहुत थक गया था। घर आकर मैंने माँ के सामने गठरी पटक दी।

दूमेरे रोज दोपहर में बाबाजी आए थे। न जाने, कैसे-कैसे सब बिध-बेहवार हुआ। बाबू दही के लिए परेशान होकर रह गए। दही नहीं मिला। पता चला कि जितने लोगों के पास लगहर हैं, सबों ने दही ठाकुर के यहाँ भेज दिया है। मलखाचक के दीयर पर वाले खेत को कब्जे में ले आने की खुशी में, मालिक ने जवार के सारे ठाकुर-घराने को भोजन करने का नेओता दिया था। बिरादर लोगों को जिस समय भोज खाने के लिए बुलाया गया था, वे लोग उस समय आ गए। बाबू छटपटा रहे थे। वे कभी पलानी में समाते और कभी खेखर काका से इसका उपाय पूछते थे।

आखिर मैं कोई उपाय न सूझने पर बाबू ने बिरादर के लोगो को पलानी के सामने कतार में बैठा दिया। गोकि, मोसकिल से वे गिनती में पद्रह-बीस के करीब होंगे। चूतड़ के नीचे रखने के लिए एक-एक चइली भी दे दी गई। मेरे घर न तो ज्यादा टाट थी और न पीढ़ा। केले के पत्त

पहले से काट कर रखे हुए थे। सब के आगे एक-एक पत्ता गव दिया गया और तब पहले चिउड़ा-माढा फेंट कर चलाया गया। इसके बाद थोड़ा-थोड़ा मीठा। लेकिन, अब बड़ा मोमकिल हुआ। चूकड़ों में पानी भर देने के बाद भी बिरादरी के लोगों ने खाना शुरू नहीं किया। न-जाने, क्या सोच कर बाबू पलानी में समा गए। तभी खेखर काका ने बिरादरीवालों से कहा, “अब होए लछमीनरायन। दही तो मिला ही नहीं, गाँव भर का दही-गोरस तो मालिक के घर चला गया।”

शायद बिरादरी के लोग दही का ही इंतजार कर रहे थे। खेखर काका के इतना बतला देने पर भोज खाना लोगों ने शुरू कर दिया और किसी तरह दो घंटे के बाद हमलोग इन सभी कम्पटो से फुर्सत पा गए।

अपने गाँव और ठाकुर के घर की तो बात ही अलग है, मैं दादी के साथ छँइटी लेकर दूसरे-दूसरे गाँवों में भी, भोज के जूठे पत्तल कमाने जाता था। ऐसे मौके पर मैं अपने हाथ में, एक छोटी; किंतु मजबूत और मोटी गोजी लिये रहता। जूठे पत्तल के ढेर पर कुत्ते चढ़ाई करते, तो मैं उसी गोजी से डरा-धमका कर उन्हें भगाता था। जिस पत्तल में बहुत जूठा भात होता, तियन-तरकारी अथवा पूड़ी-मिठाई, उस पत्तल में खाने-वाले को, जो हमलोगों का बेजाना-पहचाना होता, दिल से सराहते और कहते कि इस पत्तल में जरूर किसी बड़े आदमी ने भोजन किया है। कहार जब जूठे पत्तलों का ढेर लेकर उन्हें फेंकने के लिए बाहर निकलते, तो मेरे जैसे, जूठे पत्तल कमानेवालों का झुंड अक्सर चिल्ला पड़ता, “इधर कीरपा करो मालिक, इधर कीरपा करो.....चार कोम से असरा लगा कर आए हैं।”

सो, आज ठाकुर के यहाँ भी भोज था और मेरे घर भी। आज हमलोगों में से कोई पत्तल कमाने के लिए जाना नहीं चाहता था। दादी भी उदास थी। लेकिन, बाबू ने माँ से कहा, “आज ठाकुर के यहाँ भोज है।”

“हाँ, सुना है।” माँ बोली।

“पत्तल कमाने कौन जायगा ?”

“आज कौन जायगा ?”

“नहीं, किसी-न-किसी को तो जाना ही चाहिए । मालिक लोग क्या कहेंगे ?”

“बच्चा बाबू मालिक तो खुद जानते हैं कि आज हमलोगों के यहाँ भोज है ।” माँ बोली ।

“उससे क्या ? नहीं जाने से रज हो जायेंगे । कहने लगेंगे, भगड़आ ने मना कर दिया है । बेकार मेरी हजामत क्यों कराना चाहती हो ? तुम और मगरूआ चले जाना । घटे भर का तो काम है, और सुना नहीं है, बच्चा बाबू हमलोगों को खेत भी देंगे ।”

“सुना तो है ।”

“बड़ा अच्छा होगा । मगरूआ को भूलन बाबाजी के पास पढ़ने के लिए बैठा दूँगा ।”

“पढ़ने का खरचा कहाँ से आएगा ?”

“तुम पागल हो गई हो मंगरू की माँ ! खरचा क्या लगेगा ? हर सनीचर को सीधा । चावल, दाल, हल्दी और एक पैसा । सो बाबाजी का गोर-हाथ पड़ कर उन्हें तैयार कर लूँगा । ठाकुर खेत देंगे, तो उसमें चावल कहाँ से होगा ? चावल के बदले गेहूँ, बूट या मकई ही दे दूँगा ।”

“अच्छा ...।” माँ ने सर्द आवाज में कहा था ।

मैं पास ही खड़ा-खड़ा फाँड़े में माढा-चिठरा लिये फाँक रहा था । बाबू ने तनिक मेरा सिर हिला कर प्यार से पूछा, “क्यों रे, मंगरूआ । भूलन बाबाजी के स्कूल में पढ़ेगा न ?”

“ना ।” मेरे मुँह से निकला । जब मैं खेखर काका के साथ भूलन बाबाजी के स्कूल में, बाबू के यहाँ चिट्ठी लिखवाने गया था और उस समय भूलन बाबाजी ने लड़कों का जो दुखभंजन किया था, वह मुझे याद हो आया और तभी तो बाबू के सवाल करने पर मैंने ‘ना’ कह दिया ।

आखिर ठाकुर के दगवाजे पर पत्तल कमाने के लिए म मा के साथ गया। मैंने गोजी ले ली थी। ठाकुर के यहाँ का भोज बड़ा शानदार रहा। मेरे दादा के मरन-भोज में एक कटांग भी दही न मिला, मगर यहाँ तो जूटे पत्तलो में भी भर-ढेन लग गया। मैं और मेरी मा न मिल कर लगभग डेढ़-दो हँडिया दही काछा था। जूटे पत्तलों में प्रुड़ी, मिठाई और दही-तरकारी काछ कर हमलोगों ने, उन पत्तलों को दूर के गनउरे पर फेंक दिया और तब अपने घर चले। रात में मेरे यहाँ का हौ-हल्ला भी खत्म हो गया। हमलोग काँदो के पुआल पर सोने चले।

होली बहुत नजदीक आ गई थी, शायद इसीलिए गांव में फिर होली गायी जाने लगी। मुझे नाद तो आ रही थी। मगर, लोगों के होली गाने का गुल कानो में बेरोक-टोक के ममा रहा था। अँजोरिया रात थी—टहाटह ! मेरी बेमरम्मत भोपड़ी के छेदो से, अँजोरिया, मेरे पुआल के बिछावन पर और कोने में सरिया कर रखी हुई हँडिया और लकड़ियों पर कहीं गोल-गोल और कहीं तिरछी-टेंढ़ी बनकर, उतर आयी थी।

दूसरे रोज दिन के लगभग बारह बजे ठाकुर के घर काम करनेवाले कहार ने आकर बाहर से मेरे बाबू का नाम लेकर पुकारा। भोपड़ी के अंदर हम बाप-पुत ठाकुर के यहाँ से आयी भोज की जूनी प्रुड़िया और अपने यहाँ के बच्चे हुए माढ़ा और चिउरा दही के साथ मिला-मिलाकर खा रहे थे। बाबू जूटे मुँह बाहर निकले।

“जयरामजी की अछैबर भाई !” बाबू ने कहा।

“जयरामजी की !” अछैबर ने जवाब दिया।

“कहाँ चले हो भैया ?”

“अभी क्या कर रहे हो तुम ?” जवाब न देकर अछैबर ने सवाल किया।

“अभी तो देखो, खा रहा हूँ...” अपना जूठा हाथ-मुँह दिखला कर बाबू ने पूछा, “कहो न, बात क्या है ?”

“चलो, छोटे सरकार ने बुलाया है।”

“छोटे सरकार ने ?”

“हा ।”

“जरा हाथ-मुँह धो लूँ ।”

“में चलता हूँ । तुम पीछे से आ जाना ।” कहकर अछैबर चला गया । अछैबर की आवाज सुनकर जब बाबू बाहर निकले, तो में भी माँ के साथ झोपड़ी के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया था । अछैबर के चले जाने पर बाबू बड़ी फुर्ती के साथ पलानी में घुसे । उन्होंने माँ से कहा, “एक लोटा पानी दो । हाथ-मुँह धो लूँ । मालिक ने बुलाया है । मोचता हूँ, साथ में खेखर भाई को भी ले लूँ । न-जाने, क्या बात हो ।”

“हमको तो लगता है कि खेत बकसीस देने के लिए बुलाया है ।” अलमुनियम के लोटे में भर लोटा पानी बाबू के आगे रख कर माँ बोली ।

“अब राम जाने, देखो क्या बात होती है ।”

पानी से हाथ-मुँह धोकर बाबू ने माथे पर अँगोछा बांध लिया और वे चले गए । मेंने नहीं देखा, खेखर काका बाबू के साथ गए या नहीं । लेकिन, दोपहर के गए हुए बाबू घंटा भर रात गए लौटे । उनके साथ खेखर काका थे । पलानी के दरवाजे पर आते ही बाबू ने मुझे पुकारा, “मगरुआ, मगरुआ ?”

“हा, बाबू !” मैं बाहर निकला ।

“टाट ले आओ ।” बाबू बोले ।

मेंने अँजोरिया में देखा कि बाबू के हाथ में एक लवनी थी । उससे ताड़ी की गंध आ रही थी । में पलानी में गया और बिछावन पर की टाट उठा लाया । इस बीच लवनी को खेखर काका के हाथ में पकड़ा कर, बाबू बाहर ही पड़ी हुई बढनी से सामने की ज़मीन साफ करने लगे । जब टाट बिछाने के लायक अंदाज से बाबू ने ज़मीन बुहार ली, तो उन्होंने मेरे हाथ से टाट ले ली और साफ की हुई ज़मीन पर उसे बिछा दिया । इसके बाद लवनी टाट पर रख कर खेखर काका बैठ रहे । बाबू ने एक मिनट तक इधर-उधर देख कर मुझसे कहा, अरे मगरुआ, माँ से चीखना माँग ला ।”

“चीखना ?” मैंने अचरज जाहिर किया । घर में न मछली थी, न मालन । न घुघुनी और न फुलउड़ी । घर में आलू-टमाटर की तरकारी बनी थी । मैंने कहा, “चीखना नहीं है ।”

“तो क्या है, कुछ भी ले आ ।” बाबू बोले । दादी घर में नहीं थी । वह मैदान के लिए निकली थी ।

“तरकारी है ।” मैंने कहा ।

“वही ले आ, काम चलाया जाय । क्यों खेंखर भाई ?” खेंखर काका की ओर देख कर बाबू ने कहा । मैं पलानी के भीतर घुम कर मा से कटोरे में थोड़ी-सी तरकारी मोंग लाया । बाबू ने मेरे हाथ का कटोंग थाम कर कहा, “बैठ ।”

मैं टाट ही पर बाबू की बगल में बैठ गया । अब थोड़ी-थोड़ी तरकारी खा-खाकर हमलोग पीने लगे । लबनी में कोई भी मुँह नहीं लगाता । अगोछा का छनना लगा था । मुँह खोल कर गवसे पतले खेंखर काका ढालते, इसके बाद बाबू और तब मैं । मैं मुँह खोल कर ऊपर से उड़ेली जाती हुई ताड़ी पीने का सबक दादा से ले चुका था । मगर एक ही वजनदार लबनी और ताड़ी पीने के उस अनोखे काम को सँभालना अभी मेरे लिए आसान न था । वैसे बाबू, खेंखर काका और दादा के मुकाबले मैं कम पीता भी । इमीलिए जब मेरे पीने की बारी आती, तो बाबू बड़े अदाज से लबनी की पेदी के नीचे हाथ लगा कर, मेरे खोलें हुए मुँह के सामने उसे जरा-सा कज कर देते । तब ताड़ी मेरे कंठ के नीचे भी उतरने लगती थी ।

“क्या कहा बच्चा बाबू ने, खेत देंगे ?” खेंखर काका ने बाबू से पूछा ।

“हाँ, कहा—मैं तुम्हें खेत दे देना चाहता हूँ । तुम अपने जोतने-बोने के सामानों का जोगार बाँधो ।” बाबू बोले ।

“कितना खेत देंगे, यह भी बतलाया है ?” पूछा खेंखर काका ने ।

“मैंने यह नहीं पूछा, लगता है कि बहुत ज्यादा देंगे । आज तो उनकी बातचीत से मेरा मन प्रसन्न हो गया ।”

“बड़े खुश थे ?”

“और नहीं तो क्या ? कहा, पिछली बाते भूल जाओ भगडू ! जहाँ चार घड़े रहते हैं, आपस में टकराते ही रहते हैं।”

“ओह, हाँ भाई, वे लोग बड़े आदमी हैं। डॉटते हैं, तो दुलारते भी हैं। मगर भगडू, तुम कह रहे हो कि बच्चा बाबू ने दोपहर ही में बुलाया था। तो तुम इधर आधे दिन कहाँ रह गए ?”

“तुम्हें खोजता रहा, मगर तुम्हारा पता ही नहीं। मैं उधर ही से केवल राउत के यहाँ चला गया। “हाँ, उससे जुताई-बुवाई के लिए हल-बैल पटाना था। मैंने उससे सारी बातें कह दी तो वह राजी हो गया।”

“फिर क्या तय हुआ ?” खेखर काका ने बाबू से पूछा। बाबू बोले, “पहले भाँज पर बैल देने की बात चली। मगर मेरे पास बैल कहाँ है ? केवल के दो बैल हैं। एक कुछ कमजोर है, जो बैठा रहता है। मैंने केवल से वह बैल खरीद लेने की चर्चा की, तो वह बेचने को तैयार हो गया।”

“मगर वह बैल कमजोर जो है, लेकर क्या करोगे ?”

“केवल ने कहा है, खिलाने-पिलाने से सब ठीक हो जायगा। खाई भला कि भाई भला ! मिर्फा भूसा पर बैल का सरीर कितने दिन टिकेगा ? हरीअग्री की कमी से बैल टूटा हुआ है। तुमने देखा है या नहीं, खेखर भाई ?”

“और बैल का दाम ?”

“केवल को मैंने उधार देने के लिए राजी कर लिया है। अनाज बेच कर पैसा-पैसा चुका दूँगा।”

“उधार दे देगा ?” खेखर काका ने पूछा। बाबू बोले, “उसने तो कहा है, मर्द की ज़बान एक होती है, दो नहीं। मगर सोचता हूँ कि मिर्फा एक बैल ले-लेने से सारा खेत नहीं सँभलेगा। विचार हो रहा है कि मंगरुआ के मामू को बुला लूँ।”

“बुला लो । कहीं से उठा कर गब चकला मालिक लिये देंगे, तो पुश्त-दर-पुश्त का दुःख छूट जायगा ।”

खेखर काका और बाबू मे इस तरह घंटों बातचाँत होती रही । बाबू उधर से ही एक चिलम गाजा लिये आए थे । साफी और चिलम खेखर काका अपने यहाँ से ले आए । माँ ने भीतर से गिरह दी हुई रस्ती जला कर दी । इसके बाद ‘चल अलक, खोल पलक, देख दुनियाँ की झलक’ कह कर खेखर काका ने दम लगाया । बाबू ने कसकर दम मारा, तो चिलम पर की आग धधक उठी । लबनी में थोड़ी-सी ताड़ी बच गई थी । बाबू ने कहा, “इसे ले जाओ ।”

मैंने लबनी को उठा कर माँ के पास पहुँचाया । तभी खेखर काका को बिदा कर बाहर बिछी हुई टाट को उठाये बाबू भी अंदर चल आए । फिर दादी भी आ गई । बाबू ने दादी और माँ से वे सब बातें दुहगा दीं जो खेखर काका से कही गई थीं । दादी और मैं एक जगह बैठा था । माँ या दादी ने बाबू की बातों में काट-छाँट न की और सुबह ही दिन चढ़ते-चढ़ते बाबू तपेसर मामा को बुलाने पटना चले गए ।



मेरा जन्म जिस गाँव मे हुआ , उस गाँव का नाम था—आमी । गाँव बहुत बड़ा था । गाँव के बीच में जमींदार का मकान था । गाँव के ठाकुर थे वे, गाँव के देवता । पूरे मकान की चौहद्दी करीब आठ कट्टे की थी और मकान के चारो ओर दालान बनी थीं । आँगन में कुँआ था और दरवाजे पर भी । दोनो मे फर्क इतना ही था कि आँगनवाले कुएँ में हाथ से चलाकर पानी ऊपर खींचनेवाला लोहे का मजबूत नल लगा था । ठाकुर के घरवालों की गिनती ज्यादा थी । सबके नाम अब मुझे याद भी नहीं रहे । नजदीक के संबंध को टूटे पच्चीस वर्ष जो हो गए । मगर आमी को और जिदगी से सटी रहनेवाली घटनाओ को भूल नहीं पाता हूँ । गाँव का नाम 'आमी' तो बड़ा छोटा है । लेकिन, इसका पेट कितना गहरा और चौड़ा था, क्या बतलाऊँ ? शहर के कितने बड़े 'मुहल्ले' उसमें एक साथ समा जाते । बाजार गाँव में भी था और गाँव के किनारे भी । छपरा शहर से सीधी पूरब की ओर आनेवाली डिस्टीक रोड की सुखीली सड़क की बगल में । यह बाजार हर मंगर, सुक और एतवार को लगा करता । गाँव के बाजार में, इतनी भीड़ कभी नहीं होती थी । इसकी वजह थी, गाँव के किनारे लगनेवाले बाजार में जवार भर के लोग आया करते थे । आमी से उत्तर और पच्छिम के गाँवों में इतना नजदीक और कोई बाजार भी तो नहीं लगता था । पूरब की ओर मानुपुर था और उससे और पूरब हटकर—दिघवारा । दिघवारा तो थाना भी था और अस्पताल भी । रेलवे-स्टेशन का नाम भी दिघवारा । हमलोग कहीं से आते, तो दिघवारा ही उतरते थे । यहाँ बाजार रोज

लगता था। मानपुर में हफ्ता में दो बार बाजार लगता। यहाँ डाक-खाना भी था। यहीं के मोनसीजी हमलोगों के गाँव में चिट्ठी बाँटने आते थे। चिट्ठियों के झोले के एक खाने में वे लिफाफा-पोस्टकाट भी लिए होते। परदेस से मेरे बाबू जब दस-पाँच रुपये मनीआडर भेजते, तो मोनसीजी ही वे रुपये मेरी माँ के हाथ में देते और उनसे अँगूठे का निशान लेते थे। ऐसे समय पर मुझे खेंखर काका के घर कजरौटा माँगने के लिए दौड़ाया जाता। मोनसीजी अँगूठा दाव-दाव कर उसका निशान लेते थे। इसी बात पर कभी-कभी खेंखर काका की घरनी मेरी माँ को बुरा-भला कह देती। मेरी माँ पर इल्जाम यह लगाया जाता कि आधे से अधिक काजर को अँगूठे में पोत लिया। लेकिन, इतने ही से काम नहीं चल जाता था। फिर शीतल तिवारी और भूलन सिंह की खोज होती। मनीआडर फारम पर गवाही बनानी पड़ती। इस तरह गवाही बनाकर अपनी दस्तखत के नीचे जबतक वे 'वाक़लम खास' लिख नहीं देते, तब तक मोनसीजी झोले से रुपये नहीं निकालते थे। और रुपया निकालकर मेरी माँ के आगे रखते हुए कहते, "इसी में मेरा इनाम भी है। इस बार पंद्रह रुपये आए हैं, आठ आने से कम न लूँगा।"

"आठ आने?" मेरी माँ अचरज से भरकर पूछती।

"हाँ, आठ गंडा" मोनसीजी कहते।

इस अचरज की हमेशा दो वजहें होती थीं। एक तो मेरी माँ इतनी गँवार थी कि पाँच रुपये की रेज़गारी एक साथ गिनने के लिए मिल जाय, तो सारा दिन क्या, चौबीस घंटे में भी वह अच्छी तरह नहीं गिन सकती थी। एक आने को यानी चार पैसे को वह एक गंडा मान कर पैसों की गिनती करती। कर्ज और फ़िक्र से जिंदगी तो भारी हो ही रही थी, साथ-साथ उस मनीआडर से आठ गंडे पैसे देकर मोनसीजी को खुश करना पड़ता था। हाँ, मोनसीजी कभी हमारी भलाई भी करते थे। मैं पहले कह चुका हूँ, मेरे गाँव में न पोस्ट-आफ़िस था और न कोई लेटर-ब्राकस। ऐसी हालत में टाकुर के घर की चिट्ठियाँ

लेटर-वाकस में डालने के लिए उनका नौकर मानपुर चला जाता। पढ़े-लिखे लोग अक्सर मानपुर जाते, तो वहाँ के लेटर-वाकस में अपनी चिट्ठियाँ डाल आते थे। मगर, जो लोग हमारे तबके के थे, उनके साथ यह सुविधा नहीं थी। एक तो हमलोग चिट्ठी ही कम लिखते थे। दो जगह से चिट्ठियों के आने की उमीद रहती। एक बाबू के यहाँ से, जो कलकत्ते के किसी छोटे-मोटे वर्क-शॉप में व्यायलर-कुली का काम करते थे और दूसरे मामू के यहाँ से, जो पटने में फेरी देकर जूता-सिलाई करते थे। कभी-कभी मोनसीजी हमलोगों पर कीरपा करके चिट्ठी का जवाब लिख देते और लेटर-वाकस में डालने के लिए उसे साथ ही ले भी जाते थे। इस काम के लिए वे हमलोगों से कुछ भी नहीं लेते थे। गाँव के एक कोने में वे घुसते तो यह खबर गाव के चारों कोने में फैल जाती। मोनसीजी का इतजार होने लगता और बेचारे मोनसीजी ऐसे थे कि अगर जमींदार के दरवाजे पर पहुँच जाते, तो दो-डेढ़ घंटा से पहले उठते ही नहीं थे। जमींदार के दरवाजे पर अकड़ कर बैठने में शायद उन्हें भी आनंद मिलता था।

अपने दोश में आने के बाद की जो सबसे पहली चोटिली घटना है, उस नी भूलता। शाम हो चुकी थी। मेरी भोपड़ी में मिट्टी के तेल की दिवरी अभी-अभी जलायी गई थी। शायद फाल्गुन महीने का अंत हो रहा था। सूरज के डूबते-डूबते दादी मेरी गर्दन में गाँती कसकर बाँध दिया करती थी। सो, गाँती आज भी कसी थी। अभी कल तक बाबू लोंगों की दालान और रैयतों की बथान में रंग-भरी होली का मगलाचरण गाया जा रहा था। मगर, आज जैसे गाँव के इस छोर से लेकर उस छोर तक मातम छाया हुआ था। मरदों से आमी की गली-गली सूनी दीख पड़ती थी। होली का गीत कहीं से भी सुनायी नहीं पड़ता। दोल और भाल जैसे फिर से सड़कों में बंद कर दिये गए थे। मैं दादी के पास भीतर भोपड़ी में बैठा, जहाँ माँ खिचड़ी पका रही थी, दो-तीन आलू पकाकर नास्ता करने का सिलसिला जमा रहा था कि मेरी भोपड़ी के बाहर अचानक आठ-दस मरदों के बोलने की आवाज सुनायी पड़ी। दादी अभी

कान पाथकर अदाज ही लगा रही थी कि बाहर से किमी ने दादी का नाम लेकर पुकारा, “कबूतरी, कबूतरी !”

दादी का दिल धक् से कर गया। आवाज बच्चा बाबू की थी — ठाकुर के बड़े लडके थे वे। दादी ‘आई मालिक’ कहकर बाहर निकलने लगी, तो मैं उठकर साथ लगा। मगर, माँ ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया। वह बोली, “बैठ तू। मालिक के सामने और घोड़े के पीछे रहना ठीक नहीं। तू बड़ा फटर-फटर बोलता है। मुँह से कुछ बेबाजिय बात निकल गई, तो तेरे साथ घर भर की चमड़ी उधेक दी जायगी।” माँ की बात सुनकर मुझे काठ मार गया। कल्लुए की गर्दन की तरह अपने हाथ-पैर समेटकर मैं माँ के पाम चूल्हे से मटककर बंठ गया। लेकिन, न-जाने, कौन ऐसी बात हुई कि मेरे और माँ के कानों में दादी के रोने की आवाज सुनाई पड़ी। वह आवाज तो महसूस ही की जा सकती है, बतलायी नहीं जा सकती। मेरी बूढ़ी दादी की वह ग्लानि किमी औरत को न नसीब हो, यही मनाता हूँ। वह पुफ्फा फाड़ कर रो पड़ी थी। उसने अपनी छाती में शायद कई मुक्के भी मारे थे। अब तो मेरी माँ में भी न रहा गया। चूल्हे पर खिचड़ी छोड़कर मैं माँ के पीछे-पीछे अपनी झोंपड़ी के दरवाजे पर आया। आकर मैंने देखा, बाहर उज्जला था। एक आदमी के हाथ में अजीब तरह की रोशनी जल रही थी। पीछे बहुत पूछने पर माँ ने मुझे बताया कि उसका नाम ‘लालटेन’ है। वह मात समुद्र टपु पार से बन कर आता है और उसका दाम ? इतने गड़े पैसे होते होंगे कि शायद मेरी माँ अकेली गिन न सकेगी थी। उसका असली दाम बतलाने से माँ ने अपनी मजबूरी जाहिर की थी; क्योंकि रोशनी का बेसा इतजाम न तो उसके बाप के घर में था और न मेरे यहाँ। ऐसी चीज उसने कभी खरीदी नहीं। नाम शायद इसलिए जानती थी कि बाबू लोगों के घर अक्सर जौ कूटने, गोबर पाथने और बच्चों के ‘गँतर’ फोंचने के लिए जाना पड़ता था। हवेली कमाने के लिए दादी ही जाया करती थी। कबूतरी का हाथ हल्का और ‘जस’ से भरा हुआ है, गाँव की सुहागिनी कहती थीं।

लालटेन की रोशनी में मा के साथ मैंने देखा कि एक खाट पर, जो काफी कमजोर थी और जिसकी रस्सियाँ कई जगह से कटी हुईं जान पड़ती थीं, मेरे दादा पीठ के बल बेहोश पड़े हुए थे। जाघ के पास की भगोटी खून से रंगी हुईं दीख पड़ती थी और छाती पर दो-तीन जगह हथियार के जख्म थे। दादा का कुरता छाती के पास बुरी तरह फट गया था और लहू के काले-काले कतरे चारों ओर फैलकर दादा की वफ़ादारी की सबूत पेश कर रहे थे। दादा की यह हालत देख अपने मैले आँचल से माँ ने अपनी आँखें ढँक ली और माँ पर नजर पड़ते ही दादी और छछन-छछनकर रोने लगी। वह खाट से सटकर जमीन पर बैठी दादा की देह पर अपने सिर को पटकने लगी। उसके रोने की आवाज धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी। इधर माँ को भी रुलायी आ रही थी। मगर वह दादा की देह पर गिरकर भला कैसे रोती ? ससुर और पुतोहू का रिश्ता जो था ! उस वक्त मुझे एक हाथ से ढालकर माँ जहाँ खड़ी थी, रोने लगी। छाती में छेद करनेवाला खेल था, यह !

“कबूतरी ?” उनलोगों में से किसी ने मेरी दादी को पुकारा।

“....” मगर मेरी दादी कुछ बोली नहीं। वह दादा की खूबियों का बखान करती हुई लगातार सिर को पटक और रो रही थी। उसकी फटी और पुरानी साड़ी का छोर कमर से ऊपर तक हट चुका था। पास ही खड़े बच्चा बाबू बहुत बेचैन दीख रहे थे। दादा का यह हाल कैसे हो गया, यह तो मैं बहुत पीछे समझ सका, मगर उनकी यह हालत देख मुझे इतनी याद जरूर हो आयी कि आज दोपहर में वे ज्योंही हलवाही करके लौटे, दादी से कहा, “कुछ खाने के लिए है तो दे दे, न हो तो मेरा भाला निकाल ला, आज दीयर पर गोहराँव में जाना है।”

“गोहराँव में जाओगे किस जगह ?” दादी ने पूछा।

“बहुत दूर, मलखाचक के सामने।” दादा बोले।

उसी रोज़ दन के करीब एक बजे तक मेरे यहाँ खाने के लिए कुछ नहीं था। माँ ठाकुर के यहाँ गोबर पाथने गई थी। जाते वक्त उसने

दादी स कहा था कि वह दोपहर स सबेरे ही आ जायगी और आज मालिक के घर स लौटती बार एक-सवा सेर जनेगा लेती आयगी । मौ, माँ मुँहफाप्पे उठकर चली गई थी । दादा सुबह बिना कुछ खाये ही ठाकुर का खेत जोतने चले गए । मुझे भूख लगी, तो फुरदेल साव के आलू के उस खेत की ओर दौड़ा, जिसकी फसल कट चुकी थी, आज स दो रोज पहले । मतलब, आलू उखाड़कर परसो विक्री के लिए छपरा चला जा चुका था । वैसे गाँव में अभी आलू के खेत थे, लेकिन फुरदेल साव का आलू सबो से अगताह हुआ था । शायद शहर में ले जाकर मँहगे दाम पर बेचने के लिए ही फुरदेल साव आलू की फसल ममय से कुछ पहले तैयार कर लेता था । और जगहो के बारे तो मुझे कोई वंमी जानकारी नहीं, मगर हमारे यहाँ जब लोग खेत से आलू उखाड़ लेते हैं, तब भी खेत की गीली मिट्टी में छोटे-बड़े आलू रह जाते हैं । ऐसी मिट्टी पर एड़ी को एक जगह ताकत के साथ गड़ा करके जब आम-पाम की मिट्टी को पैर के पजे से हटाया जाता है, तो अदमर दो-चार आलू निकल आते हैं । अपनी गरीबी की वजह से मैं तो इस काम में मँज चुका था । मेरे इलाके में इस काम को 'आलू चालना' कहते हैं और इस तरह आलू चालने का काम मेरे ही तबके के लड़के किया करते हैं—जैसा उम बक्त में था ।

हाँ भाई, तो फुरदेल साव के खेत से मैं करीब आध सेर आलू चाल लाया था । सो, उसी में से दादी ने कुछ आलू पका दिए थे, जिन्हें खाकर मैं दोपहर तक, माँ के ठाकुर के घर से मकई ले आने की इतजारी करता रहा । दादी चूल्हा सुलगाकर बड़ी देर से उस पर खपरी चढ़ाये हुई थी । बालू गर्म हो चुका था । फिर चूल्हा सुलगाने और बालू गर्म करने में देर न हो, शायद इसीलिए दादी यह सब कुछ कर रही थी । शायद यह उमीद थी कि मेरी माँ ज्योही मकई लेकर आयगी कि खपरी में घानी डाल दी जायगी । फिर दादा पहुँचेंगे, तो उन्हें भी भूजा तुरत मिल जायगा । इसीलिए तो दादी का इशारा पाते ही मैं भी गनेरी तुरहा के खेत से लग-भग दस-बारह लाल-लाल मिरचाइयाँ उड़ा ले आया था । इन सब

कामो में मैं पूरा चालू हो गया था। गनेरी के खेत में, जो उसके घर के पीछे ही था, तरह-तरह की तरकारी थी। उसमें टमाटर भी था। मोका देखकर मैं पके टमाटर तोड़ लेता और कहीं छिपकर बड़े चाव से खाता था। अगर टमाटर चुराने समय किसी के आने की आहट मालूम होती, तो फिर कच्चे और पके का खयाल नहीं रह जाता। कच्चे टमाटर हाथ आ जाते, तो लाकर दादी के हाथ में देता। फिर, न जाने, वह कैसे-कैसे उनको काम में लाती थी।

तो इस तरह माँ के साथ मकई के इतजार में दादी ने चूल्हे पर से कई बार खपरी उतारी और चढ़ायी। उसके चनक जाने का डर जो था। दादा के हलवाही करके लौटने तक आखिर माँ नहीं आई और दादा ने अभी आकर दादी से जो कुछ कहा, उसके जवाब में दादी से कुछ कहते न बनता था। दादा ने कहा था, वे मलखाचक के दीयर पर गोहराँव में जायेंगे। दादी को यह नहीं पूछना चाहता था कि किसकी ओर से ? इतना अंदाज लगाना शायद मोसकिल नहीं था कि मलखाचक के दीयर में ठाकुर का भी खेत है और गंगा के पानी के हट जाने से फिर जो नपाई हो रही है, इसीलिए मलखाचकवालो से झगड़ पेटा हो गई होगी। मुझे नहीं मालूम कि दादा इसके पहले भी कोई ऐसी लड़ाई लड़ चुके थे या नहीं। मगर, मुझे इतनी याद जरूर है कि उस वक्त दादी की काली सूरत और भी काली पड़ गई थी। दादा ने फिर से जोर देकर कहा, “कुछ खाने के लिए है, तो ले आ, नहीं तो मेरा भाला निकाल ला। नाव खुल जायगी, फिर पैदल कब तक जाऊँगा ? मेरे रहते भी कोई मालिक के खेत में छेव लगा दे, तो यह जिनगी अकारथ है।”

तब बड़े संकोच के साथ मेरी दादी झोपड़ी में घुसी और पुआल के बिछावन के नीचे एक ओर दबाकर जो भाला रखा हुआ था, उसे निकालकर ले आयी। दादा का चेहरा आज भी याद है। हाथ लबे-लबे थे और पैर भी। पैरों में बेवाय फटी थी। वे जूता क्या पहनते, मेरी समझ से तो शायद जिंदगी भर उन्हें चमरखानी ‘पनही’ भी न नसीब

हुई होगी। आँखें भूरी-भूरी थीं। गाल पिन्चके हुए थे। आँखों के नीचे तो ऐसे गड्ढे बन गए थे, कि उनमें छटकी भर तेल भी अँट जाय। सरीर का रोआँ-रोआँ उजला और चमड़े की ओर टेढ़ा होकर मुड़ा हुआ था। दूर से आते हुए आदमी को बहुत डीठ गड़ाकर देखा करते थे।

मैं तो इन बातों को याद कर-करके तब समझने लगा, जब मुझे दुनियादारी के चक्कर में पड़ना पड़ा। हाँ, मैंने दादी और माँ से पूछने की कोशिश की थी, मगर वे दोनों मेरे सवालियों के जवाब उस तरह नहीं दे सकीं, जिस तरह के जवाब से मुझे दिलजमई हो सकती थी। इसके बारे में बाबू ने भरपूर जानकारी करायी थी। इसलिए मैं समझता हूँ कि उस वक्त दादा के मरदा को देखकर दादी पूरी रामायन समझ गई होगी। दादा गोहराँव में गए थे, दीयर पर दोनों दलों में लठिया-लठउअल और भाला-गौरास सब कुछ हो गया। और इसी दो चक्की के पाट के बीच दादा ने परलोक का रास्ता देख लिया। इसके बाद दीयर पर के खेत के बारे में ममला-मोकदमा हुआ या नहीं, इसकी कहानी मुझे नहीं मालूम। लेकिन, उस दिन साँझ को बच्चा बाबू ने मेरी दादी के सामने दादा की नेकनीयती, ईमानदारी और वफ़ादारी की जैसे दस्तावेज पेश कर दी थी। बच्चा बाबू और उनके आदमी दादी का मुँह देख रहे थे और दादी की आँखों से छ-छ पॉती लोर बह रहा था।

“कबूतरी मुन, अधिक रोने से काम नहीं चलेगा। जतन का गुन हमलोग नहीं भूलेगे। यह लो . । बच्चा बाबू ने कहा था।

मेरे दादा का नाम जतन महारा था। खैर, उस समय मेरी दादी ने लालटेन की रोशनी में बच्चा बाबू की तरफ इस तरह देखा था कि क्या कहूँ ? वह दबी जुबान से कुछ फिफककर बोली, “सरकार, मुझे क्या कहते हैं ? मेरा तो सबस चला गया। मेरे घर में तो डाका पड़ गया।”

“तो, आखिर रोने से जतन लौट तो नहीं आएगा। सबस चला गया, तो क्या है, हमलोग तो नहीं मर गए ? जतन जिंदा ही था, तो कहाँ से कमा कर लाता था ? हमलोग ही जिलाते थे या कहीं नेपाल जाता था

कमाई करने १ पगली कही की । ले इसे रख, और मुरदा को जलवा दे ।” बच्चा बाबू बोले ।

“मालिक, इस समय मेरे घर में भला कौन मरदाना है, जो यह काम करेगा ?” मेरी माँ अपने आँसू पीकर बोली ।

“तुम इसकी चिंता मत करो । तुम्हारे घर में मरदाना नहीं है तो क्या १ मरदों से गाँव तो नहीं खाली हो गया ?” बच्चा बाबू ने कहा । तब भोपकर मेरी माँ बकर-बकर उनकी ओर देखने लगी । उसी समय माँ को शायद खिचड़ी की याद हो आई । वह खिचड़ी उतारने या सँभालने के लिए भोपड़ी में धुसी । बात यह हुई कि दादा तो दोपहर ही में गोहराँव में चले गए थे । खाना उन्हें नहीं मिला । दादी ने इतना जरूर कहा था, “भला भूखे-यासे गोहराँव पर कैसे जाओगे ?”

“तू इसकी परवा न कर । नाव पर चिउरा-बतासा, भूँजा और मीठा भी जा रहा है । रास्ते में भरपेट-आध-पेट भूँजा फाँककर दरिआवा का पानी पी लूँगा ।” दादा बोले ।

तब दादी को शायद कुछ सतोख हुआ था । दादा भाला लेकर दौड़ते-भागते घाट का रास्ता पकड़े । इधर माँ करीब चार बजे पहुँची । दादी ने पूछा “इतनी देर क्या करने लगी कनियाँ ?”

“गोइठा ठोकने के बाद जौ कूटना था । जौ कूटने के बाद आँगन से लेकर बाहर तक की नाली साफ करनी थी । फिर एक कठउती गँतर फीचना था । अभी तो फिच-सूखाकर दिये आ रही हूँ ।”

और, इसके बाद दादी ने माँ की ओर देखकर कहा, “मगरुआ के दादा भूखे गोहराँव पर चले गए ।”

“कुछ मिल जाता, तो ले आती । माँगने का मौका भी नहीं मिलता था । एक-पर-एक काम था ।”

माँ ने कोई ऐसा बहाना नहीं बनाया था । बात सही थी । जब कभी माँ के साथ मैं ठाकुर के घर जाता, तो माँ को ये सारे काम करते देखता था । ऐसी हालत में कभी-कभी मैं भी उसका मददगार हो रहता ।

उम वक्त माँ की गोद में एक-डेढ़ वर्ष की मेरी बहन भी थी। वह दूध के न रहने के बावजूद भी उसकी सूखी छाती से चिपकी रहती। गोबर की ऊँची-ढेरी देखकर वह हताश तो नहीं होती थी, लेकिन जब मेरी डेढ़ वर्ष की बहन 'नकटी', भूसे की छाँटी मिलाकर उन्हें गोलियाते और ऊपर से छुतिहर घड़े का पानी देकर कचारते समय रोने लगती, तो वह परेशान हो उठती। तब मुझे 'नकटी' को संभालना पड़ता था। ऐसी हालत में नकटी कभी-कभी बेतरह छरियाती। जो रोना-चिल्लाना शुरू करती, सो माँ की गोद में चिपटकर ही दम लेती थी। फिर तो मालिक की कौन कहे, वहाँ माल-जाल के लिए जो कुट्टी काटनेवाला नौकर था, उसकी भी फटकार सुननी पड़ती। इसी डर के मारे जब माँ गोबर के लोइए तैयार कर लेती, तो वह खुद गोइठा पाथने की जगह पर नकटी को गोद से चिपकाकर खड़ी हो जाती और मे छोटी-सी छँइटी में लोइए को भर-भरकर उसके पास पहुँचाया करता। अगर उस वक्त खाने-पीने का समय होता, तो जूठन-कूठन भी मिल जाता था। कहारों की तरह हमलोग उस जूठे थाल में नहीं खा सकते थे। माँ केले का पत्ता काटकर ला देती और उसी में ऊपर से भात-दाल, जिनपर मक्खियाँ भिनभिनाती होती, उडेल दिया जाता था। लेकिन ऐसा मौका बहुत कम ही हाथ लगता। कहारों के मारे जूठन भी नहीं बचता था। ज्यादा भिनक चुका अन्न ही कहार हमलोगों को देकर हम पर कीरपा करते थे।

“खोइछा मे क्या है ?” दादी ने पूछा।

“सेर भर दारा है और पा-भर खेसारी की दाल।” माँ ने जवाब दिया। मकई को मामूली गर्म बालू में भूनकर जिसे दल दिया जाता है, उसे हमारे यहाँ 'दारा' कहते हैं। मेरी ओर गरीब-धरों में दारा का भात भी बनता है और खिचड़ी भी। वैसे मकई की रोटी और मकई की सत्तू खाने के लिए छपरा जिला मशहूर है। जाँता चलात वक्त किसान की बेटियाँ अक्सर ये गीत गाने लगती हैं—

मकई के सतुआ सकरपलवा हो बाबूजी,
काहेला बीअइब गंगा-परवा हो बाबूजी ।

माँ के मुँह से दारा और दाल का नाम सुनकर दादी भट चूल्हे के पास चली आई । खपरी और दालू के गर्म करने में बाँस की कितनी फट्टी और मकई की खूँटी जल चुकी थी । चूल्हे का मुँह भर गया था । सो, दादी चूल्हे के भीतर की राख निकालने लगी ।

अब नकटी इस दुनिया में नहीं थी । दादा के इस तरह मारे जाने के करीब दस रोज पहले की बात है । जब बहुत ग़रतर होता, तो माँ अक्सर गगाजी में फीचने चली जाती । नकटी को थामने के लिए मैं भी साथ जाता था । उस रोज भी वही बात थी । मगर मैं साथ न जा सका । बुखार से थर-थर काँप रहा था । दादा कुँड़ी चलाने गए थे । बाजार के इस पार, डिस्टीक बोड की सड़क के पास ठाकुर का आलू का खेत पटाना था । सो उन्हें मुँहमापे चला जाना पड़ा । दादी मुझे टाट से ढँककर मुरुदघटिया पर लकड़ी के लिए चली गई । भात पकाने के लिए न मकई की खूँटी थी और न फट्टी । मुरुदघटिया में जाने पर थोड़ी-बहुत मुर्दों पर की अधजली लकड़ियाँ जरूर मिल जाती थी । इधर माँ नकटी को लेकर गगाजी गई थी । माँ के कहे मुताबिक ग़रतर फीचकर जब वह दस-बीस कदम चिकनी मिट्टी पर सूखने के लिए उन्हें फैलाने गई कि इधर नकटी पानी में समा गई । माँ के दौड़कर वहाँ पहुँचते-पहुँचते नकटी गगा मइया की गोद चली जा चुकी थी । तब छाती पीटती और रोती, चिघाड़ मारती हुई माँ अपने घर पहुँची थी । अभी नकटी के खोने का घाव भी न भरा था कि दादा ने अपनी जिंदगी का खेल खेल लिया । वे मारे तो जरूर गए, मगर तलवार के बल पर उसी रोज से उस दीयर के खेत पर ठाकुर का हक जम गया । मलखाचकवाले जो भागे, सो फिर नजर नहीं आए ।

खेखर काका हितई में चले गए थे, सो उसी वक्त लौटे । खबर मिली, दौड़े हुए आए । बच्चा बाबू को खेखर काका ने अदब के साथ झुककर, सलाम

किया। बच्चा बाबू ने खेखर काका के हाथ पर चाँदी के कुछ रुपए रखकर मेरी दादी की ओर इशारा करते हुए कहा, “इन रुपयों में से बूढ़े की काम-कीरिया में जो खर्च हो, सो करना और जो बचे सो बुढ़िया को दे देना। अछैबर अभी लकड़ी लिये आ रहा होगा। उसे भी साथ ले लेना। अब जतन को जलाने का काम तुम्हारे जिम्मे रहा।”

“अच्छा सरकार ...।” खेखर काका कुछ कहते-कहते रुक गए। इसके बाद अपने आदमियों को चलने का इशारा देकर बच्चा बाबू लौटने लगे। मेरी झोपड़ी के सामने से करीब दस डेग आगे जाकर वे फिर लौटे। उन्होंने खेखर काका से दादी और मेरी माँ को सुनाकर कहा, “बुढ़िया को कह दो, रोए-कलपे नहीं। जतन हमलोगों के लिए मर गया, हमलोग उसके घर के लिए मर जायेंगे। देखो, दो-चार रोज में कुछ खेत भी बकसीस में दे दूँगा। भगडू को कलकत्ता अगोरने की क्या जरूरत है? यहाँ मजे से रहे, अपना खेत जोते-बोये और पड़ा रहे। इस पर भी किसी बेलें-कुबेलें के लिए हमलोग मौजूद ही हैं। है न?”

“सरकार, आप हमलोगों के माई-बाप हैं।”

बच्चा बाबू के चले जाने के बाद खेखर काका मेरी दादी के पास चले आए और मेरी माँ को बुलाकर कहा, “कोई फटी-पुरानी टाट हो, तो ले आओ। मुर्दा को ढाँप देना चाहिए।” तब माँ बड़ी बेचैनी के साथ घर में टाट खोजने लगी। दो-एक टाट थी, जिसे कोदो के पुआल पर सोकर दादा और मैं, ओढ़ा करता था। आखिर में माँ ने वही टाट दे दी। खेखर काका ने बड़े जतन से दादा की लाश को उस टाट से ढँक दिया और तब वे दादी से बोले, “काकी, मैं भी जानता हूँ कि अपने सबों से बढ़कर पीरथी में कोई भी बड़ी चीज नहीं है। मगर, रौने और छाती पीटने से जतन काका सोंरग से लौट नहीं आएँगे। भगवान् ने तुम्हें बेटा, पुतोहू और पोता दिए हैं। अब तुम भगडू और मगरू का मुँह देखो। बड़े मालिक की तरह बच्चा बाबू ढेर खिसियाह मिजाज के नहीं हैं। ये दयामत मालिक हैं...।” और, इसी सिलसिले

में उन्होंने दादी को वे रुपये दिखलाकर कहा, “देखो, बच्चा बाबू ने एक, दो, तीन, चार- बीस रुपये दिए हैं। अछैबर कहार लकड़ी लेकर आता ही होगा। मैं बजाज के यहाँ से पाँच गज कफन का कपड़ा लिये आता हूँ। परसो बनरसिया के यहाँ जाकर मगरूआ मेरे साथ माथा मुड़वा आवेगा।”

“और भोज ?” दादी ने पूछा।

“भोज के लिए इतने पैसे काफी हैं। यहाँ हमलोग छौ-सात आदमी होंगे और हराजी में भी तो अब तीन-चार ही घर अपने बिरादर रह गए हैं। घर पीछे एक आदमी को नेवत आऊँगा। कफन में कितना लगेगा ? मोसकिल से एक-डेढ़ रुपया। भोज में सबको माढ़ा-चिउरा और दही खिला देना।”

“हूँ . . ।” दादी के मुँह से निकला और वह फिर रोने लगी।

“रोओ मत काकी। जो होना था, सो तो हो गया। जिनगी का कौन ठिकाना है ? एक दिन तो सब को मरना है। चाहे घर में मरो चाहे बाहर मरो। चाहे बीमारी से मरो, चाहे हथियार से मरो, बात एक ही है। बात यह है काकी कि भगवान अपने ऊपर अपजस लेना नहीं चाहते। आदमी को मारने के लिए वे कोई-न-कोई बहाना खोज ही लेते हैं। सो तो अब कलजुग है। आज भी चलते-फिरते, पूजा करते और मुँह धोते कितने लोगो की मुक्ति हो जाती है।”

लेकिन, इस पर भी दादी का मन न भरा। खेखर काका कहने लगे, “मानता हूँ कि खेत मिला ठाकुर को और जान गई जतन काका की। सो क्या करोगी, हमलोग कमीने हैं। बड़ो का जूता माथे पर लेना ही होगा।” दादी की समझ में न-जाने और क्या आया, वह और भी पुक्का फाड़कर रोने लगी।

“मंगरूआ, मंगरूआ . . ।” बाहर से किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। यह आवाज मेरी भोपड़ी पीछे से आई थी। खेखर काका ने तनिक

जोर देकर कहा, “कौन है, अछैबर ? उधर पीछे कहाँ चले गए, इधर सामने आओ न ।”

अछैबर मेरी झोपड़ी के सामने खाली जगह में आकर खड़ा हो गया । उसके माथे पर लकड़ी का एक बहुत बड़ा बोझ था । खेखर काका बोले, “लकड़ी पटक कर बैठो । मैं जरा पाँच गज कप्पन तो लेता आऊँ ।”

“राम राम, तुम भी कैसे हो खेखर, अभी तक कप्पन भी नहीं ले आए । मुर्दा सड़ाना चाहते हो क्या ? जाओ जाओ, दौड़ो ।”

अछैबर ने लकड़ी का बोझ पास ही पटक दिया । खेखर काका दौड़कर कप्पन ले आए, साथ में दो-चार जात-बिरादर को भी लेते आए थे । कहा नहीं, गाँव बहुत बड़ा है । इस पट्टी की बात उस पट्टी पहुँचते-पहुँचते काफी देर लग जाती है । उनलोगों के आ जाने पर अछैबर वापस चला गया । खेखर काका ने रोककर साथ में चलने के लिए कहा तो बोला, “चमार-दुसाध का मुर्दा मैं दयो जलाऊँगा ? छोटे सरकार ने मुझे सिर्फ लकड़ी पहुँचा देने के लिए कहा था ।” और वह चलता बना ।

मुरदे के साथ जो ‘ललटेम’ नाम की रोशनी आई थी, वह बच्चा बाबू के साथ चली गई थी । टिबरी के मामूली उजियाले में ही दादा को कप्पन से छिपाया गया । मेरी बिरादरी का एक आदमी जमींदार की बाँस की कोठी से चार बास काट लाया । आज बाँस काटते वक्त उसे पकड़कर कोई भी बच्चा बाबू के सामने नहीं ले गया । एक बार मेरी पलानी का एक कोना बाँस के सड़ जाने से गिर रहा था । मेरे बाबू छिप कर उसी कोठी में से एक छोटो-सा बाँस काट रहे थे कि पकड़ लिए गए । अपने चरवाहे से बँधवाकर बड़े मालिक ने बुरी तरह मरम्मत करायी थी । माँ का कहना था कि उसके दूसरे दिन ही बाबू कलकत्ता भाग गए ।

बाँस की रंथी बनकर जब तैयार हुई और दादा को उस पर सुला कर बाँधा-छाना जाने लगा, तो माँ ने मेरा हाथ पकड़कर भीतर खींच

लिया। दादी दरवाजे पर बैठी रो रही थी, सो खेखर कका ने मेरी माँ से कहा, “काकी को भीतर ले जाओ न। हमलोग अब मजिल ले जा रहे हैं, कसने में कितनी देर लगेगी ?”

तब माँ दादी के लाख हाथ-पैर कड़ा करने पर भी उसे खींच लायी। हम तीनों भीतर बैठे रहे। कुछ मिनट के बाद ही यह पता चला कि अछैबर जो लकड़ी पटक गया था, उसे कोई बाँधकर सिर पर रख रहा है। और, फिर तुरत ही सुनाई पड़ा—सीरी राम नाम सत्त है !

शायद दादा को वे लोग जलाने के लिए मुरुदघटिया ले गए। थोड़ी देर के बाद माँ ने मुझे किसी तरह दारा और खेसारी की दाल की खिचड़ी खिला दी और घंटे भर के अंदर मैं शायद सो भी गया। लेकिन, मेरा अंदाज यही है कि उस रात दादी और माँ ने उपास ही किया। मैं कोदो के पुआल पर सो गया था। सुबह मेरी आँखें तब खुली, जब माँ ने मुझे उठाकर बाहर बिठा दिया और वह पुआल को हटाकर उस जगह को लीपने लगी।

मामू को लेकर बाबू तीसरे रोज पटना से वापस आ गए। सुबह का समय था। माँ ठाकुर की बथान साफ करने जा रही थी। पलानी से निकलकर ज्योंही आगे बढ़ी कि सामने से आते हुए बाबू और मामू पर नजर पड़ गई। वह तब उल्टे पाँव पलानी में लौटी। मेरे खाने के लिए घर में छूँछे भात था। न दाल और न तरकारी। इसलिए माँ की पीठ पर ही मैं भी पलानी से बाहर निकला। मोतीचंद तुरहा के खेत में मोरहन मुरई लगी थी। तरकारी और दाल की कमी की वजह से मेरी नजर उसी ओर चली गई। सोचा था, इधर-उधर देखकर उखाड़ लूँगा। घर पर आकर उसकी मिट्टी दादी खुद धो डालेगी। लेकिन, मामू और बाबू को देखकर मैं भी रुका। पहले माँ पलानी में घुसी और तब मैं। मामू को लेकर जब बाबू अंदर आए, तो माँ रो-रोकर अपने भाई से भेट करने लगी। न-जाने, माँ को चुप कराने के लिए मामू ने उस वक्त क्या-क्या कहा था। लेकिन, थोड़ी देर रो लेने के बाद माँ चुप हो गई।

“मगरुआ ?” माँ ने पुकारा।

“क्या ?”

“फुरदेल साव के खेत से जल्दी कुछ झटक ला।” मामू से तनिक अलग ले जाकर माँ बोली।

मेरी गाँती का कपड़ा बड़ा था। माँ ने मुझे एक छोटा-सा मैला टुकड़ा पकड़ा दिया और मैं फुरदेल साव के खेत की ओर चला। बाहर बाबू खड़े थे। उन्होंने पूछा, “कहाँ रे ?” जवाब में मैंने सिर्फ वह मैला टुकड़ा दिखला दिया। बाबू शायद लाल बुलकड़ से भी बड़े बुलकड़ थे।

मेरा खयाल है, अपने बचपन में, ऐसे-ऐसे मौके पर उन्हें भी इस तरह के काम करने पड़े होंगे। उन्होंने इशारे से कहा, “इधर-उधर देखकर। पकड़ा मत जाना।”

“अच्छा।” तब मैंने कहा था।

तरकारी तोड़ने में देर न हुई, देर हुई तरकारी तोड़कर पलानी तक लौट आने में। रास्ता बदलकर आना पड़ा था। जाती दफा कोई डर न था। लौटती दफा डर इस बात का था कि कहीं फुरदेल साव का बेटा मिल गया, तो मारते-मारते बाँह छटका देगा। फुरदेल साव तो बिल्कुल बूढ़े थे। उन्हें सूझता भी कम था। मगर उनके लड़के बड़े काँई थे। उनके हाथों से मैं कई बार पिट चुका था। तरकारी लेकर आने पर माँ ने दादी को सम्झा-बुझा दिया और अपने ठाकुर के यहाँ काम करने चली गईं। मुझे भूख लगी थी। दादी ने मेरे लिए दो टमाटर पका दिए। मैं टमाटर का भर्त्ता और मकई का भात खाने लगा। मैं जैसे ही भात-भर्त्ता खाकर मुँह धोने लगा कि तब तक बाबू और मामू ने अंबिका स्थान घाट चलकर नहाने का विचार कर लिया।

अंबिका स्थान मेरे यहाँ का पुराना देवस्थान है। वैसे इसकी प्रसिद्धि तो पूरे बिहार में है, मगर दशहरे और चैतनवमी के अवसर पर भी अक्मर जवार ही के लोग आते हैं। अंबिका भवानी का विशाल मंदिर गंगा के किनारे खड़ा है। इस मंदिर के अहाते के ही भीतर एक बहुत बड़ी फुलवारी है। उसमें सुना है, तरह-तरह के फूल लगे हुए हैं। हमलोग अछूत थे। वैसे अछूत तो अब भी है। मगर उस वक्त के हरिजन और आज के हरिजन में बड़ा फर्क हो गया है। पहले तो कुरमी-कहार भी हमलोगों से बदन नहीं छुआते थे, अब तो बाबाजी लोग तक हमलोगों का छुआ खाते हैं।

उन दिनों हमलोग किसी भी मंदिर में नहीं समा सकते थे। मंदिर की शोभा का वर्णन सुन-सुनकर देखने के लिए मन बड़ा लुसफुसाता था। एक बार दशहरे का अवसर आया। मैं बाहर सीढ़ी के नीचे खड़ा था।

मंदिर बहुत ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है। बड़ी-बड़ी बत्तीस मीठियाँ पारकर कोई मंदिर के आँगन में पहुँचता है। बड़ी भीड़ थी। अंदर से बाबाजी लोगो के मंतर पढ़ने की आवाज जोरो से सुनायी दे रही थी। हवन का धुआँ आसमान को छू रहा था। भवानी पर चढ़ाने के लिए लोग चुनरी और पकवानो से भरी चगेली लिये मंदिर में समा रहे थे। भीतर शायद खस्मी भी बल चढ़ाये जा रहे थे। कटे हुए खस्मी को लेकर कितने लोग बाहर निकलते। टप्-टप् लोहू चूर रहा था। औरते रंग-विरंग के कपड़े पहने थी और उनका झुंड भवानी के गीत गा रहा था। गंगा के किनारे से लेकर अंबिका स्थान तक चमरुआ बाजे बज रहे थे। मंदिर के दूर-दूर तक मिठाई की दूकानें खुल गई थी। वैसे मेला भी लगा था। मगर चैतनवमी के मेले के बराबर नहीं। चैतनवमी का मेला असल में तीन दिन रहता है। और, दशहरे का मेला सिर्फ एक दिन।

बचपन में मैं चैतनवमी के मेले को इसलिए बड़ा मेला समझता था कि इस मेले में लड़के बहुत अधिक मुलाते थे और दशहरे के मेले में बहुत कम। सचमुच चैतनवमी के मेले में भीड़ भी अधिक होती है। तो ठीक दशहरे की इसी भीड़ में मैं बत्तीसो सीढ़ी पारकर मंदिर में समा गया था। इधर-उधर घूम-फिरकर जल्दी-जल्दी देखा और भाग आया। देखा, भवानी के मंदिर का दरवाजा और चौखट चाँदी का बना हुआ है। इस मंदिर के बारे में लोग तरह तरह की बातें कहते हैं। कुछ लोगो का कहना है कि एक रोज रात में यहाँ के पड़े-घराने में किसी ने सपना देखा कि अंबिका भवानी कह रही है कि वे यहाँ रहना चाहती हैं। पंडा लोग उनका मंदिर बनवा दे। अब तो पंडो को बड़ी चिंता हुई कि मंदिर बनवाने के लिए खर्च कहाँ से आए। वे आपस में बहुत चिंतित हो गए। तभी रात में, अंबिका भवानी ने स्वप्न दिखलाकर कहा, “गंगा के किनारे जो ईनार है, उसमें से ईंटे निकलेगी। तुमलोग मिहनत से मंदिर बना डालो।”

दूसरे रोज जब पंडा लोग उस ईनार को देखने गए तो 'देखा, ईनार ईंटो से भर गया था। लोग मजदूर लगवाकर ईंटे निकलवाने लगे। यह कुँआ आज भी मंदिर के दक्खिन और पच्छिम के कोने पर मौजूद है। इसकी गोलाई बहुत ज्यादा है। सुना जाता है, किसी जमाने में यह कुँआ भी रात में थककर आराम करनेवाले राहगीरो को, माँगने पर लोटा-थरिया दिया करता था। आवाज देकर माँगने पर पानी कुँए के मुँह तक भर आता और माँगी हुई चीज पानी के ऊपर आकर तैरने लगती थी। कहते हैं, अब कलजुग आने से इनारे का सत्त भी चला गया। अपना काम करके लोग लोटा-थरिया फिर कुँए में डाल देते थे। मगर एक बार कोई आदमी लोटा-थरिया लेकर चलता बना था। फिर तब से यह कुँआ किसी की मदद नहीं करने लगा।

तो उस घाट का नाम अंबिका स्थान घाट इसीलिए पड़ा था कि इसी जगह अंबिका भवानी का मंदिर है। बाबू और मामू के साथ नहाने जाने के लिए मैं भी ज़िदिया गया। अगर इस समय मैं घर में रहता, तो भात-तरकारी बनाने में दादी की कुछ मदद जरूर करता। मगर उस उस वक्त इतनी अक्ल कहाँ थी। भगोटी लेकर मैं भी बाबू और मामू के साथ चला। पलानी से थोड़ी दूर निकल जाने पर मामू और बाबू बाते करने लगे और मैं उनके साथ-साथ चलता रहा।

“लेकिन अगले साल एक बैल जरूर खरीद लोगे पाहुन।” मामू बोले बाबू से।

“जरूर खरीद लूँगा। भगवान ने दिया तो एक क्यों, अच्छी जोड़ी ही खरीद लूँगा। पंद्रह बीघे मन उपज हुई तो पन्द्रह बीघे में दो सौ, सवा दो सौ मन अनाज होगा।” बाबू ने कहा।

“और क्या, अपने बैल हो जायेंगे तो भाँज का बखेड़ा खत्म हो जायगा।”

“ठीक कहते हो तपेसर।”

“एक बात पूछूँ पाहुन?”

“पूछो ।”

“बैल खरीदना होगा तो कहाँ खरीदोगे ?”

“गाँव में ही खरीद लूँगा । नहीं तो चलेंगे, फकुली, गोराई पुर, महपुर.. ।”

“राम राम, गाँव या जर-जवार में यह महादेव धन कभी मत खरीदना ।”

“तो तुम ही कहो, तुम जहाँ कहोगे वही खरीदेंगे ।”

“हरिहर-छत्तर के मेले में । वहाँ किसिम-किसिम के बैल रहते हैं । पाहुन ! और मेले में कुछ सस्ता भी पड़ेगा ।”

“देखो, एक बैल तो गाँव में ही पटाया है ।”

“गाँव में ?”

“हाँ, एक अहीर का है ? है तो कमजोर, मगर हरीअरी के बिना टूटा हुआ है । तुम रहोगे, मगरुआ है ही, गूब हरीअरी खिलायेंगे, बैल तो महीने भर में हवा की तरह चलने और हाथी की तरह भूमने लगेगा ।” बाबू ने कहा ।

“तब तो ठीक है । हाथ रहते मूँछ क्यों टेढ़ी होगी ? शरीर कमाने-खाने के लिए ही तो है ।” मामू बोले ।

“बैल को जरा तुम भी देख लोगे । इसीलिए तो पहले से नहीं ले रखा ।”

“अच्छा, देख लूँगा ।”

“अच्छा ।”

इस तरह हमलोग घाट पर पहुँच गए । बाबू और मामू ने छाती-छाती भर पानी में नहाया और मैं कमर भर पानी में । ऊपर घाट पर पीपल के पेड़ के नीचे एक बुढ़िया लाई-फरही बेच रही थी । मामू ने अपने पैसे से मेरे लिए दो पैसे की लाई-फरही खरीद दी । बाबू इसके पक्ष में नहीं थे । मगर मामू ने बात बदलकर पूछा, “चलो पाहुन, बल भी देख लिया जाय ।”

“हाँ, चलो न ।” बाबू ने कहा ।

वहाँ से हमलोग केवल राउत की बथान में पहुँचे। राउत का बेटा कुड़ी काट रहा था। छप्-छप् की आवाज हो रही थी। दो मजबूत खूंटों में अलग-अलग दो भैसे बँधी थी। एक भैस खड़ी थी और दूसरी बैठी। नाद पर खूंटों से बँधा एक बैल सानी खा रहा था। एक बैल बड़ के पेड़ के सोड़ में बँधा, अपने जख्मी कंधे और कान पर बैठी मक्खियों को गर्दन हिला-डुलाकर भगा रहा था। राउत बथान में चुपचाप बैठा खइनी मल रहा था। सामने जाकर बाबू बोले, “सलाम केवल काका।”

“खुश रहो बबुआ।”

“काका, मैं पटना चला गया था।

“अच्छा, पटना?”

“हाँ।”

“बैल लेने के लिए कह गए थे, सो क्या हुआ भगड़ू?” थोड़ी देर जाने क्या सोचकर राउत ने पूछा।

“उसी के लिए तो आया हूँ।” बाबू ने कहा।

“हूँ।” करके मेरे मामू को देखते हुए राउत ने पूछा, “ये कौन हैं?”

“ये मगरुआ के मामू हैं।” बाबू ने ऊँची आवाज में कहा।

राउत कुछ कम सुनता था। धीरे-धीरे बोलने पर या तो होठ के हिलने से बोली का माने लगाता था और जोर से चिल्लाकर बोलने पर सुन पाता। राउत ने कहा, “ओ, कही नौकरी करता है?”

“ना।”

“घर ही पर रहता है?” राउत ने पूछा।

“ना पटना।” बाबू ने फिर ऊँची आवाज में कहा, “वही घूम-फिर-कर अपना काम करते हैं।”

“अच्छा है। किसी तरह रौंटी-नीमक का उपाय हो जाना चाहिए।”

कहकर राउत ने पूछा, “तो बैल के लिए क्या सोचा?”

“लूंगा, जरा इनको भी दिखला दो।” बाबू बोले।

“देखने के लिए कौन मना है। बैल बैठा है, दिखला दो।” बैठ कर मक्खी भगाते हुए बैल की ओर इशारा कर राउत ने धीरे-से कहा। अब उसके बेटे ने कुट्टी काटना छोड़ दिया। छप्-छप् की जो आवाज हो रही थी, वह बंद हो गई। बाबू ने तब मामू से कहा, “चलो न तपेसर, वह क्या बैल बंधा है, देख लो।”

हमलोगो के साथ-साथ बैल तक राउत भी आया और राउत का बेटा भी। पास आकर बैल को देखते ही मामू बोले, “कंधे पर का घाव तो बैल को सुखाये चला जा रहा है।”

“फिनाइल का तेल दे देने से सब ठीक हो जायगा। दिघवारा में तो बिकता है, मगर न कोई दिघवारा जाता है और न तेल आ पाता है। बीमार की तरह पड़ा हुआ है, नहीं तो मोट और हंगे में तो पछेया हवा की तरह चलता है।” राउत का बेटा बोला।

“जरा उठाकर दिखलाओ न।” मामू बोले।

“उठ, उठ, उठ रे।” राउत ने बैल के कुल्हे पर दो एड़ जमायी। बैल उठकर खड़ा हो रहा। पास से एक मकई की खूँटी उठाकर, मामू ने उस बैल के दोनों पिछले पैरों के बीच में, जंघे के पास जरा हुरपेटा तो बैल जरा-सा उछलकर रह गया। इसके बाद बैल के रंग, बैल के दाँत और उसकी सींग के बारे में कुछ बातें हुईं। अंत में, बैल मामू को भी भा गया।

‘पसद है बैल?’ राउत ने पूछा।

“क्या लोगे?” पूछा बाबू ने।

“पहले माल पसद है कि नहीं, सो बतलाओ। माल अगर पसद हो, तो एक रुपया ऊँच-नीच के लिए कोई बात नहीं।”

“माल तो पसद है। हाँ, केवल काका, तुम्हें याद होगा—तुमने बैल उधार देने को कहा था।” बाबू बोले।

“भू तो मुझे याद है। मगर बैल दरवाजे पर से ले जाओगे, तो कुछ-न-कुछ सगुन तो करना ही होगा।”

“सगुन तो ।” बाबू हिचकिचाने लगे ।

“हाँ, हाँ, सगुन तो करेगे ही ।” तब तक मामू बोले ।

“ठीक है । तो फिर क्या दोगे ऋगडू, सो कहो न ?” राउत के बेटे ने कहा ।

“मै क्या कहूँ, माल तुम्हारा है । तुम कहो, क्या लोगे ?”

“देखो ऋगडू, तुम गाँव के आदमी हो । तुम्हारे साथ क्या मोल-मोलाई करूँ । जाओ, चालीस रुपए दे देना । तुम भी क्या कहोगे, राउत ने कोई बैल दिया था ।” केवल राउत बोला ।

“चालीस रुपए ?” बाबू ने कहा ।

“हाँ जी, सिर्फ दो बीस तो हुए ।” राउत बोला ।

“चालीस रुपए तो बहुत होते हैं । केवल काका, इतना कर्ज कहाँ से तोड़ पाऊँगा ?”

“अरे, चालीस रुपए तुम्हारे लिए क्या है ऋगडू ? अब तो महादेव बाबा को कीरपा से पंद्रह-बीस बीघे खेत के गिरहस्त हुए । इतने रुपए का अनाज तो खलिहान में उड़-पड़ जायगा ।” राउत का बेटा बोला ।

मुझे बाबू के उम वक्त का चेहरा-मोहरा याद आता है । वे मन-ही-मन खुशी से भर गए थे । इस तरह करीब लगभग दस मिनट तक भाव-ताव होता रहा । अंत में बात पैंतीस रुपये पर टूटी । राउत ने पूछा, “रुपए दोगे कब ?”

“रब्बी काटकर जिस रोज ओसा लूँगा, उसी रोज ले लेना ।”

“अच्छा, तो सगुन निकालो ।” राउत बोला ।

तब मामू अपनी चेट से शायद दो-तीन रुपए निकाले । राउत ने पहले तो अपना दाहिना हाथ बढ़ाया, पीछे समेटकर कहा, “ऋगडू, तुम पूरब की ओर मुँह करके खड़े हो रहो, रस्सी तुम ही पकड़ोगे न । सगुन भी तुम अपने हाथ से दे देना ।” और राउत अपने बेटे को देखकर बोला, “तू भी पूरब की ओर होकर रस्सी पकड़ाओ । और हाँ, माथे पर गमछा रख ले । भगवान करे, महादेव धन जिसके खूँटे पर बँधे, उसका भला हो !”

मामू ने रुपए बाबू की हथेली पर रख दिए। तब खूँटे से कहो या बड़ के पेड़ की सोड़ से, बैल को खोलकर राउत का बेटा पूरब की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। पूरब की ओर घूमकर बाबू ने उसके हाथ में रुपए दे दिए और राउत के बेटे ने बैल की रस्सी बाबू के हाथ में थमा दी। अब हमलोग वहाँ से चलने लगे। अपनी भोपड़ी तक पहुँचने के लिए कई आसान रास्ते थे, बहुत जल्द पहुँचा जा सकता था। मगर न-जाने, बाबू के दिमाग में क्या आया कि वे दूसरे रास्ते से चलने लगे। यह रास्ता देर से भोपड़ी तक पहुँचाने वाला था। बाबू ने एकाएक मामू से कहा, “एक भूल हो गई तपेसर।”

“क्या?” मामू ने पूछा।

“खेखर भाई को साथ नहीं लाया। वे भी देख लेते न।”

“अच्छा, अब तो नीमन-जबून जो लेना था, सो ले लिया गया। अब बैल दरवाजे पर चल रहा है, देख ही लेगे।”

“सो तो है।” बाबू बोले।

“मैं समझता हूँ पाहुन कि मउगार अगर होशियार हो, तो माल-जाल कभी खराब न हो।” मामू ने कहा।

“सो तो ठीक है। माल-जाल भी सेबा-बरदास खोजता है।” बाबू ने कहा।

“अच्छा, इस साल तो नहीं, अबकी साल छत्तर के मेले में कौड़ी की माला खरीद लेगे। गर्दन में डाल देने पर बैल की सुरखी बढ़ जायगी।”

“माला और घाँटी तो चइतनम्मी के मेले में भी बिकती है, मगर बड़ा महंगा देते हैं सब।” बाबू बोले।

मैं बैल के पीछे था। बाबू बैल को पकड़े बीच में थे, और मामू उनसे आगे। रास्ते में गनेरी मिला, रामकीरपाल, करमू साह, परभुआ, बैल सबने देखे। बाबू ने सबों से कहा, “केवल राउत से लिया है, पैतीस में। क्या कहूँ, लाचारी लिया है। वह भी पंद्रह-बीस बीघे की जोत भला एक बैल से क्या सँभलेगी? मगर हाँ, एक बैल से यह होगा कि तबतक भोज पर काम चलेगा।”

गाँव में न-जाने, कैसे-कैसे बाबू ने यह शोर कर रखा था कि ठाकुर उन्हें खेत देनेवाले हैं। जिससे पूछो, वही इस बात को जानता कि भगडू को खेत मिल रहा है। बाबू की बात सुनकर रामकीरपाल ने कहा था, “भगवान् सबके दिन ऐसे ही लौटाएँ।”

“जोत-बोकर नौकरी पर चले जाओगे न ?” परभुआ ने पूछा।

“अब भला नौकरी पर क्यों जाऊँगा, परभु ! जिस गाय को घर ही में खाने को मिले, वह भला बथान क्यों जायगी ? अब तो देह में धूल लगाना है और खटकर खाना है।”

“यह भी ठीक ही कहते हो, मेरा मतलब यह था कि हँथफेर के लिए भी तो दो-चार पैसा रखना पड़ता है।”

“सो तुम्हें नहीं मालूम क्या, बेले-कुबेले के लिए ठाकुर कुछ उठा न रखेंगे। मुँह खोलकर कहा है।” बाबू बोले।

“ताज्जुब भी नहीं। उन्हीं के लिए तो तुम्हारे बाप मारे गए।” गनेरी ने कहा।

“अच्छी बात है। अब तो गिरहत हुए। पाँजा लेने आऊँगा, कोताही मत करना।” परभु बोला। वह हजाम था।

“कोताही क्यों करूँगा परभु भाई, तुमलोगों के लिए यही तो साल भर का आसरा होता है।” बाबू ने कहा था।

इसके बाद चलते-चलते हमलोग वहाँ पहुँच गए, जहाँ मेरी बिरादरी के लोग रहते थे। गाँव के किनारे, पाँच-साथ भोपड़ियाँ। दो-तीन में ईंट की पतली दीवारें थी। आस-पास खेत थे। उत्तर की ओर डिस्टीक बोर्ड की सड़क। सड़क से बैलगाड़ियाँ आ-जा रही थी और सड़क के किनारे उगी हुई हरी-हरी घासों को कुछ गाय-भैंसें चर रही थी। मेरे बिरादरीवालों की भोपड़ी एक कतार में थी। उन भोपड़ियों के सामने बैठे तीन-चार कुत्ते किसी लंबी और पुरानी हड्डी को कुतर रहे थे। हड्डी गाय या भैंस की मालूम होती थी। बैलों के गले की घटियाँ, जो सड़क पर चल रही बैलगाड़ियों में जुते थे, टन्-टन् कर बजती और उनकी आवाज इन भोप-

डियो तक साफ सुनायी देती थी। डिस्टीक बोर्ड की सड़क से उतरकर दक्खिन की ओर जाने के लिए एक छोटा-सा रास्ता था, जो गाँव में घुसता था। विरादरी के लोगो की भोपड़ियाँ इसी रास्ते की बगल में पच्छिम की ओर थी।

हमलोग इसी रास्ते से आ रहे थे कि मेरा एक विरादर, जो भोपड़ी के सामने टाट बिछाकर जूते मरम्मत कर रहा था, हमलोगो को देखकर बोला, “क्या समाचार है भगड़ू भाई ?”

“सब अच्छा है।” बाबू बोले। वह विरादर जूता मरम्मत करना छोड़कर हमारी ओर आने लगा। हम भी रुक गए।

“कलकत्ता कब जाओगे ?” विरादर ने पूछा।

“.....” बाबू ने इसका कोई जवाब न दिया।

“असालतन नौकरी है न, छुट्टी लेकर आए हो ?” विरादर ने पूछा।

“असालतन हो चाहे टमपरवरी, अब जाकर क्या करना है ?” बाबू बोले। मामू चुप थे।

“बयो, लिलुआ मिल मे तो पहले टमपरवरी कहकर बहाली करता था, मगर पीछे हटाता नहीं था।” विरादर बोला। रास्ते के आस-पास उगी हुई घासो को मेरा बैल मुककर चरने लगा, तो बाबू के हाथ से उसकी रस्ती छूट गई। विरादर से बातें करते हुए बाबू ने मुझसे कहा, “अरे साला, बैल को पकड़। और हाँ, एक गोजी हाथी में ले ले। अभी नया है। चिहूते-चिहूते चिन्हेगा।” मैंने लपककर बैल की रस्ती पकड़ ली और अंदाज से रस्ती इतनी ढीली कर दी कि वह घास खा सके।

“चाहे जो हो भगड़ू भाई, ठीकेदारी में काम मत करना। ठीकेदार साले तो बखत पर पैसे भी नहीं देते। ऐसे बखत के सिरे हफ्ता तो मिल जाता है न। बाप-रे-बाप, ठीकेदारी में काम करके मैंने अपनी देह गला दी, मगर पेट नहीं भरा।” विरादर आगे बोला।

“सो तो है ही... ।” बाबू बोले और बात को बदलकर, बैल की ओर बिरादर का ध्यान खींचकर, उन्होंने कहा, “देखो न भाई, यही तो एक बैल लिया है । मगर एक से काम थोड़े चलेगा ।”

“बैल तुम्हारा है ?” बिरादर ने पूछा ।

“हाँ, केवल राउत से लिया है—पैतीस में ।” बाबू बोले ।

“अरे हाँ, मैं भूल ही गया था । ठाकुर तुम्हें खेत भी दे रहे हैं न ?”

“हाँ, तभी तो बैल ल लिया है । पंद्रह-बीस बीघे खेत अकेले थोड़े सम्हाल पाऊँगा । इसीलिए तो.....।” कहते हुए बाबू ने मामू की ओर इशारा कर कहा, “पटने से इन्हे बुला लिया है । मगरआ के मामू हैं । कहा, चलो कहीं भी खटकर खाना है ।”

धीरे-धीरे बिरादरी के सात-आठ आदमी आकर खड़े हो गए और बैल के साथ ही सबों ने मेरे बाबू और ठाकुर की सराहना की । फिर हमलोग घर की ओर चले । रास्ते में बीड़ी और दियासलाई खरीदी थी । घर पर आकर मैंने देखा कि ठाकुर के यहाँ से काम करके माँ चली आई है । अब तक दादी मकई का भात और बैगन-टमाटर की तरकारी बना चुकी थी । पलानी के ऊपर भीगे कपड़े फैला दिये गए । अब बैल के लिए खूँटे की बारी आई । मामू बैल की रस्सी पकड़े बाहर खड़े थे । दादा की रथी बनाने के लिए जो बाँस आया था, उसका एक टुकड़ा बचा था ।

“गँडासी लाओ । बाँस छीलकर खूँटा बना दूँ । बैल आ गया ।” भोपड़ी में आकर बाबू ने माँ से कहा ।

“गँडासी घर में कहाँ है ?” कोदो की पुआल वाले बिछावन के सिरहाने देखकर माँ बोली ।

“तो कहाँ मिलेगी ?”

“बुलकिया दीदी के यहाँ गँडासी है ।” माँ बोली । ‘बुलकिया दीदी’ वह खेखर काका की जोरु को कहा करती थी ।

“जाता हूँ ले आने, फिर मुझे घास के लिए भी जाना होगा। तुम खाकर कुम्हड़न के यहाँ चली जाना। एक नाद भी तो चाहिए न ?”

“अच्छा...।” माँ बोली।

“पलानी से बाहर होते-होते बाबू रुके। पलानी के अदर जहाँ हमलोग सोते-बैठते थे, पुआल फैल गई थी। बाबू ने माँ से कहा, “ऐसे भर-घर पुआल फैलाकर रखोगी, तो कैसे काम चलेगा ? इसी में सब कुछ रखना है। अब रब्बी-भदई दो फसल काट लूँगा, तब फिर कहीं देखा जायगा। ईंटे की दो कोठरियाँ उठा लूँगा। अभी तो इसी में महादेव के लिए भूँसा, कोराई, खल्ली रखनी होगी। अनाज-पानी भी इसी में रखना होगा। खोप बनाना होगा, तो अगले साल बनेगा। और हाँ, ठीक से देख ले, जहाँ-जहाँ मूस बिल किए हों, सबको बद कर दे। ऐसा नहीं करोगी, तो वे ढोआ-ढायी लगा देंगे। बीये का अनाज भी न बचेगा।”

बाबू को चैन नहीं था। खुरपी और गँड़ासी ले आने के बाद बाबू और मामू ने भोजन किया। मैं तो आते-ही-आते भोजन में जुट गया था। भोजन करके बाबू उधार भूँसा माँगने के लिए फुरदेल साव के यहाँ चले गए और जाते वक्त माँ से कहा, “पहले जरा घास लाकर बैल के आगे रख दे।”

“अरे मगरुआ, तू जरा बैल को पानी दिखला देना।” बाबू ने फिर मुझसे कहा।

माँ कहीं आस-पास में घास ले आने के लिए चली गई। मामू ने बाँस के टुकड़े को छील-छाल कर खूँटा बना दिया और सामने ही गाड़ कर बैल को ठीक से बाँध दिया। दादी ने बैल के आस-पास की जगह बुहार दी। घंटे भर बाद बाबू एक ढाका भूँसा लेकर लौटे। उधर से माँ भी घास लिये आई और पुल्ला बैल के आगे पटक दिया। घास में मिट्टी सनिक भी नहीं थी। फिर बाबू के माथे से ढाका उतरवाकर माँ ने कहा, “एक ढाका भूँसे से क्या होगा, हीग ?”

“निकालकर खिलाओगी, तब न पता चलेगा । फलकार कर नहीं भरा है, मैंने अपने हाथ से जाँत-जाँतकर भरा है । ओजन ही से सम्मो ।”

जमीन पर उतार लेने के बाद बाबू और माँ ने मिलकर भूँसे के ढाका को पलानी के भीतर रखा । बाबू ने माँ से कहा, “तुम नाद के लिए चली जाओ । मैं हल, पालो और हेगा के जोगार में जा रहा हूँ ।”

बाबू चले गए । मैं मामू के साथ पुआल पर चादर ओढ़कर सो रहा । लगभग पाँच बजे मामू उठे । साथ ही मुझे भी उठाया । मैंने देखा, पलानी के बाहर नाद गड़ चुकी थी और बैल उसमें भूँसा खा रहा था । बाबू पास ही खड़े सब कुछ देख रहे थे । पास ही के कुएँ से जब मेरी माँ एक बाल्टी पानी लेकर लौटी, तो उन्होंने कहा, “एक छुतिहर हंडिया खेखर काका के यहाँ रख आओ । डधोवन जमा रहेगी । दो रोज, एक रोज पर ले आना । उसके साथ बैल सानी खूब खायगा ।”

कल सम्मत् जलने वाली थी । होलिकादहन को हमारे यहाँ लोग ‘सम्मत् जलाना’ कहते हैं । सम्मत् जलाने के लिए गाँव के लोगो से घर-घर घूमकर बच्चे, घर के मालिक या मालकिन से गोइठा या लकड़ी माँगते हैं । गाँव की किसी खास जगह पर हमलोग इन जलावनों को जमा करते थे । इस तरह गोइठा या लकड़ी माँगनेवाले लड़को में से मैं भी एक था । गोइठा अधिक बटोरने में जितना आनंद न आता, उससे अधिक आनंद वैसे अवसर पर एक खास प्रकार के कवित्त के गाने से आता था । बच्चों का झुंड लोगो के दरवाजे पर जाकर विना लय-सुर के कहना शुरू करता—

ए जजमानी !

तोरा सोने के कवाडी,

दुगो फूस-फास द ।

अक्सर यह काम हमलोग शाम से शुरू करते और ज्यादा-से-ज्यादा नौ बजे रात तक यह काम होता । इसलिए समय हो जाने के कारण माँ

और बाबू की आँखें बचाकर मैं निकल भागना चाहता था। एक बार निकल भागने की भी कोशिश की, तो बाबू ने टोक दिया, “मंगरुआ, कहाँ रे ?”

“कहीं नहीं।” मैंने कहा, डरकर धीरे-से।

“बैठ, देख जरा खर-पात बटोर। धुआँ करना होगा, नहीं तो बैल को डँस काट-काटकर तवाह कर देगे।

मेरा जाना रुक गया। मैं अभी खर-पात बटोरने की बात सोच ही रहा था कि देखा, अछैबर कहार मेरी पलानी के एकदम नजदीक आ गया है। मैंने बाबू से कहा, “अछैबर आ रहा है।”

“आने दे।” बाबू ने कहा। तब तक अछैबर भी आ ही गया। आते ही उसने बाबू से पूछा, “क्या समाचार है भगडू ?”

“अच्छा ही है भैया, अपना कहो।” बाबू बोले। अछैबर ने कहा, “एक चिलम का पैसा खर्च करो, तो खुशखबरी सुनाऊँ।”

“क्या ?” बाबू ने कहा, “रहा, करूँगा खर्च। तुम कहो भी तो।”

“कल दोपहर में छोटे सरकार ने बुलाया है। मोनसीजी को तुम्हारे साथ कर देगे, अपना खेत नपवा लेना।” अछैबर बोला।

उसके मुँह से यह खुशखबरी सुनकर जानें बाबू कितने खुश हुए थे। मैंने तो देखा था कि उनके पिचके और भुरी पड़े गालों पर भी खून के रंग की तरह अजीब तरह की लाली उभर आई थी। उस वक्त बाबू अजीब तरह से मुसका पड़े थे।

ठाकुर के यहाँ एक मुशीजी रहते थे। गँवारू बोली में हमलोग उन्हें 'मोनसीजी' कहते। वे घुट्टी भर की धोती, भर बाँह का कुरता और सिर पर बहुत पतले कपड़े की दुपलिया टोपी पहनते थे। ठाकुर की दालान से बाहर निकलते, तो कंधे पर एक अगोछा रख लेते, हाथ में छड़ी ले लेते थे। बाल उनके आधे से अधिक उजले थे। गाँव के रैयतो पर धाक थी, ठाकुर घराने का एक-एक आदमी उनकी बात मानता था—साख। लोगो का कहना था कि मोनसीजी ठाकुर की जमींदारी का हीग से लेकर हल्दी तक का हाल जानते हैं। उनका नाम सुनते ही दादा थर-थर काँपने लगते थे। सुना था, मोनमीजी की बात ठाकुर के लडके बच्चा बाबू क्या, ठाकुर तक नहीं उठा सकते। जमींदारी की लगान वसूल करने से लेकर मोकदमा लड़ने तक का काम उन्हें देखना पड़ता था।

यदि हमलोगो को बड के पेड़ से बँधवा कर पिटवाने की इच्छा होती, तो इसके लिए उन्हें ठाकुर से पूछना नहीं पड़ता। दादा को तो कई बार मोगली चढ़वाकर चरवाहो से दुलत्ती लगवा चुके थे। एक बार तो मेरे होश की बात है। चार बीघे के एक चकले में ठाकुर ने ऊँख लगवाए थे। रस से भरे लाल-लाल ऊँख हवा के बहने पर खेत में हिलोरे ले रहे थे। लोटा लेकर मैदान जाने के बहाने दादा खेत में एक कोने से घुसे, तो दूसरे कोने पर चार लगा ऊँख लेकर निकले। न-जाने, किस खेत में पानी पटाकर अछैबरवा बैलो को ललकारता चला आया। बात मोनसीजी के कानो तक पहुँच गई। इस बार मोनसीजी बहुत खीसिया गए। सुना, पैखाने के रास्ते में जब सवा सेर मिरचाई कराने के लिए तैयार

हो गए, तो मेरी दादी जाकर सीधे उनके पैरों पर गिर पड़ी। और तब कहीं बड़ी मोसकिल से दादा बचाए गए। तो ऐसे थे मोनसीजी और इन्ही के पास बाबू को आना था।

बिहान होने पर बाबू खेखर काका से मिलने गए, तो पता चला, खेखर काका ठाकुर के किसी गोतिए के घर कुट्टी काटने गए हैं। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गई थी। मैं दादी की बगल में बैठा था। बाबू मामू के साथ बैठे थे। चूल्हा सुलग चुका था। दादी ने उस पर खपरी चढ़ा दी थी। बाबू ने दादी से कहा, “दोपहर में मोनसीजी के साथ खेत नपवाने जाना है।”

“अकेले मत जाना बेटा।” दादी बोली।

“खेखर भाई तो हैं नहीं। आने पर सलाह कर लूँगा।”

“यहाँ से तपेसर बबुआ को ले लेना।” दादी बोली।

“देखो माँ, कोई नहीं जानता, किसकी तकदीर कब चमकेगी। मोनसीजी हमलोगों से सीधी तरह बात नहीं करते थे। आज मेरे साथ खेत नपवाने चलेगें ...। मैं तो खेत में ऐसे ही हल न लगाऊँगा।” बाबू ने कहा।

“भला, नया खेत है, ऐसे हल क्यों लगाएगा ? गोजर पाठक को पाँच पैसे देकर सगुन निकलवा लेना।” दादी ने सलाह दी।

गोजर पाठक कटहवा बाभन थे। बाबू लोगों के यहाँ मरनी-हरनी में जब बभन-जेवनार होता, तो जब तक गोजर पाठक दो-चार * कौर नहीं खा लेते, बाकी ब्राह्मण भी पकवान पर हाथ नहीं लगाते थे। कहते हैं, मरनी-हरनी का समूचा खतरा वे इसी तरह लील जाते थे। पतरा-पचांग तो उनके पास मोसकिल से होता, मगर हमारे समाज के लोगों को व्याह का लगन, दिसासूल, और भी कई तरह के सगुन यो ही बतला देते। व्याह का समय बीत जाने पर, जब जवार भर के पुरोहित, व्याह की कोई तिथि बतलाने से मजबूरी जाहिर करते, उस समय भी उँगलियों पर कुछ गिनकर, गोजर पाठक हमलोगों की लगन निश्चित कर देते। कहते,

“जजमान, यह लगन पुरोहित लोगो को नहीं मोलूस । इस लगन को तो मैंने बस एक तुम्हारे लिए छिपाकर रखा था ।” सो बाबू बिना भूँजा खाए गोंजर पाठक के यहाँ चले गए ।

गोंजर पाठक के यहाँ से लौटकर आने में बाबू को बहुत देर हुई । तबतक बीच में खेखर काका आ गए । बैल को तो कल ही देख गए थे । आकर दादी से पूछा, “और मगडआ कहाँ है काकी ?”

“गोंजर पाठक के यहाँ गया है, सगुन बिचरवाने ।”

“काहे के लिए, सगुन ?”

“आज खेत नपाएगा । मोनसीजी ने बुलाया है । खेत में सगुन देखकर ही हल लगाना अच्छा होगा न ।” दादी बोली ।

“सो तो ठीक ही है । अच्छा, जब नपवाने जाने लगेगा तो कहना, मुझे भी बुला लेगा ।” कहकर खेखर काका चले गए । उनके चले जाने के आध घंटा बाद बाबू आए । इस बीच मै मामू के साथ भर हिक भूँजा खा चुका था ।

“सगुन बिचरवा लिया ।” बाबू ने आकर दादी से कहा ।

“कब का निकला ?” पूछा दादी ने ।

“दूज को । पाठकजी ने कहा है कि होते बिहान हल चढ़ा देना होगा ।” बाबू ने बतलाया ।

अब तक दिन बहुत चढ़ चुका था । दादी ने बाबू से भूँजा खा लेने के लिए कहा । मगर बाबू ने दादी से पूछा, “भात बना चुकी हो ?” दादी बोली, “हाँ ।” सचमुच भात बन चुका था ।

“तो अब भात ही दे दे । बीस बार मुँह जूठा करना अच्छा नहीं लगता है ।”

“अच्छा, भात ही खा ले ।” दादी बोली ।

बाबू फिर बैल के पास आकर खड़े हो रहे । जब तक अलमुनियम के थरिया में दादी भात निकालती रही, तब तक बाबू शायद जी भरकर बैल को देखते रहे । उस समय बैल के पुट्टे पर हाथ रखकर उन्होंने

चुचकारा, तो बैल उछल पड़ा था। उन्होंने तपेसर मामू को बैल का उछलना दिखलाकर कहा, “देखो तपेसर, मैं ठीक कहता हूँ न, हरीअरी के बिना बैल टूटा हुआ है। देखा न, कितना पनीगर है! पीठ पर हाथ रखते ही कुलॉच भरना चाहता है।”

“बैल तो पनीगर है ही...।” बैल के पास आकर मामू बोले।

“तुम भी खाओगे बबुआ तपेसर?” दादी ने मामू से पूछा।

“ना, अभी मैं नहीं खाऊँगा।”

“नहीं, नहीं। खा लो तपेसर। फिर खेत नपवाने चलना होगा। अब कहाँ समय है?” तुम और मगरू दोनों खा ला। खेखर काका के आते ही चल-चलना होगा।”

बाबू की बात मामू को मान लेनी पड़ी। दादी ने एक † छीपा में और भात निकाला। बाबू अकेले खाने लगे। मैं मामू के साथ खाने बैठा। बाबू के आगे लोटे में पानी रखकर दादी बोली, “खेखर तो तुम्हें खोजकर चला गया, अभी तो घर में ही होगा। जाने के समय उसे बुला लोगे, कह गया है।”

“चलो, यह भी मंफ्ट खतम।” बाबू बोले।

हमलोगो ने जब तक भोजन किया, तब तक माँ भी चली आयी। चूल्हे के पास उसे बुलाकर, दादी ने धीरे से माँ को बतलाया, “खाना खाकर तीनों ‡ सवांग खेत नपवाने जा रहे हैं। बाहर * ठिलिया में पानी भरकर उसमें आम का पल्लो डाल दे। सुभ चीज पर नजर पड़ने से सुभ काम भी होता है।”

गोबर पाथकर आयी हुई थकी-माँदी माँ को भी खुशी हुई। खा-पीकर, मुँह हाथ पोछ लेने के बाद जब माथे पर अगोछा रखकर हम तीनों पलानी से बाहर निकले तो देखा, एक ठिलिये में, जिसमें पीने का पानी रहता था, पानी भरकर उसमें आम का पल्लो डाला हुआ है। † पलानी से निकलकर उस ठिलिया को देखते हुए हमलोग खेखर

काका के घर की ओर चले। मैंने फिर अपनी नजर अपने बैल की ओर डाली तो देखा, दादी और माँ हमलोगों को आगे बढ़ते देख रही थी।

खेखर काका की हालत हमलोगों से कुछ अच्छी थी। फूस का छप्पर था, ईंट की पतली-पतली दीवारें। लेकिन, मेरी ही पलानी की तरह उनके घर में भी मुरी नवाकर घुसना पड़ता था। उनके दो छोटे भाई कानपुर में रहते थे। एक चमड़े के कारखाने में नौकरी करता था और दूसरा वहीं के स्टेशन पर रेलवे-कुली का काम करता था। उनके घर के सामने पहुँचते ही बाबू ने पुकारा, “खेखर भाई, खेखर भाई हो ?”

“कौन, भगड़ू ?” भीतर से खेखर काका बोले।

“हाँ, चलो न।”

“खड़े रहो, आ रहा हूँ। जरा खइनी ले लूँ।” और बाहर निकलकर खेखर काका ने पूछा, “ठाकुर के यहाँ चल रहे हो न ?”

“हाँ, मोनसीजी ने बुलाया है।”

“खेत वहीं देगें ?”

“हाँ अछैबर ने तो यही कहा था। मोनसीजी खेत नपवा देंगे।”

“चलो, चलो।”

खेखर काका हमलोगों के साथ चले। रास्ते में बाबू ने उनसे गोजर पाठक के घर जाकर, सगुन निकलवाने की बात कह दी। खेखर काका बोले, “अच्छा किया। दूज का भी कितना दिन है ? कल नहीं, परसों। कल फगुआ है, परसों दूज।”

“हाँ।”

“कल फगुआ है। ज्यादा मत पी लोगे; क्योंकि परसों सबेरे उठकर सगुन भी तो करोगे।” कहते हुए खेखर काका तनिक रुक गए।

“ना खेखर भाई, मैं क्या ज्यादा पीता हूँ ? दो लबनी में तो भर घर बाहा-बही हो जाता है। सो उसमें क्या लगा है, दो छाँक कम ही पीजंगा।”

बाबू के इस विचार की सराहना करते हुए खेखर काका बढ़े, तो उनके पीछे-पीछे हमलोग भी चले। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर रास्ते

में छकौड़ी दादा मिल गए। वे मेरे ही बिरादर थे और दादा से भाई-भाई का नाता था। इसलिए दादी ने मुझे सिखला दिया था कि मुझे उन्हें 'दादा' कहना चाहिए। हम सबों को देखकर वे भी रुक गए। बाबू और खेखर काका ने 'पवलगी' की। दादा के भोज में छकौड़ी दादा भी माढ़ा-चिठरा खा गए थे। उन्होंने बाबू से कहा, "क्या कहूँ भगड़ू, छँउड़ी जवान हो गई। ब्याह कर देना चाहता हूँ।"

"ठीक है काका ! जै गनेश का नाम लेकर कर ही दो। दस-इगारह बरस की बेटा बिना ब्याह के १ अब तक तो उसका गौना हुआ रहता।" बाबू ने कहा।

"कुटुंब तो बड़ा मजे का मिल गया है। मगर अब इसी घात में लगा हूँ कि रामजी की कीरपा से घर में मन-आध-मन अनाज जमा हो जाय, तो खिला-पिलाकर निबाह दूँ। जानते हो, बर क्या करता है?" पूछकर छकौड़ी दादा ने योही खुद उत्तर दिया, "सुना है, पटने में किसी अंगरेज साहेब के यहाँ रहता है। बड़ा नीक काम मिल गया है। हावागाड़ी धोता-पोछता है, लड़का खेलाता है। साहेब की मेम उसको बहुत मानती है। जब तक वह अपने हाथ से जूता नहीं पहनाता, कोठी से निकलकर हावागाड़ी में नहीं बैठती है। पूरा ओहदा वाला काम है बाबू!"

"अच्छा, दिल लगाकर वहाँ रह जायगा तो, जिंदगी बन जायगी।" खेखर काका ने कहा।

"और क्या है, जानते हो?"

"क्या?" बाबू ने पूछा। छकौड़ी दादा बोले, "दरजा चार तक पढा हुआ भी है। गए थे नाव से देखने। चिहाता नहीं है कि चमार-दुसाध का बेटा है। हामा-सुमा ऐसा लगता ही नहीं है। एकदम बाबू-भइया की नाक काटता है—आँख-कान का नकासा भी वैसा ही है।"

"धन भाग सुलपतिया के!" बोले खेखर काका।

“मन-आध मन अनाज कोई बड़ी चीज नहीं है छकौड़ी काका ! आज ही तो खेत नपवाने जा रहा हूँ । अब कल खेत पर हल चढ़ेगा । रब्बी पछताह होगी । असाढ़ तक व्याह का टट-घट लगाओ तो मन-दो मन गोहूँ-बूँट के लिए मैं हरदम तैयार रहूँगा ।”

“भगवान तुम्हे बरकत दे ! जैसे इतने दिन सही, वैसे दो-तीन महीना और । तुम्हे बड़ा पून होगा झगड़ू । बेटी पंचपरमेसर की होती है । इतनी मदद कर दे बेटा, तो फुलपतिया का रोआँ-रोआँ तेरा नाम लेगा । मगर बेटा, तुम तो भोज पर कोहड़ा बो रहे हो । अब रब्बी छिटोगे, तो भला उपजेगा कब ?

“यह भी ठीक कहते हो काका । पानी पटाते-पटाते मर जाऊँगा । अच्छा, कल सगुन करके बिचार कर लेने दो । नहीं होगा, तो समूचे चकले में फुलकोबी ही रोप दूँगा । छपरा जाकर बेच आने से एक मूठ नकद पैसे मिल जायेंगे । तुम एक काम करो, बइसाख में ही व्याह कर दो । मैं केवल राउत से मन भर गोहूँ लेकर तुम्हे दे दूँगा । फसल की ही उमीद पर उसने बैल तक उधार दिया है, भला मन-आध मन गोहूँ न देगा ?” बाबू ने कहा ।

बाबू की बातों पर छकौड़ी दादा मन-ही-मन गाजते चले गए । बाबू खेत नपवाने के लिए अकुला रहे थे । ठाकुर के किले-जैसे मकान की ओर बढ़ते हुए उन्होंने खेखर काका से कहा, “जल्द चलो, दिन उतरेगा तो मोनसीजी नाराज होंगे ।”

बाबू आगे बढ़कर तेजी से चलने लगे । थोड़ी देर बाद ठाकुर की दालान पर पहुँचे । पुरबारी दालान पर, जिसकी एक कोठरी में मोनसीजी सोते और दूसरी कोठरी में उनकी कचहरी थी । जाकर देखा, काठ की छोटो-सी चउकी पर, दो बड़ी-बड़ी बाल्टी में पानी भरा था । एक लोटा भी रखा हुआ था । एक बड़ी चउकी पर मोनसीजी अकड़कर बैठे थे । अछैबर उनकी नस-नस में सरसो का तेल मालिश कर रहा था । उनकी नजर जो हमलोगों पर पड़ी, तो लगभग तीस डेग पीछे से ही हमलोगों ने

खूब झुक-झुककर सलाम किया। मोनसीजी ने सलामी के जवाब में खाली 'हू-हू' किया। कुएँ के आस-पास घास जमी थी। हमलोग उसी पर बैठ गए। मोनसीजी के पुट्टे पर तेल डालकर जब अछैबर जोरो से रगड़ता, तो मोनसजी 'हा-हा' करके कूँ खते थे।

“कहाँ चला है रे, मगड़आ ?” मोनसीजीने एकाएक पूछा। पहले तो बाबू सहम गए, पीछे बोले, “सरकार ने खेत नाप कर देने .. .।”

“हाँ-हाँ, बैठ। नहाकर भोजन कर लेने दे, चलूँगा।”

हमलोग चुप रहे। मोनसीजी ने कई बाल्टी पानी से असनान किया। पानी भरते-भरते बेचारे अछैबर की कमर दुख गई। इसके बाद उनकी धोती फीँचकर पसारने के बाद वह खुद भोजन करने चला गया और मोनसीजी अपनी कोठरी में समा गए।

अभी अछैबर को यहाँ से गए मोसकिल से दस मिनट हुए होंगे कि हवेली की कहारिन थाल में भोजन का सामान लिये आई। थाल को उसने आँचल से ढँक लिया था। वह आकर सीधी मोनसीजी की कोठरी में समा गई और फिर जल्द ही वापस निकली। उसने मेरी ओर देखकर पूछा, “यहाँ क्या कर रहा है रे मंगरुआ ?”

“..... ।” मेरे मुँह से कुछ न निकला।

“मोनसीजी ने बुलाया है। बैठने के लिए कहा है।” बाबू बोले।

“क्या काम है ?”

“खेत मिलेगा, सो.... ।”

“अच्छा, अच्छा।” बाबू की बात पूरी तरह न सुनकर वह बोली और चमककर चली गई हवेली की ओर। वह बोलने में बहुत तेज थी। घर में उसका रोब-दाब था। यहाँ तक कि मोनसीजी से वह नहीं डरती। पैर की बीछिया से लेकर माथा के मगटीके तक को पहनकर हवेली आती थी। माँग में बहुत टाँस, गाढ़ा सेनुर लगाती। दाँत में मिस्सी और आँखों में काजर। हर दो रोज, तीन रोज पर गोर में महावर लगवाती थी। हमलोग उसका अदब-लेहाज करते थे। उसके चले जाने

के बाद बाबू किसी चिन्ता में पड़ गए। उन्होंने खेखर काका से कहा, “ऐ खेखर भाई, अछैबरा को मोनसीजी ने कहा है कि तुम खाना खाकर आ जाओ। मेरे साथ हराजी चलना होगा। सो, इसका क्या माने ?”

“नहीं मालूम।” खेखर काका बोले।

“दूसरे गाँव में खेत देगे क्या ?” मामू ने पूछा।

वही तो मैं भी सोच रहा हूँ।” बाबू ने कहा, “बड़ा मुश्किल हो जायगा। पंद्रह-बीस बीघे खेत और वह भी दूसरे गाँव में। अब खेत नपवा लेना मरदर्ई नहीं, खेत सँभाल लेना मरदर्ई है।”

“घबड़ा क्यों गए ? हो सकता है, तुम्हारा खेत यही कहीं कोरार में नपवाकर खुद किसी और काम से हराजी जायँ। तुम्हारा काम ही कितनी देर का होगा ? नपवाकर अछैबरा से डरें दिलवा देगे।” खेखर काका ने समझाया।

“हाँ, यह भी हो सकता है।” मामू बोले।

अभी हमलोगो के बीच इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि वही कहारिन मोनसीजी के लिए लोटे में पानी लेकर आ धमकी।

“तब से यहाँ क्या कर रहा है रे भगडुआ ?” उसने आते ही पूछा।

“क्या काम है, कहो न। हमलोगो को तो मोनसीजी ने बैठने का हुकुम दिया है।”

“मोनसीजी ने हुकुम दिया है तो क्या, वे खायेंगे-पीयेंगे नहीं ? तुमलोग इस तरह खाने के बख्त छाती पर क्यों सवार हो जाओ, पच्छिम बगल की दालान की सहन में, दो सिल्ली रखी हुई है। टँगारी निकलवाकर रख आयी हूँ। दोनों-तीनों मिलकर फाड़ दो।” वह अपना एक हाथ चमकाती हुई गरजकर बोली। मिस्ती से रगे उसके काले-काले दाँत अजीब तरह से चमक रहे थे। हमलोग चुपचाप उठे। उसके हुकुम को टाल देना हमलोगो के बूते के बाहर की बात थी। बड़े ठाकुर के कमरे में, हुक्का चढाकर देने के लिए घुमती, तो घंटे भर के बाद निकलती थी। मोनसीजी को तो वह कोई चीज ही नहीं समझती। यहाँ तक कि बड़े

ठाकुर के लड़के, बच्चा बाबू, जो ठाकुर-घराने में बहुत गंभीर और समझदार समझे जाते थे, उससे हँस-हँसकर बातें करते थे।

हमलोगों को लकड़ी की सिल्ली फाड़ने का हुकुम होकर, जब चमेलिया मोनसीजी की कोठरी की ओर चली, तो घास पर से सबसे पहले बाबू उठे, तब मामू, इसके बाद खेखर काका—फिर मैं। मेरे उठने-उठने तक चमेलिया मोनसीजी की कोठरी में समा गई और उठकर मैं पच्छिम तरफ की दालान की ओर बढ़ा तो झटके में देखा, कि चमेलिया ने कोठरी में घुसकर भीतर से दरवाजा बंद कर दिया। मुझे याद है कि उस वक्त तक उसकी जवानी खत्म हो चुकी थी। सिर्फ वह बेतरह मोटाई हुई थी और सिंगार-पटार हमेशा किए रहती थी। 'दाई' कहकर पुकारने पर कनमनाती थी। उसके लड़के का नाम रामभजन था। एक बार मैंने उसे 'दाई' कहकर पुकारा था, तो माँ ने मेरे कान के पास एक चपत जड़ दी थी। माँ ने कहा, "या तो दादी कह, या रामभजन के माई।"

मैं दालान में जमीन पर बैठ गया। मामू खड़े रहे। बाबू और खेखर काका लकड़ी चीरने लगे। भात खाकर अछैबर न जाने, किधर चला गया। दो-दाई घंटे में भी दोनों सिल्लियाँ न चीरी जा सकी। बाबू और खेखर काका पसीने-पसीने हो गए। बड़ी देर के बाद अछैबर के साथ मोनसीजी वहाँ आए। मोनसीजी अपना पोसाक पहने हुए थे। अछैबर के एक कंधे पर भाला था और दूसरे कंधे पर अंगोछा। बाये हाथ से वह भाले को थामे हुए था और उसके दाहिने हाथ में कुदाल थी।

"बस, बस। हो गया, चलो।" आते ही मोनसीजी बोले।

"लो झगड़ू, तुम इसे पकड़ो।" बाबू के हाथ में कुदाल देता हुआ अछैबर बोला। आगे-आगे मोनसीजी चले। उनके पीछे भाला लिये अछैबर और उसके पीछे हम सभी।

जब हमलोग रेलवे-लाइन के पास पहुँचे तब देखा, पूरब की ओर से एक मालगाड़ी चली आ रही थी। मोनसीजी सबसे आगे थे, इसलिए वे मालगाड़ी के आते-आते लाइन को पार कर गए। हमलोग भी

लाइन को पार करना ही चाहते थे कि मालगाड़ी ने बड़े जोरो की सीटी दी। रेल की पटरियों से खट्-खट् की आवाज निकलने लगी। इंजन की आवाज चारों ओर गूँजने लगी—भक्-भक्-भक्-भक्—। तब तो बड़ा डर लगने लगा। हमलोगों का साहस नहीं हुआ कि लाइन पार कर जाएँ। हमलोग इसी पार रुक गए और मालगाड़ी गरजती हुई सामने से गुजरने लगी। दो मालगाड़ियाँ जहाँ जुटती हैं, वहाँ देखा होगा, काफी खाली जगह रहती है। ऐसे ही जब एक के बाद दूसरी मालगाड़ी आने को होती, तो हमलोग देख लेते कि मोनसीजी उस पार चुपचाप खड़े हैं।

हमलोग गाँव लाँघते गए। आखिर हराजी गाँव के उस पार, जहाँ एक ओर सिर्फ बागीचे थे और दूसरी ओर सिर्फ खेत, हमलोग आए। बाबू ने धीरे-से खेखर काका को बतलाया, “देखना, यही पर कहीं एक चकला दे देगे।” और उन्होंने मामू से कहा, “देखो तो तपेसर, ईनार भी तो ज्यादा दूर नहीं है।”

इसी जगह पर थोड़ी देर ठिठककर मोनसीजी फिर आगे बढ़े। अब कुँआ बहुत दूर छूट गया। बागीचों से उत्तर की ओर, दुधिया घास कटइला, रंगनी और जटही के काँटों से भरे कुछ खेत थे। उन्हीं खेतों में से एक खेत के किनारे, जो करीब सात-आठ कट्टे का था, मोनसीजी आकर रुके। हमलोग उनका मुँह देखने लगे। उन्होंने कुरते की जेब से फीता निकाला और अछैबर के हाथ में देकर कहा, “एक ओर तू पकड़ और एक ओर खेखर पकड़ लेगा। नंबर मैं देख लूँगा। एक ओर से तीन कट्टा नाप कर, डरेर लगा दे। देख, फुर्ती कर।”

इतना सुनते ही बाबू के मुँह का पानी एकदम उतर गया। वे तो खेत के किनारे खड़े-खड़े जैसे † सील हो गए। खेखर काका का चेहरा भी काला पड़ गया। मोनसीजी के हाथ से फीता पकड़कर अछैबर ने कहा, “लो, पकड़ो खेखर।”

“लाओ।” कहकर खेखर काका ने फीते का छोर पकड़ लिया।

बाबू और मामू के साथ मैं भी चुपचाप खड़ा रहा। अछैबर के साथ बहुत पैर बचा-बचाकर खेखर काका खेत में घुसे। मुझे याद नहीं, लेकिन किसी भी हिसाब से तीन कट्ठा खेत नापकर अछैबर ने बड़ी होशियारी से डेरेर डाल दिया। इसके बाद मोनसीजी ने फीते को लपेटकर जेब में रखा और बाबू से कहा, “मजे से जोत, बो, और पड़ा रह। सिर्फ मालगुजारी देनी पड़ेगी। इतना खेत तुम्हारा हो गया।”

“जी, सरकार!” बाबू के मुँह से निकला।

तब मोनसीजी लौटने के लिए आगे बढ़े। हराजी गाँव में घुसते-घुसते सूरज डूब गया। हराजी गाँव के किनारे उत्तर की ओर, तीन-चार घर कायस्थ बाबू लोगो का मकान था। मोनसीजी लौटने लगे, तो इनलोगो के दरवाजे के सामने से गुजरे। वहाँ के कोई और मोनसीजी की जान-पहचान के निकल गए। उन्होंने मोनसीजी को अपने दरवाजे पर रोक लिया। कहा, “अब नास्ता करके जाइएगा, ठहरिए।”

“तुमलोग जाओ। अब क्या खड़े हो, जाओ भगड़ू, मौज करो।” मोनसीजी ने हम सबों की ओर देखकर कहा। अछैबर ठहर गया।

हमलोग मोनसीजी को सलाम कर अपने गाँव की ओर चले। न जाने, कौन ऐसी बात हो गई, बाबू से चला नहीं जाता था। वे जमीन को नाप-नापकर डेग डाल रहे थे। खेखर काका और मामू भी चुप। फिर रेलवे-लाइन के पास आने पर पहले बाबू ने खॉसा, पीछे खेखर काका को तनिक धीमी आवाज में नाम लेकर कहा, “क्या जी खेखर भाई! इस तीन कट्ठा खेत से क्या होगा? इतने से कितने आदमी का पेट भरेगा? ऊपर से मालगुजारी देने की बात अलग सुना रहे हैं...।”

“मेरी समझ में तो और कुछ नहीं आता। खेत तो बिल्कुल ऊसर है, वह भी घर से कोस भर दूर। न पईन, न नाला और न ईनार-पोखरी। खेत में ललका साग भी छीट दो, तो पानी कहाँ से पहुँचाओगे?” खेखर काका ने कहा।

धप-धप अँजोरिया उग आई थी। हमलोग अपना-सा मुँह लिये पलानी में लाटे। खेखर काका अपने यहाँ चले गए। पलानी में घुसते ही मामू ने बाबू से कहा, “मैं अब घर चलूँगा पाहुन ! गाँव पर फगुआ बिता लूँ। पटना जाने लगूँगा, तो इधर से होता जाऊँगा।”

बाबू बोले, “जाओगे तपेसर १ घर जाते कौन रोकेगा, मगर आज भर तो ठहर जाओ।”

“ना पाहुन ! दो-तीन कोस का रास्ता है। आठ-नौ बजे तक पहुँच जाऊँगा। मामू ने कहा।

तब बाबू, दादी और माँ के बहुत कहने-सुनने पर भी अपना कबल, चादर और मिरजई लेकर मामू चले गए। मामू के जाते समय मैंने ढिबरी की रोशनी में देखा, बाबू की आँखें डबडबा आई थीं। तीन कट्टा खेत मिलने की बात सुनकर मेरे घर में मातम छा गया। लगभग दस बजे रात को सम्मत् जला। मगर न तो बाबू कहीं कुछ देखने गए और न मुझे जाने दिया। मकई का भात और मट्टा खाकर हमलोग सो रहे। बाबू अपने साथ एक पुरानी दरी ले आए थे। उसे उन्होंने पलानी के बाहर साफ की हुई जगह पर बिछाया और उसी पर अपने साथ उन्होंने मुझे सुलाया। माँ और दादी, भीतर पुआल पर सो गईं। आधी रात में, जब मुझे नींद पड़ गई थी, बाबू ने मुझे हिलाकर धीरे से जगाया, “मंगरू, मंगरूआ ?”

मैं जगकर बोला, “ऊँ...५—५।”

“उठ, एक गोजी ले ले और चल मेरे साथ। देखना, बैल सींग न मारे।”

“अच्छा।” मैंने कहा। बाबू बोले, “धीरे-धीरे बोल, दादी न जगे।”

“अच्छा।” मैंने फिर कहा और पलानी के पीछे से एक गोजी खोज कर ले आया, तो देखा, बाबू ने बैल को नाद पर से खोल लिया था। मेरे आते ही उन्होंने धीरे-से कहा, “दरी को † गते-गते भीतर घुसका दे।” मैंने चोर की तरह दरी समेटी और उसे पलानी के दरवाजे पर रखकर

हाथ से भीतर की ओर ठेल दिया। तब बाबू बैल को लेकर आगे बढ़े और मुक्तसे कहा, “तू गुमसुम गोजी लेकर पीछे-पीछे चल।”

न-जाने, क्या बात थी कि बैल को लेकर बाबू गाँव के बाहर के रास्ते से आगे बढ़े। कुछ समझ में नहीं आने पर मैंने पूछा, “इधर कहाँ बाबू?” तो बोले, “चुप रह सार। मुँह बंद करके चल, नहीं तो गलफड़ ओदार लूँगा।”

पंद्रह मिनट का रास्ता घटे भर में तय कर, जानते हो बाबू बैल को कहाँ ले आए? केवल राउत की बथान में। मेरी समझ में अब भी कुछ नहीं आता था। बथान से करीब बीस डेग दूर, एक पेड़ की आड़ में खड़े होकर, न-जाने, बाबू क्या सोचते रहे, क्या तजबीज करते रहे। बथान बिल्कुल सूनी थी। सिर्फ बैल और भैंसी की पूँछ से मच्छड़ भगाने और उनके उठने-बैठने की आवाज के सिवा और कोई तीसरी आवाज नहीं थी। ताड़ के डमखों की मच्चान भी खाली थी। राउत का बेड़ा उठकर शायद घर में चला गया था। बैल को लाकर, बाबू ने मच्चान के एक खंभे से, कसकर बाँध दिया। तब बैल को बाँधते वक्त भी बाबू चारों ओर देख रहे थे। बैल को अच्छी तरह बाँधकर उन्होंने मुक्तसे कहा, “गोर बाँधकर मत चल। चल, जल्दी चल।” फिर गाँव के बाहर के ही रास्ते से बाबू अपने घर तक आए। गाँव में ही, किसी तरफ से लोगों के फगुआ गाने का शोर सुनायी दे रहा था।

फ़गुआ के दिन की बात है ।

“मंगरुआ, अरे मंगरुआ ?” कहकर माँ ने मुझे जगाया । मैं अब तक सोया था । धूप उग आई थी । माँ के पुकारने और देह के हिलाने-डुलाने पर मैं आँख मलता हुआ उठा । पास खड़ी दादी बिल्कुल अचरज से मुझे देख रही थी ।

“आ, बाबू रे ?” माँ ने पूछा ।

“बाबू ?” मैंने भी सवाल किया । माँ बोली, “हाँ रे, बाबू किधर चले गए ? गंगाजी गए हैं क्या ?”

“बैल को भी ले गया है, धोता-मँजता होगा.... ।” दादी ने कहा, मगर सदा आवाज में ।

“बतला न रे, बाबू किधर गए ?” माँ ने फिर पूछा ।

उसके इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए कठिन था । इतना तो मुझे याद है कि केवल राउत की बथान में बैल बाँधकर, बाबू मुझे लिये हुए अपनी पलानी तक आए । माँ और दादी जगी नहीं थी । बाबू ने चोर की तरह, बहुत धीमी आवाज में मुझसे कहा, “दरी खीच ले । सोना नहीं । देखना, दादी चाहे माँ जगे नहीं ।”

“अच्छा ।” मैंने कहा था और कुत्ते की तरह बनकर झुककर मैंने धीरे-से दरी खीच ली । इसके बाद बाबू ने दरी बिछा दी और उस पर हम दोनों बाप-पूत सो रहे । बैल कहाँ गया, यह तो मैं बतला सकता था । मगर बाबू कहाँ गए, यह मैं कहाँ जानता था ? माँ के इस सवाल से मैं भी घबड़ाया । मैंने सीधी तरह कहा, “मैं क्या जानूँ ?”

“तुमसे कुछ कहा नहीं ?”

“ना ।”

“और बैल रे ?” दादी ने पूछा ।

“राउत की बथान मे बाबू बाँध आए ।” मैंने कहा । मेरे इस जवाब से, जब दादी और माँ को दिलजमई नहीं हुई, तो मैंने अपने दरवाजे से बैल के केवल राउत की बथान तक, पहुँच जाने का हाल अच्छी तरह बतला दिया । इस पर तो दादी * भोकर-भोकर कर रोने लगी और माँ हाथ में एक मैले कपड़े का टुकड़ा लेकर ठाकुर के यहाँ गोबर पाथने चली गई ।

दरी पर से सोये-सोये बाबू कहाँ चले गए, यह सोचकर मुझे भी दुःख होता । अपनी बिरादरी के लोगों के घर से लेकर मैं मुरुदघटिया तक बाबू को खोज आया, मगर कहीं पता न चला । मुरुदघटिया पर इसलिए गया कि हो सकता है कि लकड़ी चुनने चले गए हों । फगुआ के दूसरे दिन, माँ ने खेखर काका के भतीजे के साथ मुझे मामू के यहाँ भेजा । मामू मिले, मगर बाबू न मिले । बाबू तो जैसे गाँव-जवार से लापता हो गए थे । लौटते वक्त मेरे साथ मामू भी आए । उनका घर बहुत दूर नहीं था । आमी से दो, सवा दो कोस जमीन—फकुली । उनको भी पटना लौटना था । मेरे घर आकर, माँ और दादी को बहुत कुछ समझा-बुझाकर वे भी नाव से दरियाव पार कर पटना चले गए । माँ और दादी की आँखों का लोर नहीं सूखता था । बाबू के गायब होने की खबर मोनसीजी और बच्चा बाबू को भी मिल गई । फगुआ के दिन भी, दिन के लगभग चार बजे, गाँव के लोग पीली धोती और कुरते में अपने को सजा रहे थे । माँ ठाकुर के घर से गोबर पाथकर लौटी । वह बहुत थकी हुई और परेशान दीख रही थी । पलानी में आकर वह हताश होकर बैठ रही । उसके ठाकुर के यहाँ जाने के थोड़ी देर बाद ही केवल राउत मेरे यहाँ आया था । पलानी के सामने आते ही उसने आवाज दी, “मगड़ू, मगड़ू हो ?”

“क्या है ?” भीतर से आँखें पोंछती हुई दादी निकली ।

“झगडू नहीं है ?” राउत ने पूछा ।

“वह तो बिछावन पर से ही गायब है । न-जाने, कहाँ चला गया ।” दादी बोली ।

“अजब बउराह आदमी है झगड़आ । भला बतलाओ, होते * पराते बैल क्यों बथान में बाँध आया है ? मेरे यहाँ से ले आया था, खेत जोतने के लिए । अरे, मैं क्या अभी रुपए माँग रहा था ? मैंने भी तो उसी की बात मान ली थी... ..” राउत बोला ।

“आग लगाओ ऐसे खेत में । न-जाने, फिकिर के मारे मेरा बेटा कहाँ भाग गया ।” दादी ने कहा ।

“ऐसे क्यों बोलती हो झगडू की माँ । खेत क्या दब मिल गया है, कोरार में नहीं मिला ?”

“कोरार में ही, अगर दु-अढ़ाई कट्टा खेत मिले, तो उससे क्या होने जाने वाला है ? हराजी गाँव के उत्तर मोनसीजी ने कल तीन कट्टा खेत नपवा दिया । सुना, † नगीच में न ईनार है, न पाँखरा । उस पर भी खेत में भर-ठेहुन काँट-कुस है ।” दादी ने बतलाया ।

“खाली तीन कट्टा ?

“हाँ, मैं क्या झूठ बोलूँगी ?”

“राम, राम । ऐसा नहीं चाहिए था । जतन भाई ‡ सेतीहे मारे गए !

“मैं तो हाय मारकर रह जाऊँगी । मगर भगवान फँसिला करेंगे ।” कहकर दादी फिर रोने लगी ।

“मत रोओ भउजी । वे लोग बड़े आदमी हैं । उनलोगों की सिकायत सुनने के लिए भला किसके कान होंगे ? रहना तो इसी गाँव में है । जरा जबान सभ्हालकर बोला करो । किसी ने यहाँ की बात वहाँ तक पहुँचा दी, तो ?”

तब दादी चुप होकर सिर्फ रोती रही । केवल राउत चला गया ।

गोबर पाथकर आने के बाद माँ ने दादी को बतलाया, “मोनसीजी को मगरूआ के बाबू को भाग जाने की बात मालूम हो गई है। मुझे सुनाकर चमेलिया से कहते थे, “इन कमीनों का कौन ! खेत लेने को तो ले लिया, अब हल-पालो और बीआ के लिए कही चोरी करने निकला होगा। आज लकड़ी फाड़ने के लिए बुलाना चाहता था, तो भाग ही गया। ज्यादा बदमाशी और भाग-भूग करेगा, तो थाने जाकर, ‘सी’ किलास के बदमाश में नाम डलवा दूँगा।”

करीब दस रोज के बाद इस बात का पता चला कि बाबू कलकत्ता भाग गए; क्योंकि एक पोसकाट कलकत्ता से आया। बाबू ने लिखा था—“सोसती सीरी सरब उपमा जोग, लिखी कलकत्ता से, भगड़ू मेहरा के तरफ से माताजी को प्रनाम। मंगरू और मगरू के माई को आसीर-बाद * एहिजा का सब सामाचार अच्छा है। तुमलोगो का सामाचार सीरी अमीका भवानी से चाहते हैं, जो सुनकर दिल खुसी होए। आगे माताजी वो मगरू के माई को मालूम जे, हराजी में, काट-कूस से भरा तीन कट्टा खेत मिलने पर हमको बहुते दुःख हुआ। इसी से हम रात में बैल को केवल राउत का बथान में रख आए।

खाली इसी दुःख को † अगेज नही होने के ओजह से हम भोरे का गाड़ी से कलकत्ता भाग आए। एहिजा आने पर पता चला जे हम नोकरी पर से डिसमिस कर दिए गये हैं। गाँव पर रह जाने से नोकरी चला गया। अब नाया नोकरी खोजने ‡ होखेगा। इसलिए इधर रुपैया-पड़सा नहीं भेज सकते। किस तरह से उधार-पईच लेकर काम चलाना। कमाने लगेगे, तो फेर रुपैया पेठा देंगे। घबड़ाना मत।”

—भगड़ू मेहरा

इस चिट्ठी के कितने दिन बाद तक बाबू की कभी-कभी चिट्ठी ही आ जाती। करीब हर चिट्ठी में, बाबू बेकारी, बेरोजगारी और अपने सितम

* यहाँ। † बर्दाश्त। ‡ होगा।

की बाते लिख भेजते थे । अब तो और भी गर्दिश के दिन बीतने लगे । भात और रोटी से कभी-कभी भेट होती । कभी सन्धू, कभी मकई का भूँजा, कभी साग, कभी तरकारी और कभी † अलुआ खाकर हमलोग रह जाते । कई बार भूखो सो जाना पड़ता । बड़ा भाग्य होता, जब कभी ठाकुर के घर से जूठा भात, दाल या और कोई भोजन का सामान मिल जाता । माँ उसे ले आती और चुपचाप मेरे आगे रख देती थी ।

ठीक इसी तरह दिन बीत रहे थे कि एक दिन मेरे दिल में आया, जाकर हराजी वाला खेत तो देख आऊँ । भले उसमें कुछ नहीं उपजता, मगर खेत तो मेरा है । बस, माँ या दादी से बिना कुछ बतलाए मैं हराजी गाँव की ओर चला । रेलवे-लाइन को पारकर, जब मैं हराजी गाँव के बगीचे में घुसा, तो न-जाने मेरे दिल में क्यों एक प्रकार का आनंद छा गया । मेरे दिल में कुछ गाने की बात सूझ गई । वैसे मैं कोई अच्छा गीत गाना नहीं जानता था । भिखारी ठाकुर और रसूल की पार्टियों के नाच देखने का मौका मिल चुका था । ठाकुर के घर किसी लड़की का व्याह था । बरात में भिखरिया और रसूलवा दोनों का दल आया था । नाच देखने के लिए गाँव से लेकर जवार तक के लोग उलट आए थे । उस रात को भिखारी ठाकुर के दल न 'विदेशिया' नाटक खेला था । पीछे पता चला कि भिखारी ठाकुर ने कई नाटक लिखे हैं । उस वक्त तो मैं जानता भी नहीं था कि नाटक किसको कहते हैं । गाँव के लोग अपनी भाखा में कहते थे, "आज भिखरिया 'विदेशिया' का खेल करेगा ।"

इस तरह इन नामी नचनियों के अलावे, जब छोटी जाति वालों की शादी होती, तो उनकी बरात में भी, टूटपुँजिए नचनियों का दल आता-जाता । इसलिए ऐसे नाच के मुझे कितने गीत याद थे । तभी बगीचे में पैर रखकर, आगे की ओर बढ़ता हुआ मैं सब दुःख भूल कर गाने लगा—

† सकरकंद ।

लो०-पं०, फ०-५

गंगा माई के भरलि अरड़िया, नगरिया दूबत बाटे हो ।

गंगा मइया, पनिया में जनिया नेहात बारी, कंत मोर बिदेसे गइले हो ।

सोलह सौ संतावन साल, सावन सुदो, घर में ना रहे खुदी हो ।

गंगा मइया, सुकवा के लुकवा लगाई के त नीपटे कठोर भइल हो ।

जब मै थोड़ी दूर यो ही गाता हुआ चला गया, अपने से लगभग सौ कदम की दूरी पर देखा, एक एक उन्नीस-बीस वर्ष का आदमी, जो बगीचे में घास गढ़ रहा था—मेरे गीत को बड़े ध्यान से सुन रहा है और कभी-कभी घास गढ़ना बंद कर देता है । लेकिन, मैं इस संबंध में पहले कुछ भी नहीं सोच सका और उसके नजदीक पहुँचते ही शायद लजाकर मैंने गाना बंद कर दिया । पास पहुँचने पर वह मुझे बहुत ही धूर-धूरकर देखने लगा । पहले तो मुझे डर लगा, मगर पीछे हिम्मत बाँधकर मैं बढ़ने लगा ।

“सुन रे बचवा ।” उसने मुझे बुलाया ।

“क्या है ?” रुककर मैंने पूछा ।

“सुनो न । मैं कुछ नहीं करूँगा ।” वह बोला ।

“कहो न, क्या है ?”

“कहाँ रहते हो, किस गाँव में घर है ?” उसने पूछा ।

“आमी ।” मैं बोला ।

“कौन × आसरे हो ?”

“चमार ।” मैंने जवाब दिया ।

“चमार ?” उसने फिर पूछा । मैंने कहा, “हाँ !”

“गला तो तुम्हारा बड़ा † टाँसी है बबुआ, नाच में रहोगे ?” कह कर उसने पूछा ।

“नाच में, किसलिए ?”

“गीत गाना और नाचना ।” कहकर उसने अपने माथे पर का अँगोछा उतार दिया । तब मैंने देखा, उसके माथे में बित्ते-बित्ते भर का

बाल था। उसकी आवाज, उसके हाव-भाव में भी कुछ जनानापन था, मगर उस वक्त मैं कहाँ समझ सका ! वह बहुत ललचती हुई आँखों से मुझे देखने लगा। मैंने कहा, “मुझे कहाँ गाने आता है, मैं तो नाचना भी नहीं जानता।”

“मैं जानता हूँ, गाना तुम्हे सिखलाना नहीं पड़ेगा। नाच थोड़ा-बहुत मैं सिखला दूँगा।” इसी सिलसिले में अपने लंबे लंबे बालों को बाँध हाथ से सहलाकर उसने कहा, “देखो, मैं भी नाचता हूँ। मगर तुम्हारी तरह मेरा गला माठा नहीं है। तुम खपसूरत भी हो।”

“मुझे गाने आएगा ?”

“जरूर आएगा।” वह बोला।

“मुझे सचमुच नाचना सिखला दोगे ?” मैंने पूछा।

“हाँ, बस एक पखवारे में तो तुम उड़ चलोगे।”

“किस नाच में रखवाओगे, मैं तो भिखरिया में रहूँगा।”

मेरे इस तरह बोलने पर वह हँस पड़ा। लेकिन, मैं रसूलवा से ज्यादा नाम भिखरिया का सुन चुका था। मेरे दिल में तो उसकी बड़ाई बैठी हुई थी। साथ ही मैंने यह भी पूछा, “कितने पैसे गाना मिलेगा, मुझे तो ‘विदेशिया’, ‘गंगा-नेहान’, ‘नहछू का ब्याह’—कई खेलों के गीत याद हैं। सच बतलाओ, एक गाना के कितने पैसे मिलेंगे ?”

“पहले बहुत कम मिलेगा। सीखना होगा। मेरे साथ समाज में चलना होगा। खाने के लिए तो वही चीजें मिलेंगी, जो बराती खाएँगे। नाच उखड़ने पर रुपया-आठ आना तुम्हें भी मिल जाएगा।” उसने कहा।

“और जब सीख ज ऊँगा, तब ?” मैंने पूछा।

“सीख जाओगे, तब तो जितने का सट्टा होगा, उसमें से सब कोई बराबर-बराबर बाँट लेगा। रहने का मन हो, तो कहो, मैं अपना घर दिखला दूँ।” सीखने के लिए आते जाते रहो। एक दिन तुम्हारा घर भी देख लूँगा। आमी में तुम्हारा घर किधर है ?”

मैने अपने घर का पता उसे बतला दिया और नाच में रहने के लिए मैने अपनी ओर से उसे मंजूरी दे दी । इसके बाद तो उसने मुझे अपने पास बैठा लिया । वह मेरे घरवालों के बारे में अनेक सवाल करता रहा और मैं जहाँ तक उचित समझता, जवाब देता गया । उसने कहा, “तब पक्की बात हुई न, आज से हम-तुम :- इयार हुए ।”

“हाँ ।” मैं बोला ।

इसी सिलसिले में मैने उसे अपनी खेतवाली बात बतला दी थी । उसने बहुत अफसोस जाहिर किया । मैं बोला, “जाता हूँ, जरा उसी खेल को देखने । चलो, तुम भी अपना घर दिखला दो ।”

“तुम जाओ । अभी मैं घास गढ़ूँगा । मौका मिलने पर मैं खुद तुम्हारे घर आऊँगा । तुम्हारे बाबू और दादा का नाम मैंने याद कर लिया है ।”

उसके पास से चलकर मैं हराजी गाँव को पार गया और ठीक अपने उसी खेत के पास आकर खड़ा हुआ, जिसे मोनसीजी ने अछैबर से नपवाया था । लेकिन, रास्ते भर मैं अब खेत की बात नहीं, नाच में रहने, गाना गाने, नाचने और बारातियों को जिस तरह का खाना मिलता है, उसी तरह का खाना खाने की बात सोचता रहा । मैंने यह भी सोचा कि लगन भर तो बारात का ही भोजन करूँगा और जाँ नगद पैसे मिलेंगे, उससे घर का काम चलेगा । नाच उखड़ने के बाद घर लौटूँगा, तो दादी के लिए अपने पैसे से कड़ुआ तमाकू जरूर लेता आऊँगा । मैंने यह भी सोचा, कि भगवान की कीरपा से अगर मैं अच्छा नचनियाँ हो गया, तो घर भर का दुःख-दरिदर भाग जायगा । खेत के किनारे पाँच ही मिनट खड़ा रहने के बाद मेरा मन वहाँ नहीं लगने लगा । इस खुशहाली को माँ और दादी से कहने के लिए मेरे पैर बार-बार पीछे की ओर मुड़ने लगे । उस आदमी की सूरत बार-बार मेरी आँखों के सामने नाच जाती । उसकी प्यारी-प्यारी बातें मेरे कानों को अब भी सुनायी दे जाती थीं ।

अब जब मैं घर लौटने लगा, तो उस बगीचे में उसी आदमी को चारों ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर देखने लगा, मगर वह नहीं मिला। वह घास गढ़कर जा चुका था। रेलवे-लाइन को पाकर जब मैं अपने गाँव के बगीचे के अंदर घुसा, तो देखा, दादी पत्ते बुहार रही है। मैं दादी के पास उछलता-कूदता जा पहुँचा। मुझे देखकर दादी ने पूछा, “कहाँ चला गया था रे?”

“हराजी। अपना खेत देखने।” मैं बोला।

मेरे खेत देखने जाने की बात सुनकर दादी ने कुछ देर के लिए पत्त बुहारने के काम को रोक दिया। वह जैसे थक गई। एक जगह बैठकर दादी ने मुझसे कहा, “खेत देखने गया था, या दादा का † कबुर देखने। अब मत जाना वहाँ, नहीं तो हड्डी-गुड्डी तोड़ दूँगी।”

“क्यों दादी, वह खेत तो मोनसीजी ने हमलोगों को दिया है।”

“चुप रह। देह मत जला। थूक चाटने से भला ‡ पीयास जाती है?”

अब समझता हूँ कि मेरी बातों से दादी ने देह की जलन को कैसे महसूस किया था। अब समझ पाता हूँ कि थूक चाटने से प्यास जाने की मानी क्या है। इसके बाद दादी के जोर देने पर मैं घर चला आया। उसने कहा था, “जा-जा, तूझे भूख लगी होगी। वैसा खेत देखने से भूख नहीं मिटती। घर में लट्टा कूटकर रख आयी हूँ, खा लेना और पलानी छोड़ कर कही जाना मत।”

दादी के पास हटकर जब मैं अपने घर की ओर चला, तो याद आया कि मैंने दादी से नाच में भरती होनेवाली बात नहीं कही। मगर यह भी मैं नहीं भूल सका था कि अभी दादी का रुख भी नहीं अच्छा है। मैं वहाँ से सीधे अपने यहाँ चला आया। पलानी में घुसते ही माँ ने मुझसे कहा, “लट्टा खा ले बेटा!” और खुद एक मैला टुकड़ा लेकर कही जाने को तैयार होने लगी।

“तू कहाँ जाती है?” मैंने पूछा।

तब मेरे आगे महुआ और बरें के भूँजा के दो गोले, जिसे मेरे जिला में लोग 'खंडा' कहते हैं, रखकर बोली, "मैं गोपाल बनियाँ के यहाँ जा रही हूँ।" मैं सुनकर अभी चुप रहा। लट्टा खाना शुरू कर दिया। बड़ा मजा आने लगा। कमीनो के घरों में तो लट्टा भोजन के रूप में भी मंजूर है, मगर लाला बाबू, बाबाजी और ठाकुर-घरानों में यह कभी-कभी शौकिया बन जाता है।

"गोपाल बनियाँ के यहाँ जा रही हो, क्या ले आओगी?" मैंने पूछा।

"मकई।" माँ बोली। मुझे यह मालूम था कि बच्चा बाबू के कह देने पर गोपाल बनियाँ हमलोगों को उधार अनाज देने के लिए राजी हो गया था। इसके बदले दादी और माँ ने, उनके सामने मेरे माथे पर, हाथ और अँचरा रखकर, कसम खायी थी कि जब मंगरुआ का बाप रुपए भेजेगा या लेकर आएगा, तो सबसे पहले वे गोपाल बनियाँ का कर्ज भुगतान करेगी। लेकिन इस पर भी बच्चा बाबू ने शायद यह रोक लगा दी थी कि महीने में छः रुपए से अधिक का सामान हमलोगों को न दिया जाय। उनका कहना था कि, इनलोगों का कौन? खाने के लिए तो ये सौ रुपए महीना खा जायेंगे। मगर देगे कहाँ से? ये सिर्फ खाने ही के लिए तो जीते हैं। लेकिन तब भी † हिआव बाँधकर मैंने माँ से कहा, "नहीं माँ, आज × चाउर ले आओ। आज चाउर का भात खाने का मन करता है।"

"चुप रह। चाउर का भात खाने का मन था, तो क्यों नहीं बाप के साथ * उप्फर पड़ने चला गया। बड़ी भारी कमाई पर चाउर का भात खाने का मन करता है। गोपाल साव तेरा बाप है न, तेरे लिए तो लगता है, मुझे दूसरा मतार करना पड़ेगा।" माँ खीस में आकर बोली।

"क्यों, गोपाल साव चाउर उधार नहीं देगा?"

"महीने में छौ रुपये मे का हिसाब है। छौ रुपए में चाउर खाओ या जनेरा।"

† हिम्मत। × चावल। * एक प्रकार की शाप।

“मगर एक बात तुम्हे बतलाऊँ, माँ ?”

“क्या बतलाएगा, बतला ।” माँ बोली, जैसे उसका दिल ज़ल रहा था ।

“अब महीने में हमलोग पंद्रह रुपये भी खायें, तो उधार नहीं रहेगा ।”

“चुप रह, लबरा ।”

“सच कहता हूँ माँ, मैं अब नाच में रहूँगा । हराजी गया था न, एक आदमी से बात पक्की हो गई है ।”

“चल, चल, तुम्हे नाचने भी आता है ?” माँ बोली ।

“नाचना नहीं आता । मगर वह आदमी सिखला देगा । लगन भर तो सिर्फ़ पूड़ी-कचौड़ियाँ ही खाऊँगा । सट्टा के जो रुपए मिलेंगे, सो तुम लेना । उसने कहा है कि तेरा गला बड़ा टाँसी है । महीने भर में तो तू उड़ चलेगा ।”

“वह आदमी है कौन ?” माँ ने पूछा ।

“मुझे नहीं मालूम । मगर वह भी नचनिया है । मेरे घर आएगा । उसने मेरा पता पूछ लिया है ।”

अपने नचनिया हो जाने की बात सोचकर, मेरे मन में कोई और तरह की आशा नहीं बँधी थी । लेकिन मुझे इतना यकीन हो गया था कि अब भोजन और कपड़े का दुःख भाग जायगा । और, यही बात मुझसे जहाँ तक हो सका, मैंने अच्छी तरह से माँ को समझा दी । शायद माँ को भी मेरी बातों पर यकीन हो आया । न-जाने, गोपाल साव से क्या-क्या कहकर, वह उस रात चाउर ले आयी और हम तीनों ने डटकर भात खाया । दादी ने सुना, तो उसकी खुशी का भी कोई पारावार न रहा ।

इसके ठीक तीसरे या चौथे दिन, वही आदमी, जो हराजी गाँव के बगीचे में मिला था, मेरे घर आया । मैंने दादी और माँ से उसका परिचय कराया । पता चला कि वह बिरादर का दुसाध है और करीब सात बरसों से नाच में रहता आ रहा है । दादी बैठी रही । माँ उठकर गई, तो गोपाल साव के यहाँ से दो पैसे का मीठा लेकर लौटी । मीठा की सरबत बनने पर, एक अलमुनियम के लोटे में भरकर, दादी ने उसे

सरबत पीने के लिए कहा। वह लोटा उठाकर सरबत पीने लगा, तो दादी की बगल में बैठकर माँ बोली, “हमलोगो का मन नहीं था कि मंगरुआ नाच मे रहे। मगर पेट का दुःख जो नहीं सहा जाता। अब मंगरुआ तुम्हारे हाथ में है। इसे आदमी बनाना, न बनाना तुम्हारे बस की बात है। जब और बचा था, तब तो इसको * अँगुठिया केस था। मगर, क्या मालूम कि मंगरुआ नाच मे रहेगा। केस तो इसके ऐसे थे कि औरत के केस की नाक काट लेते।”

“फिकिर मत करो काकी ! अमिका भवानी चाहेगी, तो तुमलोगो का भाग्य पलट जायगा। मंगरुआ को मैं अपना छोटा भाई समझता हूँ।”

जिस आदमी ने मुझे नाच में रहने की सलाह दी थी, उसका नाम मोती था। अब मैं समय-समय पर उसके घर जाकर नाचना सीखने लगा। अब तो शहरो मे मेहतर और रिक्शेवाले तक पक्के राग और पक्के नाच का नाम जानते हैं, पान बेचनेवाले भी दूकान पर रेडियो लगाये मालकोस और नायिकी कान्हड़ा सुना करते हैं, मगर तब का जमाना और था और उस पर भी गाँव। गाँव मे भी छपरा जिला का गाँव, जहाँ भिखारी ठाकुर का नाम बच्चे से लेकर बूढ़े तक जानते हैं। वैसे तो मुझे भी कई देहाती गीत याद थे, मगर मोती भाई के बतलाने पर भी मैं उनके गीत गाता और नाचना सीखता। अब मैंने मोती भाई के बतलाने पर बाल बढ़ाना भी शुरू कर दिया था। उन्होंने मेरी माँ को मेरे बाल में रोज तेल डाल देने की सलाह दी थी। सो, मैं अब याद करके रोज ही मेरे बालो में तेल लगाकर ककहा से सुलझा देती थी। एक दिन मोती भाई ने कहा, “जरा आँखो में काजर भी लगाया कर।”

“काजर ?”

“हाँ, नाचेगा कैसे ? पहले से काजर लगाकर सबके सामने निकलेगा, तब न बारात में भी लाज नहीं लगेगी।”

“अच्छा।”

और, इस तरह अब मैं काजर भी लगाने लगा । नाचने का रेयाज करने के लिए मोती भाई अपना धुँधरू देते थे । मुझे याद है, मोती भाई कंसी लेकर मेरे सामने खड़े हो जाते थे । एक आदमी ढोलक बजाता और तीसरा सरंगी । उस नाच के सीखने में पक्के नाच की तरह न तो कुछ ताल-लय गिनने की जरूरत पड़ती थी और न सिनेमा के नाच की तरह उसमें बहुत-से बाजे बजते थे । मोटा-मोटी भाव का इशारा करते हुए दोनों पैरों को पटकना पड़ता था । मान लो, जब मोती भाई गाते—

सुतल मैं रहली रामा, लाली हो पलगिया,

पिअऊ जगावे लगलन ना...

बीच-बीच में आवाज आती, “कइसे हो, भाव बता के ।”

रामा पीटी-पीटी कँवरिया,

पिअऊ जगावे लगलन ना ।

फिर भीड़ से देखनेवाले बोलते, “जिय ए काँटी... ।”

तो इस भाव को बतलाने के लिए मुझे अपने दोनों हाथों को जोड़कर बायें कान से सटाना पड़ता, और आँखें मूँदकर बहुत थोड़ा-सा बायीं ओर झुकना होता और फिर ताली बजा-बजाकर यह भाव दिखलाना पड़ता कि जब मैं लाल पलंग पर सोयी हुई थी, तो मेरे बालम दरवाजा पीट-पीटकर मुझे जगाने लगे । इस तरह के नाच को सीखने में भी कुछ रोज बड़ा दुःख हुआ । धुँधरू के वजनदार होने से पैर फुत्तों के साथ नहीं उठते थे । बार-बार पटकने के कारण चोट भी लगती थी । मगर करीब डेढ़ महीने के बाद मोती भाई ने कहा कि अब मैं काम का आदमी हो गया हूँ । शादी-ब्याह के दिन आ गए, तो मेरा नाच दिखला-दिखलाकर वे † सट्टा-बेयाना लेने-लिखवाने लगे । नाच देखकर ही तो फीस की बात तय होती थी । इस बात को तय करने के लिए जब कोई आनेवाला होता, तो वे मुझे बहुत सबेरे बुलाकर ले जाते । मुझे साबुन से मुँह साफ करने के लिए कहते । लोगों के आते-आते, वे मुझे

साड़ी और कुरती पहना देते । बिसाती की दूकान से खरीदे गए शीशे और नकली मूंगे के जेवर मैं पहन लेता । मोती भाई अपने हाथों से धुंधलू बाँध देते, गालों पर पौडर पोत देते और × लिलार पर टहकार बूँदा भी कर देते थे ।

अब मैं करीब पंद्रह बरस का हो गया । नाच में रहते पाँच साल हो गए । मगर नचनियाँ बनने पर भी घर की हालत नहीं सुधरी । ठाकुर के घर माँ को बेगार करने जाना ही पड़ता था । इस बीच कलकत्ते से बाबू तीन-चार बार आए । मगर न जाने क्यों, हबड़ा से दिघवारा टीसन पर पहुँचते-पहुँचते उनकी तबियत खराब हो जाती थी । टीसन पर उतरते ही, किसी गाँव के आदमी के मिलने पर, खबर देते, तो मैं उन्हें लिवा लाने जाता था । वे वहाँ से कबल ओढ़कर अपने घर आते । हाँ, साथ में कुछ नगदनरायन जरूर लाते । उन रुपयो से कर्ज नहीं अदा किया जाता । मैं भी उठती बाजार के समय, मछली खरीद लाता । जब तक बाबू घर पर रहते, खूब कटती थी । ठाकुर के घर से जब कोई बेगार खटने के लिए बाबू को बुलाने आता, तो बाबू झटपट अपनी देह में कबल लपेटकर सो जाते और तब माँ या दादी, तनिक दूर से ही उन्हें दिखलाकर कहती, “क्या कहे, मेरी किस्मत फूट गई है । बारह बरस पर परदेस से आया भी, तो जाड़ा-बुखार लेकर । देखो न, बुखार से तो बदन चूल्हे पर चढ़ा हुआ तावा हो रहा है । पास में एक कानी कौड़ी भी नहीं है कि काढ़ा भी लाकर पिला दूँ ।”

इन दिनों जब कभी राह में रामभजन की माँ मिलती, तो कहती, “कहाँ जा रहा है रे, आजकल तो तुमलोग गुलछरें उड़ा रहे होगे । तुम्हारा बाप पूरबी देस से कमाई करके आया है न ?”

“कमाई करके क्या आये है । जड़इया से तो थर-थर काँप रहे हैं ।” तब मैं कहता ।

“जा कहाँ रहा है ?”

“अगनू मिसिर के यहाँ। काढ़े की पुड़िया देने को कहा है।” मैं जवाब देता।

हमलोगो को देखकर न-जाने, रामभजन की माँ क्यों जला करती थी। हमलोगो के समाज में उसका रोब-दाब था। मैंने देखा था, कई चमार भाइयो को बेगार खटते समय देह चुराने के जुर्म में जब मोनसीजी ने जुर्माना किया, तो कितनो के जुर्माने माफ करा चुकी थी। दादा की जगह पर मुझे रोज तो नहीं, लेकिन अक्सर कुट्टी काटने के लिए ठाकुर के यहाँ जाना पड़ता था।

एक रोज की बात है। कुट्टी काटते-काटते मेरे हाथ थक गए। सुबह से ही कुट्टी काट रहा था। सूरज बीच आसमान में आकर खड़ा हो गया। ठाकुर के घर से जलखावा के लिए भूँजा मिलने की उम्मीद थी, मगर भूँजा अब तक न मिला। हाथों में कमजोरी मालूम होने लगी, कलेजे की धड़कन धीमी पड़ गई, माथे पर पसीना आने लगा। हारकर मैंने गँड़ासी रख दी और वहीं चुपचाप बैठकर जरा दम मारने लगा। अभी पूरी तरह दम भी न मार सका था कि मोनसीजी आ गए।

“क्यों रे, बैठ क्यों गया?” मोनसीजी ने पूछा।

“बड़ा थक गया हूँ सरकार, जरा दम मारकर.... .” मैं कह रहा था। तभी रामभजन की माँ आ गई। आँखों में बहुत गाढ़ा काजर किये थी। आते ही उसने अपना मुँह ऐसे बना लिया, जैसे मोनसीजी और मेरे बीच की हुई बातों को वह बहुत पहले सुन चुकी हो। आते ही बोली, “अब यह क्यों कुट्टी काटेगा? अब तो बाप-बेटे दोनों जने कमा रहे हैं। नाच में रहकर तो अब यह फूल-जैसा कोमल हो गया है।”

“हाँ, यही बात है रामभजन की माँ. .।” मोनसीजी ने इसके आगे क्या कहा, मुझे याद नहीं। मगर उनके इतना कहते-कहते मैंने फिर गँड़ासी उठा ली और लगा कुट्टी काटने—छप्-छप्-छप्-छप्...।

रामभजन की माँ का यह खयाल गलत था कि नाच में भरती होने से मैं फूल-सा कोमल हो गया हूँ। मगर मुझमें उतनी हिम्मत कहाँ थी कि

उसके सामने अपनी मोसकिलो का बयान करता ? मगर, नाचते वक्त मुझे बहुत तकलीफ होती थी। मोती भाई मेरी बायीं ओर खड़े होकर कसी बजाते और मेरी पीठ के पीछे ढोलक बजानेवाला होता। नाच में कभी-कभी दो सारंगी होती और कभी-कभी एक ही सारंगी से काम चल जाता था। नाचते और गाते समय, मोती भाई का इशारा पाकर, मुझे सामने बैठे हुए बाबू लोगो के आगे, अपने घुटनो को मोड़कर बैठना पड़ता। और, जब इस तरह बैठकर मैं गाने लगता, तो तबियतदार बाबू लोग मेरे गालों पर हाथ फेरने लगते। मेरे लिए कुसबद बोलते और तब उनसे मैं दो दुअबी या एक चवबी पाकर झटपट उठ खड़ा होता था। फिर तब नाच और गाने का मजेदार लय आ जाता। मैं झमक-झमककर नाचने लगता था। अब समझता हूँ कि सामियाने के चारो ओर खड़े नाच देखनेवाले अपनी भाखा मे मेरे नाच की तारीफ करते थे। ऐसे वक्त पर चारों ओर से आवाज आने लगती—

चिन्नी के बोरा, महुआ के लट्टा,
काट खुरे खुर, काट खुरे खुर
चहुए पर, चहुए पर।

तब मेरे नाच का कमाल देखकर मोती भाई, जो उस वक्त कंसी बजाते होते, अपने पास खड़े सरंगीवाह के कान में मुँह सटाकर कहते, “देखा न, मंगरुआ बेस पाउटी काटता है।” जवाब में सरंगीवाह मुस्करा देता। नाचते समय कमर हिलाने के काम को, मेरे यहाँ के लोग ‘पाउटी काटना’ कहते हैं। सो, मेरे पाउटी काटने पर तो देखनेवाले बहुत खुश होते, मोती भाई का कलेजा ऊँचा हो जाता। मगर, पाउटी काटने से मुझे जो तकलीफ होती थी, उसे कोई नहीं समझता था। नाचते समय बराबर पैर पटकते रहने के कारण † सुपली में इतने जोरो का दर्द होता कि लगता सुपली काटकर फेक दूँ। पैर की उँगलियों की गिरह-गिरह में टीस उठती थी। चार-चार घंटे लगातार नाचने के बाद, जब बराती

† घुट्टी से नीचे तक का भाग।

लोग खा लेते, तब नचनियाँ समाज को खाने के सामान दिए जाते थे । न-जाने, मुझमें कौन ऐसी खूबी थी कि जब दूसरा लौंडा नाचने लगता, तब भी बारात के लोग मोती भाई से मुझे ही खड़ा कराने के लिए कहते ।

इस तरह बहुत रात बीत जाने पर जब नाच खत्म हो जाता, तो तुमसे क्या छिपाऊँ ? मेरी चादर और धोती से बनी तंबू के घेरे में सोने लगता, तो खुद अपने समाजी मुझे दिक करते । कोई कहता, मेरी बगल में सोओ, कोई कहता, मेरी बगल में सोओ ।—मैं परेशान हो उठता । लेकिन जब अपने घर की हालत देखता, तो नाच के समाज से अलग होने की हिम्मत टूट जाती थी । आगे चलकर मुझे और कुछ होना है, कोई ऐसी उम्मीद भी नहीं थी । इसलिए नाच में गानेवाले गीतों को अकेले में बैठकर खूब तैयार किया करता ।

इन्ही दिनों की एक-दो और बातें सुन लो ।

बाबू जब हवड़ा से कमाई करके लौटते, तो अलबत्ता किसिम की पट्टी छुटवाकर आते । वैसी हजामत को गँवारू भाखा में हमलोग 'छील-पट्टी' कहते थे । आते तो साथ में एक नई दरी, एक छाता और बालटी भी ले आते । इस बार आए तो चीनी का पीआला और छोटी-छोटी छिपुनी भी ले आए । इसी छिपुनी को शहर के बाबू लोग 'डिश' कहा करते हैं । बाबू ने खुद बतलाया कि उनका कोई दोस्त वही अंग्रेज साहब की कोठी में काम करता है, सो उससे थोड़ी-सी चाय भी माँग ली थी । देहात में, अगर तुम किसी से चाय माँगो, तो ठाकुर-घराने को छोड़कर, और घरों से चाय बहुत मोसिकल से मिलेगी । और मिल भी जायगी, तो कप और डिश में नहीं । वहाँ केटली और 'टी-पॉट' का नाम भी कोई नहीं जानता । वहाँ तो बटुई में चाय बनती है और पीनेवाले को कटोरे या लोटे में दी जाती है । बाबू जैसा बतलाते थे, उन्हें चाय पीने की आदत पड़ गई थी ।

भोर के करीब आठ बज रहे थे । पलानी से बाहर, सहन में बाबू ने मुझसे दरी बिछवायी और मेरी माँ को बुलाकर पूछा, "चाह बनाना जानती हो ?"

"चाह ?" माँ समझ न सकी ।

"हाँ, चाह ।" कहते हुए बाबू खुद पलानी में घुस गए और साथ में लायी हुई गठरी से चाय की पुड़िया ले आए । माँ की हथेली पर उस पुड़ियाँ को रखकर बोले, "करीब आध सेर या तीन पाव पानी गर्म होने

के लिए चढ़ा दो। जब पानी गर्म होकर खूब 'खल-खल' करने लगे, तो इससे थोड़ी-सी चाह निकाल कर उसमें छोड़ देना। फिर पानी उतारकर ढकनी या छीपा से उसे तुरत सॉप देना। भाफ उड़ने न पावे। और हाँ, घर में चीनी है या नहीं, दूध कहीं मिलेगा ?”

“ना।” माँ ने बाबू के दोनों सवाल का एक ही जवाब दिया। बाबू की इन सारी बातों से उसकी आँखों में अचरज का पानी भरा आ रहा था। इतना कहकर वह बाबू का मुँह देखने लगी।

“जाने दो, दूध छोड़ दो। चीनी मँगवा लो।” बाबू बोले।

“हाँ।” माँ बोली।

तब बाबू ने मुझे एक ब्रकबी दी। मैं दौड़कर मोदी की दूकान से चीनी ले आया। चीनी लेकर लौटने के पहले चाय बन चुकी थी। बाबू अंदाज से चीनी मिलाकर बोले, “अब चाह तैयार हो गई।” इसके बाद माँ ने लोटे के मुँह पर अँगोछा बाँधकर चाय छान दी। चीनी के पीआले में चाय भरकर बाबू ने मुझसे कहा, “ले, एक कप तू पी ले। और एक अपनी माँ को दे दे।”

बाबू के मुँह से इतनी बातें सुनकर माँ लज्जा गई। वह पास ही खड़ी थी। उसने कहा, “मैं यह सब न पीऊँगी। तुम्हीं बाप-बेटा पी लो। मैं चली, ठाकुर की हवेली। गोबर पाथना है।”

आखिर माँ बिना चाय पीये ही चली गई। अपनी पीआली की चाय लेकर, बाबू पलानी के बाहर बिछायी हुई दरी पर आकर बैठ गए। बाबू के सामने चाय पीने में मुझे भी लाज लग रही थी। मैं अंदर ही पलानी में रह गया। चाय बहुत गर्म थी। पीआली में मुँह सटाने पर ठोर जलने लगा। जीभ सूख होने लगी। पास ही अलमुनियम का कटोरा पड़ा था। पीआली की चाय को कटोरे में उड़ेलकर, धीरे-धीरे फूँक-फूँककर, लगा पीने। पलानी के भीतर ही मैं इस प्रकार संभलकर चाय पीने बैठा था कि बाबू के चाय पीने का ढंग अच्छी तरह देख सकूँ। वे बड़े डाट से पीआली में भरी चाय को, सवाद ले-लकर पी रहे थे।

ठीक इसी समय की बात है। ठाकुर के बेटे बच्चा बाबू सामने से गुजर रहे थे। मेरी पलानी से वे करीब डेढ़-दो सौ कदम की दूरी पर चले जा रहे थे। नहीं कह सकता, बाबू को देखकर, या यो ही—मगर बच्चा बाबू बड़े ज़ोर से खँखरे। मैंने देखा, उस वक्त बाबू की देह में कँपकपी समा गई। वे मेरी ओर मुँह फेरकर चिल्ला पड़े, “मगरुआ ?”

“हाँ, बाबू !” मैंने कहा।

“जल्दी कबल लाओ।”

बात क्या है ? यह नहीं समझकर भी मैंने पलानी के भीतर से कबल खींचकर बाबू के पास फेंक दिया। बाबू उस कबल को मटपट ओढ़ लिये और लगे देह कँपाने, जैसे जड़इया से काँप रहे हों। मगर तभी मैंने देखा कि बच्चा बाबू चुपचाप चले गए। उनके बहुत दूर चले जाने पर बाबू ने मुझसे पूछा, “बच्चा बाबू से भेट होगी तो क्या कहेगा, बाबू चाह पी रहे थे ?”

“.....।” मैं चुप उनका मुँह देखता रहा।

“कहना, बाबू पुरुष से बीमार होकर लौटे हैं।” बाबू ने सिखलाया।

“और, तुम्हें चाह पीते हुए देख लिया है, सो ?”

“बतलाना, वे तो काढा पी रहे थे।” बाबू बोले।

“पूछेंगे, बीमार है तो पलानी से बाहर क्यों था ?” मैंने पूछा।

“बतलाना, जड़इया महारानी आ गईं थीं। एक कबल से जाड़ा नहीं जा रहा था, तो बाहर घाम में आकर बैठे थे। अगर ऐसे नहीं बतलाएगा, तो बहुत बुरा होगा। गोपाल साव बनियाँ का पाई-पाई अदा करना ही होगा, साथ ही बेगार खटनी होगी, सो अलग।” बाबू ने सिखलाया।

मैंने बाबू की सिखलायी हुई बातों को गुरु-मतर की तरह याद कर लिया। मगर झूठ क्यों बोलूँ, बच्चा बाबू ने मुझसे इस तरह का कभी कोई सवाल न किया और न मुझे बाबू के सिखलाये हुए जवाब ही पेश करने पड़े। मेरा अंदाज यह है कि बाबू के बीमार होकर आने की सबूत

के लिए, अपने हर मिलनेवालों से रो-रोकर उनकी बीमारी की चर्चा करना ही काफी था। और, इस परचार के सारे भार को दादी अपने ऊपर लिये फिरती थी। इसी तरह वह गोपाल साव को भी साध चुकी थी। वह एक बार भी तगादा करने नहीं आया।

लेकिन इस तरह झूठ बोलने से काम नहीं ही चल सका। यह १९३६-१९३७ ई० का जमाना था। बड़ी जाति के लोग अपने कुएँ पर हमलोगों को नहीं नहाने देते थे। नहाना और बर्त्तन साफ करने देने की तो बात अलग रही, हमलोगों को उन दिनों उनके कुएँ से पानी भरकर पीने तक का हुक्म नहीं था। हमारा बर्त्तन उनके कुएँ में डूबता, तो समूचे कुएँ का जल नापाक समझा जाता और ठाकुर, कुएँ को उबिछवाने में जितना खर्च लगता, उससे दुगुने रुपए जुर्माना करते थे। सो, मेरी ही तरह बाबू भी भोरे उठकर दरियाव में नहा आते थे। मैं तो कुछ देर-सबेर भी जाता था। मगर बाबू मुँहझपे उठकर चले जाते। और, जब कभी उनके उठने में देर हो जाती, तो नहीं ही जाते थे।

आज मैं भी भोर में ही उठ गया था। सोचा, उधर दरियाव-किनारे ही दिसा-मैदान से फरागत हो लगे। सो मैं भी बाबू के साथ ही दरियाव-किनारे चल पड़ा। दिसा-मैदान से फरागत होकर दोनों बाप-बेटे घाट पर बैठकर वालू से दाँत साफ करने लगे। बाबू ने दरियाव के उस पार की ओर हाथ उठाकर कहा, “देख मगरू, ठीक इसी के सामने उस पार पटना है—छपरा से लाख दरजे अच्छा शहर।”

“हूँ... ..।” मैं बोला।

पटने से भी एक गाड़ी सीधे कलकत्ते जाती है।”

“हूँ... ..।” मैंने फिर कहा।

घाट से सटे पानी के ऊपर मटमैले फेन बह रहे थे। इंच-दो-इंच की छोटी-छोटी मछलियाँ हमारे पैरों तक तैरती हुई आती और चली जाती थीं। दरियाव का पानी धीरे-धीरे हिल रहा था। दाँत साफ कर मुँह धो लेने के बाद हमलोग छाती-भर पानी में जाकर खड़े हो गए।

पहले बाबू ने डुबकी लगायी, तब मैंने डुबकी लगाकर, जैसे ही सिर बाहर निकाला कि देखा, घाट के ऊपर से एक-पर-एक चार-पाँच बैल उतरते हुए चले आ रहे हैं।

“इतना सबेरे कौन बैल ला रहा है ?” बाबू ने मुझसे पूछा।

“नहीं मालूम।”

बाबू ने दूसरी डुबकी नहीं लगायी। दूसरी डुबकी लगाकर जब मैंने गर्दन बाहर निकाली, तो मेरे कानों में बहुत नजदीक से यह देहाती गीत सुनायी पड़ने लगा—

सबका के देल रामा, अन-धन सोनवाँ,
बनवारी हो, हमरा के लड़िका भतार।

मैं अपने कान खोलकर गानेवाले की आवाज पहचानने लगा। आवाज धीरे-धीरे पहचान में आ गई।

लड़िका नदान लेके सुतली अंगनवा,
बनवारी हो, रोये लगले लड़िका भतार।
छुप रहु छुप रहु, लड़िका भतरवा,
बनवारी हो, रहरा में बोलेला हुरार।

“बैल तो ठाकुर के जान पड़ते हैं ?” मैंने बाबू से कहा।

“ठाकुर के हैं ?”

“हाँ।”

“तो कैसे ?” बाबू ने पूछा।

“अछैबरा गाता हुआ ...।”

मैं अपना जवाब भी न पूरा कर सका था कि बाबू झटपट पानी से बाहर निकल गए। साथ ही मुझे कहा, “चल, जल्दी निकल। अछैबरा बड़ा खँचरा है, दौड़कर बच्चा बाबू से कह आएगा।”

“अच्छा।” मैंने कहा और फुर्ती के साथ पानी से बाहर आने लगा, तभी मेरी नजर घाट के ऊपर गई। देखा, बैलों के पीछे-पीछे अछैबरा चला आ रहा है। बाबू का देखते ही उसने पूछा, “क्या झगड़ू, अच्छे हो गए ?”

“ . . । ” बाबू का जैसे बकार बढ़ हो गया ।

कदम-कदम कर अछैबरा हमलोगो के नजदीक पहुँचता आ रहा था । आज की साईत बहुत खराब थी । बाबू को या मुझे, हममें से किसी को उम्मीद नहीं थी कि अछैबरा इतना सबेरे और दरिआव-किनारे ही बैल धोने चला आयगा । पानी से निकलकर मैं भी बाहर आ गया । पाँच मिनट तक तो बाबू गूँगे बने रहे । बाद में अछैबरा से बोले, “अच्छे क्या हो गए, अछैबर भाई । . ”

“तो ?”

“देह गला रहा हूँ । देख नहीं रहे हो, सरिर में एक चिड़ियाँ का भी माँस नहीं रहा ।” बाबू बोले । अछैबरा हमलोगो के सामने आकर खड़ा हो गया । बैल किनारे खड़े हो-होकर, पानी में सिर लटकाकर पानी पीने लगे । पूँछ झटककर कभी-कभी वे अपने पैरो में सटे हुए मच्छड़ों को भगा देते थे । बाबू की बात सुनकर अछैबरा बोला, “कैसी बाते करते हो भगड़ू, तुम्हे देखकर तो कोई बीमार भी नहीं कह सकता और तुम कहते हो कि शरीर में चिड़ियाँ का भी माँस नहीं रहा । बीमार पड़े, तुम्हारा मुद्ई ।”

अछैबरा की यह बात सुनकर मेरा कलेजा चाक होने लगा , क्योंकि उसको और रामभजन की माँ को लेकर मैं दो-एक गर्म खबरे सुन चुका था । सुना था, रामभजन की माँ और अछैबरा में कुछ भीतरिया लटपट चल रहा है । अभी नहाकर पानी से बाहर हुआ था, मगर सारी देह सूख गई । वैसे तो अछैबरा भी खुद अड़ियल था । मगर अब डर और इसलिए बढ़ गया कि अगर बाबू के नहाने की बात रामभजन की माँ के कानों में चली गई, तो फिर बात ठाकुर और मोनसीजी तक जरूर पहुँच जायगी । मैंने बाबू की ओर उदास होकर देखा ।

“बीमार तो ऐसा हूँ अछैबर कि चलना-फिरना मोहाल है ।” बाबू ने कहा ।

“तो फिर नहाने कैसे चले आए ?” अछैबरा ने पूछा ।

“बत सुनाऊँगा तो तुम्हे हँसी आएगी, मगर देवता-पितर का डर जोगाना ही पड़ता है।”

“सो क्या ?” अछैबरा ने पूछा।

“अभी कल की बात है। मेरी माँ दरियाव नहाने आयी थी। उसने देखा, एक मुसमात ब्राह्मनी आयी। दरियाव में नहाकर उसने कपड़े बदले और तब घाट ही पर अपनी मोटरी से रोटी और मछली निकालकर खाने लगी। माँ को इस पर बड़ा अचरज हुआ। उसने पूछा, “तुम कौन हो ?”

“मैं ब्राह्मनी हूँ।” ब्राह्मनी बोली।

“तुम्हारे दुल्हा क्या करते हैं, तुम कौन गाँव की रहनेवाली हो ?” मेरी माँ ने पूछा।

“हर गाँव मे मेरा घर है। मैं मुसमात हूँ।” ब्राह्मनी ने कहा।

“तो एक तो ब्राह्मनी, उसपर मुसमात। तुम मछली कैसे खा रही हो ?” माँ ने पूछा तो वह बोली, “मुझसे यह सब सवाल मत करो, नहीं तो तेरा सतेयानास कर दूँगी।”

“अच्छा।” अछैबरा तनिक धबड़ाया। बाबू बोले, “तब माँ उसके पैरो पर गिरकर बोली, “मुझे माफ़ कर दो। मैं तुम्हे नहीं पहचानती। मेरा बेटा आज कितने रोज से बीमार है, उसे बकस दो।” तब उस ब्राह्मनी ने कहा, “देख बुढ़िया, मैं जड़इया हूँ। मैं तुम्हारे बेटे को बकसने ही आयी हूँ। तू उसे गंगाजी में नहाकर, पाँच बार मेरा नाम लेकर, मछली-भात लाने के लिए कह, वह अगले शनीचर तक अच्छा हो जायगा।”

“वाह !” अछैबरा बोला।

“तब क्या बतलाऊँ अछैबर, जैसा माँ कहती है, इसके बाद वह ब्राह्मनी बिला गई। अब समझ जाओ कि लाचार होकर नहाने के लिए आना ही पड़ा। मंगरुआ न होता, तो मेरा आना भी मुश्किल था। देह देखने से तो सचमुच बीमार की तरह नहीं लगता, लेकिन भीतर तो बंस खोखा-ही-खोखा है।” बाबू समझा गए।

इस बीच हमलोग अगोछा बदलकर भगोटी पहन चुके थे । अब जल्द से-जल्द वहाँ से भागने का ही इरादा था । अछैबरा बोला, “ठीक किया, जाड़-बुखार मे मछली मना नही है ।”

“पकड़ मगर, दोनो बाँह के नीचे हाथ लगाना और बहुत धीरे-धीरे चल । हँफनी आती है ।” अछैबरा को सुनाकर बाबू बोले । मैं सब समझ गया । मैं जब बाबू को सम्हालकर पकड़ने लगा तो देखा, अछैबरा बैलो की ओर दौड़ा जा रहा है । पानी पीते समय ही दो बैल आपस में बेतरह उलझने लगे थे । दोनो बैल बड़े जोर-जोर से फोफिया रहे थे ।

अछैबरा तो बैलो का झगड़ा छुड़ाने लगा, मगर फिर भी बाबू की हिम्मत न हुई कि वहाँ से बिना बीमार की तरह चलकर अपनी पलानी तक आवे । अरार से ऊपर चले आने पर, जब अछैबरा हमारी आँखों से छिप गया तब भी बाबू बोले, “बाँह के नीचे से हाथ मत निकालना । अपनी पलानी तक ऐसे ही चल ।”

“अच्छा ।” मैंने ठढ़ी आवाज मे कहा और उसी तरह बाबू मेरे साथ पलानी तक आ गए ।

दादी पलानी मे थी । माँ जमीदार के यहाँ गोबर पाथने चली गई थी । पलानी के भीतर आकर बैठते ही बाबू ने दादी से सारी बातें कह दी । सुनकर दादी की आँखों से लोर टपकने लगा । बाबू ने पूछा, “अब क्या होगा माँ ?”

“भगवान मालिक है ।” दादी बोली ।

लेकिन, मन मे हजार तरह की घबड़ाहट रहने पर भी यह बात घुटे-आध घुटे के बाद पुरानी पड़ गई । दिन के करीब दस बजे जब दादी हमलोगों के लिए खिचड़ी बनाकर चूल्हे की आग बुझा रही थी, तभी भूलन बाबाजी के यहाँ की कहारिन दादी को बुलाने आई । उनके घर मे कोई परसौत कमाना था । इसलिए दादी हमलोगों को अपने सामने बैठाकर न खिला सकी । कहारिन ने आते ही कहा था, “जल्द चलो । दुलहिन दर्द के मारे † छावाछीत हो रही हैं ।”

“महीना पूरा है न ?” दादी ने कहारिन से पूछा ।

“महीना तो पूरा हो ही गया । इधर एक पंख और खींच लिया है ।” कहारिन बोली ।

“मैं हबेली कमाने चली भगडू ।” और दादी ने फिर मुँहसे कहा, “भगदूआ, दोनो थरिया मँजा रखा है । निकालकर बाप-पूत खा लोगे ।”

इतना कहकर दादी हबेली कमाने चली गई । उसके चले जाने के बाद, मैंने दोनो थरिया मे अलग-अलग खिचड़ी निकाली और बाबू को पुकारकर कहा, “आओ न बाबू, खा लो अब ।” इसके बाद बाबू खान के लिए बैठे । लेकिन मैंने देखा कि बाबू मन से नहीं खा रहे थे । उनके चेहरे पर उदासी कट रही थी । उनको अनमनाते देखकर मैंने उनसे कहा, “चोखा फीका है क्या ? कहो तो पुआल जलाकर दो-तीन मिरचाई पका दूँ ।”

“ना, छोड़ दे ।” बाबू बोले ।

“भूख नहीं है क्या ?”

“ना । जरा-मना है, सो खा ही ले रहा हूँ ।” वे बोले ।

बाबू का चेहरा देखने से पता चलता था कि वे कोई बहुत पुरानी बात सोच रहे हों, उनकी धँसी हुई आँखों की पुतली चारों ओर घूम रही थी । खिचड़ी खाते वक्त वे बार-बार पलानी के बाहर देखने की कोशिश कर रहे थे । ऐसा लगता था, जैसे बाबू खिचड़ी और चोखा को, सवाद ले-लेकर नहीं खा रहे । भूख मिटाने के लिए वे खिचड़ी का कौर लील रहे हों । चाहे जो हो, मेरा अंदाज अपने मन में अब तक पक्का है कि बाबू उस वक्त भरपेट नहीं खा सके । उन्होंने आधे से अधिक खिचड़ी थरिया में छोड़ दी । मैंने भरपेट खा लिया था । सो अपने थरिया को माँजकर मैंने बाबू के थरिया में पड़ी खिचड़ी को माँप दिया ।

बाबू हाथ-मुँह धोकर पलानी में ही सोने की कोशिश करने लगे और मैं पेशाब करने के लिए पलानी से बाहर निकला । जैसे ही मैं पेशाब करके उठा कि मेरी नजर खेलावन पर पड़ी । खेलावन ठाकुर के यहाँ का नौकर था ।

“पाव लागू, खेलावन भैया !” मैंने कहा ।

“मंगरुआ १” जवाब में खेलावन बोला ।

“उ... ।” मैं ।

“तुम्हारा बाप है घर में १”

“हाँ, बाबू हैं १” मैंने कहा ।

“बुलाओ ।”

“क्या बात है १” मैंने पूछा ।

“छोटे सरकार ने बुलाया है ।”

“छोटे सरकार ने १”

“हाँ, बच्चा बाबू ने ।”

“किसलिए, तुम्हें कुछ मालूम है खेलावन भाई १”

“उहूँ मुझे कुछ नहीं मालूम । मगर मुझे हुकुम मिला है कि अपने साथ ही लिवाते आओ ।” खेलावन बोला ।

बच्चा बाबू का नाम सुनते ही मेरा दिल धक्के से कर गया । पीछे बढ़ा अफसोस हुआ कि मैंने खेलावन को क्यों बतला दिया कि बाबू हैं । मगर अफसोस बेकार ही हुआ । बच्चा बाबू से छिप जाना बहुत अजगुत बात होती । खेलावन मेरे साथ-साथ मेरी पलानी तक आया । वह बाहर सहन में ही खड़ा रहा और मैं भीतर पलानी में घुस आया । देखा, कंबल ओढ़कर बाबू सोना चाह रहे हैं । मेरे आने के पहले वे अपना मुँह कंबल से ढाँपने लगे थे ।

“क्या है रे मंगरुआ, तू भी सोयेगा १” बाबू ने मुझे देखकर पूछा ।

“ना ।” मैं बोला ।

“सो न । इस वक्त कहाँ जायगा १”

“छोटे सरकार ने बुलाया है ।” मैंने कहा ।

“कैसे, तुम्हें १ ठीक है, जा हो आ ।”

“मुझे नहीं, तुम्हें । खेलावन बुलाने आया है ।”

“खेलावन बुलाने आया है ।” बाबू घबड़ाकर तनिक जोर से बोले ।

“हत्त तेरी के चुप रहो न । यही तो खड़ा है ।” मैंने कहा ।

“मेरे मुँह से इतनी बात सुनकर बाबू जैसे ठड़े पड़ गए। उन्होंने अपनी देह से कंबल उतारकर फेंक दिया। तभी बाहर खड़े खेलावन ने तनिक जोर से कहा, “चलो झगड़ू, देर मत करो। मुझे भी गाली सुनना आगे क्या ?”

“मंगरुआ ?” बाबू बोले।

“क्या ?”

“मेरे साथ तू भी चल।”

“चलो।” कहकर मैं तैयार हो गया।

बाबू फिर से कबल ओढ़ लिये और पलानी की टाटी को दरवाजे पर ठीक से सटाकर हमलोग खेलावन के साथ चल पड़े। मेरी पलानी से ठाकुर के दरवाजे तक आने में आध घंटे से कम वक्त नहीं लगा होगा, मगर रास्ते में खेलावन ने हमलोगों को तनिक भी नहीं बतलाया कि बाबू को छोटे सरकार ने किसलिए बुलावाया है। रास्ते में बाबू ने कई तरह से इस बुलाने की वजह को जानने की कोशिश की, मगर खेलावन हमलोगों को कुछ बतला न सका। रास्ते में उन्होंने अंदाज लगाना चाहा।

“छोटे सरकार का मिजाज ही कुछ और है, किसी को दुखाते नहीं।” बाबू बोले।

“क्या करना है, किसी के लिए बैगन × पथ तो किसी के लिए माहुर।” खेलावन ने कहा।

“मेरे बाबू तो बूढ़े ठाकुर का ही नाम जपते थे।” बाबू बोले।

“जब जैसा, तब तैसा।” खेलावन ने कहा।

“लकड़ी-उकड़ी फाड़नी है क्या खेलावन ?” बाबू ने पूछा।

“नहीं मालूम।” खेलावन बोला।

“दालान के सामने लकड़ी की सिल्ली तो देखी होगी ?” बाबू ने पूछा।

“नहीं, वहाँ तो सिल्ली-बिल्ली कुछ नहीं है।” खेलावन बोला।

“अच्छा, अब समझ गया। सुना था, कोई लगहर भईस बिसुख गई है। उसी की झाड़-फुँक के लिए बुलाया होगा।”

“नहीं, कहाँ कोई भैंस बिसुखी है ?”

इस तरह और कई बातें पूछकर भी बाबू थक गए। कुछ पता नहीं चला। आखिर हमलोग ठाकुर के दरवाजे पर पहुँच गए। पश्चिम ओर की दालान के सामने एक इमली का पेड़ था। हमलोगों के साथ ही खेलावन वहाँ ठिठक गया और कुछ सोचकर बाबू से कहा, “तुम दोनों यही ठहरो। मैं सरकार को खबर कर आता हूँ।”

“अरे भाई, बात क्या है, तुम्हें कुछ नहीं मालूम है ? सच बतलाना खेलावन।” बाबू ने खेलावन को रोककर पूछा। मगर खेलावन हमलोगों को बिना कोई जवाब दिए झटककर चला गया। मैं भी कुछ नहीं समझ पा रहा था। बाबू कभी दालान की ओर नजर घुमाते, कभी इमली के पेड़ के इर्द-गिर्द देखते और कभी बकर-बकर मेरा मुँह निहार रहे थे। मेरी कमर में ढाई गज की धोती थी और बाबू की कमर में चरखदे का कलकतिया अँगोछा था। ऊपर से वे कबल लपेटे हुए थे। मैं कुरता नहीं पहने था। कमर से ऊपर नंगा, मगर सिर के बड़े-बड़े बाल एक मैले गमछे से समेटकर छिपाये हुए थे। इसी समय अछैबरा सामने से गुजरता हुआ दीख पड़ा। उसने हम दोनों को एक बार फिरकर देखा और भूसे की बखार की ओर चल दिया।

तभी हमने देखा, हवेली के दरवाजे की आंर से बच्चा बाबू निकले और इसी दालान की ओर आने लगे। इस वक्त उनके पैरों में चाँदी की खूँटी लगी खड़ाऊँ थी। आधी धोती कमर में थी, आधी धोती कंधे पर। ढीली जनेऊ ठेहुने तक लटक रही थी। हम दोनों ने खूब झुक-झुककर उनको सलाम किया। हमलोगों को देखते ही उनकी आँखें चढ़ गईं।

“क्या है रे मगडुआ, तू बीमार है रे बेटीचोद ?” छोटे सरकार ने धूरकर पूछा।

“जी, सरकार ! बुखार से देह टूट गई है।” बाबू बोले।

“हबड़ा की कमाई चूक गई या अभी है गरमी ?”

“सरकार, यहाँ से जाकर महीने रोज भी नीरोग न रहा। भागकर फिर आपलोगों की सरन में आना पड़ा।”

“बुखार है या जाड़ा भी लगता है ?” बच्चा बाबू ने पृछा ।

“जाड़ा और बुखार दोनो तामल-तुल है माई-बाप !”

इसी बीच खेलावन आकर बच्चा बाबू के पीछे खड़ा हो गया । बच्चा बाबू ने गरजकर पुकारा, खेलावना ?”

“हुकूम मालिक !”

“अछैबरा को बुलाओ ।”

खेलावन अछैबरा को बुलाने के लिए दौड़ा ।

“अच्छा रह, तेरी दवा करा देता हूँ ।” छोटे सरकार बोले ।

“... ।” हमलोगो ने सिर नीचे कर लिया ।

“दरिआव मे नहाने से बुखार नहीं छूटता, तेरा बुखार मै छुड़वा देता हूँ ।” बोले छोटे सरकार ।

अब अछैबरा को साथ लिये खेलावन आकर हाजिर हो गया । छोटे सरकार कहने लगे, “मुझे सब कुछ मालूम है कि दरियाव-किनारे कबूतरी को जड़इया मिली थी । और, तुम्हारे लिए कहा था कि जब गगाजी में स्नान कर मछली-भात खाओगे तो दुःख दूर हो जायगा ।”

“खेलावन ?” वे गरज पडे ।

“सरकार ।” खेलावन और अछैबर दोनो उनके आगे आ गए ।

“रस्सी ले आ । मोगली लगाकर उतार साले का बुखार ।” सरकार ने कहा ।

अछैबरा लपककर आगे बढ़ा और उसने बाबू को कसकर पकड़ लिया । खेलावन दौडकर रस्सी ले आया । उसके आने में बहुत तनिक देर लगी । जैसे रस्सी पहले से ही इस काम के लिए कही रखी गई थी । मै तनिक हटकर खड़ा हो गया । रस्सी आ जाने पर एक ही लगी में अछैबरा ने बाबू को जमीन पर गिरा दिया । जमीन बहुत कड़ी थी, कंकड़ी और खपड़ी के टुकडे चारो ओर फैले थे । बाबू को जमीन पर पटक देने के बाद अछैबरा ने झुककर अपने दाहिने ठेहुने से बाबू की छाती को कसकर दबाया, फिर दोनो हाथ पकड़ लिये ।

“अब क्या देखता है, मोगली चढाओ।” बच्चा बाबू ने खेलावन से कहा।

छोटे सरकार के कहने पर खेलावन ने मूँज की दोहरी रस्ती से बाबू को मोगली चढायी। पहले रस्ती के दोनों छोर को बाबू के पैर के अँगूठे में सरकवाँसी देकर फँसाया और उसकी गोलाई को गर्दन से लगा दिया। इसके बाद उसने दोनों हाथ कसकर बाँध दिए और तब बाबू की छाती, पैर, जाँघ और पेट पर लात और धूँसे की मार पड़ने लगी।

“और मारो साले को...” बच्चा बाबू बोले।

“अब नहीं सरकार।” बाबू ने माफी माँगी।

“चुप रह साले...”

मेरा मन धबड़ाने लगा। बाबू साईत यही खेल देखने के लिए मुझे अपने साथ ले आए थे। मैंने देखा, बच्चा बाबू की आँखें लाल हो गई थीं। बाबू लोट-पोटकर मार खा रहे थे। वे ज्यो-ज्यो मार खाते जाते, उनके मुँह से थूक और लार निकलता जाता था। उनके रोने की आवाज सुनकर उस ओर से मेरी माँ भी निकल पड़ी, जिस ओर ठाकुर के माल-जाल बाँधे जाते थे, जहाँ माँ गोबर के लोइए तैयार करती होती थी। मैंने देखा, माँ के हाथ में गोबर की लोइयो से भरी टोकरी थी, वह उन्हें पाथने जा रही थी। बाबू को उसने दूर से पहचान लिया, मगर मुँह से कुछ न बोल सकी और न हमलोगों के नजदीक आने की हिम्मत हुई। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त माँ की आँखों से टप्-टप् लोर चलने लगा था और वह अपने मैले अँचरा से उन लोरों को पोछती हुई गोबर पाथने लग गई।

ऐसे ही माँ की ओर से आँखें फेरकर जब मैंने बाबू की ओर देखा, तो बाबू को अँगोछे में ही पेशाब हो रहा था। बच्चा बाबू ने खेलावन की ओर देखकर कहा, “अब ऐसे मारना छोड़ दे। साले को बेत से पीट।”

तब बाबू को छोड़कर खेलावन बेत लेने के लिए दौड़ा। इसी बीच अछैबरा ने फिर बाबू की छाती को ठेहुने से कसकर दबा दिया था और चारों ओर लोटने की वजह से बाबू की देह कई जगह छिल गई थी।

खेलावन जब लौटा, तो बेटों की मार शुरू हुई। अब बाबू और भोकर-भोकरकर रोने लगे। बच्चा बाबू को तनिक भी दया नहीं आ रही थी। बाबू भी बोल रहे थे और बेट भी बोल रही थी। बाबू कहते—आह ! बेट कहती—सट् !!

बेट की चोट हर जगह खानी पड़ी। बाबू के कान और नाक से लहू बहने लगा। अपने लहू पर जब बाबू की नजर गई, तो बोले, “अब छोड़ दीजिए सरकार, नहीं तो मर जाऊँगा।” और, तभी मुझे यह भी देखने का मौका मिला कि बाबू को उल्टी होने लगी। उन्होंने जो थोड़ी-सी खिचड़ी खायी थी, वह खिचड़ी उनकी छाती और गर्दन के चारों ओर निकलकर फैल गई। लेकिन बेटों की मार अब भी न बंद हुई। अब मुझसे यह सब नहीं देखा जा सकता था। न-जाने, क्या सोचकर माँ ने इधर देखना ही बंद कर दिया था। वह चुपचाप गोबर पाथ रही थी। मुझसे जब न रहा गया, तो उल्टे पाँव पलानी की ओर भागा।

मादो का महीना था। गंगा नदी अरार के ऊपर चढ़ी आ रही थी। लोग कह रहे थे कि गंगा मइया अमिका भवानी से भेंट करने आ रही है। पानी जब तक मंदिर को छू नहीं लेगा, नहीं हटेगा। मालूम होता था, नदी उलट जायगी। अमिका भवानी के मंदिर के तीन ओर पानी आ गया। अब पानी गाँव में भी घुसने लगा। बड़े जोरो की बाढ़ आई। आस-पास के गाँव पानी से घिर गए। कुछ गाँवों के भीतर भी पुरसा-दो-पुरसा पानी समा गया। रेलवे पर भी पानी चढ़ गया। रेलगाड़ी बहुत मुश्किल से आ-जा पा रही थी। गाँवों में नावे चलने लगीं। मालिक का मकान बहुत ऊँची जगह पर था। वहाँ पानी का अधिक खतरा नहीं था। मेरी पलानी भी इस बाढ़ में खत्म हो गई। जिस पुराने और कच्चे मकान में मालिक के माल-जाल बाँधे जाते थे, उसी मकान के एक ओसारे पर बच्चा बाबू ने हमलोगों को रहने का हुकूम दे दिया।

ओसारे के एक ही कोने में मेरे घर का सारा सामान अट गया। सामान ही क्या था ? अलमुनियम के थरिया, दो तसले, एक तसली, एक † डुब्बा और एक बाल्टी। जब मेरी पलानी में पानी समाने लगा, तब मैंने उसमें लगे हुए बॉस निकाल लिये। ओसारे के कोने से सटाकर ही, माँ ने पुआल बिछा दिया और पुआल इधर-उधर खिसककर नुकसान मत हो, इसलिए मैंने उसके तीन ओर सीधे बॉस बिछा दिये। अपनी पलानी में रहने पर मुझे सिर्फ कुट्टी काटने के लिए आना पड़ता। कुट्टी काटकर बारह-एक बजे तक लौट जाता था। मगर, अब यहाँ आने पर मैं चौबीस

घटे के लिए नौकर हो गया। माँ को भी बथान साफ करने और गोबर पाथने से फुर्सत नहीं मिलती थी। दम मारने के लिए ओसारे पर आ भी जाती, तो अदर से रामभजन की माँ आँगन का नाला साफ करवाने के लिए, बुलाकर ले जाती थी। फिर गँवर को फीचने की तो ठेकेदारी थी ही। इस काम के बदले माँ की मजदूरी में कुछ तरक्की नहीं हुई थी।

मैं पहले बतला चुका हूँ कि हराजी गाँव में भी ठाकुर के खेत थे। बाढ़ के इन्हीं दिनों में, गंदे पानी में, हराजी गाँव के बंधार में, जो यहाँ से दो-तीन मील की दूरी पर था, माल-जाल के खिलाने के लिए मसुरिया काटकर ले आना पड़ता था। खूब भोरे उठकर, कमर में हँसुआ और रस्सी बाँधकर, जो पानी में कूदता, सो फिर ऊपरी बेला आता था। रेलवर्ड पार करके आने पर, बाढ़ की हालत और भी खतरनाक दीख पड़ती थी। पानी में डोर साँप और विच्छू ‡ पँवर रहे थे। मैंने सुन रखा था कि डोर साँप काटते नहीं, इसलिए डर कम लगता था। मगर जब आम और महुआ के पेड़ की डालियों में गेहुमन सोपों को चिपका देखता, तो अकल गुम होने लगती थी। कभी किसी ओर से मरी हुई बकरी दहकर आती दीखती, कभी पारी, कभी बाछे, कभी छप्पड़, कभी सड़क और कभी चिथड़े। कभी देखता, लोग पेड़ की डाली पर बैठकर पैखाना फिर रहे हैं। तैयार हुई भदई की फसल मारी गई थी। हाथ-हाथ भर के मकई के बाल पानी में डूबकर सड़ रहे थे। ठाकुर के खेत भी डूब चुके थे। बंधार में पहुँचने पर मैं कमर से हँसुआ निकालता और डुबकी मार-मारकर मसुरिया काटने लगता था। इन दिनों हर रोज रात में देह गर्म हो जाती और किसी और काम से फुर्सत निकालकर भी देह को खुजलाना पड़ता था। बड़ी नोचनी बरती थी।

इस ओसारे पर आकर रह जाने के कारण अछैबरा भी काम करने से जी चुराने लगा था। बाढ़ का पानी नाच-नाचकर बहता। मैं मसुरिया के बोभे को आगे की ओर धकेलता हुआ आता था। पैर में जब कभी

जोक सट जाते, तो जानकर भी उन्हें पैर से नोचकर फेंकते नहीं बनता था। वजह यह थी कि मसुरिया के बोझ को तनिक भी छोड़ देने पर वह इधर-उधर बह जाता और बहता तो बहुत फुर्ती के साथ। फिर उसे पकड़ने में दूनी मिहनत लगती। मैं हाँफ जाता था। इस काम के बदले मे रामभजन की माँ मेरी दादी के हाथ पर मकई की दो रोटियाँ, जूठी तरकारी के साथ रख जाती थी। एक बार ऐसे ही मसुरिया काटने में बाये हाथ में हँसुआ लग गया। मगर बच्चा बाबू नहीं पतिआये।

“आँख रहते तू अंधो-सा काम करता है।” वे बोले।

“सरकार, कमर-भर पानी में डूबकर काटना हो, तो कोई बात नहीं। वहाँ तो भर छाती पानी है।” मैं बोला।

“हाथ का अंदाज रख। छाती भर पानी है, तो क्या? इतना भी अंदाज नहीं कि हाथ कहाँ है और हँसुआ कहाँ है?”

“अंदाज से तो काटना ही होता है माई-बाप!” मैंने कहा।

“तो फिर हाथ कैसे काट लिया? भूठ, बदमाश कही का! अंधेरे में खाने को मिले तो मुँह सूझेगा?” उन्होंने डाँटा।

बच्चा बाबू की दलील के आगे मैं चुप रह गया। वैसा ही हाथ लिये मुझे फिर मसुरिया के लिए जाना ही पड़ा। देह की नोचनी तो नहीं ही कम हुई थी, आज माथे में जोरो का दर्द भी हो आया था। तेल-नीमक रखने के लिए ठकुराइन ने बिस्कुट और तेल के डिब्बे दिये थे। मेरे माथे में सरसों का तेल ठोकने के लिए माँ और दादी छटपटाकर रह गई, मगर तेल का एक † ठोप भी न मिला। दर्द के मारे मेरी आँखों के आगे अन्हरिया छा रही थी। दादी मेरे माथे को दबा रही थी और न-जाने क्यों, माँ दौड़कर उस ओर जाती, जिधर कल-परसों की बीआई हुई गाय बँधी थी और फिर दौड़कर मेरे पास चली आती थी।

“काहे रं भगड़आ बहु, कहाँ दउड़-धुप रही है?” मेरी दादी ने माँ से पूछा।

“एक जुगुत है माँ !” माँ ने कहा ।

“क्या ? कह ।” दादी ने पूछा ।

“मगर कोई देख लेगा, तो ?”

“कह भी तो, क्या जुगुत है ?” दादी ने पूछा ।

“ललकी गाय बीआयी है न”

“हाँ ।” दादी बीच ही में बोली ।

“उसके सींग और माथे में लगाने के लिए सरसों का तेल ढकनी में रखा हुआ है ।”

“कहाँ ?”

“जहाँ ललकी गाय बँधी है । लगाकर अछैबरा ने वही रख दिया है ।”

“हूँ ।” दादी कुछ सोचने लगी ।

“उसी मे से ले आऊँ ?”

“ले आओ, मगर इधर-उधर † हुलुक लेना ।”

“अच्छा ।”

“मैं पुआल पर पड़ा-पड़ा सब सुन रहा था । माँ और दादी के विचार से मैं डर गया । मैंने दादी और माँ दोनों को देखकर कहा, “ना, छोड़ दो । किसी ने देख लिया तो, बड़ा बुरा होगा ।”

“दर्द से मर रहा है, सो अच्छा है ?” दादी ने कहा ।

“यही अच्छा है, छोड़ दो ।”

“अच्छा, रहो, मैं माँगकर ले आती हूँ ।” कहकर माँ ने अलमुनियम का कलछुल उठा लिया । मेरे माथे का दर्द बढ़ा जा रहा था । तकलीफ के मारे मैंने आँखें बंद कर लीं । दादी पहले की तरह मेरा माथा दबाती रही । आँखें बंद किए-किए ही मैं कभी-कभी अपनी देह नोच ले रहा था । माँ तेल माँगने के लिए चली गई थी । मगर माँ के जाने के दस मिनट बाद ही बथान में राममजन की माँ के गाली बकने की आवाज सुनायी पड़ी ।

“चोरिनी कहीं की ! छिनार, भतरा चिबउनी ! भला, गाय-गोहार का तेल चुरा रही है ? छिः-छिः ! चल-चल, आज तुमको बिना छिला हुआ बाँस धँसवाती हूँ । छिनार मरवनी !”

रामभजन की माँ जोर-जोर से गाली बकने लगी थी । मैं उठकर बैठ गया । मैंने अंदाज लगाया कि माँ तेल मॉगने नहीं, बथान में तेल चुराने चली गई थी । और, तभी मैंने देखा कि वह मेरी माँ को घसीटती हुई लिये आ रही है । मैं दौड़कर ओसारे पर से नीचे उतर गया । दादी ढिबरी लेकर मेरे पीछे आयी । पास पहुँचने पर रामभजन की माँ हमलोगों को भी गाली देने लगी । मेरी माँ अलमुनियम के कलछुल में सचमुच तेल चुराये हुई थी । मेरे माथे का दर्द तो और बढ़ ही गया, मेरी घबड़ाहट का कोई ठिकाना न रहा । इस समय रामभजन की माँ की आँखें किसी चुड़ैल से कम खतरनाक नहीं जान पड़ती थीं । मैंने कहा, “जाने दो रामभजन की माँ, इस बार बचा दो ।”

“हाँ बेटी । देखो न, तेल के बिना तुम्हारा भतीजा माथे के दर्द से मरा जा रहा है ।” दादी ने कहा ।

“चुप रह । चमाइन-दुसाधिन मेरी माँ-पीतिआइन बनने आई है । मैं तुम्हारी कैसी बेटी हूँ और यह चोर मंगरुआ मेरा कैसा भतीजा है ? हमलोग जिसका नीमक खाते हैं, उसके नीमक का सैरियत देते हैं । जाने कैसे दूँ, यह एक दिन की बात तो नहीं है । आज तेल चुराया, कल बर्तन चुरायेगी, परसो रुपये-पैसे चुरायेगी । आँगन-हबेली की बात है, चौथे रोज गूहना-गुडिया उठा लेगी, तो बीच में पीसे जायेंगे हमलोग दाई-नौकर । चल, यहाँ क्या खड़ी है.....” कहकर रामभजन की माँ ने मेरी माँ के गाल पर दो थप्पड़ लगा दिये । मैं कुछ बोल न सका । हाँ, दूसरे रोज ठकुराइन ने माँ को फाड़ू से पीटा और माँग में राख भरकर माफी दे दी थी । उस रोज दादी बहुत रोयी थी ।

तीन-चार महीने बाद बाढ़ का पानी सूख सका । गाँवों में बड़ा अकाल पड़ा । अलुआ-गजरा खा-खाकर लोग दिन काटने लगे । इसी लो०-पं०-७

समय सुना कि रेलवे के अफसरों ने ऐसा पता लगाया है कि दिघवारा से सठा टीसन के बीच की रेलवर्ड बाढ़ के पानी से खराब हो गयी है और जमीन भीतर से इतनी गीली हो गई है कि रेलवर्ड के धँस जाने का डर है। गंगा नदी का कटाव उत्तर की ओर बढ़ता जा रहा था। दस-पंद्रह रोज के बाद से ही ठेलागाड़ी पर रेलवे के अफसर लोग आए और आमी-हराजी के बीच से जो रेलवर्ड गई थी, उसे उत्तर की ओर ले चलने के लिए, आमी के सेवान से बहुत उत्तर की ओर बढ़कर जमीन नापने लगे। अफसर लोग कनटोप लगाए हुए थे। जमीन की नपाई शुरू हो गई। चूने से चिह्न लगाया जाने लगा, खूँटे गाड़े जाने लगे। जमीन नापने और जमीन की सीधार्ड-टेढ़ाई देखने लिए वे लोग तरह-तरह के † जतर ले आए थे। उन अफसरों और जंतरो को देखने के लिए गाँव के लड़कों की भीड़ उनके पीछे पीछे बहुत दूर तक चली जाती थी। कभी-कभी बच्चों की भीड़ में दो-एक कुत्ते भी होते थे।

गाँव में इस बात का बड़ा शोर हुआ। जिसकी जमीन ली गई है, उसे खूब रुपया मिलेगा। सुना कि ठाकुर के बेटे बच्चा बाबू से एक अफसर ने यह भी कहा है कि गाँव में जितने लोग बेकार हैं, उन सबों को रेलवे में काम दिया जायगा। लेकिन, जमीन की नपाई हो जाने के एक महीना बाद तक, फिर कुछ पता न चला। एकाएक देखा कि रेलवर्ड बनने लगी। न-जाने, कहाँ से हजारों मजदूर आ गए थे। लाइन बनाने लायक जगह छोड़कर दोनों ओर से माटी खोदी जा रही थी। सुना कि पैतालीस फुट माटी ऊपर उठ जाने के बाद उस पर रेल की पटरी बिछेगी। दूसरे रोज से तो मेरे गाँव के अलावा चारों ओर के गाँव से लोग काम करने के लिए दौड़ने लगे। काम करनेवालों की भीड़ अलग, देखनेवालों का दल अलग। तीसरे रोज जाकर, माटी ढोने के काम में मैं भी बहाल हो गया।

बाढ़ का पानी सूख जाने के बाद खेखर काका की मदद से मैंने फिर पहली ही जगह पर पलानी खड़ी कर ली थी। मगर, यह पलानी पहली

पलानी से ज्यादा कमजोर तैयार हुई थी। माटी ढोने का काम ठीके पर का था। दस-इगारह बजे तक ठाकुर के यहाँ बेगार खटकर माटी ढोने चला जाता। दो बजे तक माँ भी आती। सॉफ़ होते-होते माटी ढोने का काम बंद हो जाता। हजारो मजूर जुटे हुए थे। मजूरी के लिए कुछ पैसा तय नहीं था। टीले की ऊँचाई पर, जहाँ माटी गिरानी पड़ती थी, वहाँ ठीकेदार का आदमी बड़े-बड़े बोरो में कउड़ी भरकर बैठा रहता। एक टोकरी माटी लाकर गिराने पर वह एक मजूर को एक गडा कउड़ी देता। उसे हमलोग गमछे का भोला बनाकर उसमें बटोरते जाते थे। सॉफ़ को जब काम खतम होने लगता, तो उन कउड़ियों को वही आदमी गिनती करके हमसे वापस ले लेता था। साठ गंडा कउड़ी पर एक आना पैसा के हिसाब से मजूरी होती और उसी हिसाब को ठीकेदार का मोनसी एक कागज पर माटी ढोनेवाले के नाम से लिख लेता था। मतलब साठ टोकरी माटी दोआई की मजूरी चार पैसे होते थे। माटी की टोकरी करीब सौ-डेढ़ सौ कदम की दूरी से लाकर बीस फुट, पचीस फुट, तीस फुट ऐसै ही चालीस-बेआलिस फुट की ऊँचाई पर चढ़कर माटी गिरानी पड़ती थी। माटी से भरी टोकरी ऊपर लेकर चढ़ते समय लगता था, जैसे गर्दन अब टूटकर ही रहेगी। कभी-कभी कउड़ी देनेवाला जवान मजूरिनो से बातें करने में उलझ जाता।

“कउड़ी दो बाबू।”

“मैं जैसे कहता हूँ, वैसे मन लगाकर काम करो। पैसा तो हाथ का मैल है।” कउड़ी बाँटनेवाला जवान मजूरिन से कहता।

“कउड़ी दो बाबू।”

“चुप रह साले, क्या बक-बक करता है ?” वह हमलोगों से कहता।

“कउड़ी चाहिए सरकार, माटी गिरा दिया।”

“तू बड़ा बदमाश है। आधी-आधी टोकरी माटी ले आता है और कउड़ी के लिए छाती पर सवार हो जाता है। जा, अब से तुम्हें हर खेवे में तीन कउड़ी दूँगा। पाँच सेर माटी लेकर पटक देता है और”... वह बिगड़ता था।

इस तरह कुछ समय माटी ले आने में बीतता और कुछ समय कउड़ी माँगने में। मैंने कई बार देखा कि जिस जवान मजूरिन से कउड़ी वांटने-वाला हँसा-बोला करता था, उसके खोइंछे में जान-बूझकर चार की जगह छः कउड़ियाँ डाल देता था। और, वह मजूरिन मचलती हुई टोकरी लेकर उतरने लगती थी। जवान और बूढ़ों के अलावे छोटे-छोटे बच्चे भी माटी ढो रहे थे। मगर, उन बच्चों को सयानों से बहुत ही सस्ता रेट मिलता था।

इस भीड़ के एक ओर सत्तू और भूँजा की दूकानें बन गई थी। ऐसी दूकानों के लिए न तो कोई मकान बना था और न कोई मामूली किस्म की पलानी ही गिरी थी। दूकान करनेवालों ने मोनसी को कुछ पैसे देकर माटी के ढेलों का चबूतरा बना लिया था। वे उसी चबूतरे पर सत्तू, मिरचाई और चटनी लेकर बैठते। भूँजे की दूकान भी ऐसे ही चलने लगी। दिन में, एक-दो बजे तो सत्तू की दूकान पर ऐसी भीड़ लगती, जैसा गरमी के दिनों दूकानदार पनसाला चलाता रहा हो। पाव-पाव भर सत्तू तौलने में दूकानदार परेशान हो उठता। मगर ग्राहकों की भीड़ देखकर उसकी परेशानी दूर हो जाती थी। ऐसी भीड़ में उसके डंडी मारने का काम बड़ी सफाई के साथ हो जाता था। मैं ठाकुर के घर कुट्टी काटकर सीधे यहाँ माटी ढोने चला आता। माँ दो बजे तक माटी ढोने पहुँचती थी। तब वह साथ में मेरे लिए कुछ कच्चा-पका भोजन लिये आती। यो तो दूर-दूर के गाँवों से आए हुए मजूर सत्तू को गमछे में सानकर खा लेते थे।

मेरी हालत तो पतली थी ही, मेरी माँ के पेट में बच्चा था। पेट में बच्चे का भार लिये जब वह माटी से भरी टोकरी उठाती, तो लगता, जैसे वहाँ जमीन पर धड़ाम से गिर जाएगी। मगर बेगार लेने से न ठाकुर बाजू आनेवाले थे और न हमलोगों का पापी पेट माननेवाला था। बिस्टी पहने गाँवों के छोटे-छोटे बच्चे माटी ढोने के लिए आँखें मलते हुए बिल्कुल भोर में घर से चल पड़ते थे। सत्तू और भूँजे की दूकानों के अलावा खोमचे में चीनाबादाम और लकठो बेचनेवाले भी आते थे। उन्हें देखकर

फटी और मैली साड़ी पहने माताओं को पकड़कर वे बच्चे कहते, “माई रे, † लकठो * कीना दे ।”

“पैसे नहीं हैं, उठाओ-उठाओ । माटी उठाओ ।” माँ कहती ।

“देख माई, चीनियाबदाम बिकता है ।” लड़के बोलते ।

“उससे क्या, पैसे जो नहीं है । तू कहेगा, हाथी पर का चुक्का ला दे, तो कहाँ से लाऊँगी † सब सिंगार तो पैसे का है ।”

“एक पाई के माई, एक पाई के ।” बच्चे अपनी माँ से गिड़गिड़ाते ।

“चुप ।” और तब सट्-सट् । थपड़ों की बौछार !!

बच्चा चीखकर रह जाता । उनकी माताएँ अपने प्यारे बच्चों को तमाचे जड़कर कहतीं, “गुड़ का नफा तो चिउंटी ही खा लेगी । दमड़ी का बुलबुल, दोकरे की चोथाई । दिन भर में चार पैसे की माटी नहीं उठावेगा और कहेगा, लकठो कीना दे । चीनियाबदाम कीना दे ।” और, वे बच्चे गरीबी और भूखमरी के कारण जिनके गालों की ललाई खत्म हो चुकी थी, जिनकी आँखों के नीचे गड्ढे हो गए थे, जिनकी पुटपुरी घँस गई थीं, जिनके बाल रुखे-सूखे और गंदे थे, माटी ढोते वक्त भी बार-बार लकठो और चीनियाबदाम से भरे खोमचों की ओर ललच-ललचकर देखा करते थे । वे रोते हुए माटी ढोते और उनकी आँखों के लोर गालों से होते हुए, उनकी गर्दन पर आकर फैल जाते थे ।

हाँ, बच्चा बाबू ने बाबू को जी भरकर पिटवाया । पीछे पता लगा था कि अछैबरा ने खुद बच्चा बाबू से सारी बातें कह दी थीं । दरियाव-किनारे जड़इया महारानी से भेंट होने की बात को ठाकुर और मोनसीजा पतिया गए, मगर बच्चा बाबू शहर में रहकर बहुत अंगरेजी पढ़ आए थे । सो, वे नहीं पतिआये । उनके दरवाजे पर से आकर बाबू चार रोज तक कँहरते रहे । अच्छी तरह चल-फिर नहीं सकते थे । कान और नाक से खून का आना सातवे रोज बंद हुआ । मैं कुट्टी काटने रोज जाता था । माँ भी गोबर पाथने से इन्कार नहीं कर सकती थी । दसवें रोज बाबू जरा

† एक प्रकार की मस्ती मिठाई । * खरीदवा दो ।

टनमनाये। खेखर काका भी मेरे यहाँ आए थे। उनसे बाबू ने कहा,
“अब इस गाँव में रहना अकारण है, खेखर भाई !”

“दूसरे गाँव में जाकर क्या करोगे, पैसेवाले का हर जगह राज है।
सुराज, सुराज हल्ला हो रहा है। सुना है, जब गाँधी बाबा का राज
हो जायगा, तब जिम्दारी खतम हो जायगी। तब की बात दूसरी होगी।”
बोले खेखर काका।

“सो तो ठीक कहते हो खेखर भाई !”

“अब रामजी की दया से मगरूआ भी कमाने-खाने लायक हो चला
है। अभी कलकत्ते चले जाओ और जोगार में लगे रहो। जहाँ मंगरूआ
के लायक कोई काम नजर आवे कि बस चिट्ठी भेजकर इसे बुला लेना।”
खेखर काका ने सलाह दी।

“तुम ठीक कहते हो।” तब बाबू बोले।

बाबू दूसरे रोज रात की गाड़ी से कलकत्ते चले गए। तब से उनकी
चार-पाँच चिट्ठियाँ आईं। दस-दस रुपए करके तीन बार में अब तक
तीस रुपए भेज चुके थे। अपनी चिट्ठियों में गाँव पर आने की कोई चर्चा
नहीं की थी। तब के जमाने में अपनी ओर से चिट्ठी में माँ अपने पेट में
बच्चा रहन की बात नहीं लिखवा सकती थी। लिखनेवाला तो खुद भी
हँसता, राम राम ! दादी की आँखें धीरे-धीरे जवाब दे रही थीं। हाथ
काँपने लगे थे। इसलिए माटी ढोने का काम उससे नहीं हो सकता था।
रेलवे की माटी जब पैतालीस फुट ऊपर चढ़ गई, तो उसपर लोहे की
पटरियाँ बिछाई जाने लगीं और हमारे सरीखे माटी ढोनेवाले हजारों लोग
चौबीस घंटे के अंदर बिना रोजी के हो गए। इनमें बहुत ऐसे भी थे जिनके
पास दो, चार और दस कट्ठा खेत भी था। मगर अब तो वे खेत लाइन
के नीचे दब गए थे। जब रेल की पटरियाँ बिछ गई और पटरियों के
दोनों ओर गिट्टी और पत्थर गिराये जाने लगे, तब उन पटरियों पर
पत्थर और गिट्टी गिरानेवाली मुंडा मालगाड़ी चलने लगी। हमलोग
उस वक्त ऐसी मालगाड़ी को ‘बालिश टेन’ कहते थे।

अब जिनलोगो का खेत रेलवे ने ले लिया था, उनलोगो को रेलवे की ओर से रुपए मिलने की बारी आयी। हराजी गाँव के पच्छिम ओर के बगीचे में अफसरो का सामियाना गड़ गया। पंद्रह-बीस सामियाने थे। दो सामियाने में बंदूकवाले सिपाही भी थे। ऐसी बंदूक मैंने यहाँ पहली बार देखी। गाँव में एक ठाकुर के घर ही बंदूक थी। मगर वह छोटी थी और दूसरे किस्म की। इन बंदूकों के मुँह पर तो बड़ा-सा छूरा भी लगा था। सुना कि सरकार ने खेत के झगड़े को सुलझाने और सरकारी कागज को पक्का कराने के लिए एक बड़ा अफसर भी भेज दिया है। उस अफसर को गँवार लोग 'हाकिम' और बाबू लोग 'डिप्टी' कहा करते थे। सामियाने में दिन भर खेतवालों की भीड़ लगी होती। गमछे में लोग खतियान और दास्तावेज बाँधे पहुँचते थे। तमाशा देखने के लिए मैं भी उस भीड़ में शामिल हो लेता था। हाकिम कुर्सी पर बैठते थे। उनके आस-पास खजांची बाबू और बहुत-से छोटे-छोटे अफसर होते। हाकिम का चेहरा-मोहरा देखते ही बनता था। लोग उनके पास डर के मारे खँखरते तक नहीं थे। उनके आगे चौड़ी टेबुल पर नोटो से भरा बक्स रखा रहता था। और पास ही दो सिपाही बंदूक लिये खड़े रहते थे। सिपाही जिस सामियाने में रहते थे, उनमें तो बहुत-सी बंदूकें थीं और वहाँ भी एक सिपाही बंदूक ताने खड़ा रहता था। उतने रुपए देखकर मेरे मन में बड़ा अचरज होता कि बाप रे, इतने रुपए कहाँ से आते हैं। मैं उस हाकिम को देवता ही समझ रहा था। गाँव के बहुत-से लड़के भी बंदूक देखने जाते थे।

एक दिन की बात है। मैं यही तमाशा देखकर हराजी से लौट रहा था। मगर, गाँव के बाहर-बाहर नई लाइन देखता हुआ आ रहा था। इसी ओर मेरा तीन कट्टा खेत था, जिसे बच्चा बाबू ने दिलवाया था। दादा के खून की कीमत। जान देने की यादगारी! बाबू तो कलकत्ते भाग गए थे। यह खेत ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। इधर आकर मैंने देखा कि वह खेत लाइन के घेरे में आ गया है। उसके डेरे पर पत्थर का खभा गाड़ा हुआ है और वह खेत पोरसा भर गहरा बना दिया गया है।

इस ओर की लाइन में इस खेत से भी माटी ली गई थी। घर आकर मैंने दादी से यह बात कही।

“सच रे मंगरू, तूने देखा है ?” माँ ने पूछा।

“हाँ।” मैं बोला।

“तब ?”

“तब क्या, उसका दाम हमलोगों को मिलेगा।” मैंने कहा।

“तुमने किसी से पूछा है ?” दादी ने पूछा।

“हाँ, एक दोस्त से पूछा है। जिसका खेत है, रुपए उसे ही मिलेंगे।” मैंने बतलाया।

अब मुझे एक बहन भी हो चुकी थी। अभी वह एक महीने की थी। इसी समय पटने से मामू आए। माँ ने जब मेरी बहन को उनकी गोदी में दिया, तो मामू ने मेरी बहन के हाथ में एक दुअन्नड़ी पकड़ा दी। उस दुअन्नड़ी को माँ ने रख लिया। बहन दुअन्नड़ी कैसे सभालती ? मामू ने यह दुअन्नड़ी मुँहदेखाई में दी थी। मैंने मामू से बतला दिया कि मेरा तीन कट्टा खेत रेलवर्ड में पड़ा है—दादा वाला।

“रुपये मिल गए ?” मामू ने पूछा।

“नहीं।” मैंने कहा।

“तो ?” मामू ने पूछा। मैं चुप रहा।

हमलोग मामू-भगीना पलानी के बाहर बैठकर बातें कर रहे थे कि इसी बीच खेखर काका आ गए। मामू ने खेखर काका को देखकर ‘जय राम जी की’ किया। काका टाट पर आकर बैठ गए। खेत की बात चल पड़ी।

“खेत तो तुम्हारा पड़ा ही है।” खेखर काका बोले।

“रुपए तो मिलेंगे न पाहुन ?” मामू ने खेखर काका से पूछा।

“क्यों नहीं, तीन कट्टा है। तीन बीस से क्या कम मिलेगा ?” खेखर काका बोले।

सलाह हुई कि भुलन बावाजी को लेकर हाकिम के पास चला जाए । मगर, भुलन बावाजी ने चलने से साफ इन्कार कर दिया । पूछा, “तुम्हारे पास सबूत के लिए कुछ कागज-पत्तर है ?”

“नहीं ।” मैंने कहा ।

“फिर कैसे चलोगे ?”

“यह तो सब कोई जानता है कि तीन कट्ठा खेत बच्चा बाबू ने भगड़ू पाहुन को दिया था ।” मामू बोले ।

“उससे क्या ? लिखतंग के आगे बकतग कुछ काम नहीं करेगा ।” भुलन बावाजी बोले ।

“दो-चार आदमी गोआही दे, तब ?” खेखर काका ने पूछा ।

“बच्चा बाबू के बरखिलाफ मे गवाही कौन देगा ?” भुलन बावाजी ने पूछा ।

उनकी यह बात सुनकर हमलोग चुप हो गए । तब यह हुआ कि बच्चा बाबू से ही यह काम होगा । उन्हीं से चलकर कहा जाए । मगर बच्चा बाबू से चलकर इस बात को कहेगा कौन ? इसके लिए न तो मामू तैयार हुए और न खेखर काका ।

“आप ही चलिए न बावाजी । हमलोगो से तो कहते न बनेगा ।” मामू ने कहा ।

“ठीक है, मैं तुम्हारा काम कर दूँगा । मगर, मेरा भी काम कर दो ।”

“इसके लिए तो हरदम तैयार है, सरकार !” मामू बोले ।

“डीह पर का सतकठवा खेत कोर-बना दो । बच्चा बाबू को तो जहाँ दो बार कसकर समझाया कि फिर वे दाँत नहीं हिलायेंगे ।”

“अच्छा सरकार, मामू-भगीना मिलकर दो रोज मे कर देगे ।” मामू ने कहा ।

“तो मैं भी चलकर कह-सुन दूँगा ।” बावाजी ने कहा ।

उस रोज इतनी ही बात करके हमलोग भुलन बावाजी के यहाँ से लौट आए । दूसरे रोज उनके यहाँ से कुदारी लेकर मैं मामू के साथ

डीह पर का खेत कोरने चला गया। भुलन बाबाजी बड़े चालाक थे। एकबार गाँव में दारोगा आया था, तो उन्होंने उससे अंग्रेजी और हिंदी में बातें की थीं और दारोगा के पीछे-पीछे दिन भर टहले थे। दारोगा के साथ टहलने के लिए तो बहुत हिम्मत चाहिए न ! उन दिनों तो लोग सिपाही से भी बोलने में भी थर-थर काँपते थे।

डीह पर के खेत की माटी पत्थर की तरह कड़ी थी। तीन रोज तक दिन-रात खटने के बाद खेत तैयार हो गया। मामू को कुदारी चलाते-चलाते हाथ पर फोका उठ आया। मिहनती तो थे, मगर कुदाल चलाने की आदत नहीं थी। कुदारी चलाने के लिए पहले समूचे खेत को पानी से पटाना पड़ा था। भुलन बाबाजी खेत देखकर खुश हो गए।

“अब तो चलियेगा देवता ?” मामू ने पूछा।

“हाँ, चलूँगा क्यों नहीं ?”

“आपही लोगो का आसरा है। देखता हूँ कि भगीना जवान हो गया है। ब्याह की उमर बीतती जा रही है। दो-एक बरस और न हुआ तो फिर आगे न होगा। कुदुम कहेगा कि क्या बात है, अठारह-बीस बरस की उमर तक लड़का कुँवारा रह गया।” मामू बोले।

“हाँ, सो है। तुमलोगो में बहुत छुटपन में ही ब्याह हो जाता है।

“जी सरकार, मेरा ब्याह तब हुआ था, जब मैं अपने-आप भगई भी नहीं पहन सकता था।”

“ठीक है। कल दोपहर में मेरे यहाँ आओ, चलूँगा।”

भूठ क्यों बोलूँ ? अपने ब्याह की चर्चा सुनकर मुझे भी बेहद खुशी हुई थी। सॉम को खेखर काका से बातें हो गईं। वे भी भुलन बाबाजी के साथ बच्चा बाबू के यहाँ चलने के लिए तैयार हो गए। दूसरे रोज, ठीक दोपहर में हमलोग भुलन बाबाजी के साथ ठाकुर के दरवाजे पर पहुँचे। बड़े ठाकुर नहीं थे। निर्मली में उनकी धान की खेती होती थी। वे वहीं चले गए थे।

मैं, मामू और खेखर काका इमली के पेड़ के पास बैठ गए। उसी इमली के पेड़ के पास, जिसके नीचे बाबू पीटे गए थे। भुलन बावाजी लपककर बच्चा बाबू की बैठकी की ओर बढ़े। कहा, “इशारा करूँगा तो तुमलोग चले आना।” बहुत थोड़ी देर राह देखनी पड़ी। खेलावन ने आकर हमलोगों से कहा, “जाओ, मालिक बुला रहे हैं।”

बैठकी उत्तर की ओर थी, बहुत ऊँची। ऊपर चढ़ने के लिए चार सीढ़ियाँ थीं। जाकर हमलोगों ने झुक-झुककर बच्चा बाबू को सलाम किया और ओटा से नीचे ही खड़े हो गए। भुलन बावाजी ने हमलोगों के सामने सारी बातें समझाकर बच्चा बाबू से कहीं। बच्चा बाबू खिसिआये नहीं। वे बड़े प्रसन्न होकर बोले, “मगरूआ का व्याह हो जाए, तो मुझे भी खुशी ही होगी। लेकिन, आप तो जानते हैं बावाजी कि अभी उस खेत के रुपए नहीं मिले हैं, हाँ मिलेंगे जरूर। जब मैंने वह खेत दे दिया, तो उस खेत के रुपए देने में मैं क्यों आगा-पीछा करूँगा ? व्याह का काम शुरू भी तो हो।”

“बस, बस, सरकार की ही दी हुई रोटी तो हमलोग खा रहे हैं।” इतना कहकर मामू और खेखर काका ने अहसान जाहिर किया। पीछे उनको सलाम करके खेखर काका और मामू चले आए और मैं फुलवारी में पानी पटाने के लिए पकड़ा गया। मुझे बथान से छुतिहर घइला लेकर गंगाजी चला जाना पड़ा। हाँ, जब भुलन बावाजी लौटने लगे, तो उनको बच्चा बाबू ने एक सेर बसमत्ती चाउर, पाव भर मूँग की दाल, हरदी, दूब और नीमक छूकर दिया था। छुतिहर घइला लेकर पानी के लिए जब मैं गंगाजी की ओर चला, तो मैं यही सोच रहा था कि व्याह होने पर जब मेरी औरत मेरे माथे में इतने बड़े-बड़े बाल देखेगी, तो क्या पूछेगी, “तुम नाच में रहते हो न ?”

ब्रज्या बाबू से रुपए के बारे में बात हो लेने के दूसरे दिन मामू फकुली चले गए। फकुली उनका अपना घर था। मेरी माँ की नइहर। जाते वक्त खेखर काका से कह गए कि वे लड़की पटियाने जा रहे हैं। भुलन बाबाजी से एक चिट्ठी लिखवाकर बाबू को बुलाया गया। तीसरे रोज मामू लड़की के बाप को लेकर आए। मैं करीब बारह बजे मालिक के यहाँ से कुड़ी काटकर लौट रहा था। अपनी पलानी में पहुँचने के पहले खेखर काका मिल गए। उन्होंने मुझे बुलाया, “अरे मंगरुआ ?”

“क्या है, खेखर काका।”

“सुन, सुन। इधर आ।”

मैं खेखर काका के पास चला आया। वे बोले, “मालिक के यहाँ से आ रहा है न, ऐसे घर मत जा।”

“क्या बात है ?”

“फकुली से तेरे मामू कुड़म ले आए हैं। यहीं ठहरकर जरा मुँह-कान पोंछ ले। केश में ककहा कर ले और टिपुआ का एक पुराना कुरता घर में पड़ा है। जा, उसकी धरवाली से माँग कर पहन ले।” खेखर काका बोले।

टीपू भाई खेखर काका के बेटा थे। मैं उनकी औरत को ‘भउजी’ कहता था। खेखर काका की बात सुनकर मुझे खुशी तो हुई, मगर मैं उनके सामने लजा भी गया। इसलिए मैं चुपचाप खड़ा उनका मुँह देखता रहा और जान-बूझकर पूछा, “कैसा कुड़म ले आए हैं मामू, तुम्हें कुछ मालूम है काका ?”

“धत् ससुरा, तेरी माँ के माथ बान्हो ! अपने बाप से ही अंठियाता है ! अरे, तेरा अगुआ आया है । जा जा, जरा बन-सोन ले । देर मत करना । तू आ पीछे से, मैं तुम्हारे ही यहाँ चलता हूँ ।” वे बोले ।

“अच्छा ।”

खेखर काका की ऐसी बातें सुनकर मुझे हँसी आ गई । मैं लजाता हुआ खेखर काका के घर में घुसा । टीपू भाई की औरत को देखा, वह बर्तन माँज रही थी । वह मेरे कुछ भी बोलने के पहले मुस्कुरा पड़ी ।

“भउजी ?” मैंने कहा ।

“अब भला तुम भउजी को पूछोगे मंगरू ?”

“क्यों ?”

“मुझसे ही छवड़खेल मत खेलो मंगरू । मुझे तो सब मालूम है । मेरी गोतनी आ रही है न ! फकुली की बेटा होगी । सुना है, वहाँ आम का बगइचा है । आम के बगइचे में खेली-खायी होगी बेचारी ।” भउजी बोली । बातें करने में वह बहुत मुँहफट्ट थी । हाँ, उसके दिल में स्निक भी काला नहीं रहता था । जो कुछ कहना होता था, मुँह पर कह दिया करती । मुझे अपने ही देवर की तरह मानती थी । टीपू भाई कानपुर में नौकरी करते थे । छुट्टी में कभी-कभी आते, तो मुझे खूब ताड़ी पिलाते थे । बीड़ी पीना मैंने उन्हीं से सीखा । जब कभी मैं उनसे कहता, “जरा एक बीड़ी निकालो टीपू भाई ।”

“मेरे पास बीड़ी नहीं, खाकी सिगरेट है ।” वे कहते और कुर्ते की जेब से झट एक बीड़ी निकालकर मुझे दे देते थे ।

टीपू भाई बहू भउजी को सिर्फ एक लड़का हुआ था । जो पैदा होने के एक महीना बाद ही मर गया । तब से अब तक कोई बच्चा नहीं हुआ । देह-हाथ से अच्छा पोठगर थी । गले में चाँदी की हँसुली थी । दोनों कलाई में पहुँची । उसपर भी आध-आध बाँह लहठी पहनती थी । टीपू भाई कानपुर से आते, तो खूब सँवारकर जूड़े बाँधती और एकदम टहकार सेनुर से माँग भरती थी ।

“जरा एक लोटा पानी देना भउजी ।” मैंने टीपू-बहू भउजी से कहा ।

“क्या करोगे, पियोगे ?”

“ना, हाथ-मुँह धोऊँगा ।”

“अच्छा, ठहरो ।” कहकर भउजी ने एक लोटा पानी मेरे आगे रख दिया । मेरी कमर में सिफ एक अढ़ाई गज की मैली धोती थी । देह में गजी या कुरता कुछ नहीं । पानी से मैंने हाथ-मुँह धोया और सिर से गमछा उतारकर मुँह-कान पोछ लिये । इसके बाद मैंने भउजी से कहा, “जरा ककहा देना ।”

भउजी के पास एक लकड़ी का ककहा था । उसने ककहा लाकर मेरे हाथ में रख दिया और बोली, “इससे मैं भी केश झाड़ती हूँ । यह ककहा मेरी नइहर का है । तुम्हारे भइया से कई बार कहा कि परदेस की X चिन्हाँसी एक ककहा लेते आओगे । मगर वे कहाँ ले आए ।”

भउजी ने मुझे कुरता दे दिया । कुरता पहनकर मैं अपनी पलानी के दरवाजे पर आ गया । देखा, बाहर मामू के साथ खेखर काका बैठे हैं । एक और अघेड़ आदमी बैठा हुआ था, जिसे देखकर मैंने अंदाज लगाया कि वही कुदुम है ।

“आओ, बैठो मंगरू ।” मुझे देखकर खेखर काका बोले ।

मैं उनलोगों के पास जाकर बैठ गया, मगर टाट पर नहीं, नीचे ही जमीन पर । मामू बोले, “बैठ न यहाँ, टाट पर । नीचे क्यों बैठता है ? इतनी देर क्या हाकिम के पास ही रह गया ?”

“बड़ा लेहाजु है, हमलोगों के साथ बैठते तो इसकी नानी मरती है ।” कुदुम की ओर देखकर खेखर काका ने कहा ।

“हाकिम के यहाँ ? कुदुम को अचरज हुआ ।

“हाँ, हाकिम के यहाँ । खेत कादाम मिलने वाला है न ।” मामू बोले ।

“कितना खेत है ?” कुदुम ने पूछा ।

“यही दो-अढ़ाई बीगहा है ? खेखर काका ने जवाब दिया ।

मैं अब तक खिसककर टाट पर आ गया था। खेखर-काका का जवाब सुनकर मैंने देखा, कुटुम बहुत खुश हो गया। उसने कहा, “तब तो अच्छा दाम मिलेगा।”

“हाँ, आज जिसके पास दो कट्टे खेत है, वही आदमी है।” खेखर काका बोले।

“इसका जो दाम मिलेगा, उससे दूसरा खेत ले लिया जायगा।” मामू बोले।

“ठीक है, घर में रहने से रुपए खर्च हो जाते हैं। पैसे को तो हाथ-पैर होते हैं।” कुटुम बोला।

“अच्छा मंगरु, अब तुम जाओ। खाओ-पियो।” मामू बोले।

मैं अब पलानी में आ गया। न जाने, दादी कहाँ से चावल ले आयी थी। उसने खाने के लिए मेरे आगे दाल, भात और टमाटर की चटनी रख दी। मैंने पूछा, “यह सब कहाँ से ले आयी?”

“तेरे मामू ने पैसे दिए थे। कुटुम को जो खिलाना था।”

“यह कुटुम कौन है?”

“लड़की का बाप।” दादी बोली।

मैं इस बार फिर लजा गया था। भोजन करके मैं पलानी से बाहर नहीं निकला। भीतर ही सोने को तैयारी करने लगा। नीद नहीं आ रही थी। मन में हुदबुदी लगी थी, मैं लड़की के बाप को पसंद आया या नहीं। तभी खेखर काका ने पुकारा, “मंगरुआ?”

“आँयें -।” मैं अंदर से बोला।

“इधर आ रे, भीतर क्या बैठ गया।” मामू की आवाज आई। बाहर निकलते वक्त दादी बोली, “लड़की का बाप कुछ हाथ में दे, तो पवलम्गी कर लेना।” मैंने जल्दबाजी में कहा था, “अच्छा।”

“क्या है मामू?” बाहर आकर मैंने मामू से पूछा।

“इधर आ, बैठ।” खेखर काका बोले।

मैं आगे बढ़कर टाट के एक कोने बैठ गया। मामू बोले, “पुरुब की ओर मुँह करके बैठ।” मैं पूरब की ओर बैठ गया। खेखर काका ने तब कुटुम से कहा, “बस, लड़का छेक दो। अमिका भवानी चाहेंगी तो दो-चार रोज मैं ऋगडू भाई भी आ जायेंगे। पुरोहित गाँव के हैं। लगन-पाती दिखला लिया जायगा।”

“हाँ, सुना है कि भुलन बावाजी अच्छा लगन देखते हैं।” मामू बोले। तब मैं जरा और सम्हलकर बैठ रहा। अब मेरे होनेवाले ससुर मेरे सामने आकर बैठ गए और मेरे हाथ में एक चाँदी का रुपया रख दिया। दादी ने पहले ही सिखला दिया था। झुककर मैंने उनके पाँव छू लिये। इसके बाद वहाँ से उठकर मैं फिर पलानी में चला आया और जरा आड़ में दबककर इनलोगों की बातें सुनने लगा।

“तो बात पक्की रही जी, खेखर महारा !” मेरे ससुर बोले।

“एक दम।”

“लड़के के बाप तो तैयार हो जायेंगे न ?”

“कौन ऋगडू न ? ऋगडू तैयार होनेवाले नहीं होते, तो उनके पीछे मैं तुमसे ब्याह की बातचीत ही न करता। और इसमें तैयार होने या न होने की कौन-सी बात है ? उनका बेटा है, तुम्हारी बेटी है। घाटे में कौन है, भला ?” मामू बोले।

“सो ही मैंने पूछ लिया।” मेरे ससुर बोले।

“ना ना, तुमने अब लड़का छेक दिया। अब लड़का तुम्हारा हो गया।” खेखर काका ने कहा।

“लड़का तो तुम्हें पसंद है न ?” मामू ने पूछा।

“पसंद न होता, तो छेकता भला !”

कुटुम को मेरी दादी खिला चुकी थी। अब उन्हें फकुली लौटना था। सो, खेखर काका और मामू उन्हें अपने साथ आमी बाजार तक पहुँचा आए। वहाँ से वे फिर अकेले फकुली लौट गए।

अब हबड़ा से बाबू के आने की राह देखी जा रही थी। कुंडुम के फकुली लौट जाने के थोड़ी देर बाद ही डाकखाने के मोनसीजी एक चिट्ठी दे गए। उस चिट्ठी को लेकर हमलोग भुलन बावाजी के पास दौड़े। चिट्ठी कलकत्ते से आयी थी। अब नाच में रहने की वजह से मैं भी कुछ पढ़ गया था। नाच का सट्टा होता, तो सिर्फ नाच थोड़े ही होता था ? उसमें हमलोग भिखारी ठाकुर का लिखा हुआ नाटक भी खेलते थे। और, नाटक याद करने के लिए मुझे हिंदी की जानकारी करनी पड़ी थी। तभी तो मैं 'सुरवा नाटक', 'गंगा नेहान', 'बिदेसिया' और 'नहछू का ब्याह' को बिलकुल रट गया था। कलकत्ते से जो यह चिट्ठी आयी थी, बहुत ही घसीट हरफ में लिखी हुई थी, इसीलिए मैं नहीं पढ़ सका। भुलन बावाजी को भी उसे पढ़ने में कसरत करनी पड़ी थी। बाबू ने लिखा था कि वे दो-तीन रोज में आ रहे हैं। साथ में जितना बन पड़ेगा, नगदनरायन भी लेते आवेंगे। ब्याह का दिन ठीक कर दिया जाय।

भुलन बावाजी को एक दुअत्री देकर मामू ने पतरा दिखलवाया। ब्याह का दिन आज से पंद्रह रोज आगे का निकला। मामू फकुली चले गए। उनके चले जाने के सात रोज बाद बाबू हबड़ा से आए। आते कैसे नहीं ? भुलन बावाजी ने खूब रच-रचकर चिट्ठी लिखी थी। अपनी जलमभूमि भी कोई छोड़ता है ? जिम्दार-भालिक का काम ही है—डाँटने-मारने का। बेटे के ब्याह में न आओगे, तो भला कब आओगे ?

मेरे ब्याह में कोई अधिक तैयारी नहीं हुई। बाबू अपने साथ कुल पंद्रह रुपए ले आए थे। घर में अब फिर सवाल उठा कि बच्चा बाबू से रुपया माँगा जाय। मगर, इस काम को करे कौन ? बाबू उनको सिर्फ सलाम करके लौट आए। रुपये माँगने की हिम्मत न पड़ी। लौटकर उन्होंने दादी से कहा, "माँ, तुम एक काम करो।"

"क्या ?" दादी ने पूछा।

"तुम ठकुराइन से जाकर रुपए के लिए कहो, वे बच्चा बाबू से कहेगी।"

लो०-पं०—८

दादी उस बात पर राजी हो गई। माँ जब गोबर पाथने के लिए ठाकुर के यहाँ जाने लगी, तो दादी भी उसके साथ गई। लेकिन लौटी, तो उसके चेहरे पर बड़ी उदासी थी। बाबू ने पूछा, “क्या हुआ ?”

“कुछ नहीं।”

“बच्चा बाबू ने क्या कहा ?”

“वे खीसिया गए। ठकुराइन ने तो कहा था कि बेचारी के पोते का ब्याह है, दस रुपए भी दे दो।”

“तब ?” बाबू ने पूछा।

“बच्चा बाबू खीसियाकर बोले, तीन बीस रुपए के लिए तो छाती फट रही है और मेरी जमीन पर दस पुसुत से रह रहा है, उसका कोई खयाल नहीं। रुपए के लिए इतनी आँख लग गई है तो कहो, मैं दे देता हूँ। लेकिन, आज ही और अभी वहाँ से अपनी पलानी उखाड़ कर किसी दूसरे गाँव में चला जाए। मुझे ऐसे रइयत को बसाने की कोई गरज नहीं है।”

“तुमने क्या कहा ?” बाबू ने पूछा।

“मैं क्या कहती, चली आयी।”

“अच्छा किया।” कहकर बाबू ने सब्र कर लिया।

इस ब्याह में खेखर काका ने तीन रुपए की मदद की। नए कपड़े सिर्फ मेरे लिए बने। एक धोती, एक कुरता, एक पनही और एक सादा अँगोछा। मेरी जनाना को देने के लिए एक साड़ी खरीदकर रँग दी गई। कुल मिलाकर हमलोग दस जने बारात गए। बारात पैदल ही गई और एक पीपल के पेड़ के नीचे ठहरी। बारात जब दरवाजे पर लगी, तो एक ढोल बजा और एक तुतुही। दो लालटेन जल रहे थे। खेखर काका के हाथ में * चोरबत्ती थी। टीपू भाई यह बत्ती कानपुर से ले आए थे। उसी रात को चार पंच के बीच में मैंने अपनी जनाना के माँग में सेनुर लगाया। लड़की वालों ने रात में हमलोगों को † दोस्ती खिलायी।

* टॉर्च। † तेल लगी रोटी।

रात में हमलोग पीपल के पेड़ के नीचे ही सो रहे । आधी रात हो गई, तो मैं अंदर लड़कीवाले की झोंपड़ी में बुला लिया गया । भोर तक मैं वहीं रहा । फिर बारात के और लोग अलग से आमी लौट आए और मैं अपनी जनाना को लेकर उसके साथ अकेला और पैदल अपने घर लौटा । मुझे ससुराल में ही पता लग गया था । वह 'सनीचरी' नाम से पुकारी जाती थी । मैं बगीचे-बगीचे उसको लिया ला रहा था । आसपास से भैसे लेकर गुजरनेवाले चरवाहे और घसगड़े मेरी जनाना को देखते, तो दूसरी ओर मुँह घुमाकर ऊँची आवाज में कहते—'जियऽ राजा, बनल रह धन !' मैं सनीचरी से रास्ते में कुछ पूछता, तो जवाब देने के बदले वह हाथ भर का घूँघट तान लेती थी । उसे लेकर घर आने के चार-पाँच रोज बाद तक मैं मालिक के यहाँ कुट्टी काटने नहीं गया । मेरे बदले में बाबू कुट्टी काट आते थे । चार-पाँच रोज पीली धोती पहने मैं पूरा दुलहा बना रहा ।

इसके दो रोज बाद बाबू फिर हबड़ा चले गए । मैं फिर मालिक के यहाँ कुट्टी काटने के लिए जाने लगा । बाबू हबड़ा गए, तो फिर करीब एक महीने के बाद दस रुपए भेजे और पीछे एक उनकी चिट्ठी भी आयी । उसमें लिखा हुआ था कि हबड़ा से वे चटगाँव जा रहे हैं । वहाँ ज्यादा मजूरी मिलती है । काम का जब पक्कान्यक्की हो जाएगा, तब फिर वहाँ से चिट्ठी भेजेगे । लेकिन, कुछ महीने के बाद ही यह खबर बड़े जोर से फैलने लगी कि जरमन का राजा विलायत पर चढ़ाई कर रहा है । सुना कि उसके पास बड़े-बड़े बमगोले हैं । सामने-सामनी लड़ाई का जमाना गया । उसी समय पटने से हिंदी में एक अखबार निकलने लगा । मुलन बावाजी मँगाने लगे थे । एक अखबार का दाम एक पैसा था । उसमें लड़ाई की खबरें छपी होती थीं । मुलन बावाजी से गाँव के बहुत लोग लड़ाई का समाचार पूछने जाते । तब बमगोला गिरने की बात सुनकर अचरज भी होता और डर भी लगता था । मुलन बावाजी कहते थे कि विलायत पर कब्जा कर लेने के बाद जरमन हिंदुस्तान पर

चढ़ाई करेगा। और, उसके बमगोले में इतनी ताकत थी कि भुलन बावाजी ने कहा, “एक बमगोला गिरा देगा तो पचास गाँव जल कर राख हो जायगा, रूख-बीरिछ, आदमी, गाय-गोरू सब कुछ।”

तभी से गल्ले का भाव चढ़ने लगा। चावल महँगा होने लगा। दाल की महँगी हो गई। मकई का बाजार चढ़ गया, कपड़े बेचने में बजाज अकड़ कर बातें करने लगा। दो पाई लबनी से ताड़ी सात पाई लबनी हो गई। तीन पाई बडिल बीड़ी बिकने लगी। दियासलाई पैसे-पैसे मिलती थी, सो दो-दो पैसे मिलने लगी। तभी हल्ला हुआ कि लोग पलटन में भरती किये जा रहे हैं। किरासन तेल भी महँगा हो गया। मेरे घर आकर पंद्रह रोज रहने के बाद ही सनीचरी नइहर चली गई। फिर चार महीने के बाद मैं जाकर लिवा लाया। इसकी भी वजह थी। चावल या मकई मिलना हमलोगों के लिए सपना हो गया। दादी को सूकता नहीं था। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने, गँरतर फोंचने और नाला साफ करने में उलझी होती थी। तीन-चार रोज पर ठाकुर के यहाँ से सेर-डेढ़ सेर मसुरिया मिल जाती। उससे तीन-चार आदमी का पेट नहीं भर सकता था। इधर नाच का स्रष्टा-ब्रष्टा भी बहुत कम होने लगा। कहीं भोज भी होता, तो दादी पहले की तरह पत्तल कमाने नहीं जा सकती थी। मैं अब बड़ा हो गया था। मुझे यह काम करने में लाज लगती थी। मैं किसी के खेत में कुछ काम कर देता तो आध सेर, पाव भर मकई या सेर-दो-सेर आलू दे देता था। इस तरह ऐसी हालत में ज्यादातर हमलोग आलू, गजरा और सकरकंद खाकर जीने लगे। दादी कुछ कमजोर हो गई थी। आलू उसन कर खाती, तो पेट में दर्द हो जाता। मगर, उसके लिए चावल ले आना बड़ा मुश्किल काम था। ऐसी हालत में उसे एक रोज हैजा हो गया और डेढ़ रोज तक उल्टी-दस्त होती रही। दूसरे रोज दोपहर के बाद बेचारी मर भी गई। दादी के मरने के पाँच-सात रोज बाद जब एक दिन माँ मेरी बहन को गोद में लिये ठाकुर के घर गोबर पाथने जाने लगी, तो तनिक रुककर बोली, “मेरी एक बात मान मंगरुआ।”

“कौन-सी बात, कह ।” मैं बोला ।

“घर अकेला छोड़ना ठीक नहीं ।”

“तो ?”

“चार आने का बतासा बाँधकर फकुली चला जा ।”

“फकुली, मामी के यहाँ ?”

“ना, तुम अपने ससुरार चले जाओ । कनियाँ को ले आओ ।”
माँ बोली ।

“मगर... ।” मैं माँ का मतलब समझ गया । मैंने पूछा, “मगर वह खायगी क्या ?

“जो हमलोग खायेंगे, सो ही वह भी खायगी ।”

“हमलोग तो भूख भी मर लेते हैं ।”

“वह भी मर लेगी ।”

“सो कैसे होगा ? उसे इस वक्त ले आना ठीक नहीं । उसके बाप जब मुझे छेकने आए थे, तो उनसे कहा गया था कि हमलोगों के पास अढ़ाई-तीन बीगहा खेत है । वह यहाँ भूखी मरेगी, तो फिर फकुली जाकर क्या कहेगी ?”

“तू इसकी फिकर क्यों करता है ? जब वह मेरी पुतोहू हो गई, तो मेरे घर की लाज रखेगी या मेरे घर की हँसारत करावेगी ? मैं उस लड़की को खूब जानती हूँ । फकीरा महारा की बेटी है । अब तक फकीरा के घर की बेटी-पुतोहू ने दूसरी सगाई नहीं की, ससुरार से कभी भी नहीं भाग कर आई-गई—किसी को लेकर निकलने-पइसने की बात तो अलग रही । बहू-बेटी जब रसने-बसने लगती है, तभी समझती है कि नइहर कितने दिनो का है और ससुरार कितने दिन का । जा, तू उसे ले आ ।” माँ ने मुझे समझाया ।

“मगर आज नहीं ।”

“कब जायगा ?” माँ ने पूछा ।

“कल ।”

“कल ही सही । तू उसे ले आ ।”

और, माँ के इस प्रकार दबाव देने पर मुझे सनीचरी को आमी लाना ही पड़ा । सनीचरी मेरी पलानी में आकर रहने लगी । मैं लड़ाई की खबरें सुनने में बड़ी दिलचस्पी लिया करता । नई बहू को घर में अकेली पाकर भी मैं भुलन बाबाजी के यहाँ एक चक्कर लगा आता । सुना कि पल्टन में लोग तीन-चार जगहों से भरती किये जा रहे हैं । दिघवारा, सोनपुर और छपरा । एक दिन दिघवारा जाकर पल्टन में भरती होने का दफ्तर भी देख आया । थाने के एक ओर इसका दफ्तर बना हुआ था । मेरे गाँव के पंद्रह-बीस लोग पल्टन में भरती होकर चले भी गए । सुनने में आया कि भरती कर लेने के बाद आदमी सरकार का आदमी हो जाता है । लोग बतलाते थे कि पहले यहाँ से लखनऊ ले जाता है और फिर वहाँ बंदूक चलाना सिखलाकर लाम पर (मोर्चे पर) भेज देता है । जैसे-जैसे लड़ाई बढ़ती जाती, अन्न का भाव तेज होता चला जा रहा था । बेकारी और भुखमरी जोर पकड़ती जा रही थी । सुना कि सरकार ने जान-बूझकर अन्न महँगा कर दिया है कि लोग मजबूर होकर पल्टन में भरती होंगे । मेरे गाँव के कुछ लोग, जो पल्टन में भरती हो गए थे, छुट्टियों में घर भी आने लगे थे । उनके दरवाजे पर, मालिक के घर के लोगों को छोड़कर, गाँव के सभी लोग जाते । मेरे गाँव के देवनंदन तिवारी के बेटा नदजी भी गए थे । नदजी को चिड़ी लिखना भी नहीं आता था । गाँव पर थे, तो मालिक की ओर से आमी बाजार में हर दूकानवाले से दो-दो पैसे जमींदारी वसूल करते थे । कोई पूछता नहीं था । अब सुना कि पल्टन में जाकर तोय दागते हैं । सिंहासन तिवारी भी गए थे । उनके बारे में सुना कि पल्टन में हवागाड़ी चलाते हैं । बिलइया जगदेव लाल, जो पहले डाकमुंसी थे, उनके लड़के हरीजी इंटेन्स फेल करके घर पर बैठे थे । उनके बारे में सुना गया कि पल्टन के रसद-पानी का इतजाम करते हैं । इनलोगों के मुँह से पल्टन पर की बातें सुन-सुनकर हम दाँतों तले अँगली दबाते ।

जब ये लोग घर से बाहर निकलते, तो पलटनियाँ पोशाक पहन लेते थे। एक-एक पैर में दो-दो मोजे कसते। कहते कि एक मोजा पहनने से पैर में कुछ बुझाता ही नहीं है। पलटन में से हर महीने उनके यहाँ रुपए आते। और, जब गाँव पर आए थे तो बतला रहे थे कि वहाँ जात-पाँत का कोई भेद नहीं है। चमार, दुसाध, डोम, मेहतर, मुसलमान, अंग्रेज और क्रिस्तान सब एक साथ खाते हैं। बाजार के दिन, ये लोग बाजार में जाते, तो इनको देखने के लिए आस-पास लोगों की भीड़ खड़ी हो जाती थी। वहाँ पर खड़े-खड़े ये लोग धकाधक सिगरेट फूँकते थे। कहते थे, हमलोगों को यह सब मुफ्त मिलता है। कुछ तो अपने साथ आप खानेवाले बिस्कुट भी ले आए थे। खाकी कपड़े में सिल कर लपेटी हुई अलमुनियम की सोराही। कहते थे, यह फीते के जरिये कंधे पर लटका रहता है। इसमें पानी भरा होता है। हमलोग जब मोर्चे पर जाते हैं, तो अपनी पीठ पर, बंदूक और गोली के अलावा पचीस सेर खाने-पीने का सामान भी रखते हैं। इतना वजन लिये ही कभी-कभी दुश्मन का पता लगाने के लिए पचीसों कोस पैदल चलना होता है। बाप रे बाप, यह सब सुनकर मेरे रोएँ खड़े हो जाते थे। मुझे जाड़ा लगने लगता था। ये लोग घर से बाहर निकलते, तो इनके पीछे गाँव के बच्चे हो लेते थे। अगल-बगल दो एक कुत्ते भी भूँकते होते।

सुना जा रहा था कि अभी लड़ाई खतम नहीं होगी। जर्मन का राजा बड़ा जबरदस्त है। उसका नाम—हिटलर है। हिटलर लड़ने में बड़ा बीर और खुद बमगोला बनाना जानता है। अंग्रेजों के सिपाही रात को पहरा देते रहते, हैं वह हवाई-जहाज से आकर बमगोला गिरा जाता है। सिपाही जहाँ-कहाँ मर जाते हैं। अंग्रेज उसके नाम से डरने लगे थे। गल्ले का भाव और चढ़ा जा रहा था। माँ का अंदाज सही निकला। सनीचरी सचमुच अच्छी जनाना मिली।

“इधर आओ, बैठो न।” मैंने कहा। सनीचरी पलानी में अकेली थी। माँ नहाने के लिए दरियाव किनारे चली गई थी।

“क्या है ? कहो न, मैं बहरी थोड़े ही हूँ ।”

“इधर मेरे पास आओ न ।”

“कहो ।” सनीचरी पास आकर बैठ गई ।

“एक बात पूछूँ, तुमसे ?”

“पूछो ।” सनीचरी बहुत सीधी तरह बोली । मैं टाट पर जरा और सँभलकर बैठ गया । इस बार वह मेरा मुँह देखने लगी, तो मैंने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया ।

“धत्...।” कहकर वह हाथ खींचने लगी ।

“कोई नहीं है, लजाओ मत ।” मैं बोला ।

“नहीं, नहीं, माँ आवेगी ।” वह बोली । अपनी सास को सनीचरी ‘माँ’ कहती थी ।

“वह अभी नहीं आयेंगी ।”

“अच्छा, हुआ । कहो क्या है ?”

अब मैं उसका मुँह देखने लगा । इसलिए नहीं कि वह सूरतगर थी, इसलिए नहीं कि मेरे मन में कोई पाप जग आया था । बल्कि इसलिए कि वह रात से भूखी थी । सनीचरी अभी बहुत कमसीन थी । भूख से उसके होंठ सूख गए थे । चेहरा उदास हो गया था । मैंने उससे पूछा, “भूख नहीं लगी है ?”

“ना ।” वह बोली ।

“कैसे ?”

“तुम्हें कैसे भूख नहीं लगती ?”

“धत्, झूठ बोलती हो ।”

“तुम्हीं झूठ बोलते हो । माँ मालिक के घर से सेर भर जौ ले आयी हैं । आती हैं, तो खपरी चढ़ाऊँगी । भूँजकर सतुआ तैयार होगा ।”

“तुमसे एक सलाह करनी है ।”

“करो”

“लोग पल्टन में भरती होकर बहुत रुपए कमा रहे हैं । चाहता हूँ, मैं भी भरती हो जाऊँ ।” कहकर इसी सिलसिले में मैंने सनीचरी से पल्टन पर की सुनी-सुनायी बातें कहीं । सुनकर सनीचरी घबड़ा गई । वह तभी मुझे ऐसा न करने के लिए कसमें देने लगी । मैंने कहा, “अच्छा, नहीं भरती होऊँगा । माँ से यह सब मत कहना ।”

“नहीं, मैं तो कह दूँगी । नहीं तो अपने चुपचाप भाग जाओगे ।”

“ना, ऐसा कभी कही होगा ।”

इसके थोड़ी देर बाद मैं बाहर निकल आया । फुरदेल साह के गजरे में मैंने पानी पटाया था । सोचा, चलकर सेर भर गजरा माँग लूँ । सत्तू तैयार होने में देर लगेगी । स्कूल के पास डाकखाने के मोनसीजी मिल गए । मुझे पुकारकर कहा, “तुम्हारे नाम का रुपया आया है । लेगा, तो यहीं ले ले । बाबाजी गवाही बना देगे ।”

“दीजिए ।” मैंने कहा ।

अब मैं बड़ा हो गया था । इसलिए बाबू मेरे ही नाम से रुपए भेजने लगे थे । मेरे सही कर देने के बाद भुलन बाबाजी ने गवाही बना दी और मुझे पंद्रह रुपए मिल गए । इधर आकर फुरदेल साह से मैंने गजरा ले लिया और आठ आने का चावल भी खरीदा । घर लौटकर आया, तो देखा, माँ दरियाव किनारे से आ गई है । गमछे से गजरा और चावल निकालते हुए मैंने कहा, “यह लो, पहले गजरे खा लो । फिर पीछे भात बनाना । जौ अभी रहने दो ।”

“चावल कहाँ से, रे ?” माँ ने पूछा ।

“बाबू ने दस रुपए भेजे हैं । आठ आने का यह चावल है, एक सेर ।” माँ से मुझे झूठ बोलना पड़ा । मैंने पाँच रुपए अपने पास रख लिये ।

माँ के हाथ में साढ़े नौ रुपए रखकर मैं चुप बैठ गया और उस पाँच रुपए के एक नोट को छिपा कर रख दिया। सुना, लड़ाई और बढ़ती जा रही है। अन्न महँगा होता जा रहा था। इन्हीं दिनों सुना कि छपरा कचहरी से एक्का ले जाते हुए एक कोचवान ने जब घोड़े को यह कहकर ललकारा कि, वाह रे बेटा घोड़ा, हिटलर का चाल चल।—तो उसे एक सिपाही ने गिरफ्तार कर लिया और उसे छः महीने की सजा हो गई। बाबू अभी चटगाँव में ही थे कि सुना बच्चा बाबू काँग्रेसी हो रहे हैं।

अब अखबारों में यह समाचार आने लगा कि हिटलर हार रहा है, अंग्रेजों के सिपाही उसे पीछे भगा रहे हैं, हिटलर भागता जा रहा है और एक दिन सुनने में आया कि हिटलर हार गया। अंग्रेज जीत गए।

हाँ, तो जवार में बड़ा शोर था कि बच्चा बाबू काँग्रेसी हो रहे हैं। अमिका भवानी के मंदिर के सामने इसके लिए सभा होनेवाली थी। जिस दिन सभा हो रही थी, उस रोज इस बात की भी चर्चा थी कि बच्चा बाबू को पकड़ने के लिए दारोगा भी आयेंगे। लेकिन, ठीक समय पर सभा हुई। सभा के पास, तनिक हटकर मैं भी खड़ा था। बच्चा बाबू फूल और मालाओं से लदे थे। वे खद्दर का पोशाक पहने थे। उनके माथे पर गाँधी टोपी थी। सभा के बीच में तिरंगा झंडा गड़ा था। झंडे के बीच में चरखे की तस्वीर थी। गाँव के सभी पढ़े-लिखे बाबू लोग सभा में जुटे थे। स्कूली लड़कों की भीड़ थी। सभा का काम शुरू होने के पहले लोगो ने बड़े जोर-जोर से नारे लगाये थे—

महात्मा गाँधी की, जय !

हिंदुस्तान, आजाद !!

इन्कलाब, जिन्दाबाद !!!

इसके बाद बच्चा बाबू अंग्रेजों के खिलाफ बोलने लगे। उनकी पूरी बातें याद नहीं। वैसे तो कुछ दिन भी गुजर चुके हैं और पहले वैसी

बातों को अच्छी तरह समझ सकने की अकल भी नहीं थी। इसी बीच स्कूल के लड़के चिल्ला पड़ते, बच्चा बाबू, जिन्दाबाद !

बच्चा बाबू अभी बोल ही रहे थे कि इसी वक्त थाने से दारोगा आ गए। उनके साथ जमादार और सिपाही भी थे। जब बच्चा बाबू का बोलना खत्म हो गया, तो लोगों ने फिर उन्हें मालाये पहनायी। इसके बाद दारोगा ने अपने-आप उनके हाथों में हथकड़ी लगा दी और कहा, “चलिए, हमलोग अपनी घोड़ागाड़ी लेते आए हैं।” थानेदार के साथ बच्चा बाबू घोड़ागाड़ी पर जा बैठे। घोड़ागाड़ी जब वहाँ से चलने लगी, तो स्कूल के लड़कों ने नारे लगाये—

हक के लिए, लड़ेंगे !

इसके चलते, जो कुछ हो !!

अब मैं बीस-इक्कीस वर्ष का हो गया था। बीच में बाबू चटगाँव से तीन-चार बार आ चुके थे। मुझे दादी-मूँछे हो आयी थी। मोती भाई मेरी जगह और दो नए-नए छोकड़ों को अपने नाच में भरती कर चुके थे। उनकी उम्र मुझसे कम थी और उनके सामने नाच में अब मेरी कदर बहुत कम होती। मैं बराबर दादी-मूँछे साफ रखता। जब मैं औरत बनकर, पैरों में धुँधरू बाँधकर, नाचने के लिए बीच सामियाने में खड़ा होता, तो मुझे देखते ही लोग ठठाकर हँस पड़ते। और, जब मैं गाना शुरू करता, तो चारों ओर से आवाज आने लगती, “बुढ़िया को भगाओ, बुढ़िया को भगाओ।” वही दोनों छोकड़े स्तन के बदले छोटी-छोटी ढकनी बाँधकर, ऊपर से कुरती पहन लेते। फिर जब वे झूम-झूमकर नाचने लगते, तो सारी मडली में आनंद छा जाता। वे दोनों छोकड़े औरतों की तरह नखरे करना खूब जानते थे। जब वे गाते—

बाग - बगइचवा भँवरवा गुँजरे,
अलबेला हो बलमुआँ के जिया ललचे।
मँगनी के पनवाँ नरम लागेला,
हो कोठरिया में जात सरम लागेला।
ढाल-तरुवार पिआऊ हमरा के द,
जोबनवाँ भइल भारी, पिया पान्हाँ पर ल।

तब चारों ओर से लोग आवाजे कसते—जियऽ...काटे द राजा...।

फिर एक गाता—

खाली पल्लंगिया जालीदारी तकिया,

करवा फेर हो बलमुआँ सटा ल छतिया ।

तभी कसी बजाते हुए मोती भाई उछलकर इसका जवाब देते थे—

कइसे में फिरू धनिया तोहरे ओरिया,

तोरा हएकल के गुँजवा गरेखा छतिया ।

इस तरह के गीत सुनकर लोग कहते थे कि अभी जरा मिजाज हरा हो रहा है। अब नाच में मेरा मन भी नहीं लगता था और मैं इतनी बाते बराबर सोचा करता कि आखिर इस पेशे से धर्म-करम नहीं चलने वाला है। कोई और काम कर लेना चाहिए। मगर, हर ओर बेरोजगारी थी। हमारी तरह के लोग भूखो मर रहे थे। अन्न का बाजार बड़ी तेजी पर जा रहा था। भुलन बाबाजी कहते कि जब गाँधीजी राजा हो जायेंगे, तो सब दुःख दूर हो जायगा। काँग्रेस के लोग हर जगह खुले-आम सभा करते और गिरफ्तार किये जा रहे थे। शायद यह सन् १९४२ ई० का जमाना आ गया था। सुनने में आता कि गाँधीजी देवता के अवतार हैं। कहते थे, सरकार उनको जेल में बंद कर देती है और वे भीतर से अपने-आप बाहर निकल आते हैं। पुलिसवाले उन्हें मारते हैं, तो उन्हें चोट नहीं लगती और वे ऐसे हैं कि किसी से भी छुआ-छूत का भेद नहीं रखते। चमार द्रो या दुसाध, किसी का भी दिया हुआ पानी पी लेते हैं। भुलन बाबाजी यह भी बतलाते कि गाँधी बाबा के राज में जमींदारी नहीं रहेगी, ठाकुर बेगार खटने के लिए नहीं दबायेंगे। जो काम करायेगा, उसे मजदूरी देनी होगी। इन्हीं दिनों, काँग्रेस की आम-सभाओं में अंग्रेजों के खिलाफ गीत गाये जाते थे, उनकी कठोरता की पोले खोली जाती थी—

भारत के बच्चे भूखों मरते, रोदन करते जी ।

इंगलैंड के कुत्ते बिस्कुट खाते, बैठे-बैठे जी ।

इन्ही दिनों स्कूल के लड़के तिरगा झुलूस निकालने लगे। वे बार-बार गिरफ्तार होते और बार-बार रिहा किये जाते थे। उस वक्त वे नारे लगाते—

गुलामी राज, नाश हो !

काँग्रेसी राज, कायम हो !!

भारत, आजाद !

हिंदुस्तान, आजाद !!

सावन का महीना था। सुना कि बच्चा बाबू बर्बई से आए हैं और एक बहुत बड़ी सभा करेंगे। तब इतनी अकल कहाँ थी, मगर अब समझता हूँ कि तभी बर्बई में काँग्रेस का गोलमेज कान्फ्रेंस हुआ था। बच्चा बाबू को इस सभा में जर-जवार के लोग भी जुटे। बाप रे बाप, बड़ी भीड़ लगी थी। उसी सभा में बच्चा बाबू ने गाँधीजी का संदेश पढ़कर लोगों को सुनाया था। गाँधीजी ने लोगों से अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ देने के लिए कहा था। 'भारत छोड़ो' का एलान गाँधीजी ने इसी संदेश में कर दिया था और भारत की जनता से उन्होंने अंग्रेजों को निकाल भगाने की अपील की थी—'करो या मरो।'।

लगता था कि गाँधीजी का यह संदेश हिंदुस्तान के कोने-कोने में बिजली की तरह फैल गया और इसके चार-पाँच रोज बाद की हालत तो कहते ही बनती है। १९४२ का आंदोलन। १९४२ ॥

रेलवे लाइनें उखड़ने लगीं। डाकखाने लूटे जाने लगे। तार-धर के सामान बरबाद कर दिये गए। रेल के पुलों में आग लगायी गई। स्टेशन में स्कूल के लड़कों ने ताले भर दिये। आंदोलन ने जब जरा और जोर पकड़ा, तो बैकौं और कचहरियों में सगीने चमकने लगीं। कहा जाता था कि दो-चार घंटे के आगो-पीछे ही सारे देश में यह व्यापक आंदोलन फैल गया। रेल के डब्बे और शेड-हाऊस बरबाद किये जाने

लगे। रेलगाड़ी को लड़के जिधर चाहते, उधर ले जाते थे। लेकिन, अब जब लोग थाने, कचहरी और अन्य सरकारी महकमों पर सरकार के सभी कानून को भंग कर, अपना झंडा गाड़ने और उन पर कब्जे करने लगे, तो फिर अंग्रेज सरकार के कान खड़े हुए। अब आंदोलन करनेवालों के जुलूस को लेकर आगे बढ़नेवाले बच्चों की छातियों पर गोलियाँ दगने लगीं। सिवान की ओर से जब रेलगाड़ी आती, तो डब्बे के फाटक के आस-पास खल्ली से लिखा होता था—

सिवान में पुलिस और विद्यार्थियों में मुठभेड़। थाने पर झंडा गाड़ दिया गया ॥

उन्नीस विद्यार्थी गोली के घाट उतरे। आंदोलन जारी रखिए ॥

यह सब तमाशा देखने में मेरा भी बड़ा समय लगा। सुनने में आया कि कई जगह हिंदुस्तानी सिपाहियों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। चारों ओर हल्ला हो रहा था कि अंग्रेज सरकार की ताकत खत्म हो रही है। अंग्रेजी हुकूमत का तख्ता हिल रहा है। तभी इंग्लैंड से सरकार ने गोरी फौज भेजा। अब गोरे सिपाहियों ने क्रांतिकारियों का शिकार करना शुरू किया। हिंदुस्तानी लोगों पर वे इस तरह गोली चलाने लगे, जैसे हमलोग भेड़-बकरियों पर ढेले चलाते हैं। जिस जगह उन्हें रेल से पहुँचने में दिक्कत होती, वहाँ वे लारी से जाने लगे। जब इस बात की खबर फैली, तो लोग सड़कें काटने लगे। बीच सड़क पर बड़े बड़े पेड़ काटकर गिराने लगे। ऐसी हालत में गोरी फौज सड़क के आस-पास रहनेवाले लोगों को पकड़कर ले जाती और उनसे सड़कें मरम्मत करवाती थी, पेड़ हटवाती थी। और, जो ऐसा करने में हिचकते थे, उन्हें बटूक के कुँदे से खूब पीटती। दिघवारा के एक बहुत बड़े काँग्रसी के मकान को उनलोगों ने पेट्रोल छिड़ककर जला दिया। उनकी गल्ले की आदत भी थी। उनलोगों ने समूचे गोदाम में आग लगा दी। लाखों मन गेहूँ जलकर राख हो गया। औरत और बच्चों

का घर से निकलना बंद हो गया। सयाने लोग भी डरते-डरते गली से बाहर निकलते थे।

बड़ी तबाही मच गई। रेलवे-लाईन और सभी सरकारी महकमें पर गोरे सिपाही पहरा देने लगे। हाँ, उनके साथ एक-दो हिंदुस्तानी अफसर और खुफिया विभागवाले भी होते थे। बड़े जोरो की गिरफ्तारी शुरू हुई और काँग्रेसी लोग जेलों में ठूँसे जाने लगे। बच्चा बाबू को भी पुलिस पकड़कर ले गई। गाँव के लोगों पर जुर्माने होने लगे और जुर्माने की रकम संगीन के बल पर वसूल की जा रही थी। काँग्रेसियों को गिरफ्तार करवाने और क्रांतिकारियों को गोली के घाट उतरवाने के लिए कई पुलिसवालों की तरक्की हो गई। गोरे सिपाही बड़े बदमाश थे। खाने के लिए वे जिसकी गाय को चाहते, संगीन से भोंककर उठा लेते थे। कितने बछड़े गायब हो गए, कितनी, बकरियाँ उनके पेट में चली गईं। कई जगह तो उनलोगों ने हिंदुस्तानी औरतों के साथ निर्दयतापूर्वक व्यभिचार भी किया और जब वे मर गईं, तो उन्हें पास के नदी-नाले में फेंक भी दिया। इस प्रकार जब तक आंदोलन दबाया नहीं गया, तब तक मुलन बावाजी के यहाँ पटने से अखबार नहीं आया। जब आंदोलन दबा, तो अखबार आने लगा। मुलन बावाजी के पढ़कर बतलाने से पता चलता था कि इस आंदोलन में पन्चानवे फी सदी स्कूल और कॉलेज के लड़के ही मारे गए हैं। सरकारी मुहकमों पर झंडा गाड़ते समय, जब पुलिस उन्हें रोकती—

पीछे हटो, नहीं तो गोली मार देगे।

लड़के आगे बढ़ते हुए कहते—अंग्रेजी राज नाश हो !

‘धाय...।’ गोली घुटने के नीचे लगी।

“तुमलोग कायर हो ! गोली मारनी है, तो छाती में मारो।”
लड़के सीना तानकर कहते।

“छाती में ?”

“हाँ, यह लो ।” कहते हुए लड़के अपने सीने से कुरता-कोट हटा देते और झुका लिये आगे बढ़ते थे ।

“हट जाओ, पीछे हटो ।” पुलिस कहती ।

“कभी नहीं, कभी नहीं । महात्मा गाँधी की जय !”

“धौंय, धौंय, धौंय... ।” और, तब पुलिस की गोली उनके सीने में समा जाती । आजादी के दीवाने वहीं गिरकर मिट्टी पर लोटने लगते थे ।

अभी आंदोलन के दबे कुछ ही महीने हुए थे कि फिर लड़ाई का समाचार सुनने को मिला । इस बार सुना गया कि जापान का राजा चढाई कर रहा है । पिछली लड़ाई की तरह ही हवाई जहाज का आना-जाना शुरू हो गया । जब मेरे गाँव के ऊपर से होकर हवाई जहाज जाने लगता, तो घरों की औरते आँगन में और बच्चे बाहर निकलकर आसमान में देखने लगते । फिर लोग पल्टन में बहाल होने लगे । गल्ले की तेजी बढ़ती जा रही थी । सुना जाता था कि जापान जीतता हुआ चला आ रहा है । पूरब की तरफ मुंडा मालगाड़ी पर लड़ाई पर वाली हजारों लारियाँ जा रही थीं । हर लारी पर दो-एक सिपाही बैठे होते ।

सुखमरी और जोर पकड़ती जा रही थी, अब मैंने फैसला कर लिया कि मुझे पल्टन में बहाल होना ही है । इस बार मैंने सनीचरी से इस तरह की कोई भी चर्चा नहीं की । माँ से कहा, “आज मैं छपरा जाऊँगा ।”

“किसलिए, क्या काम है ?” माँ ने पूछा ।

“नौकरी खोजने ।”

“छपरा में नौकरी मिल जायगी ?”

“हाँ ।” मैंने कहा ।

वहाँ कोई तेरी जान-पहचान का भी है ?”

“हाँ, ओकील साहब ने कहा है । वहाँ आओ, तो कहीं-न-कहीं ठिकाना लगा दूँगा ।” मैं बोला ।

मेरे गाँव के एक लालाजी छपरा-कचहरी में वकील थे। वकील लोगो का क्या काम है, माँ यह तो नहीं जानती थी। मगर, उसे इतना मालूम था कि लालाजी बड़े आदमी हैं। बाल-बच्चे के साथ शहर में रहते हैं। वह बोली, “जा, मगर जल्द चला आना।”

“अच्छा ।” मैंने कहा, “मगर पैसे दे न।”

“पैसे, कितने चाहिए?”

“दे कुछ।”

“दस आने पैसे तो हैं।”

“दे न वही।”

माँ से दस आने पैसे लेकर नौ बजे की गाड़ी से मैं छपरा-कचहरी स्टेशन पर उतरा। गाड़ी में बड़ी भीड़ थी। लोग गाड़ी की छतों पर बैठकर आ रहे थे। पावदान पर लटकनेवालों का तमाशा देखते ही बनता था। ज्यादा बोझ हो जाने के कारण खुलते-खुलते गाड़ी रुक जाती थी। तब आकर गाड़ लोगो को कई बार पावदानों पर से उतारता और लोग फिर चढ़ जाते थे। इसी रेल-पेल में मैं भी घुस गया था। लोग कह रहे थे कि जिस ओर से जापान चढ़ाई किये हुए है, उधर ही से काम करनेवाले लोग जान लेकर भागे आ रहे हैं। मगर, मैंने कलेजे को मजबूत किया। सोचा, जब आ गया हूँ, तो बिना भरती हुए लौटकर नहीं जाऊँगा। मेरी कमर में एक फटी और मैली धोती थी। ब्याह में जो नया कुरता बना था, उसे इज्जत-मौके के लिए माँ ने छिपाकर रख दिया था। आज वही कुरता मेरे बदन पर था। कंधे पर एक पुराना गमछा और टेट में साढ़े छः आने पैसे। साढ़े तीन आने का मैंने टिकट खरीदा था।

छपरा-कचहरी स्टेशन से मैं जैसे ही बाहर निकलने लगा कि एक आदमी ने मेरा पीछा किया। देखने से वह पढ़ा-लिखा जान पड़ता था। स्टेशन के बाहर सवारियाँ खड़ी थीं। उस आदमी ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछा, “तुम्हें कहाँ जाना है, भाई?”

“किसे पूछते हो, मुझे ?” मैंने फिरकर पूछा ।

“हाँ, तुम्हे ।”

“तुम कौन हो ?”

“मैं यही शहर का आदमी हूँ । बतलाओ न, तुम्हे कहाँ जाना है ? डरो नहीं, मैं कोई तुम्हारा बुरा न करूँगा ।”

अगल-बगल सवारियाँ खड़ी थीं । मैं बीच से आगे बढ़ता जा रहा था । और, वह आदमी अब मेरे पीछे से मेरी बगल में होकर चलने लगा । मैंने सुन रखा था कि शहर में बहुत पाकिटमार होते हैं । यों तो मेरे पास बहुत थोड़े पैसे थे । लेकिन, उस वक्त वही साढ़े छः आने पैसे मेरे लिए साढ़े छः लाख थे । मैंने सोच लिया था कि अगर भरती न किया गया, तो फिर तीन बजे की गाड़ी से साढ़े तीन आने पैसे का टिकट लेकर लौट आऊँगा और अगर भरती हो गया, तब तो कोई बात ही नहीं । फिर तो नंदजी और सिहासन तिवारी की तरह मैं भी हर महीने रुपए भेजूँगा । मैंने उस आदमी से कहा, “मैं यहाँ नौकरी के लिए आया हूँ ।”

“सच ?”

“हाँ, सच ।”

“नौकरी करोगे ?”

“हाँ, इसी के लिए तो आया हूँ ।”

“कैसी नौकरी करना चाहते हो ?”

“मैं.....” मैं बतलाने में जरा लजा गया ।

“कहो न, शरमाते क्यों हो ?” उसने मेरी फिफक तोड़ी ।

“बाबू, मैं पल्टन में भरती होना चाहता हूँ ।” मैंने तनिक हँसकर कहा ।

“हूँ, होगे पल्टन में भरती ?”

“हाँ ।”

“ठीक है, चलो मैं तुम्हे भरती करा देता हूँ । मगर, आगे चलकर ऐसा मत कहना कि भरती नहीं होना है । कौन जाति हो ?”

“चमार ।” मैंने बतलाया ।

“ठीक है, तुम भरती कर लिये जाओगे । अच्छी तनख्वाह मिलेगी ।” उसने कहा । मैं तनख्वाह का मतलब नहीं समझ सका था । इसलिए पूछा, “तनख्वाह क्या ?” उसने जवाब दिया, “मोसहरा. दरमाहाँ । गरीब आदमी जान पड़ते हो, तुम्हारे लिए यह अच्छा मौका है ।”

। उस आदमी की बातें मेरे मन में जमने लगी थी । अगल-बगल से बहुत लोग आ-जा रहे थे । सवारियों की आवाज भी मेरे कानों में समा रही थी । मैंने उसी रोज पहली बार आदमी-रिक्षा देखा । आदमी को आदमी खींच रहा था । आदमी के कंधे पर आदमी सवार हो रहे थे ।

स्टेशन के अहाते से निकलकर, उस आदमी के साथ जब मैं एक चौक पर पहुँचा, तो उसने फिर मेरे कंधे पर हाथ रखा और तनिक अपनी ओर खींचकर कहा, “पढ़ना जानते हो, वह देखो ।”

“क्या ?”

“वह सामने देखो, क्या है ?”

“अरे हाँ, यह तो सिपाही की तस्वीर है ।”

“हिंदी पढ़ना जानते हो ?”

“हाँ, थोड़ा-बहुत सीख गया हूँ ।”

“तो पढ़ लो न, उस पर क्या लिखा है ?” उस आदमी ने कहा ।

“हाँ, हाँ....।”

चौक के एक कोने पर, दो मजबूत खंभे के सहारे एक बहुत बड़ी तस्वीर टँगी थी । उसमें एक सिपाही संगीन लिये शान के साथ सामने की ओर देख रहा था और दूसरा ? दूसरा एक खिड़की के पास खड़ा हाथ में नोट लिये खड़ा था । खिड़की की तस्वीर के ऊपर हिंदी में लिखा था—‘डाकघर’ । और इन दो तस्वीरों की बगल में, बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

“देखो, मैं पत्रों में भरती होकर दुश्मनों से देश की हिफाजत भी करता हूँ और हर महीने की पहली तारीख को अपने घरवालों के लिए निश्चित रकम भी भेजता हूँ । तुम भी चाहो, तो ऐसा कर सकते हो ।”

“देखा ?” उस आदमी ने पूछा ।

“लिखा क्या है, सो पढा ?” उसने दो सवाल किए ।

“हाँ ।” मैंने कहा ।

“क्या विचार है, भरती होने आए हो न ?”

“हाँ, मगर भरती करा दोगे न ?” मैंने यो ही पूछा ।

“हाँ जी, चलो न । मेरा काम क्या है ।” वह बोला ।

उस आदमी से इस तरह की बातें करता हुआ मैं कचहरी में आ गया । मालिक के काम से, उनकी खिदमत करने के लिए ही मैं दो-चार बार शहर आ चुका था । यह कचहरी भी देखी थी । इसलिए कचहरी की बड़ी-बड़ी इमारतें देखकर मुझे कुछ अचरज नहीं हो रहा था । मगर, मुझे तब बिल्कुल ही अचरज होने लगा, जब मैंने देखा कि कचहरी की छतों पर बालू के पहाड़ उठे हैं । कुछ की छतों पर बालू बोरे में कसकर रखे गए थे । कचहरियों के ओसारे में, एक तरफ पचासो लाल-लाल बाल्टियाँ रखी थीं ।

“कचहरी के मुँहरे पर इतना बालू किसलिए रखा है ? मैंने उससे पूछा ।

“बालू ?”

“हाँ, और उधर छत पर बोरे कैसे रखे गए हैं ?” मैंने पूछा ।

“उनमें भी बालू है ।”

“बालू किसलिए ?” मैंने पूछा ।

“कचहरी की हिफाजत के लिए ।” उसने जवाब दिया । मैं समझ न सका ।

“हिफाजत के लिए ?”

“हाँ ।”

“बरसा के पानी से हिफाजत के लिए ? पानी से तो बालू भिहला जाता है ।

“नहीं, पानी के लिए नहीं ।”

“तो ?”

“बम से बचने के लिए । बालू पर बम गिरेगा, तो फूटेगा नहीं ?”

“और अगर फूट जाए, तो ?”

“फूट जाए, तब तो सब नष्ट हो जायगा । मगर, बालू पर बम फूट ही नहीं सकता ।” उसने बतलाया ।

“और, इतनी बाल्टियाँ किसलिए हैं ?”

“उन सबमें पानी भरा है । कही आग लग जाए, तो भट उसे बुझा देगे ।”

मैं उस आदमी के साथ आगे बढ़ता जा रहा था । अब मुझे अपनी माँ और सनीचरी की याद आने लगी थी । अगर मैं पल्टन में भरती होकर चला गया, तो माँ रोती-रोती मर जायगी । सनीचरी मेरे बारे में क्या सोचेगी ? चटगाँव से बाबू आयेंगे, तो क्या कहेंगे ? और, कही पल्टन में जाकर मैं मारा गया, तो ? मगर फिर मैं सोचता, नंदजी गए तो कहाँ उन्हें बमगोला लगा, सिंहासन तिवारी को कहाँ गोली लगी ? हरिजी जब गाँव पर थे, तो बदन भरा नहीं लगता था । पल्टन पर से आए, तो मोटाकर गुलगुल्ला हो गए थे । गाँव पर खाये-खाये बिना मरता हूँ, सो कहाँ का अच्छा है । वहाँ रहकर माँ और सनीचरी के लिए भी तो कुछ भेज सकूँगा । जब इतने लोग पल्टन में जाते हैं, तो कुछ तो मरेगे ही । और सो क्या हर्ज है, मैं मोर्चे पर सबसे पीछे रहूँगा । न आगे जाऊँगा, न खतरा होगा ।

“किस जगह पल्टन में भरती किया जाता है ?” तभी मैंने पूछा ।

“आगे, अगले मोड़ के बाद ।”

“अच्छा... ।”

कचहरी चालू थी । लोग बहुत थे । कई जगह लोग घेरा बाँधकर खड़े थे । उसके बीच में एक आदमी ताश के खेल दिखला रहा था । ऐसे ही आदमियों के घेरे के बीच एक आदमी ‘रतनजोत’ पत्थर बैच रहा था । एक ऐसी ही भीड़ में एक आदमी कई किस्म के साँप लिये बैठा

था और एक साँप का मुँह खोलकर उसके दाँत दिखला रहा था।
ऐसा साँप मैंने अब तक नहीं देखा।

“जरा इसे देख लूँ बाबू, यह तो मनियारा साँप बुझाता है।” मैंने उस आदमी से कहा।

“देखो, मैं भी देख लेता हूँ। लेकिन, वहाँ भी जल्द चलना है।”

“हाँ, अब ऐसा जोगार लगाओ कि मैं भरती कर लिया जाऊँ।”

“चलो।”

वह आदमी भी मेरे साथ साँप देखने के लिए बढ़ा। लोग चारों ओर से खड़े थे। माँपो की टोकरियों के बीच में थोड़ी-सी घास रखी थी। साँप दिखलानेवाला चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, “आपलोग जरा अपने ग्यारे-ग्यारे कदमों को तकलीफ देकर एक डेग और आगे बढ़ आइए। बाबूजी, आपलोगों ने देहात में बड़े-बड़े साँप देखे होंगे। हाथ-दो हाथ, लाठी-दो लाठी का साँप मारकर फेंक दिया होगा, मगर यह काला तच्छक नाग”—फिर वह जरा गरजकर कहने लगा, “मगर यह काला तच्छक नाग, वही नाग है, जिसने राजा †परिच्छित को काटा था। भाईसाहब, जब यह हरी घास पर चलता है, तो इसके जहर से घास में आग लग जाती है। यह जहर का राजा तच्छक आगे बढ़ता जाता है और इसके पीछे-पीछे घास जलती जाती है।—

इतना कहते-कहते वह अपनी गर्दन जरा ऊँची करके गा-गाकर कहने लगा—

मरते-मरते हम बचे कि खैर की अल्लाह ने,

कि रात भर सोने के बदले सर मरोड़ा साँप का।

उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं मन-ही-मन उसकी तारीफ करने लगा कि भगवान ने आदमी में ही सारी खूबी भर दी है। अपनी खूबियों को पहचानकर आदमी चले, तो दुनिया में जीना उसके लिए मुश्किल

नहीं। एक हमलोग हैं, जो साँप का नाम सुनते ही काँपने लगते हैं और एक आदमी यह है, जो रात भर सोने के बदले साँप का माथा ही ऐठता रहता है। मैंने अपने मन में कहा, तुम धन्य हो भगवान्। तुमने अपनी दुनियाँ में अजीब-अजीब हिम्मतवालों को पैदा किया है। तभी वह आदमी फिर बोलने लगा, “अभी मैं उस साँप को पिटारी से निकालूँगा। आपलोग यह देखकर जाइए कि कैसे यह साँप इस घास पर चलता है, तो आग लगती है ...।”

तब मुझे उस आदमी ने पीछे की ओर खींचकर कहा, “चलो, ‘रतनजोत’ पत्थर देख लो।”

“चलो।”

उसके साथ मैं फिर इस भीड़ में आया। वहाँ भी भीड़ के बीच में एक आदमी, पैसे के आकार के बराबर, पतले-पतले लाल-लाल पत्थर लिये कह रहा था, “बाबूजी, इसका नाम है, असली रतनजोत पत्थर। यह पत्थर मसूरी के पहाड़ में, गरपू के पहाड़ में होता है। इसका फायदा सुन लीजिए—आँखों में माड़ा हो, आँखों में जाला हो, रतौधी हो, आँखें लाल हो आती हो, आँख से पानी गिरता हो—मतलब आँख की हर बीमारी के लिए यह पत्थर रामबान है। और इसकी कीमत १ कीमत इसकी उतनी भी नहीं है बाबू, जितने पैसे के आपलोग पान-बीड़ी खाकर थूक देते हैं...।”

“..... आर्यावर्त्त पढिए ‘ताजा समाचार’ बिलकुल गरमा-गरम खबर... दो पैसे में ताजा समाचार... चटगाँव पर बम-वर्षा। एक लाख पल्टन स्वाहा !! चार हवाई जहाजों में आग लग गई !!!...।”

तभी मेरे कानों में यह आवाज सुनाई पड़ी। मैं झटपट भीड़ से बाहर निकल आया। एक आदमी अपने साथ बहुत-सा अखबार लिये चिल्ला रहा था। दो-दो पैसे देकर लोग उससे अखबार खरीदने लगे। भीड़ से कुछ और लोग बाहर निकल आए। मुझे बाबू याद पड़ गए। बाबू भी तो चटगाँव में ही रहते हैं। बाबू का चेहरा मेरी आँखों के सामने से गजर गया।

“क्यों बाबू, लड़ाई में बहुत लोग मारे जा रहे हैं ?” मैंने उस आदमी से पूछा ।

“नहीं ।”

“और यह अखबारवाला कह रहा है, सो ?

“सब भूठ ।”

“भूठ कह रहा है ?”

“हाँ ।”

“यह भूठ क्यों कह रहा है ?”

“अखबार की बिक्री के लिए ये लोग भूठे समाचार छापते हैं । जापान तो रोज हार रहा है ।”

तब तक मेरे कानों में ढोलक के बजने और किसी के गाने की आवाज सुनायी पड़ी । छपरा कचहरी के बीच में सरकारी बैंक है । बाहर संतरी संगीन लिये पहरा दिया करता है । आवाज उसी ओर से आ रही थी । वह आदमी नहीं चाहते हुए भी मेरे साथ उस ओर बढ़ा । सरकारी बैंक के पूरब की ओर लोगो की भीड़ थी । भीड़ के बीच बैठा एक सूरदास ढोलक बजा-बजाकर गा रहा था । उसने अपने आगे एक गमछा फैलाकर रख दिया था, जिस पर लोग पैसे दो पैसे फेंक दिया करते थे । गीत सुननेवालो की जमघट थी । पीपल और नीम के पेड़ों के नीचे बैठे कुछ लोग लिख रहे थे ।

“चलो, यह सब क्या सुनोगे ?”

“जरा सुन लेता हूँ बाबू । बड़ा मजेदार गीत गा रहा है ।”

“पल्टन में रहकर देखना । वहाँ अंग्रेजी बाजे सुनकर मस्त हो जाओगे ।”

“वहाँ बाजा सुनने के लिए भी मिलता है ?” मैंने पूछा ।

“बाजे-गाजे तो पल्टन के साथ रहते हैं, वहाँ किस बात की कमी है ।” वह आदमी बोला ।

मगर सूरदास के गीत में न-जाने कौन-सा जादू था कि बिना उसे सुने वहाँ से हटना मेरे लिए मुश्किल हो गया। उसके बार-बार हाथ पकड़कर खींचने पर भी मैं हट न सका। सूरदास सिर हिला-हिलाकर बड़ी मस्ती से गा रहा था—

अब ना बाँची कलकाता बिधाता,
अब ना बाँची कलकाता ।
जरमन-जपान मिल के गोला गिरावे,
सुन-सुन के जिउआ घबडाता—
बरमा-रंगून पूरा माटी में मिल गइल,
हबडा में मोरचा खोनाता, बिधाता,
अब ना बाँची कलकाता. ।

मैंने अपनी टेट से दो पैसे निकालकर सूरदास के गमछे पर फेंक दिये। मगर वह गा रहा था—

आज - काल्ह में रुपैया आई,
झरहता † जोहाता ...
मोरचा का नीचे-नीचे पल्टन लुकाता,
ऊपर से बम गिरल, बहुआ लपाता,
बिधाता, अब ना बाँची. ।”

अब मैं पूरी तरह डर गया। उसके गाने से मुझे इतना पता लगा कि अब कलकत्ता बचनेवाला नहीं है। जरमन और जापान दोनों गोले गिरा रहे हैं। बर्मा और रंगून भी खत्म हो गया। अब कलकत्ते में मोर्चा खोदा जा रहा है। जिसका बेटा उस ओर कमाने गया है, उसके गाँव पर लोग मनीआर्डर का इंतजार कर रहे हैं। मोर्चे के भीतर फौज छिप रही है और जहाँ ऊपर से बम गिरता है कि सिपाही मर जाते हैं। मैंने कहा

ॐ रास्ता । † इंतजार करना ।

कि अब पल्टन में भरती होना बेकार है । वहाँ जाकर माँ और सनीचरी के लिए रुपए भी न भेज सकूँ और मुफ्त में बमगोले से मारा जाऊँ, तो क्या फायदा ? मैंने उस आदमी से पूछा, “बाबू, अभी क्या समय हुआ है ?”

“दो ।” उस आदमी ने अपनी घड़ी देखकर कहा ।

“अब मैं पल्टन में नहीं जाऊँगा ।”

“क्यों, तुम इसी गीत से डर गए ? अरे, तुम तो बड़े डरपोक हो ! चलो, चलो ।”

“ना, किसकी जान फिजूल है ? अब मैं घर लौट जाऊँगा ।”

“घबड़ाओ नहीं, चलो । यह अधा क्या लड़ाई का मैदान देखकर आया है ?

“ना बाबा, अब मेरे बाप भी आकर कहेंगे, तो मैं नहीं भरती होऊँगा ।” मैं बोला । मेरे लाख कहने पर भी वह आदमी मुझे ले चलने की कोशिश करता रहा, मगर मेरी हिम्मत न हुई कि मैं उसके साथ भरती होने के लिए जाऊँ । आखिर मैं दो बजे की गाड़ी से आमी लौट ही आया ।

बाजार से चावल उठा जा रहा था। गेहूँ गायब हो रहा था। पहले चावल पीसकर लोग रोटी बनाने लगे। फिर चावल पाँच सेर का हुआ, इसके बाद तीन सेर का, फिर डेढ़ सेर का और तब रुपए का तीन पाव। इसी समय सुना कि कलकत्ते के बाजार से चावल गायब हो गया। वहाँ बारह आने बोलल माड़ विकने लगा था। लोगों में अफवाह फैल रही थी कि हिंदुस्तानियों को तवाह करने के लिए अंग्रेज सरकार मँहगे से-मँहगे भाव पर गल्ले खरीदकर समुद्र में फेंक देती है।

इन्हीं दिनों भुलन बाबाजी बतला रहे थे कि जापान कलकत्ते तक आ गया है। इधर बाबू के यहाँ से चिट्ठी का आना-जाना बढ़ हो गया था। पूरब की ओर से जो भी रेलगाड़ी आती, लोग उसमें जानवर की तरह कसे होते थे। पावदान और छतें नजर नहीं आती थीं। पावदानों पर लोग टंगे होते और छतों पर बैठे रहते थे। छत से कितने लोग गिरकर मर गए। ये सभी लोग पूरबी देश से भागे चले आ रहे थे। किसी के पास एक दरी होती, तो किसी के पास एक लोटा। लोग अपना सब कुछ छोड़कर अपने गाँव पर भागे आ रहे थे। इन भागनेवालों में से बहुत घायल भी नजर आते थे। किसी के माथे पर पट्टी बँधी होती, तो किसी की पीठ में। किसी का एक हाथ साफ था, तो किसी का एक कान गायब। दिघवारा स्टेशन पर, जब गाड़ी रुकती, तो वे लोग 'पानी-पानी' चिल्लाने लगते थे। पावदानों पर लटके हुए लोग तो घूँट-दो-घूँट पानी पी भी लेते, मगर छत पर बैठे मुसाफिरो तक पानी पहुँचाना पानी पाड़े के लिए मुश्किल हो जाता। जब पानी पाँडे का पानी खत्म हो जाता, तब बहुत से प्यासे

मुसाफिर पानी खरीद कर पीते थे—चार आने गिलास। आइस-मेइडर वाले स्टेशनो पर उतरकर पानी बेचने लगते थे। जिसके पास खरीदने के लिए पैसा न होता, वह पावदान पर लटका-लटका अपनी जीभ को होठों पर घुमाया करता।

जब पूरबी देश में कमानेवाले लोग भी इधर आने लगे और बनिए बाजार से अन्न को गायब करने लगे, तब मेरे घर में बाबू के लिए चिंता की जाने लगी। बाबू का कुछ पता नहीं चलता था। हमलोग पहले ही सुन चुके थे कि चटगाँव में भी बमगोले गिरे हैं। इसलिए भीतर-ही-भीतर मन बड़ा घबड़ा रहा था। कभी-कभी फौज की रेलगाड़ी भी इधर से होकर जाती। उनमें हिंदुस्तानी और गोरी फौजे दोनों। वे सभी घायल होकर लौट रहे थे। मेरे घर में सुखमरी हो रही थी।

एक रोज, करीब नौ बजे रात में हमलोग माँ, सनीचरी और मैं, †रहरी की छीमी * उसीन कर खा रहे थे। दीये में तेल नहीं था। माँ पत्ते लहरा रही थी। तभी हमारे कानों में बैलगाड़ी की आवाज सुनायी पड़ी—चूर्, चूर्-मर्-चूर्। धीरे-धीरे यह आवाज मेरी पलानी के नजदीक चली आ रही थी। मगर, मेरे मन में कोई अचरज की बात नहीं पैदा हुई। मैं रहरी की छीमी खाता रहा। कुछ मिनटों के बाद ही ऐसा लगा, जैसे बैलगाड़ी मेरी पलानी के पीछे आकर रुक गई।

“यही घर है ?”

“हाँ।”

“तुम्हारा ही घर है, पहचानते हो न ?”

“हाँ, अपना घर पहचान में न आएगा ?”

“तो, उतर जाओ अब।”

मैं आवाज पहचानने लगा।

“उतरा नहीं जाएगा।”

† अरहर की हरी फलियाँ। * उबाल कर।

“तब ?”

“जरा उतार दोगे ?

“मुझसे अकेले कैसे होगा ?”

“मेरे लडके का नाम मंगरू है । मगरू, मगरू कहकर पुकारो न । वह आ जाएगा ।”

“अरे माँ, यह तो बाबू हैं !” मेरे मुँह से निकला ।

भीतर से बाहर निकलकर मैं पलानी के पीछे आया, जहाँ बलुआही सड़क पर बैलगाड़ी खड़ी थी । जुए के बीच में एक छोटा-सा लालटेन लटका था । कालिख से उसके शीशे की चमक गायब हो गई थी और बहुत धीमी-सी रोशनी आ रही थी । पहले मैं बैलगाड़ी के पास आकर खड़ा हो गया, फिर जरा इधर-उधर देखकर मैंने पूछा, “कौन, बाबू ?”

“कौन है तू, मंगरूआ ?”

“हाँ ।”

“आ बेटा, उतारकर ले चल पलानी में ।”

“क्यों बाबू, ऐसे काहे बोलते हो ?” बाबू की ओर बढ़ते हुए मैंने पूछा ।

“देह का दुरदासा हो गया बेटा । अभी अस्पताल से नाम नहीं कट रहा था । मगर मैंने नाम कटवा लिया । सोचा, मरना है तो अपनी जलमभूम पर जाकर मरूँ । कम-से-कम तुमलोग तो आँख के सामने रहोगे ।” थरथराते हुए बाबू बोले ।

गाड़ीवान की मदद से मैंने बाबू को बैलगाड़ी से उतारा और पलानी में ले आया । अपने पास से चार रुपए निकालकर बाबू ने मुझे दिये और कहा, “इसे गाड़ीवान को दे दो ।”

“बाप रे, चार रुपए ! कोस भर जमीन का ?” मैंने कहा ।

“कोस भर से नहीं आ रहा हूँ । परमानंदपुर से ही गाड़ी कर ली थी ।”

मैंने गाड़ीवान को रुपए दे दिये । बैलगाड़ी के लौटने की आवाज थोड़ी देर तक मेरी पलानी में आती रही, फिर बंद हो गई । मैं बाबू के

पास आकर बैठ गया । सनीचरी कोने में सिकुड़कर बैठी रही । मेरी बहन भूख के मारे रोती-रोती सो चुकी थी । माँ ने उसे पुआल पर लेटा दिया था ।

“मुझे धीरे-धीरे अँधे † लेटा दो ।” बाबू ने कहा ।

“क्यों, पेटकुनिँ क्क्यों सोओगे ?” माँ ने पूछा ।

“पहले लेटा दे न, दर्द हो रहा है ।”

मैंने धीरे-धीरे पेट के बल ही बाबू को लेटा दिया । जब जलते हुए पत्ते की रोशनी खत्म होने लगती, तब माँ उसमें थोड़े पत्ते और डाल देती थी । तब एकाएक बड़े जोरो की रोशनी फैल जाती । बाबू को ऐसी हालत में पाकर हमलोग बहुत उदास हो गए थे । माँ चुपचाप उनका मुँह निहार रही थी । बाबू ने पूछा, “और यहाँ का क्या समाचार ?”

“सब पुराना है ।” माँ बोली ।

“मालिक के घर गोबर पाथने जाती हो न ?”

“हाँ ।”

“और दुलहिन ?”

“वह भी अच्छी है ।” माँ बोली ।

“इतने जोर से बीमार पड़ गए, तो घर क्क्यों नहीं चले आए ?” मैंने पूछा ।

“घर कैसे आता ?”

“क्क्यों, तुमने तो चिट्ठी भी नहीं भेजी । घर की बात दूसरी होती है । और नहीं तो क्या अगनू मिसिर भी कहीं गए थे ? दो चोट काढ़ा पिलाते और मालिश करने का तेल देते कि सब दर्द भाग जाता ।” मैंने कहा ।

“और नहीं तो क्या ? परदेस में कौन किसका होता है ! कहा भी है कि, परदेस नरेस कलेस । परदेस में राजा को भी तकलीफ हो जाती है । फिर हमलोग तो रंक हैं ।” माँ बोली ।

† पेट के बल ।

“अरे भाई, तुमलोग बात नहीं समझ रहे हो। मुझे न तो सर्दी हुई है और न गैँठिया।”

“तो फिर, पिलही-उलही पड़ गई क्या ? घबड़ाओ नहीं, हराजी में बाबू प्रहलाद लाल मालिक के बगीचे में गुरुच का लत्तर बहुत फैला है। पैरो पर गिरकर थोड़ा-सा माँग लाऊँगा। जहाँ पद्रह रोज उसका रस छानकर पी लोगे कि पिलही हवा हो जायगी।” मैं बोला।

“पिलही हो, तब तो। मुझे तो बम लग गया है।” बाबू बोले।

“बम, बमगोला ! जो हवाई जहाज से गिरता है ?”

“हाँ रे पगला, वही बम।” बाबू बोले।

बाबू के मुँह से यह बात सुनकर मेरा होश-हवास जाता रहा। मन-ही-मन बड़ा अचरज होने लगा कि आखिर बम लगने से बाबू बच कैसे गए। मैंने तो सुन रखा था कि एक बमगोला के गिरने से पचासों गाँव की बस्ती बरबाद हो जाती है। वह कैसा बमगोला था, जो सिर्फ बाबू को भी न मार सका। एक मिनट तक मुझे बाबू की बातों पर यकीन न हुआ। तभी तो मैंने कहा, “धत् बाबू, बमगोले से भी कोई बचता है ?”

“तुम्हें † परतीत नहीं होता तो देख, बहुत धीरे-धीरे मेरी पीठ पर का कुरता हटाकर मेरा जखम देख ले।”

बाबू के मुँह से इतनी बातें सुनकर मुझे विश्वास तो हो गया, मगर झटपट इस बात की हिम्मत न हुई कि उनका कुरता हटाकर जखम देखूँ। मगर बाबू ने जोर देकर कहा, “देख न, इसीलिए तो पेटकुनिएँ सो रहा हूँ।”

बाबू के जोर देने पर मैंने धीरे-धीरे उनकी पीठ पर का कुरता हटाया। पीठ पर ऊपर की ओर हुआ बहुत बड़ा घाव था। मगर, वह पट्टियों से ढँका था। मैंने देखकर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और रोने लगी। इसके बाद मैंने देखा कि दुबककर बैठी सनीचरी भी सिसकने लगी है। बाबू की पीठ को ज्यो-की-त्यों ढँककर मैंने पूछा, “यह तो बहुत बड़ा जखम है न, बाबू ?”

“ऊपर से कुछ नहीं है। ऊपर तो पट्टी-ही-पट्टी है। जख्म भीतर बहुत गहरा है। भीतर तो गड्ढा हो गया है।” बाबू ने बतलाया।

अब माँ और जोर-जोर से रोने लगी। सनीचरी रोती जरूर थी, मगर ससुर के सामने खुलकर रोया नहीं जाता था। रुलायी तो मुझे भी आ रही थी, लेकिन मैंने जान-बूझकर अपने कलेजे को काठ बना लिया। जब सब लोग रोने लगते, तो बाबू का भी साहस टूट जाता। चटगाँव के अस्पताल से वे इतनी दूर घर क्यों भाग आए थे ? हमलोगों के लिए, हमलोगों की मुहब्बत के लिए, हमसे सेवा कराने के लिए, हमसे धीरज पाने के वास्ते। उनकी सेवा करना जरूरी था, रोना नहीं।

घर आने के सात-आठ रोज बाद तक बाबू कहीं ले जाने लायक नहीं हुए। एक तो कमजोरी थी, दूसरे घाव था, तीसरे उनके मन में बहुत गहरा डर समाया हुआ था। बाबू के पास चार रुपए और थे, उसका अन्न खरीदा गया। लेकिन, हमलोग उस अन्न को नहीं खाते थे। सोचा गया था कि अगर उसी से सब कोई खाने लगेगा, तो दस रोज में ही खत्म हो जायगा और बाबू की कमजोरी बनी ही रह जायगी। फिर आठ-दस रोज के बाद भी उन्हें पैदल नहीं ले जाया जा सकता था। कोस भर का रास्ता बिलकुल झुककर तय करना मुश्किल था। तनकर चलने से दर्द होता। हार कर मैं केवल राउत के दरवाजे पर पहुँचा। राउत से बाबू की हालत कह सुनायी। उसने मुझ पर बड़ी दया की।

“दिघवारा अस्पताल ले जाओगे न ?” राउत ने पूछा।

“हाँ।” मैंने कहा।

“बैल तो आजकल बैठे ही हैं, बैलगाड़ी भी है। ले जाओ।”

“मगर मुझसे भाड़ा कुछ कम लेना होगा।” मैंने कहा।

“भाड़े की कोई बात नहीं है, भाड़ा तुम एक पैसा भी मत देना। कल नौ बजे आ जाओ। बैल खा-पीकर तैयार रहेंगे। जोतकर अपने ले जाना। हाँकना जानते हो न ?”

“हाँ ।”—मैने कहा, “मगर तुम तो नौ बजे बुला रहे हो राउत ! सुना है, अस्पताल बारह बजे बंद हो जाता है । एक डेढ़ घंटा तो रास्ते में ही लग जायगा । कुछ और सबेरे बैलों को खिला दो ।” मैंने कहा ।

“अच्छा, तुम और सबेरे आ जाना । मैं बैलों को खिला दूँगा ।”

“राउत, तुम्हें बड़ा धरम होगा ।”

“इस समय चाहिए था कि ठाकुर तुम्हारी मदद करे ।”

“चाहने की बात कुछ और, और करने की बात कुछ और होती है राउत ।” मेरे मुँह से निकला ।

“अब तो सुना है, बच्चा बाबू कंगरेसी हो गए हैं ।”

“सो तो सही है । वे भी कहते हैं, जमींदारी राज नाश हो ।”

“और कर क्या रहे हैं, सो तो देख ही रहे हो ।” राउत बोला ।

उस वक्त उस बुढ़े की आँखें अजीब तरह से मेरी ओर उठी और चमककर रह गई । उसने मुस्कुराकर कहा, “अब हुरार भी बकरी की रखवारी करने के लिए जंगल छोड़-छोड़कर गाँवों में आ रहे हैं... हो हो हो...।”

इस तरह राउत के हँस देने पर मैंने उसके खइनी से सड़े हुए दाँतों को देख लिया । मुझे ऐसा लगा, जैसे राउत की उस फीकी हँसी में बहुत-सी बातें छिपी हों । हँसने के बाद उसकी आँखें एक बार उस ओर घूम गई थीं, जिधर ठाकुर का बहुत बड़ा मकान था ।

दूसरे रोज ठाकुर से मैंने यह कहना चाहा कि अस्पताल के डाक्टर के नाम एक चिट्ठी लिख दे । मगर बाबू ने मना किया ।

“डाक्टर उनके यहाँ बराबर आते हैं ।”

“तो ?”

“उनकी चिट्ठी से डाक्टर खयाल करेंगे ।”

“तुम्हारा यह सब सोचना बेकार है मंगरुआ !”

“क्यों ?”

“ठाकुर तो पहले चिट्ठी देगे ही नहीं, देगे भी तो उससे कुछ फायदा नहीं होगा। चिट्ठी के साथ दो-चार-दस रुपए की मदद तो नहीं करेंगे। फिर चिट्ठी लेने से क्या फायदा ? आखरी वक्त यह दाग मत लगवाओ।” बाबू बोले।

“दाग ?” मैंने अचरज से पूछा।

“हाँ, दाग नहीं तो और क्या ? तीन *पुस्त तक हमलोग इनके दरवाजे की †धूर बने रहे। अब ठाकुर हमलोगों को बुहार कर फेंक दें, वही अच्छा है। वे तो चाहते ही हैं कि हमलोग इतने मजबूर बने रहे कि दुनियाँ देखने का मौका ही न मिले।”

उस रोज बाबू की बात मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका था। बाप-बेटे हम दोनों मूर्ख थे। मगर, बाबू की उस बात का माने आज लगाता हूँ, तो उसमें बहुत कुछ मिलता है। बैलगाड़ी माँगते समय राउत ने भी जो बातें कही थीं, उनमें भी जान थी। राउत की बातें तब मुझे बे-जान जान पड़ी थी। सिर्फ राउत के उस समय के चेहरे से मैंने अंदाज लगाया था कि उसने कोई गहरी बात जरूर कही है, मगर वह गहरी बात क्या हो सकती है, मैं नहीं समझ सका था।

शाम को मैं ठाकुर के यहाँ गया। मैं जिधर बैठकर कुट्टी काटता था, उधर ही दुबका रहा। थोड़ी देर में अछैबरा आया।

“अरे, यहाँ क्यों बैठा है मंगरआ ? कुट्टी काट चुका है न ?” अछैबरा ने पूछा।

“हाँ, कुट्टी तो भोरे आकर काट ही गया।”

“तब अभी कैसे ? मैं सब समझता हूँ।”

“क्या समझते हो ?”

“कुछ फटकने आए होंगे।”

“घूत्...।”

“तो ?”

“तुमसे एक बात कहने आया हूँ ।”

“मुझसे ? क्या कहेगा, कह ।” अछैबरा बोला ।

“मेरे बाबू चटगाँव से आ गए हैं, सो तो जानते ही हो ? बाबू को बमगोला लग गया है, यह भी तुमसे बतलाया था ।”

“हाँ, वह तो कहा था ।”

“कल बाबू को अस्पताल ले जा रहा हूँ । कुट्टी काटने नहीं आऊँगा ।”

“मुझसे क्या कहता है, मैं मालिक हूँ क्या ?”

“मालिक से यह बात कैसे कहने जाऊँगा ?”

“किससे कहने से अच्छा होगा, बतलाओ न । बाबू को अस्पताल ले जाना जरूरी है ।”

“मोनसीजी से कह दो ।”

“बाप रे बाप, वे तो खिसियाने लगेंगे ।”

“सो मोनसीजी जाने ।”

“अच्छा, एक बात ।”

“क्या ?”

“तुमसे कह दे रहा हूँ । वे लोग पूछें, तो तुम बतला देना । इतना तो कर सकते हो ।”

“बतला दूँगा ।”

“अच्छा, अब मैं चला ।”

अछैबरा से इतनी बातें करके मैं ठाकुर के यहाँ से लौट आया । सोचा, जो होगा सो देखा जायगा । घर आकर मैंने बाबू से यह सब नहीं बतलाया । मोनसीजी से छुट्टी न माँगने की वजह थी । वे किसी के दुःख को समझनेवाले आदमी नहीं थे । एक रोज के लिए फुर्सत देने के बदले वे डॉट-फटकार सुनाते लगते । और, तब मुझे दूसरे दिन बाबू को अस्पताल नहीं ही ले जाना पड़ता । दूसरे रोज ठीक वक्त पर मैं

राउत के यहाँ से बैलगाड़ी ले आया। बाबू बोले, “राउत का नाम कभी भूला नहीं जायगा।”

“बड़ा दयामंत आदमी है।” माँ बोली।

मैंने पहले बैलों को जुए से निकाल दिया। अब बाबू को गाड़ी पर चढ़ाने में आसानी हो गई। धीरे-धीरे बाबू को सहारा देकर पलानी से बाहर निकाल लाया और गाड़ी के बीच में बैठा दिया। फिर बैलो को जुए से लगाया। मैंने बाबू से पूछा, “सरकारी अस्पताल का कागज ले लिया है न?”

“हाँ।” बाबू बोले।

“अच्छा, अब अमिका भवानी का नाम लेकर चलो।” मैंने कहा और बैलगाड़ी पर चढ़कर बैलो को ललकारा।

बैलो को एक पतले पेड़ में बाँधकर, बाबू को लेकर जब अस्पताल में आया, तो देखा, बड़ी भीड़ है। रंग-बिरंग के रोगी आए थे। डाक्टर का पता नहीं था। सभी डाक्टर के आने की राह देख रहे थे। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि कहीं फीस पर गए हैं। इंतजारी में ही दस बज गए। दस बजे आए भी तो पहले उन लोगों के लिए दवा लिखने लगे, जो अच्छे-अच्छे कपड़े पहने हुए थे। जिनकी जुल्फी सवारी हुई थी। जिनके बालों में महकनेवाला तेल था, जिनके हाथ में घड़ी बँधी थी। मेरे बाबू की तरह दो-तीन मरीज और थे और उनके पास भी चटगाँव के सरकारी अस्पताल का कागज था। मेरी एक आँख डाक्टर की ओर थी और दूसरी आँख गाड़ी और बैलो की ओर। बाबू वहीं ओसारे पर पेट की ओर से झुककर बैठे थे।

हम लोगों का नंबर पीछे आया। मैं बाबू के साथ डाक्टर के पास पहुँचा। मैंने सबसे पहले डाक्टर के सामने चटगाँव के सरकारी अस्पताल से मिला हुआ कागज रखा। डाक्टर ने गुस्से में कहा, “यह सब क्या पोथी-पतरा है?”

“मालिक, ये मेरे बाप हैं ।”

“तो इस कागज से क्या मतलब ?”

“सरकार, मैं वहीं कमाता था । बमगोला लग गया ।” बाबू बोले ।

“यह कागज वहीं के सरकारी अस्पताल का है ।” मैंने कहा ।

“अच्छा ।” कहकर डाक्टर उस कागज को पढ़ने लगा । थोड़ी देर कागज को उलट-पुलटकर देखने के बाद उसने बड़ी जल्दीबाजी के साथ कहा, “कहाँ है जख्म, दिखलाओ ।”

बाबू डाक्टर के और नजदीक आकर खड़े हो गए । मैं समझ रहा था कि डाक्टर अपने से देख लेंगे । मगर उसने मुझे कहा, “अरे, मुँह क्या देख रहा है, कुरता हटाओ न ।”

“अच्छा, मालिक ।” कहकर मैंने बाबू की पीठ से कुरता हटाया । डाक्टर बोला, “ऐसे नहीं होगा, अदर चलो ।”

बगल में ही एक कोठरी थी । उसके दरवाजे पर परदा टँगा था । बाबू डाक्टर के साथ उसी में चले गए । मैं बाहर ही खड़ा रहा । मुझे बाहर से ही बाबू के चिल्लाने की आवाज सुनायी पड़ी । लेकिन, थोड़ी देर बाद ही डाक्टर ने बाबू को उस कोठरी से बाहर कर दिया । वे फिर बरामदे पर आकर बैठ गए । मैंने पूछा, “भीतर चिल्ला क्यों रहे थे, डाक्टर ने क्या किया ?”

“घाव खोलकर देख रहा था । दबा-दबाकर पूछता था, यहाँ दुखता है ?” बाबू बोले । इसके बाद डाक्टर पुर्जा लिखने लगा । मुझसे पूछा, “नाम क्या है ?”

“भगड़ू महरा ।” मैंने कहा ।

“लो, जिधर दवा मिलती है, उधर जाकर दवा ले लो । अभी एक सूई दी जाएगी । और पट्टी भी बँधवा देना ।” पुर्जा देकर डाक्टर बोला ।

“अच्छा सरकार !”

“सरकार, घाव छूट जायगा न ?” अपनी जगह से उठकर बाबू ने पूछा ।
 “जाओ, पट्टी बँधवाओ । बकबक मत करो ।” डाक्टर ने डाँट दिया ।
 दूसरी ओर बड़ी-बड़ी दो कोठरियाँ थीं । एक में दवा मिल रही थी
 और दूसरी में मरहम । पट्टी भी उसी कोठरी में बाँधी जा रही थी ।
 खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे । दवा मिलनेवाली कोठरी की खिड़की
 पर लोग कसमकस किये हुए थे । शोर हो रहा था—

“मेरा पुर्जा पहले से लिखाया हुआ है, कंपोटर बाबू !”

“बाबू हमको चार कोस जाना है ।”

“सरकार, मेरा दे दीजिए । बचा बेहोश पड़ा है ।”

“मेरा सिर चक्कर खा रहा है मालिक, मुझे मत खड़ा कराइए ।”

“सभी चुपचाप खड़े रहो । जिसका नंबर आएगा, उसे दवा
 मिलेगी । तकलीफ तो सभी को है । जो लोग ज्यादा शोर मचायेंगे,
 मैं उनका पुर्जा फेंक दूँगा, नहीं तो चुपचाप खड़े रहो ।” भीतर से
 कपोटर बोला ।

“सलाम हुआ ।” एक सिपाही आकर बोला ।

“सलाम ।” कंपोटर ने कहा ।

“दवा चाहिए ।”

“कैसी दवा, पुर्जा देखू ।”

“दारोगाजी के नौकर की है । उसे सदीं हो गई है न ।”

“हाँ, वह तो खुद आकर ले जाता था । आज क्यों नहीं आया ?”
 कपोटर ने पूछा ।

“आज डेरे पर काम में फँसा है ।”

“दीजिए पुर्जा ।”

और, तब कंपोटर ने शीशी में दवा भरकर दे दी । लोग, जो खिड़की
 पर खड़े थे, चुपचाप मुँह ताकते रहे । मुझे ऐसा लगता था, जैसे कंपोटर
 को अपने-पराये से ही फुर्सत नहीं थी । मैंने कंपोटर को पुर्जा दिखलाया
 तो उसने कहा, “उस कोठरी में जाकर पट्टी बँधवा लो ।”

मैं बाबू को लेकर दूसरी कोठरी में गया। पट्टी बंधवाते वक्त बाबू ज्यादा चिल्लाये। मेरे सामने जब उनका घाव खुला था, तो देखकर मैंने आँखें बंद कर लीं। पट्टी बंधवा लेने के बाद मैंने पूछा, “सरकार, डाक्टर बाबू ने कहा है, सूई दी जायगी और दवा भी मिलेगी। सो नहीं मिलेगी, क्या?”

“मिलेगी, उस कोठरी में जाओ।” वहाँ के कंपोटर ने उसी ओर इशारा किया, जिस ओर दवा मिल रही थी। अब मैंने बाबू को ओसारे में बैठा दिया और दौड़कर जरा बैल और बैलगाड़ी को देख आया। फिर यहाँ के कंपोटर से मिलकर कहा, “मालिक, सूई और दवा भी मिलेनी न? डाक्टर बाबू ने कहा था।”

“पुर्जा नीचे रखो। नंबर आने पर जो होगा, सो मिलेगा।” कंपोटर बोला। मेरा पुर्जा करीब पचास पुर्जों के नीचे पड़ गया और उसका नंबर तब आया, जब देखा कि अस्पताल बंद हो रहा है। हल्ला हो रहा था—चलो चलो। बंद करो।

“सरकार, मेरी दवा और सूई? मेरा पुर्जा देखिए न।” मैंने हाथ जोड़कर कंपोटर से कहा। तब मेरा पुर्जा देखकर उसे मेरे हाथ में लौटाते हुए उसने कहा, “यह सब यहाँ नहीं है। बाजार से खरीदकर ले आओ, यहाँ दे दी जायगी।”

तब मैं कुछ बोल न सका। बाबू ताक रहे थे।

ग़ारह



उस रोज बाबू को फिर बैलगाड़ी पर बैठाकर मै आमी चला आया । राउत को बैलगाड़ी वापस कर दी । डाक्टर से चलकर कहने की हिम्मत न पड़ी कि कंपोटर कह रहा है कि न तो यहाँ सूई है और न दवा । डाक्टर ने कहा था, “रोज आकर पट्टी बँधवा जाना ।”

दूसरे रोज फिर राउत की बैलगाड़ी पर बाबू को बैठाकर ले गया । आज जाते-जाते ही डाक्टर मिल गया । मै डरते-डरते उसके पास जाकर खड़ा हो गया । बाबू को सामने ही ओसारे में बैठा दिया था ।

“क्या है ?” डाक्टर ने मेरी ओर देखकर पूछा ।

“सरकार . ।” इससे आगे मुझसे बोला न गया ।

“साफ कहो न, सरकार-सरकार क्या... ?”

“सरकार, कल पट्टी तो बँध गई । मगर सूई न मिली ।”

“क्यों ?

“मालिक, कंपोटर बाबू कहते हैं कि यह सब यहाँ नहीं है । खरीदकर ले आओ । सूई यहाँ दे दी जायगी ।”

“ठीक है, ले आओ खरीदकर ।”

“सरकार, रुपए मिलेंगे तब तो खरीदकर लाऊँगा ।” मैं बोला । पीछे पता चला कि यह मेरी बेवकूफी थी ।

“रुपए यहाँ थोड़े मिलेंगे ? यहाँ दवा बँटती है, रुपए नहीं बँटते ।”

“सरकार, बाबू तो कहते हैं कि उनके कागज पर अस्पताल से सूई दवा, पट्टी और मलहम सब कुछ मुफ्त ही मिलेगा ।”

“हाँ, मिल सकता है। मगर जब अस्पताल में इस वक्त नहीं है, तो खरीदकर ले आना होगा।”

बाबू को अभी पट्टी नहीं बँधवायी। वे ओसारे पर बैठे थे। ओसारे के सामने ही एक पेड़ में बैल बँधे थे। मैंने बाबू के पास आकर कहा, “तुम एक काम करो, बाबू।”

“क्या कहते हो, मुझसे कौन काम होगा?”

“कुछ करना नहीं है। तुम चुपचाप यही बैठे-बैठे सामने बैलगाड़ी को देखते रहो।”

“और, तू?”

“मैं जरा दवाखाने में जाता हूँ। आगे दवा की दूकान से तुम्हारी सूई और दवा का दाम बूझ आता हूँ।”

“मगर पैसे हैं जो खरीदेगा?”

“इसीलिए तो पहले दाम बूझ आता हूँ। रुपए-आठ आने के भीतर होनेवाला होगा, तो कोई उपाय सोचूँगा।”

“अच्छा, जा। मगर जल्द आना।”

“बस, जाते देर होगी, आते नहीं।” कहकर मैं अस्पताल से बाहर निकला और जिधर दवा की दूकानें थीं, उधर बढ़ा।

दवाखाने में दाम बूझने पर पता चला कि चौदह रुपए नौ आने का हिसाब है। मैं दवाखाने से उल्टे पाँव भागकर बाबू के पास चला आया। चौदह रुपए नौ आने की दवा खरीदना बड़ा मुश्किल काम था। मैं दूकानदार से यह भी न पूछ सका कि हर दो रोज के बाद जो सूई पड़ने के लिए लिखा है, उसमें कितने दिनों तक ऐसे सूई पड़ती रहेगी? रुपए-आठ आने की वहाँ कोई बात ही नहीं थी। जब मैं बाबू के पास आ गया, तो बाबू ने पूछा, “क्या हुआ मंगरुआ?”

“कुछ नहीं।” मैं बोला।

“दवे का दाम बूझने गया था न?”

‘हाँ, उतने की दवा खरीदना हमारे बूते से बाहर की बात है ।’

‘कितना बतलाया, तीन-चार रुपए लगेंगे क्या ?’

‘दवा और सूई दोनों का दाम चौदह रुपए नौ आने । और, ऐसी सूई न-जाने कितनी बार लेनी पड़ेगी ।’ मैं बोला ।

‘सो क्या ?’ बाबू ने पूछा ।

‘दुकानदार ने बतलाया कि हर दो रोज पर एक सूई पड़ने के लिए लिखा है ।’

‘अरे बाप . इतने रुपए कहाँ से...? ..!’

‘चलो, पहले पट्टी बँधवा लो । घर पर चलकर सोचेंगे ।’ मैं बोला ।

‘यह बतला मगरुआ कि मरने में कितने पैसे खर्च होंगे ?’

‘मरे तुम्हारा दुश्मन । ऐमे मत बोलो ।’ मेरी आँखों में आँसू भर आए ।

‘मैं तो समझता हूँ कि मरने में इससे कम ही पैसे खर्च होंगे । पाँच-सात बिरादर को चिउड़ा-दही खिला देना ।’

‘चलो, उठो । यह सब मत बोलो ।’ मैंने कहा ।

इसके बाद बाबू को मैं धीरे-धीरे उस कोठरी में ले गया, जिसमें पट्टी बाँधी जाती थी । पट्टी बँधवाते वक्त बाबू पहले रोज की तरह फिर चिल्लाये । मगर फिर चुप हो गए । उस कोठरी से बाहर आते ही बाबू ने मुझसे कहा, ‘मन बड़ा थका लगता है । पहले यही ओसारे पर बैठ लेने दे, फिर चलूँगा ।’

‘अच्छी बात है, बैठ लो ।’ मैंने कहा और बाबू के साथ वहाँ बैठ गया ।

अभी बाबू के साथ वहाँ बैठा था कि वही कंपोटर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, जो दवा बाँटता था । उसने मुझे बहुत धीरे-से बुलाकर कहा, ‘इधर आओ ।’

‘क्या हुकूम है, सरकार !’

“दवा और सूई खरीद लाये ?”

“नहीं मालिक, दाम बूझ आया हूँ ।”

“कितना दाम है ?”

“चौदह रुपए नौ आने, मालिक ।”

“तो दवा खरीदी नहीं ?” कपोटर ने पूछा ।

“नहीं मालिक, इतने रुपए कहाँ पाऊँगा ?”

“कुछ कम दाम में दिलवा दूँ, तो खरीदोगे ?

“कितने में सरकार ?” मैंने पूछा ।

“आठ-नौ रुपए में हो जायगा । रुपए हैं, तो मुझे दो, मैं ला देता हूँ ।”

“मगर सरकार, इतने रुपए भी नहीं हैं मेरे पास । मैं तो समझता था कि रुपये-आठ आने में हो जायगा ।”

“पाँच रुपए भी हैं, तो निकालो । मैं सूई और दवा दोनों देता हूँ ।” कपोटर बोला ।

“सरकार, मेरे पास सिर्फ सात आने पैसे हैं । एक रुपये में काम चलनेवाला हो तो कहिए, कल दस आने और लेता आऊँ ।” मैंने कहा ।

“अस्पताल, थाने और कचहरी में इतना कजूस नहीं बना जाता ।” कपोटर बोला ।

“मैं सच कह रहा हूँ सरकार, मेरे पास छः आने से ज्यादा एक धेला भी नहीं है ।”

“तो जाओ, मौज करो । नौ की लकड़ी नब्बे खर्च करो ।”

“सरकार...?” मैं बोलता रह गया ।

“जाओ बकवास मत करो । मुझे अपना काम करने दो ।” कहकर कपोटर फिर दवा बाँटनेवाली कोठरी में घुस गया ।

इस रोज भी बाबू को पट्टी बँधवाकर मैं गाँव वापस चला आया । राउत को फिर बैलगाड़ी लौटा दी । जब शाम हुई, तो खेखर काका मेरी पलानी के सामने आकर खड़े हो गए । पुकारा, “मंगरुआ, मंगरुआ ?”

“क्या है खेखर काका ?” मै पलानी से बाहर निकल आया ।

“भगडू भाई की दवा हो रही है ?” उन्होंने पूछा ।

“हाँ, सिर्फ पट्टी बँधती है ? दवा और सूई खरीदकर लानी पड़ेगी ।”

“और अस्पताल में ?”

“अस्पताल में कंपोटर ने बतलाया कि वहाँ नहीं है ।”

“फिर कैसे काम चलेगा ?”

“बड़ी मुसीबत है खेखर भाई...।” कहते हुए बाबू भी घुसुकते-घुसुकते पलानी से बाहर चले आए । मैं दौड़कर भीतर से टाट ले आया । खेखर काका और बाबू की ओर देखकर कहा, “इस पर बैठो न ।”

बाबू और खेखर काका दोनों टाट पर बैठ रहे । मै भी बगल में बैठ गया । खेखर काका अपने अँगोछे के एक कोने में बीड़ी-दियासलाई बाँधे हुए थे । उन्होंने बाबू से पूछा, “बीड़ो पियोगे, भगडू भाई ?”

“है तो पिलाओ ।” बाबू बोले ।

“लो...।” बाबू को एक बीड़ी देते हुए खेखर काका ने मुझसे भी पूछा, “तू भी लेगा ?”

“दे दो, है तो ।” मै बोला ।

उन दिनों मेरे समाज के लोगो को इतनी अक्ल कहाँ थी कि बाप के सामने बीड़ी नहीं पीनी चाहिए । सो, हम तीनों ने पहले बीड़ी सुलगायी और तब बाबू की बीमारी के बारे में बातें होने लगीं । बाबू ने खेखर काका से कहा, “अपनी देह की हालत मै तो खूब जानता हूँ, खेखर भाई । मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे भीतर-ही-भीतर मेरा घाव बढ़ रहा है ।”

“और पट्टी बँधवा आते हो, सो ?”

“उससे कुछ आराम नहीं मालूम होता । दर्द और टीस पहले से ज्यादा है ।”

“दवा और सूई खरीदने के लिए पैसे भी तो नहीं हैं ।” खेखर काका बोले ।

“वही तो और आफत है। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता, खेखर काका।” मैंने कहा।

मेरे इतना कहने के बाद सिर नीचे झुकाकर खेखर काका कुछ तजबीज करने लगे। पीछे सिर उठाकर बोले, “मेरी नजर में एक उपाय सूझ रहा है, करो तो अच्छा होगा।”

“क्या, कहो।” मैं बोला।

“थोड़ी तकलीफ उठानी पड़ेगी। मगर कौन जानता है, किसके हाथ का जस लिखा हो।”

“सो तो है। कहो न।” बाबू ने कहा।

तब खेखर काका चुप होकर अधजली बीड़ी पीकर, जबतक उन्होंने उसे फेक नहीं दी, तब तक न-जाने क्यों चुप रहे। बीड़ी फेककर बोले, “तुम चुपचाप छपरा चले जाओ, फगड़ू!”

“छपरा?” बाबू को अचरज हुआ।

“हाँ, छपरा सरकारी अस्पताल में।”

“वहाँ क्या दवा और सूई मुफ्त मिल जायगी?” मैंने पूछा।

“हाँ, वहाँ तो खाने के लिए भी खैराती मिलेगा। जिला का अस्पताल है, कोई खेल थोड़े ही है?”

“तुम इस बात को ठीक से जानते हो, खेखर भाई?” बाबू ने पूछा।

“हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ।”

“तब तो बड़ा अच्छा है। वही चलना चाहिए।” बाबू बोले।

“एक आदमी का साथ में रहना बड़ा जरूरी है।” खेखर काका ने कहा।

“सो तो मैं साथ रहूँगा ही।” मैंने कहा।

“तुम्हें अपने खाने और रहने का इंतजाम अलग करना होगा।” खेखर काका ने बतलाया।

“तुम कहते हो कि खाने के लिए खैराती मिलेगा।” मैं बोला।

“खैराती खाना तो सिर्फ रोगी को मिलता है।” खेखर काका बोले।

अब मुझे फिर सोचना पड़ गया। यहाँ तो सुबह खाने के लिए गजरे का इंतजाम करता, तो शाम को भूखे सो रहता था। कभी-कभी ठाकुर के घर से सेर-आध सेर रहरी मिल जाती, तो भूँज-पीसकर माँ सत्तू बना देती थी। मगर, वहाँ क्या होगा? खाने-पीने में † कोताही होने की वजह से मेरा बदन भी टूटता जा रहा था। बदन की हड्डी-हड्डी निकली आ रही थी। मुझे देख-देखकर अकेले मे माँ रोती थी। सनीचरी से पता चलता कि रो-रोकर कहती है कि मेरे बेटे की जवानी में घुन लग रहा है। मगर मेरी जवानी को बचाने के लिए उसके पास रोने के सिवा और कोई दूसरा रास्ता नहीं था। सनीचरी भी गल-गलकर पानी हो रही थी।

एक दिन मैंने सनीचरी से कहा, “घर की हालत देख रही हो। तुम नइहर चली जाओ। जवानी की भूख नहीं सही जाती। वहाँ भर पेट रुखा-सूखा खाने के लिए तो मिलेगा।”

“तुम मेरे मरद हो, तुम्हें छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? मुझे पाप जो लगेगा।” सनीचरी ने कहा था।

“भूखे मरते अच्छा लगता है?” मैंने पूछा।

“अच्छा तो नहीं लगता। मगर जब रामजी तुम्हारा दिन लौटायेंगे, तो मेरे बदले और कौन सुख करेगा? मैं भाई-बाप के दरवाजे पर नहीं जाऊँगी।” सनीचरी ने जवाब दिया।

हाँ, तो खेखर काका के सुझाव से हमलोगों को बड़ा संतोष मिला। अब एक सवाल यह आ खड़ा हुआ कि छपरा में मेरे खाने और रहने का कौन-सा इंतजाम होगा? इस पर बाप-बेटे दोनों का माथा चकराने लगा। गाँव में पैसेवाले तो बहुत थे, मगर कर्ज देनेवाला कोई नजर नहीं आ रहा था। इस बातचीत के दूसरे ही दिन खेखर काका के लड़के टीपू

भाई आ पहुँचे। वे रात में आए थे। मुझसे सुबह दरियाव किनारे भेंट हुई। पवलगी हो लेने के बाद मैंने टीपू भाई से बाबू की हालत बतलाई।

“छपरा ले जाने की सलाह किसने दी?” टीपू भाई ने पूछा।

“तुम्हारे बाबू, खेखर काका ने।” मैं बोला।

“छपरा भी अच्छा अस्पताल है। मगर, छपरा से अच्छा पटना ले जाना होगा।”

“तो कैसे?” मैंने पूछा।

वहाँ का अस्पताल बहुत बड़ा है। वहाँ छपरा अस्पताल से बड़े-बड़े डाक्टर हैं।” वे बोले।

“तो बाबू से कहूँ?” मैंने पूछा।

“कहो, मेरे खयाल से पटना लाख दर्जें अच्छा रहेगा। वहाँ के अस्पताल का बड़ा नाम है।”

‘मगर एक बात सुनो न, टीपू भइया।’

“कहो।”

“इस समय हाथ बहुत † सकेत पड़ा है। बाबू भी चटगाँव से आए, तो कुछ लेकर नहीं आए। बमगोला लग गया था, सो वहीं अस्पताल में भरती थे। खाली हाथ छपरा-पटना जाते बड़ा डर लगता है।”

“तो?”

“तो फिर क्या बतलाऊँ? सुना है, अस्पताल में खैराती खाना मिलता है, मगर सिर्फ रोगी को। मान लो, बाबू को अस्पताल से खाना मिल जायगा, मगर मैं? कहते हैं, पटना बहुत बड़ा शहर है। मगर, जहाँ कोई अपनी जान-पहचान का नहीं, वहाँ भला किसे कौन पूछता है?”

“सो तो है। मगर सुना है, तुम्हारा कोई वहाँ रहता है।”

“अरे हाँ, ठीक तो कहा! मेरे मामा वही रहते हैं।”

“तो फिर बाबू को पटने ही ले जाओ। रामजी चाहेगे, तो सब रोग भाग जायगा।”

“मगर, फिर भी हाथ में कुछ तो रखना चाहिए न।”

“कुछ तो रखना ही चाहिए। मामा कब तक खिलायेंगे ? कुछ अपनी कमर का भी भरोसा करके जाना।”

इतनी बातें हो लेने के बीच हमलोग बालू से दाँत साफ करके हाथ-मुँह धो चुके थे। अब पलानी की ओर लौटने की बारी आई। अभी ही मैं टीपू भाई से कुछ कहना चाहता था, मगर हिम्मत नहीं होती थी। अँगोछे से मुँह पोंछकर जैसे ही टीपू भाई मेरे साथ घाट पर चढ़ने लगे कि मैंने कहा, “खाकी सिगरेट है तो निकालो न टीपू भइया !”

“है, निकालता हूँ।” जरा हँसकर टीपू भाई बोले और उन्होंने अपने कुरते से एक बीड़ी निकालकर मेरी ओर बढ़ा दी।

“और तुम ?” बीड़ी लेकर मैंने पूछा।

“मैं भी पीता, हूँ।” कहकर टीपू भाई ने खुद भी एक बीड़ी निकाली और दियासलाई से उसे सुलगाकर हम दोनों पीने लगे। इस तरह बीड़ी पीते-पीते हम दोनों घाट के ऊपर आ गए। इन दिनों मैं कुछ देर करके भी ठाकुर के यहाँ कुट्टी काटने जाता, तो मुझे जरा-सा डपटकर छोड़ दिया जाता था। बाबू की बीमारी और लाचारी की वजह मुझसे भी कुछ देर हो ही जाती थी। मैं भी थैथर हो गया था। इसलिए संकोच तो हो रहा था, मगर मैंने सोच लिया कि किसी तरह टीपू भाई से मुझे वह बात कह देनी ही चाहिए, जो मैं कहना चाहता हूँ। बीड़ी पीते-पीते मैंने टीपू भाई की ओर एक बार एक टक से ही देखना शुरू कर दिया। ऐसा जान-बूझकर नहीं किया, बल्कि मुझसे ऐसा अपने आप होने लगा। टीपू भाई की बीड़ी खतम हो गई, तो उसे एक ओर फेंककर उन्होंने कहा, “बस, आँख मूँदकर बाबू को पटने ही ले जाओ।”

“वही तो मेरा भी विचार हो रहा है।” मैंने कहा।

“वहाँ बड़े-बड़े डाक्टर रहते हैं, कोई खेल नहीं है, पटना अस्पताल।”

“ठीक कहते हो टीपू भइया, सूबेदार सिंह का बेटा जब आम के पेड़ से गिरा था, तो उसके दोनों पैर टूट गए थे। उसी रोज सूबेदार सिंह उसे पटना ले गए। महीने भर के बाद देखा कि लौंडा गली-गली दौड़ने लगा। मगर सूबेदार सिंह के पास तो पैसे हैं, टीपू भइया। ठाकुर के गोतिया हैं न ?” मैंने बताया।

“इससे क्या ? जिसके पास ज्यादा पैसा होता है, ज्यादा खर्च करता है। तुम उधार-पर्ई च लेकर जाओगे, हिसाब से खर्च करना।”

“तुमसे एक बात कहूँ, टीपू भइया ?”

“कहो।”

“गाँव में कोई एक पैसा भी हमलोगो को उधार नहीं दे सकता।”

“हाँ जी, कोई सीधी तरह बात करने को तैयार हो, तब तो कुछ कहा जाय।”

“ठीक कहते हो टीपू भइया। तुम तो खुद समझदार हो। लेकिन, तुमसे मैं एक बात कहूँगा।”

“कहो न।”

“कहूँ ?” मैंने सवाल दुहराया। कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

“हाँ, कहो।”

“ऐसी हालत में तुम कुछ नहीं मदद करोगे ?” कहकर मैं टीपू भाई का मुँह देखने लगा।

“करूँगा, मगर तुम कैसी मदद चाहते हो ?”

“तुम समझे नहीं ? परदेस से कमाकर आए हो। दस-पाँच भी दे दो, तो बाबू की जान बच जाय। बाबू बच गए, तो जिंदगी भर तुम्हारा नाम लूँगा, टीपू भाई।” अब मैंने बात इस तरह साफ कर दी। इतनी बातें करते-करते हम खैंखर काका के घर के पिछवाड़े में आ गए थे। घर बहुत नजदीक था। बात साफ करके कह देने के बाद टीपू भाई मेरा मुँह देखने लगे, चुपचाप।

“क्यों, नहीं होगा तुमसे ?” इस बार मैंने अधीर होकर पूछा । और, मन में दुःख भी हुआ कि मैंने कहाँ-से-कहाँ रुपए माँग भी दिये ।

“होगा ।” टीपू भाई बोले ।

“कितना दे सकते हो ?”

“यह नहीं कह सकता । घर में जाने दो ।”

“अभी दोगे ?”

“हाँ, अभी दे दूँगा । तुम रुगडू काका को लेकर चले ही जाओ ।”

“अच्छा, मैं आज ही चला जाऊँगा ।”

“एक काम करो । तुम यही बाहर खड़े रहो । मैं लेकर आता हूँ । मगर मेरे बाबू से मत बतलाना ।”

“नहीं, बतलाऊँगा ।”

“तो ठहरो, मैं अभी आता हूँ ।”

मुझे वहीं पिछवाड़े में ठहराकर टीपू भाई अपने घर में चले गए । थोड़ी देर बाद निकलकर मेरे पास आए, तो बोले, “चलो, उधर मंदिर की ओर । वही बात कर लेगे ।

“चलो ।”

हम दोनों अमिका भवानी के मंदिर की ओर बढ़े । अब शायद पडा लोग अमिका भवानी को जगा रहे थे । मंदिर से घटे की टुनटनाहट सुनायी दे रही थी । वहाँ से चलकर हमलोग नीम के पेड़ के नीचे आकर खड़े हो गए ।

“तुमने जितना कहा था, उतना नहीं हो सका ।” टीपू भाई बोले ।

“कितना हुआ ?”

“लो न ।” कहते हुए टीपू भाई ने मेरे हाथ पर चाँदी के छः रुपए रख दिये ।

“इस मौके पर इतना भी मेरे लिए सपना था, टीपू भइया !” मैंने कहा ।

“इसे रखो और बाबू को ले जाने का इंतजाम करो ।”

“मैं कमाने लगूँगा, तो तुम नहीं रहोगे तो भी भउजी को लौटा दूँगा।”

“अच्छा, जब कमाओगे, तब मैं तुमसे खुद उधार माँग लिया करूँगा।”

इसके बाद टीपू भाई अपने घर चले गए और मै अपनी पलानी में आया। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गई थी। बाबू पुआल पर पेटकुनिएँ पड़े थे और सनीचरी, ठाकुर के घर से जो धुनाया हुआ जौ और मटर मिला था, उसमें से भूँजने के लिए मटर बीन रही थी। मैंने आते-आते ही बाबू से कहा, “अब चलना ही है बाबू, तो छपरा नहीं पटना ही चलो।”

“पटना ?”

“हाँ, वहाँ का अस्पताल बहुत बड़ा है। वहाँ बड़े-बड़े डाक्टर हैं। टीपू भाई ने कहा है कि छपरा से पटने में लाख दर्जे अच्छा इलाज होगा। और, पटने में अपने मामा भी तो हैं।” मैंने कहा। जबाब में करबट होने की कोशिश करते हुए बाबू मेरा मुँह देखने लगे।

“घबड़ाओ नहीं, मैंने पैसे का जोगार लगा लिया है।”

“कहाँ से रे ?” बाबू ने पूछा।

मैंने उन्हें सारी बातें बतला दीं। बाबू पटना चलने को तैयार हो गए। रात की गाड़ी से चलने की बात ठहरी। खेखर काका ने बतलाया था कि रात की गाड़ी से जाने पर हमलोग सुबह पटना पहुँच जायेंगे। दिन की गाड़ी से जाने पर तकलीफ होगी ! रात-भर जहाज और पटना स्टेशन पर यों ही बैठना होगा। मैं दौड़कर राउत के यहाँ बैलगाड़ी के लिए पहुँचा।

“बैलगाड़ी पर तो तुम बाप-बेटे जाओगे। टीसन से बैलगाड़ी लौटा कौन लायेगा ? मेरा बेटा तो ससुरार गया है। और, मैं जाऊँगा तो यहाँ का काम कौन देखेगा ?” राउत ने कहा। बात मेरी समझ में आ गई।

“खेखर काका का लडका बैलगाड़ी हॉकना जानता है।”

“कौन, टिपुआ ?” राउत ने पूछा।

“हाँ।”

“ठीक है, उसे साथ लेते जाओ। तुमलोगो को टीसन पर उतारकर बैलगाड़ी ले आएगा।”

ठाकुर के घर से मैं कुट्टी काटकर लौटा, तो स्टेशन से बैलगाड़ी लौटाकर ले आने के लिए टीपू भाई को तैयार कर लिया। वे बोले, “जरूर चलूंगा। तुम्हारे बाबू अच्छे हो जायेंगे, तो भरपेट ताड़ी पिलाना। अपने सामने लबनी उतरवाऊंगा।”

“जरूर पिलाऊंगा। भगवान तुम्हारी बात सच निकाले।”

खेलावन के जरिए मैंने यह बात बूढ़े ठाकुर के कानों तक पहुँचा दी थी कि मैं अपने बाप को लेकर पटने जा रहा हूँ। कोई ठीक नहीं है, कब तक लौट सकूँगा। जवाब में ठाकुर ने बुलवाकर कुछ कहा नहीं था। इसलिए मन में उतना डर नहीं रहा। बिना बतलाये नहीं आने में बड़ा डर लगता था। अलमुनियम का थरिया, लोटा और कबल लेकर हमलोग बैलगाड़ी पर सवार हुए। अँजोरिया उग आई थी। हमलोगो को बैलगाड़ी पर चढ़ते देख माँ रोने लगी। टीपू भाई बोले, “घबड़ाने की बात नहीं काकी। पटना में बहुत बड़ा अस्पताल है। वहाँ जाने से काका का घाव जरूर छूट जायगा।”

“आओ, बैठो टीपू।” बाबू बोले।

“आया।”

मैं बाबू को ठीक से पकड़े बैठा था। जुए की ओर से उछलकर टीपू भाई बैलगाड़ी पर आ बैठे और बैलगाड़ी स्टेशन की ओर चली। और, तब मुझे अंदाज लगा कि माँ जोरो से रोने लगी है। उसकी आवाज दूर तक सुनायी पड़ती रही थी। बाबू को बहुत ढाढ़स बँध गया था कि पटना अस्पताल में जाकर वे अच्छे हो जायेंगे। इसलिए जब कभी मैं उनके मुँह की ओर देखता, तो वे खुद मुझे समझाते, “तू घबड़ाना मत। मैं अच्छा हो जाऊँगा। वहाँ तुम्हारे मामा भी तो हैं।”

हमलोगो को स्टेशन पर उतारकर टीपू भाई बैलगाड़ी लेकर आमी वापस चले गए। आज के पहले मैं कभी पटना नहीं आया था। बाबू

तो कई बार आ चुके थे। इसलिए जब टिकट कटने की घंटी बजी, तो मैंने बाबू से पूछा, “बाबू, कहाँ का टिकट लूँ ?”

“महेद्रू घाट, महेद्रू कहना।” तब बाबू मेरी ओर देखते हुए कुछ गर्दन ऊँची करके बोले।

मैंने कहा, “अच्छा, ले लूँगा।”

गाड़ी में भीड़ नहीं थी। जगह काफी होने की वजह से बाबू आराम से पेट के बल लेट गए। मैंने कंबल बिछा दिया था। मैं भी बगल में बैठ गया। दिघवारा से हमलोग सोनपुर आए और सोनपुर से पहलेजा घाट। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। पहलेजा घाट आकर, गाड़ी से बाहर निकलते ही गंगा नदी में मैंने एक अजीब चीज देखी। दूर से देखकर ही घबड़ा गया। पानी में दोतल्ला मकान खड़ा था। उसमें बस्तियाँ जल रही थीं और मकान के ऊपर से धुँआ निकल रहा था—काला-काला।

“यह क्या है, बाबू ?” मैंने बाबू से पूछा।

“जहाज है। इसी से न पटना चलना है।”

“जहाज ?” मैंने पूछा।

“हाँ, यह जहाज गंगाजी में चलता है।”

“यह तो बहुत बड़ा है।”

“हाँ, जो जहाज कलकत्ते में बर्मा और रंगून से, बोलायत और अमेरिका से आते हैं, उनके सामने तो यह कुछ भी नहीं है। वह तो छः महीने में भरती होता है और छः महीने में खाली। यह तो बहुत छोटा है, रे ?” बाबू बोले।

“बाप रे बाप। अलबत्त होता है जहाज।” मैंने अचरज से कहा।

गाड़ी से उतरे हुए सभी लोग उस जहाज की ओर लपके जा रहे थे। बाबू ने मुझे भी उधर ही चलने के लिए कहा था। मैं ज्यों-ज्यों उस जहाज के नजदीक आता-जाता, मेरी अकचकाहट बढ़ती जाती थी। आखिर मुझे बाबू के साथ जहाज में आकर बैठ जाना पड़ा। हमलोग नीचे ही बैठे। मैं तो ऊपर चला जा रहा था। मगर, बाबू ने मुझे यह

कहकर रोक लिया कि ऊपर डयोढ़ा दर्जा है। उस पर सिर्फ बड़े लोग बैठते हैं। और, सचमुच मैंने देखा भी कि ऊपर सीढ़ी से जितने लोग जा रहे थे, रेलवे के कुलियों के सिवा सब बाबू-भइया जान पड़ते थे। उनमें से आधे से कुछ कम कनटोप पहने हुए थे। हमलोगों के आस-पास और लोग भी बैठ गए। थोड़ी देर के बाद बड़े जोरों की आवाज हुई। मैं डर गया। समझा, जहाज डूब रहा है। बाबू से पूछा, “बाबू, यह क्या ?”

“भोपा बजा है। अब जहाज खुलेगा।” बाबू बोले।

इसके बाद बड़े जोरों से ‘टन्-टन्’ की आवाज सुनायी पड़ी और जहाज खुल गया। मैंने किनारे की ओर आकर देखा, ठीक नाव की तरह ही लगता था कि पानी चल रहा है और जहाज खड़ा है। जब जहाज बीच दरियाव में आ गया, तो फिर भोपा बजा। जहाज के आगे एक बड़ा-सा लालटेन लगा था, जो अपने ही मन से जिधर चाहता, घूम जाता था। यह सब देख-देखकर मैं मन-ही-मन अचरज कर रहा था। लेकिन एकाएक मैंने बाबू से पूछा, “पटने में मामो कहाँ रहते हैं, वह जगह मालूम है ?”

“मालूम है।” बाबू बोले।

मेरे और बाबू के बीच इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि जहाज का भोपा फिर दो बार बजा और बाबू ने मुझे बतलाया कि महेद्रू आ गया। जहाज किनारे लगने लगा। मैंने घाट की ओर नजर दौड़ाई। जहाज का लालटेन इस वक्त घाट की ओर ही घूम रहा था। मैंने देखा, इस पार बड़े-बड़े दोमंजिले-तिमंजिले मकान खड़े थे। अब जहाज का लालटेन कभी उन मकानों की ओर, कभी सीधे घाट की ओर घूमने लगा था।

जिस समय हमलोग महेद्रू घाट पर उतरे, उस वक्त अभी आध पहर रात बाकी थी। स्टेशन के ओसारे में बैठ जाना पड़ा। बिजली बत्ती जल रही थी। मैंने कंबल बिछा दिया, तो बाबू उस पर पेटकुनिँ सों गए। कभी-कभी उनके घाव में बड़े जोरो का दर्द हो आता था। हम भोर का इंतजार कर रहे थे। बाबू का दर्द बढ़ने से मेरी चिंता बढ़ती जा रही थी। पटना मेरे लिए बिल्कुल नया था। मैं कुछ सोच नहीं पाता था कि किस तरह से क्या होगा। बाबू को तकलीफ होती, तो कहते, “इससे तो मर जाना ही अच्छा है।”

“घबडाओ नहीं, सब अच्छा हो जायगा।” मैं कहता।

राम-राम करके बाकी रात भी कट गई। पौ फटने लगी और धीरे-धीरे काफी उजेला हो गया। अब बात यह ठहरने लगी कि पहले अस्पताल चला जाय या मामा के यहाँ। बाबू की सलाह हुई कि पहले मामा से भेंट की जाय।

मैंने बाबू की सलाह मान ली। आजकल की तरह मुरादपुर की सड़क उत्तनी अच्छी नहीं बनी थी। फुटपाथ भी इतने अच्छे नहीं थे। मैं बाबू के साथ सड़क की बगल होकर पूरब की ओर चला। बाबू को जहाँ दर्द होता, तकलीफ मालूम होती, वे वहाँ बैठ जाते थे। तब मैं भी उनकी बगल में बैठ जाता। चलते-चलते आखिर हमलोग सुल्तानगंज पहुँच ही गए। मेरे तपेसर मामा इसी मुहल्ले में रहते थे।

“देखो, यही सुल्तानगंज है।” बाबू बोले।

“हाँ।” मैंने कहा।

“देखो, यह सुल्तानगंज थाना है।” थाने की ओर इशारा कर बाबू ने कहा।

“अच्छा, यह थाना है ? बाबू, इस पर तो कोठा है।” मैंने अचरज से कहा, क्योंकि मैंने देखा था दिघवारा थाने के ऊपर कोठा नहीं था। और मेरा यही अंदाज था कि सभी थाने एक ही किस्म के होते हैं।

“अरे, यह शहर का थाना है।” बाबू ने कहा।

“अब किधर चलना है बाबू ?” मैंने पूछा।

“आ, अब तो पहुँच गया।”

“कहीं ऐसा न हो कि मामा फेरी में चले गये हों।”

“ना, इतना सबेरे ?” बाबू बोले।

इसके थोड़ी देर बाद ही बाबू बायीं ओर की गली में घुसने लगे। मुझसे कहा, “चल, अब आ गए।” मैं बाबू के पीछे-पीछे गली में घुमा। वह गली पुरानी, चौड़ी और गंदी थी। आस-पास की पतली नालियों से गदा पानी बह रहा था। आगे एक चौड़ी नाली मिली, जो बीच से बहकर गली के दोनों किनारे को आपस में मिला रही थी। यहाँ पर के सामने का मकान शायद किसी मुसलमान का था। उस चौड़ी नाली के किनारे-किनारे मुर्गियाँ खड़ी होकर नाली के पिल्लू खा रही थी। हमलोगों के नजदीक जाते ही वे उछलकर जरा बगल में हट गईं, फिर हमारे आगे बढ़ जाने पर पिल्लू चुन चुनकर खाने लगी।

“अब किधर ?” मैंने बाबू से पूछा।

“बस, अब आगे हो।” बाबू बोले।

उनके साथ मुझे भी बहुत धीरे-धीरे चलना पड़ता था। बाबू खाली हाथ थे। पास में जो कुछ था, उसकी गठरी मेरे माथे पर थी। मगर एक लाठी बाबू लिये थे, एक लाठी मेरे हाथ में थी। आस-पास में बैठे हुए कुत्ते जब हमें देखते, तो खड़े होकर भूँकने लगते थे। कुछ दूर तक तो वे मेरा पीछा भी करते। कभी कभी तो मैं डर जाता, कहीं काट

न ले। जरा और आगे जाने पर बाबू ने तनिक दूर ही से ऊँगली उठाकर कहा, “देख, उसी मे तुम्हारे मामा रहते हैं।”

“चलो।”

बाबू के साथ मैं उसी घर के दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया, जिसे तनिक दूर ही से बाबू ने दिखलाया था। छोटा-सा एक कच्चा घर था। ओसारे के लिए थोड़ी-सी जगह थी, मगर ओसारा बनाया हुआ नहीं था। उम जगह में ताड़ के पत्तों से घेरकर एक छोटी-सी पलानी बना दी गई थी। मुश्किल से उसमें तीन आदमी बैठ सकते थे। घर तो कच्चा था ही, उसकी दीवारें बहुत पुरानी और बेमरम्मत दीख रही थी। काठ का दरवाजा था, जिस पर लगाये हुए अलकतरे का कालापन उड़ता चला जा रहा था। छप्पर के अधिक-से-अधिक खपड़े टूटे जान पड़ते थे। लगता था, छप्पर नीचे की ओर घँसा जा रहा है। उस छोटे-से घर के भीतर ताड़ की चटाई बिछी थी। घर के एक कोने में दो बड़े-बड़े घड़े रखे थे। उनके मुँह पर मक्खियाँ भन-भना रही थी। भीतर दो मर्द बैठे हुए थे, वे आपस में न-जाने, क्या बातें कर रहे थे। मैंने सुनने की कोशिश न की। घर के बाहर, जो ताड़ के पत्तों की छोटी-सी पलानी बनी थी, उसमें एक जवान औरत बैठी हुई थी। उसके आगे एक घड़े में ताड़ी भरी रखी थी, जिसे मैंने जाते-जाते ही देख लिया। उस घड़े के आस-पास छोटी-छोटी लबनियाँ भी थीं और एक बहुत छोटे-से खोमचे में घुघुनी, पकौड़ी, मछली और न जाने क्या-क्या रखा था। वह औरत काली थी, मगर बड़ी तगड़ी दीख रही थी। उसने अपने गले में बड़ी मोटी हंसुली पहन रखी थी, आँखों का कोसा काजल से भरा था। देखने और बातें करने से वह चाल-चलन की खराब जान पड़ी। वहाँ पहुँचने ही उसने हमलोगों को बड़े गौर से देखा।

“आओ, आओ। भीतर ही पियोगे या बाहर?” उस जवान औरत ने कहा।

“....।” हमलोग उसका मुँह देखने लगे।

“आओ न।” वह बोली।

“नहीं, पीना नहीं है।” बाबू बोले।

“पियो, पियो। फेट-फाँट नहीं है। कसम खाकर कहती हूँ, एक बूँद भी पानी नहीं है। खजूर-ताड़ दोनों का है। एकदम ताजा, अभी का उतारा हुआ ! देख लो, दूध की तरह फेन निकल रहा है।”—बह औरत बहुत जल्दी-जल्दी आँखें मटका-मटकाकर बोलने लगी, “पियोगे, तब इसका सवाद बुझोगे। चिखना भी है। तली हुई मछली है, ताजी पकौड़ी...घुघुनी...”

“सुनो, इसमें पहले मोची लोग रहते थे न ?” बाबू ने पूछा।

“हाँ, रहते तो थे।” वह औरत बोली।

“अब नहीं रहते क्या ?”

“नहीं, अब नहीं रहते।”

“डैरा बदल दिया ?”

“हाँ।”

“फिर कहाँ डैरा लिया है, तुम्हें मालूम है ?”

“उँ हूँ । मुझे कुछ नहीं मालूम। तुम बैठकर पियो न। एकदम सस्ता है, छै आने लबनी...”

“नहीं, हमलोग उनको खोज रहे हैं।”

“तो जाओ खोजो, मुझे नहीं मालूम।”

“कहीं अगल-बगल में ही तो नहीं हैं ?”

“सो मैं कह नहीं सकती।” कहकर उस औरत ने हमलोगों की ओर से अपनी आँखें फेर ली।

उस घर से थोड़ी दूर इधर आकर बाबू बैठ गए। अब वे बहुत उदास हो गए थे। उनके चेहरे से परेशानी टपकने लगी थी। एक लंबी साँस खींचकर बाबू ने मुँहसे पूछा, “क्या मन है मंगरुआ, तू पियेगा ?”

“नहीं।” में बोला।

“तो चल अब। मामा ने तो यह डैरा छोड़ दिया। अब इतने बड़े शहर में खोज निकालना बड़ा मुश्किल काम है।” बाबू बोले।

“कहाँ चलोगे, अस्पताल ?” मैंने पूछा ।

“और कहाँ चलेगा ? चल देख, वहाँ क्या होता है ।”

“चलो, सबसे पहले तुम्हे भरती हो जाना चाहिए ।” मैंने कहा । तब बाबू वहाँ से उठे और हमलोग गली से निकलकर फिर सड़क पर आ गए ।

अब सूरज भगवान उग चुके थे । शहर में धूप फैल रही थी । छपरा की सड़कों पर मैंने मोटरगाड़ी देखी थी, मुंडा मालगाड़ी पर जाते और सड़को पर दौडती हुई लारियाँ देखी थी, मगर यहाँ सड़क पर आज मैंने एक और किस्म की हवागाड़ी देखी । इसकी बनावट भी अजीब थी । इसके पहिए बड़े-बड़े थे । इसकी तो ऊँचाई भी बहुत ज्यादा थी । इसमें छावनी थी और रेलगाड़ी की तरह इसमें भी खिड़कियाँ थी । इसमें दा दरवाजे थे । इसके पिछले दरवाजे पर एक आदमी खड़ा होकर चिल्ला रहा था—आइए चलिए बॉकीपुर, स्टेशन, दानापुर, हाईकोर्ट ।”

“चलो, इसी में बैठे । मुरादपुर तो नहीं, चौहट्टे पर उतर जायेंगे । अस्पताल वहाँ से नजदीक है ।” बाबू बोले ।

“इसमें ?” मैंने पूछा । मुझे तो अचरज हो रहा था ।

“हाँ, इसी में । यह ‘बस’ है ।”

“बस ?” मैं फिर भी नहीं समझ सका ।

“हाँ, यह भाडे पर चलता है ।”

“कोई कुछ कहेगा तो नहीं, इस पर सभी चढ़ सकते हैं, हमलोग भी ?” मैंने डरते डरते बाबू से पूछा । ‘हमलोग भी’ से मेरा मतलब था कि क्या इतनी अच्छी सवारी में चमार-दुसाध भी चढ़ सकते हैं ? बाबू बोले, “सब कोई ।”

“तो चलो ।”

“यहाँ से चौहट्टे का छै पैसा लगता है । तीन आने दे देना ।”

बाबू के साथ मैं उस ‘बस’ में आकर बैठ रहा । एक आदमी ने हमलोगों से तीन आने पैसे ले लिये और दो छोटे-छोटे लाल-लाल पुर्जे पकड़ा दिये । चढ़नेवाले बहुत थोड़े थे, मगर ‘बस’ तुरत ही खुल गई ।

थोड़ी देर मैं मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ कि छः पैसे में ही हवागाड़ी पर चढ़ने का मौका मिल गया था। पच्छिम की ओर से और भी ऐसी ही सवारियाँ हमलोगों की 'बस' की अगल-बगल से जाने लगी थीं। कोई लाल रंग की थी, कोई हरे रंग की। मुझे यह सब देख-देखकर बड़ा अचरज हो रहा था। तभी हमलोगों से पैसे लेनेवाले आदमी ने 'बस' की दीवार में थपथपाहट दी। कहा, "रोक के!"

"यह क्या बाबू?" मैंने बाबू से पूछा।

"चौहट्टा आ गया, उतरों।" बाबू बोले।

'बस' रुक गई और मैं बाबू के साथ नीचे उतर गया। फिर वह शानदार सवारी आगे बढ़ गई। बाबू के साथ चलता हुआ मैं सड़क के दोनों ओर नजरें दौड़ा-दौड़ाकर देख रहा था। बाप रे बाप, किसिम-किसिम के मकान थे। एक मकान तो इतना ऊँचा था कि जब मैं उसकी छत को देखने लगा कि इधर माथे पर से मेरा अँगोछा गिर गया। दूकानें खुल रही थीं। और, इसी तरह से दूकानों और मकानों को देखता हुआ मैं अस्पताल के बिल्कुल पास पहुँच गया। बाबू बोले, "देखो, यही पटना अस्पताल है।"

"यही है?"

"हाँ -।"

"बाप रे बाप, यह तो अलबत्ता मकान बना है बाबू।" मेरे मुँह से निकला। इतना लंबा-चौड़ा मकान मैंने आज तक नहीं देखा था। जहाँ पर बाहर से अस्पताल में घुसने का फाटक है, वहीं मोड़ पर एक सिपाही लाल सुरेठा पहने खड़ा था। उसके हाथ उठाने पर सवारियाँ रुक जाती और उसके हाथ गिरा देने पर सवारियाँ खुल जाती थीं। उस सिपाही ने तो एक हवागाड़ी तक को दो मिनट रोक रखा। तभी मैंने मन में कहा कि जिंदगी में अगर नौकरी करनी हो, तो सिपाही की नौकरी करे। यहाँ के अस्पताल का मैदान देखकर मैं दंग रह गया। मकान के तो क्या कहने। दिघवारा अस्पताल इसके सामने क्या था। एक

झोंपड़ी कह लो । खैर, बाबू ने पटने को देखा था, पटने के मकान देखे थे, मगर पटना अस्पताल भी देखा था । लेकिन, उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि यहाँ कौन काम कैसे होता है । इसलिए आस-पास से जाते हुए कई लोगो से पूछ-ताछ करनी पड़ी । अस्पताल के फाटक पर जो बड़ा-सा पीपल का पेड़ है, हमलोग वही जाकर खड़े हुए थे ।

“भरती कहाँ हुआ जाता है, बाबू ?”

“घाव की दवा किधर होती है ?”

“डाक्टर बाबू से किधर भेट होगी ?”

बाबू ने इस तरह के सवाल कई लोगो से किए । अंत में एक आदमी ने बतला दिया, “वहाँ जाकर दिखलाओ, भरती करने लायक होंगे, तो भरती कर लिये जाओगे ।”

यह जगह अस्पताल के शुरू में ही थी । मैंने अपनी गठरी सम्हाल ली और बाबू के साथ उस मकान के भीतर घुसा । भीतर कई कोठरियाँ थी और एक-से-एक रोगी पहुँचे हुए थे । कोई पेड़ से गिरा था, तो कोई कोठे पर से । किसी को चोर ने भाला मार दिया था, तो कोई मियादी बुखार का शिकार हो रहा था । किसी के गले में घाव निकल आया था, तो किसी को साँप ने काट लिया था । किसी के दोनों पैर सूज गए थे, तो किसी का पूरा पेट चढ़ गया था । रोगियो से जगह भरने लगी थी । मैंने बाबू को एक ओर दीवार से लगाकर बैठाया । डाक्टर बारी-बारी से रोगियो को देख रहे थे । मगर रोगियो में तबाही मची थी ।

“सरकार, मेरे बाबू को चटगाँव में बमगोला लग गया है..।”

“सरकार, दिघवारा अस्पताल में भी दिखलाया था, मगर ..।”

“क्या कहें माई-बाप, इनके पास चटगाँव के सरकारी अस्पताल का कागज भी है ।” मैं डाक्टर के आस-पास खड़ा होकर कहता ।

“चलो, बैठो देखा जायगा ।”

बहुत देर के बाद डाक्टर मेरे बाबू के पास आ खड़ा हुआ । मैंने सबसे पहले अपनी गठरी खोली और चटगाँव के सरकारी अस्पताल से

मिला हुआ कागज निकाला। डाक्टर ने मेरे बाबू से पूछा, “क्या तकलीफ है तुमको?”

“सरकार। मुझे चटगाँव में बम लग गया था...। वहाँ से नाम कटवाकर बाल-बच्चों से मिलने के लिए घर चला आया। दिघवारा अस्पताल में भी दिखलाया था, मगर...” बाबू बोलने लगे।

अभी वे बोल ही रहे थे कि मैंने वह सरकारी कागज डाक्टर के हाथ में दे दिया। मेरे हाथ से उस कागज को लेकर डाक्टर पढ़ने लगे। पढ़ लेने के बाद कहा, “खोलो कुरता, जखम दिखलाओ।”

यह कहने की जरूरत नहीं कि हमलोगों ने डाक्टर को जखम दिखला दिया। जखम को देखकर डाक्टर ने कहा, “भरती तो कर लेगे, मगर अभी पलंग नहीं मिलेगा। खाली होने पर मिल जायगा।”

“सरकार, मैं गरीब मोची हूँ। पलंग पर सोने की मेरी आदत नहीं। पलंग पर सोकर क्या करूँगा। मगर, मालिक ऐसी दवा दीजिए कि मैं अच्छा हो जाऊँ। बस, यही अरज है माई-बाप।” बाबू डाक्टर के आगे हाथ जोड़कर बोले। मैं डाक्टर और बाबू दोनों के मुँह देख रहा था।

“घबड़ाओ नहीं, मैं भरती कर लेता हूँ।” डाक्टर लोले।

डाक्टर के हुक्म देने पर अस्पताल के दो आदमी बाबू को टाट की खटिया पर लादने लगे। इस खटिये में पड़ना नहीं थे। करीब डेढ़ हाथ चौड़ी टाट में, जो एक आदमी के बराबर लंबी थी, दो काठ के डंडे लगे थे। बाबू को उन दो आदमियों ने कंधे पर उठाया और तब मुझसे कहा, “चलो।”

वहाँ से वे लोग मेरे बाबू को बाहर ले आए और उत्तर की ओर बढ़े। उत्तर की ओर भी अस्पताल ही था। उस ओर से बहुत लोग आ रहे थे। सामने दो-तीन हवागाड़ियाँ खड़ी थीं। यह सब देख-देखकर मैं अकचका रहा था। वहाँ से जब मैं उनलोगों के साथ इस अस्पताल में पहुँचा, तो देखा, एक आदमी खाकी रंग का कोट और धोती पहने खड़ा था। हमलोगों को देखते ही उस आदमी ने सामने के लोहे के फाटक को

खोल दिया। वे दोनों आदमी मेरे बाबू को लिये उसमें घुस गए और उस खाट को जमीन पर रख दिया। उनलोगों ने फिर मुझसे कहा, “तुम भीतर आ जाओ और उस कोने में चुपचाप खड़े हो रहो।”

मैं, बाबू जिस खाट पर पेटकुनिएँ सोये हुए थे, उसकी बगल में चुपचाप खड़ा हो गया। फिर उस पहले आदमी ने, जिसने लोहे के फाटक को खोला था, हमलोगों के बीच चला आया और लोहे के फाटक को फिर बंद कर दिया। अब वह जगह एक कोठरी बन गई। मैं उस कोठरी को अचरज से देख ही रहा था कि वह कोठरी हिली। मेरे मुँह से निकला, “अरे बाप, भूकंप-०।”

“चुप रहो, ऊपर चल रहे हो।” मुझे सुनायी पड़ा।

मैं इस बात को समझ भी न पाया था कि देखते-देखते वह कोठरी झटपट दोतल्ले पर आ गई। मैं क्या समझता था कि ‘लिफ्ट’ क्या बला है। यहाँ भी एक लोहे का वैसा ही फाटक लगा था। उस आदमी ने यहाँ का फाटक भी खोल दिया और वे दोनों आदमी मेरे बाबू को उठा लिये। यह दोतल्ला देखकर तो मैं और घबड़ा गया। बहुत बड़े-बड़े ओसारे थे। बाबू को उठाकर जब वे लोग भीतर घुसे, तो सैकड़ों पलग देखे। सब पर रोगी पड़े थे। कोई फल खा रहा था, कोई अखबार पढ़ रहा था। किसी की नाक में खड़ की नली घुसेरी थी, तो किसी के हाथ में। किसी के ठेहुने के पास बिस्ते भर का सूआ आर-पार किया हुआ था। कोई दर्द से चीख रहा था। कोई रो रहा था। किसी के माथे में पट्टी बँधी थी, तो किसी के हाथ में। यह सब देखकर मैं घबड़ा तो जरूर गया, मगर मन में सोचा कि जब पटना अस्पताल बड़ा और अच्छा है, तभी तो इतने रोगी यहाँ आए हैं। बाबू भी जरूर अच्छे हो जायेंगे। बाबू को उन दो आदमियों ने ओसारे पर ही एक ओर उतारकर रख दिया। मैंने उन दो आदमियों से पूछा, “अब क्या होगा?”

“अब डाक्टर आयेंगे तो देखेंगे। कबल या कोई बिछावन हो, तो बिछाकर इसे लेटा दो।”

“सुनो मेरे भइया • १” वे जाने लगे, तो मैंने पुकारा ।

“क्या है ?”

“खाने के लिए तो यहीं मिलेगा न ?”

“मेम साहब से कहना होगा ।”

इतना कहकर वे दोनों आदमी वह खाट लेकर लौट गए । मैंने कबल बिछा दिया, तो बाबू उसी पर जरा-सा करवट होकर लेट गए ।

इस तरह बाबू पटना अस्पताल में भरती कर लिये गए । किसिम-किसिम के लोग आ-जा रहे थे । मैं बाबू के पास आधा घंटा तक बैठा रहा । इसके बाद मुझे पैखाना लगा । मैं तो इतना बड़ा मकान देखकर ही घबड़ाया हुआ था, पैखाने के लिए कहाँ जाता ?

“बाबू ?”

“क्या है ?”

“मुझे पैखाना लगा है ।”

“जा, कही से हो आ । बाहर कहीं मैदान देखकर बैठ जाना ।”

“अच्छा, मैं जाता हूँ । तुरत चला आऊँगा ।”

बाबू के पास सामान की गठरी छोड़कर मैं दो-तल्ले से नीचे उतर आया । उतरने और चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं । न-जाने, बाबू को उस वक्त कैसे क्यों ले आया गया । नीचे उतरकर मैंने उस लोहे के फाटक को फिर बड़े ध्यान से देखा था । लेकिन, उस लंबे चौड़े मकान से निकलकर जब मैं बाहर आया, तो चारों ओर देखने लगा । मगर, मेरे काम के लायक कोई जगह नहीं नजर आ रही थी । सामने एक मैदान था, मगर बहुत साफ ! उसमें दूबे उगी थीं । मैदान के चारों ओर से आदमी आ-जा रहे थे । उस काम के लिए मेरी हिम्मत न पड़ी । मैंने एक आदमी से, जो मेरी ही तरह देहाती जान पड़ता था, पूछा,
“एक बात बतलाओगे भाई ?”

“क्या ?” उसने पूछा ।

“यहाँ फरागत होने के लिए किधर जगह है ?”

लो०-पं०—१२

“उधर चले जाओ, पच्छिम की ओर । गंगा-किनारे ।”

देहात की तरह यहाँ खेत कहाँ थे ! उस आदमी के बतलाने पर खोजते-खोजते मैं दरियाव किनारे पहुँचा । यहाँ भी लोग थे । मगर, मेरे काम के लिए इधर जगह मिल गई । पैखाने से होकर मैंने गंगाजी में ही मुँह-हाथ धो लिया और तब फिर अस्पताल पहुँचा । उस लोहे के फाटक पर आकर अब मैं भीतर घुसने लगा, तो खाकी कोटवाले आदमी ने पुकारा, “अजी सुनो, किधर चले ?”

“ऊपर, मेरे बाबू भरती हुए हैं ।” मैंने उसके पास आकर कहा ।

“पास है ?”

“पास ?” मैं समझ न सका ।

“हाँ, पास । अंदर जाने का ‘पास’ ।”

“पास क्या ?”

“डाक्टर साहब का लिखा हुआ ‘गेट-पास’ ?”

“नहीं, डाक्टर साहब ने तो बाबू को भरती ही किया है ?”

“ठीक है । अंदर मत जाओ ।”

“क्यों ?” मैंने पूछा ।

वह बोला, “क्यों क्या ? सरकारी हुकूम है । जाओ, टहलो । बारह बजे जाना ।”

इसके बाद मैं उस आदमी के हाथ-पैर पड़ता रहा, मगर उस आदमी ने मुझे अंदर न जाने दिया । बारह बजे तक मैं बाहर ही खड़ा रहा । बाबू से न मिल सकने के लिए मुझे बहुत दुःख हो रहा था । मगर, मैं तो लाचार था । हाँ, एक बार उस आदमी ने मुझे इशारा करके बतलाया था कि अगर मैं उसे चार आने पैसे दे दूँ, तो वह जाने देगा । मेरी इच्छा हुई कि उसे पैसे दे दूँ, मगर मैं सब कुछ बाबू के पास छोड़ आया था । ठीक बारह बजे जब मैं बाबू के पास पहुँचा, तो पता चला कि बाबू को खाने के लिए मिल गया है । कबल के पास एक कागज भी रखा हुआ था, जिसके बारे में बाबू ने बतलाया कि उसे एक मेम

रख गई है। मने अपने वहाँ न पहुँच सकने की वजह बाबू से बतला दी। बाबू ने मुझसे कहा कि मैं पैसे लेकर बाहर से कुछ खा आऊँ और उसी ओर इधर-उधर मामा को भी देखूँगा।

वहाँ से फिर बाहर आकर मैंने फुटपाथ पर चार आने की रोटी खाई। पेट नहीं भरा। मगर क्या करता ? पास में पैसे जो थोड़े थे। चार आने की चार रोटियाँ मिली थीं, पत्ते की तरह पतली-पतली। यह रोटी की दूकान काठ के खोमचे में थी। खाने की चीजों पर हजारों मक्खियाँ भनभना रही थीं। आस-पास से गुजरनेवाले बाबू-भइया उस दूकान की ओर से मुँह धुमाकर चल देते थे। रोटी खा लेने के बाद मैंने मामा को खूब खोजा, मगर मामा कहीं भी नजर नहीं आए। लौटकर फिर उस लोहे के फाटक पर आया, तो मैं फिर रोक लिया गया। इस बार मेरे पास पैसे थे। रोकनेवाले को चार आने पैसे देकर मैं बाबू के पास पहुँच गया। मामा के नहीं मिल सकने कारण बाबू बहुत ही उदास दीख रहे थे। उन्होंने कहा, “अब भेट नहीं होगी।”

“ऐसे क्यों बोलते हो बाबू। अच्छे होकर घर चलना, तो मामा को बुलवा लेंगे।” मैंने कहा।

“.....।” इस पर बाबू चुप हो गए।

मैं नहीं समझ सका था कि बाबू का इलाज कैसा हो रहा है। मगर, इतना जरूर देखता था कि उनके घाव की पट्टी रोज खोली और बाँधी जाती है। अस्पताल के दरवान मुझे अंदर नहीं रहने देते थे। मेरी ही तरह कुछ और लोग भी थे, जो समय-समय पर अपने रोगियों के पास से भगा दिये जाते थे। अस्पताल के बाहर, पीपल के पेड़ के नीचे मैं गमछा बिछाकर सो रहता। खूब सबेरे दरियाव किनारे चला जाता। और, फिर बाबू के पास पहुँचता। इसके घंटे भर के बाद दरवान निकाल देता था। पास में इतने पैसे नहीं थे कि बार-बार उन्हें खुश कर पाता। ‘पास’ के लिए न मेम साहब बात सुनती और न डाक्टर। मैं बाजार में

ही जैसे-तैसे खा लेता । एक रोज सबेरे जब मैं बाबू के पास गया था, तो एक बाबू हाथ में कामज लिये हुए आए ।

“यह तुम्हारा मरीज है ?” उस बाबू ने मुझसे पूछा ।

“जी, मालिक । मैं बोला ।

“क्या नाम है ?” उसी बाबू ने पूछा ।

“मगडू महारा, सरकार ।” मेरे बाबू ने जवाब दिया ।

“अभी तुमको एक सूई पड़ेगी । इसके बाद तुम्हारा ऑपरेशन होगा ।”

“ऑपरेशन क्या सरकार ?” मैंने पूछा । उन दिनों अंग्रेजी के शब्दों की कहीं जानकारी थी ।

“चीर-फाड़ करके घाव साफ कर दिया जायगा । भीतर घाव सड़ गया है ।”

“जी ।” मेरे मुँह से निकला ।

“ट्राली लेकर आदमी आयेगे । अच्छा ?”

“जी ।” मैंने फिर कहा । इसके बाद वह पट्टा-लिखा बाबू चला गया ।

“अब क्या होगा, बाबू ?” मैंने बाबू से पूछा ।

“घाव साफ किया जायगा । तू घबड़ाना मत, सब ठीक हो जायगा ।”

करीब आध घंटे के बाद एक मेम साहब आयी और उसने बाबू को सूई दे दी । सूई देकर लौटते वक्त उसने कहा, “पानी मत पीना । तुमको ऑपरेशन के लिए जाने होगा ।”

“जी मेम साहब ।” बाबू बोले । इसके बाद वह ऐंठती हुई चली गई । लोग कहते थे कि मेम लोग मरीज की सेवा करने के लिए रहती हैं । मगर, वे तो सीधी तरह किसी से बात भी नहीं करती थी । कुछ पूछो, तो वह थोड़े में और चिढ़कर जवाब देती थी । शायद मरीजों के आदमियों को फिड़कने में ही उनलोगों को खुशी होती थी । मैं उदास होकर बाबू का मुँह देख रहा था ।

“तुम्हें तकलीफ हो, तो तू बाहर चला जा ।” बाबू बोले ।

“नहीं, तकलीफ कैसी, तुमसे एक बात पूछ रहा हूँ ।” मैंने कहा ।

“क्या, पूछो ।”

“तुम तो चटगाँव तक के सरकारी अस्पताल देख चुके । कुछ फायदा है या नहीं ?”

“फायदा यह है कि दर्द पहले से कम है । मगर ऐसा लगता है, जैसे घाव भीतर-ही-भीतर बढ़ रहा हो । घाव की टीस पूरी पीठ में फैलती जा रही है । जरा साँस लेने में भी तकलीफ होती है ।” बाबू ने जवाब दिया ।

“चीर-फाड़ से फायदा पहुँचेगा ?”

“वह तो डाक्टर और भगवान जाने । ऑपरेशन से कितने लोग अच्छे हो जाते हैं और मर भी जाते हैं ।” बाबू बोले ।

“तब ऐसा मत कराओ, घर चलो ।” मैं बोला ।

“घर चलने से क्या होगा ? भगवान और अमिका भवानी का नाम लो । जो हौना होगा, सो होगा ।” बाबू ने कहा ।

अभी मैं बाबू के साथ इस तरह बातें कर ही रहा था कि चार पहियोवाली एक गाड़ी वहाँ आ गई । उसे अस्पताल के दो आदमी ठेलते हुए ले आए थे । उनकी नाकों पर कपड़े का ढँपना लगा था । उनलोगों ने बाबू को बड़ी फुर्ती से उठाकर उस गाड़ी पर रख लिया । मैंने उन आदमियों से पूछा, “मैं भी चलो ?”

“तुमको वहाँ कौन जाने देगा, यहीं बैठो ।” वे लोग बोले ।

“घबड़ाना मत मंगरुआ, अमिका भवानी का नाम ले ।” बाबू बोले ।

“ . . . ।” मेरे मुँह से कुछ न निकला, क्योंकि मैंने देख लिया कि बाबू की आँखों में पानी भर आया था । मेरे सामने वे रोते-रोते बचे । मैं उन्हें सिर्फ देखता रहा और वे दोनों आदमी, उस गाड़ी को, जिस पर बाबू सुला दिये गए थे, ठेलते हुए उत्तर की ओर ले गए ।

मैं वही पर बैठा रहा, जहाँ पहले बाबू सोते थे । मैं कभी गठरी को देखता, कभी फटे-पुराने कबल को और कभी उस ओर देखता था, जिधर चार पहियोवाली गाड़ी पर सुलाकर बाबू ले जाए गये थे । करीब एक

घंटे के बाद उसी गाड़ी पर बाबू लौटे। वे लाल कंबल से ढँक दिये गये थे। उनको होश नहीं था। आँखें बंद थीं और चेहरा उतरा हुआ था। गाड़ी ठेलकर ले आनेवाले वही दो आदमी थे। इस बार एक पलंग खाली कर बाबू को उसी पर सुलाया गया। उन दो आदमियों ने मुफ्तसे कहा, “यहीं रहना, कहीं जाना मत।”

“अच्छा।” मैंने कहा।

मैं बाबू के सिरहाने खड़ा-खड़ा उनका मुँह देख रहा था। वे कमी-कमी बड़े-जोर से चिहूँक जाते थे। मुझे यह सब देखकर घबड़ाहट होती थी। थोड़ी देर में अस्पताल का एक आदमी मेरे हाथ पर छः सतरे रख गया। मैंने उस आदमी से पूछा, “सुनो भाई। बाबू ऐसे क्यों कर रहे हैं?”

“होश आ रहा है।” उस आदमी ने कहा और चला गया।

आज मैं खाने के लिए अस्पताल से बाहर नहीं निकला। भूख ही नहीं लग रही थी। ऐसी हालत में न कोई सतोष देनेवाला मिल रहा था और न कोई यह बतला रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए। करीब दो घंटे के बाद बाबू की आँखें खुलीं; मगर वे बोल नहीं पाते थे। हाँ, उन्होंने जब अपनी आँखें मेरी ओर धुमायी, तो मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो रहा। मुझे देखकर वे रोने लगे। मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। इसी समय एक आदमी, जो डाक्टर जान पड़ता था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया।

“यह मरीज तुम्हारा है? उसने पूछा।

“जी माई-बाप।” मैं बोला।

“इसका खून घट गया है? तुम दो-तीन पौंड खून का इतजाम करो। कल खून चढ़ाया जायगा। बाहर से कोई देनेवाला मिल सके, तो ले आओ। अगर नहीं मिले, तो दाम देने पर अस्पताल से भी मिल सकता है।”

“तीन पौंड, कितना सरकार?”

“करीब डेढ़ सेर।” कहता हुआ वह आदमी बड़ी फुर्ती के साथ लौट

गया । मैं समझ भी न सका कि खून कैसे आयागा, कैसे दिया जायगा । और, वह आदमी चला भी गया । बाबू को जब होश आया, तो मैंने बहुत धीरे-धीरे कहा, “बाबू, कल तुम्हें खून चढ़ाया जायगा । डाक्टर ने कहा है कि दाम देने पर अस्पताल से भी खून मिल सकता है । पास में तो अब पाँच ही आने पैसे हैं । गाँव जाकर टीपू भाई से मिलना चाहता हूँ । कहीं कुछ रुपए और दे दे ।”

“टीपू गाँव पर होगा ?”

“कौन जानता है । कहीं टीपू भाई मिल गए, तो कोई-न-कोई रास्ता जरूर ही निकालेगा । देर नहीं होगी । एक पैर से जाऊँगा और दूसरे पैर से चला आऊँगा । खून देने से तुम्हारा सब रोग तो भाग जायगा ।” मैं बोला ।

“और इधर मेरा कुछ हो जाय, तो ।” वे बोले । बाबू की बात मेरे दिल पर लग गई । इतना कहने बाद बाबू फिर रोने लगे थे । इसके बाद तो मैं बारह बजे दिन के जहाज से आमी के लिए चल पड़ा था । मगर, बाबू की वह गरीबी से रँगी सूरत आज भी याद है ।

रेलगाड़ी बढ़ती जा रही थी। पास में टिकट के पैसे जो नहीं थे। मैं भगवान का नाम लेकर जहाज पर बिना टिकट लिये ही बैठ गया था। जहाज में किसीने टिकट न माँगा। पहलेजा घाट उतरा, तो बॉस के बने छोटे-से फाटक पर बड़ी भीड़ थी। टिकट देखनेवाले की आँखों ने काम न किया और उनकी नजरे बचाकर मैं फाटक पार कर गया। सोनपुर जाने के लिए आगे रेलगाड़ी लगी थी। चुपचाप जाकर रेलगाड़ी में बैठ गया। यहाँ से भी गाड़ी खुली, तो किसीने रास्ते में टिकट न माँगा और मैं सोनपुर पहुँच गया। सोनपुर से मेरे घर के स्टेशन के बीच तीन स्टेशन और भी तो थे। पहले सोनपुर, तब परमानंदपुर, इसके बाद नया गाँव, फिर शीतलपुर और तब दिधवारा। लोगो से पूछ-ताछ करके छपरा जानेवाली गाड़ी में बैठ गया। थोड़ी देर के बाद इंजन ने बड़े जोर की सीटी दी। लोगो ने कहा, “अब गाड़ी खुल रही है।”

और, तब गाड़ी खुल भी गई। गाड़ी के पहिये से आवाज आ रही थी—फिक्की-फिक्की काली, फिक्की काली। तभी एक आदमी माथे पर कनटोप रखे उस डिब्बे में घुस आया, जिसमें मैं भी बैठा था। वह आदमी देखने में तो साँवला था, मगर उसके पोशाक बिल्कुल अंग्रेज की तरह थे। उसके दाहिने हाथ में कैची की तरह एक लोहे का यंत्र था। वह जैसे ही मेरे डिब्बे में घुसा कि सबलोगो ने उसकी ओर देखा। उस आदमी की नजर भी डिब्बे के कोने-कोने में घूम गई। और, इसके बाद ही उसने एक-एक कर लोगो से टिकट माँगना शुरू किया। मैंने मन-ही-मन सोच

लिया कि यह आदमी जरूर ही टी०-टी० आई० होगा। उसे देखकर मेरा कलेजा धड़कने लगा। मैं अपनी जगह से उठकर धीरे-से, पैखाने की ओर कोने में, सीट के नीचे बैठ गया। जब मैं यह काम कर रहा था, तो वह टिकट माँगनेवाला आदमी मुझे कनखियों से देख रहा था। मैंने उसे कनखियों से देखते हुए देख लिया था। मैंने सोचा, बड़ा बुरा हुआ। पकड़ेगा, तो छोड़ेगा नहीं। वह मुसाफिरों से टिकट माँग-माँगकर देख रहा था। मुसाफिर उसे टिकट दिखला रहे थे। मैं अपने ऊपर पहाड़ टूटने का इंतजार कर ही रहा था कि वह आदमी मेरे पीछे आकर खड़ा हो गया। उसने बड़ी कड़ी आवाज में कहा, “टिकट निकालो, इधर देखो।

“...।” मैं जान-बूझकर चुप रहा। मरता क्या न करता !

“अबे टिकट दिखला, उधर क्या देखता है ?” उसने कड़ककर कहा।

“जी, बाबू ।” कहता हुआ मैं उसकी ओर घूम गया।

“जी बाबू क्या करता है, टिकट दिखलाओ।”

“जी मालिक, टिकट तो नहीं है।”

“तो बिना टिकट चलने के लिए किसने कहा ?”

“कहा किसी ने नहीं सरकार।”

“तो क्या समझा था, यह गाड़ी तुम्हारे बाप की है ?”

“नहीं सरकार, गाड़ी मेरे बाप की कैसे हो सकती है ?”

“तो फिर निकालो महसूल, कहाँ से आ रहे हो ?”

“पटना से माई-बाप।”

“भूठ बोलता है। कहाँ जायगा ?”

“दिघवारा उतरूँगा सरकार। पास में फूटा हुआ पैसा भी नहीं है। बाप मेरे पटना सरकारी अस्पताल में भरती हैं। चटगाँव की लडाई में बमगोला लग गया था। आज ही तो घाव चीरा गया है, मालिक ! खून खतम हो गया।” मैंने गिड़गिड़ाकर कहा।

“चुप बदमाश ! मैं यह सब कुछ नहीं जानता । मेरी नजर से बचने के लिए तुम लाख बहाने बनाओ, मैं नहीं छोड़ूँगा । निकालो कटिहार से लेकर दिघवारा तक का मय जुर्माना के आठ रुपए चौदह आने ।”

रेलगाड़ी धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी । पहियों की आवाज भी बदलने लगी थी—झक्-झक् झिकी-झिकी । आठ रुपए चौदह आने का नाम सुनते ही मेरी आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा । इतने रुपए लेकर तो मैं अस्पताल भी नहीं गया था । वह तो टीपू भाई ने दया करके छः रुपए दे दिये, नहीं तो बाबू को पटना भी नहीं ला सकता । मैंने उस टिकट मॉगनेवाले के आगे हाथ जोड़कर कहा, “सरकार, इतने रुपए मैं कहाँ पाऊँगा ? मेरे पास तो आठ आने पैसे भी नहीं हैं ।”

“जब पुलिस में दूँगा, तो अपने-आप पैसे हो जायेंगे ।”

“सरकार, पुलिस में मत दीजिए । मेरे पास पैसे नहीं हैं ।”

“खबरदार, बदमाश ।”

इतने ही में सोनपुर के आगे परमानदपुर स्टेशन आ गया । रेलगाड़ी धीरे-धीरे खड़ी हो गई । सूरज डूब रहा था । जब रेलगाड़ी रुकने लगी, तो टिकट मॉगनेवाला आदमी उतरने लगा और जब गाड़ी रुकी, तो वह उतर गया । मैंने सोचा, बेचारे ने दया करके छोड़ दिया । डाँट-डपटकर छोड़ दिया, क्या यही कम है । तभी मेरे कानों में उसी आदमी की आवाज सुनायी पड़ी, “अबे, उतर नीचे ।”

“.....” मैं चुप रहा ।

“अरे, तुम्हें कह रहा हूँ । चल, उतर नीचे ।” फाटक की खिड़की में सिर घुसाकर उसने मुझे पुकारा ।

“मुझे सरकार .. ?” मैंने जान-बूझकर पूछा । शायद उसे दया आ जाय । मगर उसने कड़ककर कहा, “और किसे, रेलगाड़ी तुम्हारे ही बाप की है न ?”

गाड़ी में बैठे मुसाफिर मुझे देख रहे थे । मुझे भी लाज लग रही थी । आखिर मुझे उसी दम रेलगाड़ी से निकलकर नीचे आना पड़ा ।

“इधर आओ ।” मेरे नीचे उतर जाने पर उस आदमी ने कहा ।

“किधर ?”

“बस यहीं ।” वह बोला । रेलगाड़ी के फाटक से थोड़ी दूर हटकर वह आदमी खड़ा हो गया । उसने मुझे अपने और नजदीक बुला लिया । मुसाफिर रेल पर चढ़ रहे थे, मुसाफिर रेल से उतर रहे थे । मैंने उस आदमी से कहा, “सरकार, गाड़ी खुल जायगी ।”

“मैं नीचे हूँ, गाड़ी नहीं खुलेगी । सुनो -- ।”

“कहिए, सरकार ।”

“तुम्हे दिघवारा उतरना है ?”

“जी, मालिक ।” मैं बोला ।

“तुम्हारे पास कितने पैसे हैं ? दो रुपए भी हो तो निकालो, मैं वहाँ गेट पर तुम्हें निकाल दूँगा ।”

“सरकार, आपसे झूठ न बोलूँगा ।”

“कितना है, बतला न ।”

“सरकार, सिर्फ एक आना ।”

“सिर्फ एक आना ?”

“जी ।”

“तो बैठ यहीं । गाड़ी में घुसेगा, तो पुलिस में दे दूँगा ।” उसने बड़े रोब से कहा । मैं डर गया ।

परमानदपुर देहात का छोटा-सा स्टेशन है । गाड़ी अधिक देर नहीं टिकती । इंजन ने सीटी दे दी । गाड़ी खुली और वह आदमी उछलकर दूसरे डिब्बे में घुस गया । गाड़ी मेरी आँखों के सामने से आगे बढ़ गई और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा । गाड़ी खुल जाने के बाद तक मैं वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा । पाँच आने पैसे तो बचे थे । उसमें से मैंने चार आने का एक पाव सत्तू खा लिया था—सीधे अस्पताल से पच्छिम अदालत में आकर । सिर्फ एक आना पैसा बच गया था ।

हो सकता है कि पाँच आने पैसा ले लेने पर वह मुझे इतनी कड़ी सजा न देता। मुझे कभी माँ याद आती और कभी सनीचरी। मेरी आँखों के सामने कभी बाबू का बीमार चेहरा नाच जाता और कभी टीपू भाई की दया-भरी सूरत नाच जाती। उधर अस्पताल में बाबू का क्या हाल हो रहा है, मैं सोच नहीं सकता था। इधर गाँव पर टीपू भाई होंगे या नहीं ? अगर होंगे, तो अबकी बार कुछ मदद कर सकेंगे या वह भी मजबूर हो जायेंगे ? अपने मन में तब कोई भी रास्ता तय नहीं हो पा रहा था। लगता था, बुरी साइत के पानी में मैं डूब गया हूँ और मेरा दिमाग उजबुजा रहा है। न पैर आगे बढ़ रहे थे, न पीछे। दिन की रोशनी खत्म होती जा रही थी।

“यहाँ क्यों खड़े हो, कहाँ से आए हो ?” तभी स्टेशन का एक आदमी मेरे पीछे आकर खड़ा हो गया।

“पटना से आया हूँ। टिकट नहीं था। टी० टी० आई० बाबू ने उतार दिया है।”

“उतार दिया है तो ठीक किया है। जाओ, प्लेटफार्म से बाहर जाओ। यहाँ मत खड़े रहो।” उस आदमी ने रुखी बोली में कहा।

स्टेशन के अहाते से बाहर निकलकर मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि आमी जाने का कौन-सा आसान उपाय है। एक आदमी से पूछा, तो पता चला कि अब पच्छिम जानेवाली गाड़ी तीन बजे भोर में आयेगी। लेकिन, गाड़ी पर सवार होकर जाने की हिम्मत टूट चुकी थी। आखिर, जब सॉफ़ से भी कुछ वक्त निकल गया, चारों ओर अधेरा छा गया, तो मैं पैदल ही आमी के लिए चल पड़ा। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पकड़कर मैं पच्छिम की ओर चला। यहाँ से मेरा गाँव ‘आमी’ करीब सात कोस की दूरी पर था। सड़क के दोनों ओर आम-लीची, कटहल और महुए के पेड़ थे। उनके हिलने से जब हवा चलती, इस गर्मी में मुझे शान्ति मिलती थी। रास्ता बड़ा भयावना था। सूनी सड़क पर एक आदमी भी नहीं मिलता। मैं ज्यो-ज्यो आगे बढ़ता जाता,

रात चढ़ती जा रही थी। सड़क के आस-पास के गाँवों से कुत्तों के भूँकने की आवाज मेरे कानों में सुनायी दे रही थी। खेतों में सियार बोल रहे थे। डिस्ट्रिक्ट बॉर्ड की सुखीली सड़क की लाल-लाल धूल मेरे ठेहुने पर तक चढ़ गई और मैं भूखा-प्यासा करीब तीन-साढ़े तीन बजे आमी गाँव में घुसा। यहाँ भी गाँव की गलियों में कुत्ते भूँक रहे थे। जब मैं अपनी पलानी के पास पहुँचा, तो मेरे पैर भारी हो गए। हिम्मत नहीं होती थी कि माँ को जगाऊँ। पहले मैं पलानी के सामने आकर कुछ देर तक खड़ा रहा। फिर एकाएक पुकारा, “माई, माई रे ?”

“कौन है ?” भीतर से माँ ने पूछा।

“मैं, मंगरुआ।”

मेरा नाम सुनते ही माँ ने पलानी के दरवाजे पर लगी हुई टट्टी खोल दी। मैं भीतर गया, तो सनीचरी भी उठकर बैठ गई। माँ ने पहले थोड़े-से पत्ते जलाकर उजेला किया, तब कहा, “बाबू का समाचार कह।”

“बाबू का घाव तो चीर दिया गया। डाक्टर कहता था कि भीतर घाव सड़ गया है।”

“तब ?”

“आज ही तो घाव चीरा गया है। मगर एक बात है।”

“एक बात क्या ?” माँ ने पूछा। साथ ही इसका जवाब सुनने के लिए सनीचरी भी मेरा मुँह देखने लगी।

“घाव चीरने से खून घट गया है।”

“खून घट गया है ?” माँ ने अचरज से पूछा।

“हाँ।”—मैंने कहा, “डाक्टर ने कहा है, डेढ़ सेर खून देना होगा। बात मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आयी, मगर इतना जरूर समझ गया कि दाम दे देने पर अस्पताल से खून मिल जायगा।”—मैंने

तभी माँ से यह भी पूछा, “दादा के मारे जाने में बच्चा बाबू ने कितने रुपए दिये थे, दस या बीस ?”

“याद नहीं है ।”

“मुझे याद तो नहीं है । मगर, याद करता हूँ कि इससे कुछ ज्यादा नहीं दिया था । तीन कट्ठा खेत दिया था, सो रेलवे में आ जाने पर उसके रुपए भी नहीं दिये । इसलिये मैं सोचता हूँ कि जब जान का दाम दस-बीस रुपए हैं, तो सेर-डेढ सेर खून का दाम दो-तीन रुपए से क्या ज्यादा होगा ? तुम्हें मालूम है, टीपू भाई कानपुर चले गए ? न होगा, तो दो-तीन रुपए और माँग लूँगा ।” मैं बोला ।

“कौन, टिपुआ ?” माँ ने पूछा ।

“हाँ ।”

“ना, टिपुआ कहाँ है, वह तो चला गया ।”

“चला गया, कब ?” मैंने पूछा ।

“आज सोंभ को ।”

माँ के इतना कहने पर मुझे और भी दुःख हुआ । टीपू भाई उसी गाड़ी से चले गए थे, जिस गाड़ी से टिकट न रहने की वजह से मैं उतार दिया गया था । मेरा माथा चकरा गया । भोर तक मुझे नींद नहीं आयी । भोर होने पर माँ मेरी वहन को गोद से चिपकाये ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गई । सनीचरी से न तो प्यार की बातें करने का मौका था और न बाबू की पूरी हालत कह सुनाने का । दरियाव-किनारे से लौटकर मैं भी फकुली चला गया—ममहर । घर पर कुछ नहीं खाया था । ममहर में भात खाने को मिला । मामी से बाबू का सारा हाल कह सुनाया । साथ ही मैंने कहा, “मामा को पटने में बड़ा खोजा मामी, मामा मिले नहीं ।”

“नहीं मालूम कहाँ रहते हैं । पिछली बार आए थे, तो बतला रहे थे कि अब दानापुर रहते हैं । कहते थे, दानापुर पटने ही में है ।”

आखिर ममहर से भी शाम को लौट आया। पता लगा, खेखर काका अपनी बेटी की ससुराल गए हैं। हार कर, बिना माँ से कुछ बतलाये ठाकुर के यहाँ पहुँचा। अभी सूरज डूबने में देर भी थी। बड़े ठाकुर बैठकी में बैठे थे। लंबी-चौड़ी चौकी बिछी थी। मोनसीजी ठाकुर को कोई कागज दिखला रहे थे। जाते ही मैंने झुककर सलाम किया। मोनसीजी ने मुझे चुपचाप बैठने का इशारा किया। मैं चुपचाप बैठ गया।

“यह हैंडनोट कितने का है?” ठाकुर ने मोनसीजी से पूछा।

“है तो यह सरकार पचास ही का। मगर ...।” मोनसीजी रुके।

“मगर... ..?” ठाकुर ने पूछा।

“मैंने जरा-सा कलम लगा दिया है, अन्नदाता।” मोनसीजी बोले।

“मतलब?”

“पचास के आगे एक सुन्ना रखकर अँगूठे का निशान ले लिया था...।” कहकर मोनसीजी ने दाँत दिखला दिये।

“देखूँ... ..।”

“देखा जाय, सरकार ...?” मोनसीजी ने इस तरह एक कागज ठाकुर के हाथ पर रख दिया। ठाकुर उसे ध्यान से देखने लगे।

“शाबास, मोनसीजी। रहा इसमें आपका भी दो आना। इस पर भी एक कीता दायर कीजिए...।” खुश होकर ठाकुर बोले।

नहीं, नहीं, मैं तो सरकार का ही नमक खाता हूँ...। हम कायस्थ लोगो की कलम ही से तो लोग डरते हैं। धर्मराज के दरबार में भी चित्रगुप्त महाराज...हे...हे...हे।” कहकर मोनसीजी अजीब तरह से हँसे। चश्मा उनकी नाक से नीचे उतर आया। कंधे से चादर खिसक गई। मोनसीजी ने जरा बगल में झुँका और फिर चश्मा सम्भाल लिया। चादर कंधे पर रख ली। फिर उनकी नजर चउकी के नीचे रखी ‘पनही’ पर गई। ठाकुर और मोनसीजी बहुत खुश थे। मगर, मेरा धीरज टूट रहा था। मैंने तनिक एकटक होकर मोनसीजी से आँखें मिलायीं। हिम्मत का ऐसा काम मैंने आज के पहले कभी नहीं किया था।

“क्या है रे मगरुआ, तुम्हे क्या चाहिए ?” मोनसीजी ने पूछा ।

“सरकार...।” मैं रुका ।

“तेरा बाप ठीक हो गया ?” ठाकुर ने पूछा । उनकी बड़ी-बड़ी आँखें मेरी ओर घूम गईं ।

“नहीं मालिक, कल उनके घाव को डाक्टर ने चीर दिया है ।

“तू यहाँ कैसे आ गया ?” मोनसीजी ने पूछा ।

“क्या बताऊँ मालिक, डाक्टर ने कहा, खून घट गया है । खून देना होगा ।”

“ठीक है, खून दिलवा दे । अच्छा, एक काम कर । अभी तो तुम्हे फुर्सत होगी । † ढाका लेकर चला जा । बाजार पर की खलिहान में भूसा पड़ा है । लाकर खोप में भर दे । जा जा, जल्दी जा ।” मोनसीजी ने कहा ।

इस बात को मोनसीजी ने इस तरह कहा कि मेरे दिमाग ने काम न किया कि किस तरह से अपनी मजबूरी का वयान करूँ । जरा-सा भी मौका मिलता, तो कुछ कह पाता, मगर मौका कहाँ मिला ? मैंने कहा, “अच्छा सरकार ।” और, दौड़ा-दौड़ा मालखाने में अछैबरा के पास पहुँचा । भेट होते ही अछैबरा बोला, “खूब देह बना ले मगरुआ, भगवान करे, सबका बाप ऐसे ही बीमार पड़े ।”

“तुम नहीं जानते तो क्या कहूँ, बाबू की हालत ठीक नहीं है ।” मैं बोला ।

“क्या हुआ है ?”

“घाव चीरकर साफ किया गया है । भीतर घाव सड़ गया था ।”

“तब तो अच्छा ही हो जायगा ।”

“खून घट गया है, भइया ।”

“अच्छा, खून घट गया है...।” कहते-कहते अछैबरा ने पूछा,
“अच्छा बतला, तू यहाँ कहाँ आया है, कोई काम करना है ?”

‘हाँ ।’

“क्या करेगा ? गोबर काछेगा, लकड़ी फाड़ेगा ... ?”

“नहीं, बाजार की खलिहान से भूसा ले आना है । ढाका है ?”

“है तो, ले जा । बड़े मौके पर तू आया, नहीं तो यह काम मेरे ही मरथे पड़ता ।”

अछैबरा से ढाका लेकर मैं खलिहान चला गया । भूमे का बहुत बड़ा टाल था । दोते-दोते रात के ग्यारह बज गए । जब गर्दन टूटने लगी, तो मैंने ढाका बथान में रख दिया और बिना किसी को कुछ बतलाये चला आया । भोर में उठकर सोचा कि ठाकुर के हाथ-पैर पड़कर दो-चार रुपए माँगूंगा । सो ज्योंही ठाकुर के दरवाजे पर पहुँचा कि पता लगा कि काली बछिया उठी हुई है । पहुँचते-पहुँचते मैं बछिया को बरदाने के लिए पकड़ा गया । कहा गया, “मंगरुआ, तू करिअच्छी बछिया को बरदा ला । ठीक से बरदाना । पहले इस काम को तुम्हारे दादा किया करते थे । बरदा कर आएगा, तो भरपेट सनुआ मिलेगा । जा, फुर्ती चला जा ।”

फिर मेरे मुँह से कुछ न निकला । लठिया लेकर मैंने खूँटे से बछिया खोल ली । मैं अब उसे बरदाने के लिए ले चला । आमी, हराजी, मानुपुर, दिघवारा, महुपुर, गोराईपुर और मलखाचक तक हो आया । बदकिममती के कारण इन गाँवों में कहीं भी साँढ़ न मिला । मैं हाथ में लठिया लिये, बछिया की रस्सी पकड़े चिल्लाता फिर रहा था—अर्र, छो हो, छो हो, छोहो...!

अखिर इस तरह साँढ़ खोजता हुआ मैं नराँव पहुँचा । वहीं एक बगीचे में साँढ़ मिल गया । बछिया यहीं बरदा गई । इसके बाद बछिया को लिये मैं आमी की ओर लौटा । आठ-नौ बजे रात में मालिक के दरवाजे पर पहुँचा । गर्मी का दिन था । सभी जगे थे । रामभजन की माँ भी अभी हवेली में ही थी । मोनसीजी ने पूछा, “बरदा गई बछिया ?”

“जी मालिक !” मैं बोला ।

लो०-पं०—१३

“कुछ खाया है या नहीं ?

“नहीं सरकोर, भोर से तो इसी काम में लगा था ।”

“अच्छा, खड़ा रह । मैं तुम्हे खाना दिलवाता हूँ ।” बोले मोनसीजी ।

मैं चुपचाप खड़ा-खड़ा यह सोचता रहा कि अब तो यह खाने-पीने का समय है । दिन रहता, तब सत्तू मिलती । अब लगता है, हबेली से भात ही मिल जाएगा । भात मिलेगा, तो केले के पत्ते में रखकर घर ले जाऊँगा । माँ भी खायेगी, मेरी बहन और सनीचरी भी । तभी एक थाल में रामभजन की माँ मोनसीजी के लिए भोजन लेकर आँगन से निकली । मैंने देखा, थाल में तीन-चार किस्म की तरकारी थी । कटोरे में दाल थी और दाल के ऊपर घी तैर रहा था । मोनसीजी ने रामभजन की माँ से कहा, “अभी एक काम करो, रामभजन की माँ ।”

“क्या ?”

“मंगद्वारा बछिया बरदाने ले गया था । दिन-भर का भूखा है । भीतर से न हो, तो इसे आध सेर, डेढ़ पाव मसूरिया का सतुआ लाकर दे दो । नमक भी दे देना, हो सके तो एक आध मिरचाई भी ।” मोनसीजी ने रामभजन की माँ से कहा ।

“आप खाइएगा कब, आपके लिए पानी कब आएगा ?”

“पहले तुम इसे दे दो ।”

रामभजन की माँ भोजन का थाल वहीं रखकर आँगन में चली गई । उसके पैरो की मॉफ से फन-फन की आवाज हो रही थी । मैं अपनी जगह पर सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा । थोड़ी देर के बाद ही रामभजन की माँ एक कागज में मसूरिया की सत्तू लिये लौटी । पास आते ही मुझसे कहा, “किस चीज में लोगे, गमछा फैलाओ ।”

“यह क्या है गमछा, इसी में दे दो ।” कहकर मैंने गमछा फैला दिया । मुझे करीब पाव-भर सत्तू मिली और उसे लेकर नौ-साढ़े-नौ बजे तक मैं अपनी पलानी में पहुँचा । इस तरह मेरा दो रोज का वक्त यों

ही बीत गया। तीसरे रोज भी सोचा कि ठाकुर के यहाँ चलो, कुछ माँगूँ। मगर, हिम्मत न हुई। मैंने सोचा, अगर इसी तरह रोज बेगार में फँसता गया, तो महीने रोज के बाद भी ये लोग फुसत नहीं देंगे। मतलब यह है कि मैं जान-बूझकर नहीं गया। खेखर काका बेटी की ससुराल से अब तक नहीं लौटे। मेरा ध्यान एक बार टीपू भाई की जनाना की तरफ गया। हो सकता है, उसके पास कुछ हो। उसे इतना तो जरूर मालूम हो गया था कि मेरे बाबू पटना अस्पताल में भरती हुए हैं और उनका घाव चीरा गया है। मेरा अंदाज तो इतना जरूर था कि माँ यह बात कह आयी होगी। मगर दो-तीन रुपए के लिए किन-किन परेशानियों के बीच से होकर गुजरना पड़ रहा है, यह उसे मालूम है कि नहीं, मैं नहीं जान रहा था। आखिर मैं उसी भउजी से मिलकर रुपए माँगने का मौका निकालने लगा। कभी जाता तो चाँची मिल जाती, कभी जाता तो टीपू भाई की भौजाई ही रहती। बड़ा बुरा हुआ। एक बार फिर मौका देखकर, जब सूरज पच्छिम की ओर ढलता जा रहा था, मैं खेखर काका के यहाँ पहुँचा। मैंने देखा, टीपू भाई की जनाना जौ कूट रही है। भोपड़ी सुनसान जान पड़ी। मैंने कहा, “आऊँ भउजी !”

“आओ न।”

“और, चाँची ?”

“अनाज भूँजवाने गई हैं।”

“बड़की भउजी ?”

“दरिआव कपड़े फाँचने गई हैं।”

“तब तो ठीक है।”

“क्या हुआ तुम्हारे बाबू का ?” भउजी ने पूछा।

“वही अस्पताल में है। घाव चीरा गया है।

“तो तो चाँची कह रही थीं।”

“हाँ, घाव चीरने से बाबू का खून घट गया है। दो-तीन रुपए का खून खरीदकर देना होगा। अस्पताल में खून मिलता है। मगर करम

की बात क्या कहूँ भउजी, पास में फूटी कौड़ी भी नहीं है। दो-तीन रुपए कहाँ से ले आऊँ, कुछ समझ में नहीं आता।”

मेरे मुँह से यह बात सुनकर भउजी ने जौ कूटना छोड़ दिया। मूसल जमीन पर रखकर चुपचाप बैठ गई और मेरा मुँह देखने लगी। उसने पूछा, “मालिक से माँगकर देखा है।”

“नहीं, माँगने का मौका मिलता है? वहाँ तो जाते ही बेगार में पकड़ लिया जाता हूँ।”

“दो रोज से आए हो, कही इंतजाम नहीं हुआ?”

“नहीं। मगर मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास है और अगर तुम्हारे पास कुछ हो तो दो, कमाकर तुम्हारा लौटा दूँगा।”

“ए बबुआ, घर की मालिकिनी तो ‘वे’ हैं। दो पैसे चाहे चार पैसे सब उन्हीं के पास रहता है। मैं तो काम करना जानती हूँ, मेरे पास कहाँ से आएगा? जब कभी तुम्हारे भाई आते हैं, तो दो-चार आने दे देते हैं। वही बटोरकर रख दिया है। अगर तुम चाहो, तो उसे ले जाओ। अगर उससे तुम्हारा भला हो जाय, तो मैं समझूँगी कि मेरा † चोरठका पैसा भी सवारथ हो गया।” भउजी बोली।

“भउजी। मैं तुमसे जो कुछ माँग रहा हूँ, सो बेहाया होकर। मगर क्या कहूँ, चारो ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दीख रहा है। कोई मदद करने वाला नहीं है। देखो न, तुम्हारे पास दो-चार रुपए निकल गए, तो मेरा काम हो जायगा। रात की गाड़ी से चला जाऊँगा।” मैंने कहा।

टीपू भाई की जनाना देहात की चमईन की बेटी ही तो थी! मगर उस वक्त उसकी आँखों में जो दया के आँसू उमड़ आये थे, उन्हें मैं आज तक नहीं भूल सका हूँ। भउजी ने मेरी उस वक्त की बुरी हालत को मुहब्बत की नजरो से देखा था। उसने मुझे एक मैले टुकड़े से खोलकर चार रुपए दस आने दिये थे। मैं उसी दिन रात को चौदह आने का

† सास-ननद से छिपाकर रखे गए पैसे।

टिकट खरीदकर एक पहर रात रहते पटना पहुँचा था। भोर होते ही मैं सीधा अस्पताल पहुँचा। अपने रोगियों को देखने और उनसे मिलने के लिए बहुत लोग, औरत-मर्द सीढ़ियों को पारकर अस्पताल के दो-तल्ले पर जा रहे थे। मैं बड़ी फुर्ती के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ पलंग पर बाबू रखे गए थे। मगर, वहाँ पहुँचते ही मेरी बुद्धि चकरा गई। बाबू के पलंग पर कोई दूसरा रोगी पड़ा था। मैंने घूम-घूमकर चारों ओर देखा, बाबू का कहीं पता नहीं था। दो-तीन मेम साहब घूम-घूमकर रोगियों के बिछावन बदल रही थीं। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया।

“क्या देखता है?” एक मेम साहब ने पूछा।

“मेम साहब मेरे बाबू...।”

“मैं नहीं जानती तुम्हारे बाबू को...।” जवाब मिला।

“मेरे बाबू उस पलंग पर...” — मैंने हाथ से इशारा देकर कहा, “रखे गए थे। घाव चीरा गया था उनका। डाक्टर बाबू ने कहा था कि खून देना होगा। तीन-चार रोज पहले की बात है। मैं खून के लिए रुपए ले आने अपने गाँव चला गया था।”

“देखो, वहाँ जाकर पूछो।” दूसरी मेम ने मुझे एक ओर इशारा करके बतलाया।

मैं उसी जगह पहुँचा। यह एक बड़ी-सी कोठरी थी। इसमें चारों ओर दरवाजे थे। काठ की आलमारियों में दवाएँ रखी थीं। एक ओर पीतल के बर्तन में पानी रखा था। एक टेबुल पर रूई और पट्टी बाँधने के कपड़े रखे थे। बीच में एक टेबुल थी और दो कुर्सियाँ। एक कुर्सी पर, अँग्रेजों की तरह पैट-कोट पहने, चश्मा लगाये एक आदमी बैठा हुआ था। दूसरी कुर्सी पर एक और मेम साहब बैठी हुई थी। पहले तो मैं उस कोठरी के भीतर जाते बहुत डरा, मगर पीछे हिम्मत हो गई। मैंने भीतर पैर रखते ही उन दोनों की ओर देखकर कहा, “सरकार, मेरे बाबू कहाँ हैं? तीन-चार रोज पहले उनकी पीठ का घाव चीरा गया था। उनको चटगाँव में बमगोला लगा था। डाक्टर साहब ने कहा

था कि खून घट गया है... मैं खून लेने के लिए पैसे का उपाय करने गाँव चला गया था...।”

“क्या नाम था तुम्हारे बाबू का ?” मेम साहब ने पूछा ।

“नाम मगडू था मेम साहब !”

“बेड नंबर क्या था ?” पैट-कोट पहने आदमी ने मेम साहब से पूछा ।

“पट्टर नंबर.....।” कहकर वह मेम साहब मेरा मुँह ताकने लगी ।

“मैं रुपए ले आया हूँ, मेम साहब । बाबू को खून दे दीजिए .. ।
तीन-चार रुपए मैं हो जाएगा न ?”

“ये डाक्टर हैं, इनसे कहो ।” मेम साहब बोली । उसने सामने की कुर्सी पर बैठे हुए आदमी की ओर इशारा किया ।

“आप समझा दीजिए न ।” डाक्टर ने मेम साहब से कहा ।

“नहीं, डाक्टर, यह काम आप कर लीजिए ।” मेम साहब बोली ।

“क्यों, क्या अब खून की जरूरत नहीं है ? बाबू अच्छे होकर चले गए क्या ? कल शाम तक तो मैं घर ही पर था, मुझसे भेंट नहीं हुई । कैसे बाबू चले गए, उनके पास तो रेलभाड़े का पैसा भी नहीं था ।” मैं बोला ।

“अब तुम भी घर चले जाओ ।” मेम साहब बोली ।

“क्यों सरकार, बाबू सचमुच अच्छे होकर चले गए ?” मैंने पूछा ।

“घबड़ाने की बात नहीं । कोई भी यहाँ हमेशा के लिए रहने नहीं आया है । तुम अब घर चले जाओ । अब बाबू से नहीं भेंट होगी ।” डाक्टर ने कहा ।

“तो कहाँ गए बाबू ?”

“खून घट जाने और वक्त पर खून नहीं दिये जाने की वजह तुम्हारे बाप का आपरेशन खराब हो गया । चौबीस घंटे तक लाश रोककर रखी गई । हमलोगों ने तुम्हारा बड़ा इंतजार किया । जब तुम नहीं आए, तो लाश को फेंकवा दिया गया ।” डाक्टर ने समझाकर कह दिया ।

“डाक्टर बाबू ... ।”

“घबड़ाओ नहीं। भगवान के आगे हमलोगो का कोई वश नहीं चलता।”

“मेम साहब....।”

“अब तुम घर चले जाओ। रीने से काम नहीं चलेगा। हमलोगों को इसके लिए खुद तकलीफ है। हमलोग कभी नहीं चाहते कि हमारे यहाँ से कोई मरीज नुकसान उठाकर जाय। मगर गौड...गौड का पावर ।” मेम साहब कहने लगी।

अब मैं रोता और माथा पीटता हुआ अस्पताल से बाहर निकल आया। बाहर आकर पीपल के पेड़ के नीचे बहुत देर तक बैठा रहा। रह-रहकर रुलाई आती थी। बाबू का चेहरा याद आ रहा था। बाबू की बातें याद आ रही थीं। बड़ी देर के बाद यहाँ से उठा, तो सीधा महेन्द्रू जहाज घाट पहुँच गया। न भूख लगी थी, न प्यास। यहाँ से अस्पताल की ओर देखने तक का मन नहीं करता था। दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बचाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल में मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दी थी, मगर ठाकुर ने दादा के बेटे के लिए दो-चार पैसे न दिये। गोहराँव पर जाते वक्त दादा ने दादी से कहा था कि मेरे रहते अगर ठाकुर के खेत में कोई छेव लगा दे, तो मेरी जिंदगी अकारण है। —ठाकुर की लाखों की हैसियत रहते, दो, चार, दस रुपए के लिए दादा के बेटे की जिंदगी खो गई। पुगानी बातें ढाई पीढ़ी का तमाशा उलट-पुलटकर मेरी आँखों के सामने न-जाने कौन-कौन खेल दिखला रही थी। मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे दुनिया में रहते हुए भी मैं नहीं हूँ। या हूँ भी, तो इस तरह टूट गया हूँ या मुझे इस तरह तोड़कर रखा गया है कि मैं अपने बनाये नहीं बन सकता। यह काम मेरे बूते का नहीं।

आखिर जब जहाज खुलने का समय हो गया, तो टिकट लेकर मैं जहाज पर बैठ गया। आज ऐसा मालूम होता था, जैसे जहाज बड़ी तेजी से चल रहा है। गंगा की फैली हुई चौड़ाई को जहाज बहुत

जल्दी-जल्दी पार कर रहा था। बाबू के मरने की खबर माँ से कैसे कह सुनाऊँगा, बाबू की लाश भी नहीं मिली, यह कैसे कहा जायगा, बाबू की जान खून के बिना चली गई, यह सब किस मुँह से कहूँगा ? मुझे जहाज पर भी रुलायी आ गई। मैं रोने लगा। मेरे आस-पास बैठे हुए मुसाफिर मुझसे पूछने लगे, “क्यों रोते हो, तुम्हें क्या हो गया है ?”

“तुम्हारा कोई बीमार है क्या, क्या किसी ने जेब काट ली है ?”

“नहीं, कुछ नहीं।” कहता हुआ मैं उनलोगों के तरह-तरह के सवाल से बचने की कोशिश करता रहा। मगर मेरी रुलायी रोके नहीं रुकती थी।

जब इतनी बातें तुमसे कह चुका, तो भला अब क्या छिपाऊँ । ठाकुर के घर बेगार खटने की बात तो हमारी खान्दानी हथकड़ी थी । जब बाबू मर गए, तो बिरादरीवालों को खिलाने के लिए जमींदार के घर से थोड़ी-सी मकई मिली और तीन रुपए नगद । दसवे रोज मकई का भात और दही खिलाकर मैंने बिरादरीवालों से फुर्सत पा ली । महीने रोज तक माँ रोती-कलपती रही । खेखर काका की जनाना ने आकर कई बार समझाया कि अब रोने से कोई फायदा नहीं है । भगडू बबुआ को ऐसे ही उठना था, उठ गए । पीछे माँ का रोना भी बद हो गया । गोबर पाथने और बथान साफ करने के लिए उसे ठाकुर के यहाँ पहले की तरह रोज जाना पड़ता ।

इन्ही दिनों की बात है । मालिक के एक काम से मैं दिग्वारा गया था । दिन के बारह बज रहे थे । मैं घर लौटा आ रहा था । रास्ते में, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क की बगल में ही एक ताड़ीखाना था । एकाएक किसीने मुझे पुकारा, “भगरू, ए भगरू ?”

मैं सड़क पर ही खड़ा हो गया । न तो मैं यही समझ सका कि आवाज किधर से आई है और न यही पता चला कि मुझे पुकारनेवाला कौन है । मैं अकचकाकर चारों ओर देखने लगा । कोई आमी का आदमी तो नहीं है ? मुझे फिर सुनायी पड़ा—

“अरे, इधर आओ भगरू । मुझे भूल गए ?”

मैंने फिरकर बायी ओर देखा । इस बार इतना जरूर समझ गया कि आवाज ताड़ीखाने की ओर से आयी है । अब मैं खड़ा होने के

बजाय जरा बायी ओर मुड़ गया। बॉस के चार खभे गाड़कर ताड़ के डमखो से ताड़ीखाना खड़ा किया गया था। उसके चारो ओर ताड़ के पत्ते के दोने फेके हुए थे। ताड़ी पीनेवालो ने, उनमे ताड़ी पीकर, उन्हें फेंक दिया था। सामने ही एक ताड़ का पेड़ था। उसके नीचे दो-तीन खाली लबनियाँ पड़ी थीं, मगर उनपर मक्खियाँ भनभना रही थी। अपनी जगह से खड़े-खड़े बायी ओर मुड़कर मैंने देखा, एक तीस-बत्तीस साल का जवान ताड़ीखाने से बाहर निकला आ रहा है। मैंने पूछा, 'मुझे पुकार रहे हो ?'

"और किसे, पहचानते नहीं ?" उसने मेरी ओर बढ़ते हुए पूछा।

"नहीं, मैं तो नहीं पहचान रहा हूँ।"

"क्या बात करते हो, इतनी जल्दी आँखें मोटी हो गईं।" कहता हुआ वह मेरे और करीब आ गया। अब मेरे और उसके बीच सिर्फ दो-तीन कदम की दूरी रह गई थी। मैंने कहा, "सच कहता हूँ भाई, तुम्हें पहचान नहीं पा रहा हूँ। तुम्ही बतलाओ, मुझे कैसे जानते हो ?"

"अच्छा, पहले चलो भीतर। पीछे बतला दूँगा। आओ, थोड़ा पी लो।"

"तुम रहनेवाले कहाँ के हो ?" हिचकते हुए मैंने पूछा।

"मैं तुम्हारे गाँव-जवार का ही रहनेवाला हूँ। आओ न, चलो। सब बातें होगी ..।" कहते हुए उसने मेरे दाहिने कंधे पर अपना बाँया हाथ रख दिया और मुझे अपनी ओर खींचता हुआ ताड़ीखाने में ले आया। भीतर ताड़ी के बड़े-बड़े बर्तनों को आगे रखकर एक बूढ़ा बठा हुआ था। उसके चेहरे, उसकी आँखें और उसके देखने के ढंग से पता चला कि ताड़ीखाने का मालिक वही है। मेरे वहाँ पहुँचते ही उसने मेरी ओर घूरकर देखा। उसका सर खुला हुआ था। उसके आधे से अधिक बाल पक चुके थे। उसके गले में एक पीतल की ताबीज लटक रही थी। कंधे पर लाल रंग का पुराना अंगोछा था और कमर में पुरानी मगर कुछ साफ, कम अर्ज की धोती थी। ताड़ी बेचने के लिए उसके पास ही कई छोटी-छोटी लबनियाँ और ताड़ के बने-बनाये दोने पड़े थे।

बड़े-बड़े घड़ों की, बाहरी दीवार पर, जिनमे ताड़ी के फेन गिरे थे, मक्खियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। मुझे देख लेने के बाद, ताड़ीखाने के उस बूढ़े मालिक ने बड़े गर्व के साथ अपने ताड़ी के बर्तनों की ओर देखा। जैसे, इतनी अच्छी ताड़ी किसी और ताड़ीखाने में नहीं मिलेगी। भीतर ही एक ताड़ की चटाई बिछी थी। मुझे पुकारकर भीतर ले जाने-वाले आदमी ने मुझसे कहा, “बैठो इस पर। और बतलाओ, कितनी लें।”

“जितनी लो, मगर तुमने तो यह बतलाया ही नहीं कि तुम कौन हो?” चटाई पर बैठकर मैं बोला।

“लाओ जी, बड़ी लबनी से एक लबनी। दो दोने भी दे देना।”

“किसमे से दूँ?” ताड़ी बेचनेवाले ने पूछा।

“जो अच्छी हो, उसी मे से दों।” बोला वह आदमी—उसने मुझसे कहा, “पहले ताड़ी आगे रख लो। पीना शुरू करोगे, तो बाते होगी।”

“अच्छा।” मैंने कहा।

इतने ही मे ताड़ी बेचनेवाला हमलोगों के आगे एक लबनी ताड़ी और दो दोने रखकर फिर अपनी जगह पर जा बैठा। उस आदमी ने एक दोना मेरे हाथ मे देकर कहा, “लो, पहले एक छाक तुम ही लगाओ।”

“और तुम?” मैंने पूछा।

“पहले तुम लगा लो। पीछे तुम ही छानकर मेरे दोने में उडेलना।”

“अच्छा, दो।”

मेरे पीने के बाद उसने भी एक दोना ताड़ी पी ली। अब ऐसा लगने लगा, जैसे हम दोनों बेफिकर होकर बैठे हैं। पहले उसने मेरी ओर देखकर मुस्कुराया, फिर कहा, “ऐसा नहीं चाहिए मंगरू, हम दोनों तो साथ के नाचे-गाये हैं।”

“हम दोनों साथ के नाचे-गाये हैं?” मुझे अचरज हुआ।

“और नहीं तो क्या? फर्क इतना था कि मैं तुमसे कुछ † सरेख था और दोनों नाच के अलग-अलग समाज मे रहते थे।”

“क्या नाम है तुम्हारा ?” मैंने पूछा ।

“बीलट ।” जवाब मिला ।

“अरे, तुम बीलट भाई १०० ।” मैंने बीलट भाई को पहचान लिया । मैं अपने गाँव से करीब चार कोस दूर की बस्ती में नाचने गया था । बारात राजपूत की थी । एक ही घर में दो-दो बेटियों की शादी । बारात दो जगह से आयी थी । न-जाने, किस पंडित ने एक ही दिन विवाह की लगन निकाल ली थी । बारात दो सामियाने में एक ही बगीचे में अलग-अलग ठहरी थी । दूसरी बारात में बीलट भाई भी नाचने आए थे । उस समय मैं देखने-सुनने और गाने में भी बीलट भाई से बीस ही था । मगर, उस रोज बीलट भाई ने मुझे ही पछाड़ दिया । गाना सुनने और नाच देखनेवालों का कहना था कि उस बारात में एक अलबत्त लौंडा आया है । उम्र तो अधिक है, उतना † खिच्चा नहीं है, मगर जब बायसकोप के गाने गाने लगता है, तो मन को मोह लेता है । साथ ही यह भी सुना कि रात-भर के गाने में उसने सट्टा से अधिक बक्शीश ही झाड़ लिया । मुझे अपनी इस हार पर बड़ी लज्जा आई थी । मैंने कहा, “अच्छा, तो तुम वही बीलट भाई हो, जिनसे सिनेमा के गाने नहीं जानने के कारण मुझे हार खानी पड़ी थी ?”

“हाँ, मैं वही बीलट हूँ ।” वह बोला ।

“अच्छा, और सुनाओ भाई, आजकल क्या कर रहे हो ?” मैंने पूछा ।

“अब तो वह पेशा छोड़ ही दिया है ।”

“सो तो मैं भी समझता हूँ । अब उस पेशे के लिए हमलोगों की उम्र भी कहाँ रही ।”

“नौकरी कर रहा हूँ ।”

“कहाँ ?”

“कारखाने में ।”

“कारखाने में ?”

“हाँ, वहाँ बहुत बड़ा कारखाना है ।”

“कहाँ ?”

“रतननगर ।”

“रतननगर, रतननगर कहाँ है ?”

“यहाँ से बहुत दूर है । मगर, गाँव में रोज-रोज बेगार खटने की खिच-खिच से जान बची है । वहाँ तो समझो खट कर खाना है । घंटे-घंटे की मजूरी हिसाब करके मिल जाती है । बहुत बड़े मारवाड़ी का मिल है ।” बीलट ने कहा ।

“अच्छा, तब तो ठीक है । मेरे दिन तो बड़े ठाले में गुजर रहे हैं । बाप चटगाँव में नौकरी करते थे, सो लड़ाई में बमगोला लग गया । बीमार होकर जख्म लिये घर पहुँचे । यहाँ अस्पताल में खैराती दवा मिलना मुश्किल था । पास में पैसे नहीं थे । हार कर पटना के बड़े अस्पताल में भरती कराया । सो घाव की चीर-फाड़ हुई, तो खून ही घट गया । खून खरीदने के लिए मौके पर पैसे न मिले, आखिर बाबू की जान वहाँ अस्पताल में ही चली गई । मैं तीन रोज बाद पहुँचा, तो लाश तक न मिली ।” मैंने बतलाया । इसपर बीलट भाई ने बहुत अफसोस जाहिर किया । मुझसे पूछा, “तेरा ब्याह हो गया ?”

“हाँ ।” मैंने कहा ।

“और, घर में कौन-कौन हैं ?”

“माँ है, गोद में एक छोटी बहन है और जनाना ।”

“तुम्हे बाल-बच्चे भी हैं ?”

“नहीं ।”—मैंने कहा, “हमलोगों को ही खाना मिलना मुश्किल है । बाल-बच्चे हो गए, तो न जाने क्या होगा । नमक चटाकर मार देना तो नहीं पार लगेगा । मगर बेगार की रोटी से क्या होगा—साले मरेगे ।”

तब बीलट भाई ने मेरे दोने में फिर भरकर ताड़ी उडेल दी और मैं एक ही साँस में ताड़ी पी गया । पीके मैंने भी बीलट भाई के दोने में

ताड़ी उडेली। ताड़ी पीकर बीलट भाई ने मुझसे पूछा, “मिल में काम करोगे ?

“करूँगा क्यों नहीं, काम मिले भी तो।”

“मिलेगा।”

“सच ?”

“हाँ, आजकल तो बहाली भी हो रही है। लड़ाई का जमाना है न ! इधर एक लकड़ी का भी कारखाना खुला है।” बीलट भाई बोले।

याद रखने की बात है कि इन दिनों अनाज, कपड़े, चीनी और किरासन तेल सबका भाव तेजी पर जा रहा था। बाजार में अच्छा चावल मुश्किल से दस छटॉक, तीन पाव का मिलता था। घटिया चावल सवा सेर, छः कनवाँ, सात कनवा तक मिलता था। वैसे चावल में ककड़ अधिक होता। चावल का रंग गदा और लाल होता था। पूरबी देश की ओर से जापान चढा आ रहा था। लड़ाई बड़े जोरों की चल रही थी। फिर मुझ-जैसे आदमी के लिए जिसे न खेत था, न नौकरी थी—परिवार के साथ जीना मुश्किल था। गाँव छोड़कर कहीं भाग जाने की तबियत होती थी। मगर भागकर कहाँ जाता ? कहीं से भी रोजी और रोटी का कोई आसरा नहीं था। ऐसी हालत में बीलट भाई ने मुझसे नौकरी के लिए पूछा था। यह मेरे लिए बड़ी खुशी की बात थी। मैंने कहा, “तो मेरे लिए भी कोई सटिका भिड़ानो न।”

“सटिका क्या भिड़ाना है ! मेरे साथ चलो, तो दो पैसे की रोजी लग ही जायगी।”

“मगर तुम तो कह रहे हो कि रतननगर यहाँ से बड़ी दूर है।”

“दूर है तो इससे क्या ? रोजी और रोटी के लिए तो आदमी सात समुन्दर पार बिलायत तक जाता है।”

“कितनी तनखाह मिलेगी।”

“अगर सरकारी में बहाल कर लिये गये, तो सत्ताइस रुपए मिलेंगे। बारह तनखाह और पंद्रह महँगाई।”

“सत्ताइस रुपए ।”

“हाँ, मुझे सत्ताइस रुपए ही मिलते हैं। चलना चाहो, तो चलो। सरकारी में न हुआ, तो ठेकेदारी में नौकरी हो जायगी। बेगार खटने से लाख दरजे अच्छा रहेगा। मुझे तो उसी बेगार की वजह से गाँव छोड़कर भागना पड़ा।” बीलट भाई बोले।

बीलट भाई की बात मुझे जँच गई। उस रोज मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं अब अँखफोड़ होने लगा हूँ। बीलट भाई ने मेरी आँखें खोलने की कोशिश की थी। ताड़ी पी लेने के बाद बीलट भाई ने ताड़ीवाले को पैसे दे दिये और वहाँ से हमलांग निकलकर सड़क पर आ गए। मैंने बीलट भाई से कहा, “अब मुझे अपने साथ लेते चलो। कहा भी है—
हिले रोजी, बहाने X मउगत।”

“चलो, मैं परसो जा रहा हूँ। चाँथे रोज तक मेरी छुट्टी है।”

“मगर बीलट भाई, मेरे पास न तो रेलभाड़ा के लिए पैसे हैं, और न खाने-पीने के लिए कुछ अनाज है। कैसे चलूँगा ? इसके लिए कोई उपाय सोचो, तो चलूँ। वहाँ कमाकर सबसे पहले तुम्हारा कर्ज तोड़ दूँगा।” मैंने कहा।

“तुम चलो न। रेलभाड़ा इधर से मैं दे दूँगा। वहाँ एक छोटी-सी दुकान पर बहुत लोग उधार खाते हैं। वहाँ मैं भी खाता हूँ, तुम्हारा गुजारा भी हो जाएगा।”

“तो रही बात पक्की।”

“हाँ, चलो।”

“तुमने मेरा घर देखा है ?”

“नहीं।”

“तो चलो, इधर से मेरा घर भी देख लो। रतननगर किधर पड़ता है ?”

“यहाँ से पहले पटना जाना होगा। फिर वहाँ से बड़ी लाइन का टिकट लेकर पच्छिम की गाड़ी पर चढ़ेगे।”

बीलट भाई ने मेरे ऊपर बड़ी दया की। उनका घर धारीपुर में था। धारीपुर हराजी गाँव का एक हिस्सा है। वे मेरे साथ मेरी पलानी तक आए। मेरे यहाँ पानी पिया और मुझसे कहा, “चलो तुम भी मेरा घर देख लो। मैं परसों भोर की गाड़ी से जाऊँगा। तुम खूब सबेरे सूरज निकलने के पहले मेरे यहाँ चले आना। वहीं से हमलोग एक साथ स्टेशन चलेगे।”

“अच्छी बात है।” मैंने कहा।

बीलट के साथ मैं धारीपुर आया। उनका घर देखा, मकई का भूँखा खाकर पानी पिया और अपने गाँव लौट आया। अब यहाँ आकर मैंने माँ से सारी बातें समझाकर कही। माँ का हाथ अभी तुरत का जला हुआ था। फोडा फूटकर सुखा भी न था। वह मुझे गाँव से बाहर भेजने में आनाकानी करने लगी। कमाने के लिए बेटे को दूर देश भेजते उसे डर लग रहा था। सनीचरी मुँह फुलाकर अलग बैठ रही। उस रोज रात को मेरी पलानी में मातम छाया रहा। मैंने माँ से कहा, “इतने लोग परदेश कमाने जाते हैं, सो क्या मर ही जाते हैं?”

“इतने लोगों से मुझे क्या मतलब है? मेरा कोख जला हुआ है। एक बेटे को बेटा और एक आँख को आँख नहीं कहते। परदेश कमाने तो सभी जाते हैं, तेरे बाप को बमगोला क्यों लग गया? देख रही हूँ कि लड़ाई में जा-जाकर लौटते आ रहे हैं लोग, तेरा बाप तो लड़ाई पर नहीं गया था। तू मेरा मरा हुआ मुँह ही देख, जो परदेश कमाने जा!” इस तरह कहकर माँ ने मुझे कसम दे दी।

“तू नहीं समझती, तो क्यों बकती जाती है? लड़ाई पूरब में हो रही है, मैं पच्छिम में जा रहा हूँ। बाबू तो वहाँ कमाने चले गए थे, जहाँ, लड़ाई पहुँच गई थी।” मैंने कहा। उस वक्त सचमुच मुझे तनिक गुस्सा आ गया था।

माँ को मेरी बातों पर विश्वास न हुआ, तो दौड़ी-दौड़ी भुलन बाबाजी के यहाँ पहुँच गई। वहाँ जाकर दरियाफ्त किया कि रतननगर पूरब में पड़ता है या पच्छिम में। वहाँ लड़ाई हो रही है या नहीं? वहाँ लड़ाई के पहुँचने की उमीद भी है या वहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। दूसरे रोज भुलन बाबाजी से भेट हुई, तो उन्होंने मुझसे सारी बातें कहीं। मैंने कहा, “पगलो है।”

“नहीं, नहीं, उसे समझा दिया है। वह मान गई है। तुम अमिका भवानी का नाम लेकर चले जाओ। अरे, अब घर में तुम ही तो अकेले रह गए। औरतों को अगर नाक न हो, तो सब कुछ खा लें। तुम इस भ्रम में कहाँ पड़ोगे? जहाँ दो पैसे की रोजी लगे, वहाँ जाना चाहिए। बेटा और लोटा जितना ही धूमे, उतना ही अच्छा।” भुलन बाबाजी ने मुझे समझाया।

“सो तो है बाबाजी!” मैंने कहा।

“नहीं, तुम चले जाओ। कल उधर का *जतरा भी है। †दिरिगसूल बिल्कुल नहीं है। लौटकर आना तो पाँच आने मेरी पचांग पर चढ़ा देना।” बोले, भुलन बाबाजी।

आखिर मैं वीलट भाई के साथ रतननगर के लिए चल पड़ा। पटने के बाँकीपुर स्टेशन जाना था। महेदू घाट से हमलोग इक्के पर चढ़कर स्टेशन की ओर चले। यहीं स्टेशन पर आकर पहली बार मैंने बड़ी लाइन की गाड़ी देखी। रतननगर की गाड़ी आने में अभी देर थी। इसलिए टिकट लेकर हम प्लेटफार्म पर बैठ गए। बीच में दो रेलगाड़ियाँ आयी थीं। डब्बे हरे-हरे थे और इनमें एक की जगह तीन पावदान बने थे। यह सब देख-देखकर मैं चौंक ही रहा था कि रतननगर की गाड़ी आ पहुँची। वीलट भाई घबड़ाकर उठ खड़े हुए। मुझसे कहा, “उठो, उठो, हमलोगों की गाड़ी आ गई!”

*यात्रा। †दिशाशूल।

रेलगाड़ी के आकर रुकते ही हमलोग भीतर जा बैठे। रास्ते में एक-दो जगह गाड़ी बदलनी भी पड़ी। दूसरे रोज भोर में, जब मैं गाड़ी के सीट पर बैठा ऊँघ रहा था, तो बीलट भाई ने मेरे कंधे को झुकभोर-कर उठा दिया। गाड़ी के नीचे से अजीब तरह की भयानक आवाज निकल रही थी। बीलट भाई ने मुझसे कहा, “यह देखो, पुल है। इसके नीचे वह नदी देखो।”

“पुल और नदी ?”

“हाँ।”

“उस पुल के बाद आगे दरियाव के किनारे से बहुत थोड़ी दूर पर ही रतननगर है।”

“अच्छा....।”

मैंने रेलगाड़ी की खिड़की से झुककर देखा, पूरब से पच्छिम तक बहुत बड़ा पुल था। दोनों ओर से लोहे के लाल-लाल गाटर लगे हुए थे। नीचे बहुत ही चौड़ी नदी बह रही थी। मगर ऐसा लगता था, जैसे गर्मी के कारण नदी का आधा से अधिक पानी सूख गया है। किसी ओर बालू-ही-बालू था, तो किसी ओर बहुत पतली और चौड़ी धारा बह रही थी। रेलगाड़ी से ही पानी के नीचे का बालू दीख पड़ता था। अपने पहियों से भयावनी आवाज पैदा करती हुई रेलगाड़ी पुल पार करती जा रही थी। मुझ यह सब देख-देखकर बड़ा अचरज हो रहा था कि तभी रेलगाड़ी पुल को पार कर गई। रेलगाड़ी के पुल से आगे निकलते ही बीलट भाई ने कहा, “इधर देखो, दाहिनी ओर।”

“हाँ।” मैंने कहा।

“यही रतननगर है।”

“यही रतननगर है ?”

“हाँ। स्टेशन से दायीं ओर रतननगर है और बायीं ओर बनगाँव।”

“यहाँ ताड़ के इतने बड़े-बड़े पेड़ हैं ? और सबमें तो लगता है, जैसे आग लग गई हो । इन सबों से धुआँ क्यों निकल रहा है वीलट भाई ? बाप-रे-बाप, इतनी बड़ी अगलगली ।” मैंने कहा ।

“वे ताड़ के पेड़ नहीं हैं, रे ! वे सब चिमनी हैं । कोई पावर हाऊस की है, कोई चीनी-मिल की । कोई सिमेण्ट फैक्टरी की ।”

“चिमनी क्या ?”

“यहीं सब कुछ नहीं समझ सकते । अब तो चल ही रहे हो । काम करना पड़ेगा, तो खुद देख लोगे ।”

तभी रेलगाड़ी प्लेटफार्म पर आकर रुक गई । सामान उठाकर वीलट भाई के साथ मैं डब्बे से बाहर निकला । यहाँ मुझे माँ और सनीचरी की याद आई । अब तो सचमुच मैं उनलोगों को छोड़कर परदेश चला आया था । मैंने वीलट भाई से पूछा, “वीलट भाई, यहाँ से हमलोगों का घर किधर पड़ता है ?”

“उधर ।” अपने दायें हाथ की ऊँगली से वीलट भाई ने उत्तर और पूरब के कोने की ओर इशारा किया ।

स्टेशन पर दो प्लेटफार्म थे । ऊपर काठ और लोहे के गाटर का आदमियों के आने-जाने के लिए पुल बना था । दो सीढ़ियाँ दोनों प्लेटफार्म पर उतरी थीं । एक सीढ़ी स्टेशन के बायीं ओर जाने के लिए बनी थी और एक सीढ़ी स्टेशन के दायीं ओर । हमलोग प्लेटफार्म की सीढ़ी से चढ़कर, ऊपर पुल पर आ गए और अब उत्तर की ओर जाने लगे, जिधर रतननगर था । तभी बड़े जोरों का भोपा बजने लगा । इस भोपे की आवाज जहाज के भोपे से बहुत ऊँची थी । लगता था, कान फट जायेंगे । हमारे आस-पास से दूर-दूर से आते हुए मजदूर कारखाने की ओर भागे जा रहे थे । मैंने वीलट भाई से पूछा, “यह सब कहाँ भागे जा रहे हैं ?”

“यह साढ़े पाँच का भोपा बजा है । रोज ऐसे ही कारखाने का भोपा बजता है और मजदूर जैसे-तैसे कारखाने की ओर भागते-दौड़ते

नजर आते हैं। देर होगी, तो मजदूरी कट जाएगी।” बीलट भाई ने बतलाया।

अब पुल से उतरकर हमलोग नीचे जमीन पर आ गए। रतननगर के ऊपर का आसमान काले-उजले धुएँ से छिप गया था। जिस चीज का नाम बीलट भाई ने ‘चिमनी’ बतलाया था, सो चिमनी इतने धुएँ उगल रही थी कि जिसका कोई हिसाब ही नहीं। पुल से जैसे ही हमलोग नीचे उतरे कि देखा, सिमेण्ट का बहुत बड़ा फाटक सामने है। उसके एक पाये पर हिंदी में लिखा था—‘रतननगर’। सिमेण्ट के पायों में लोहे के किवाड़ लगे थे। उस फाटक में घुसते ही बीलट भाई ने कहा, “देखो, अब तुम रतननगर के अहाते में आ गए। यहीं से कारखाने की जमीन शुरू होती है।”

“कारखाने की जमीन शुरू होती है?”

“हाँ, यह जमीन सरकारी नहीं है। जिसका यह कारखाना है, इस फाटक से इधर की सारी जमीन उसी की है।”

“अच्छा।”

“यह रतननगर भी उसी के नाम पर है। कारखाने के मालिक का नाम है—रतनमल।” बीलट ने भाई ने बतलाया।

फिर मुझे बीलट भाई वहाँ ले आए, जहाँ वे रहते थे। कारखाने के अहाते से सटे ही दक्खिन की ओर फूस की पचासों मीपड़ियाँ बनी थीं। मीपड़ी के सामने का तंग मैदान बहुत ही गंदा था। बगल में एक पोखरा था, जिसमें घुटने भर पानी था। पोखरे के चारो ओर कंटीले पौधे उपजे थे। पोखरे के पानी को देखकर यह अंदाज करना मुश्किल नहीं था कि इसका पानी न तो नहाने के काम में आ सकता है और न पीने के काम में। पोखरे के घाट पर दो तीन बकरियाँ चर रही थीं और उसके गंदे पानी में एक भैंस बैठी पागुर कर रही थी। मीपड़ी के दरवाजे पर खड़े होकर बीलट भाई ने मुझे बतलाया कि यहीं उनका रहना होता है। मैंने उस मीपड़ी के सामने देखा, कूड़े-कंकट पड़े थे।

चूल्हे की राख और तरकारी के छिलके फेंके हुए थे। दो-एक जगह पका हुआ जूठा भोजन भी फेंका हुआ था। उन पर मक्खियाँ मनमना रही थीं और एक कुत्ता भी उन्हें पंजे से कुरेद रहा था। मैं उनके साथ भीतर झोपड़ी में घुसा। भीतर टाट बिछाकर, बीलट भाई की उम्र का ही, एक मजदूर बेखबर होकर सो रहा था। हमलोगों के भीतर घुसते ही उसने करवट बदली, मगर न तो वह जाग पाया और न अच्छी तरह उसने हमलोगों को देखा। ऐसा लगता था, जैसे थकावट से उसका अंग-अंग टूट रहा हो। करवट को बदलकर वह लंबी-लंबी साँसे लेने लगा।

“दीपन, दीपन, ऐ दीपन ?”

“उँ...ऽ ऽऽ...ऽ...ऽ।” करके वह मजदूर रह गया।

“उठो, उठो।” बीलट भाई ने हाथ पकड़कर जगाया। दीपन धीरे-धीरे जग गया।

“कब आए, अभी आ रहे हो ?” दीपन ने पूछा।

“हाँ, अभी भोर की गाड़ी से।”

“क्या समाचार है, घर का ?”

“सब अच्छा है, यहाँ का ?”

“चल रहा है। दो बजे रात को ड्यूटी से आया हूँ।”

“ड्यूटी बदल गई ?”

“हाँ, परसो से यही चल रही है।”

“अच्छा, तुम सोओ।”

“नहीं, अब नहीं सोऊँगा...।” उसने मेरी ओर देखकर बीलट भाई से पूछा, “यह कौन है, इसे मैं नहीं पहचान रहा हूँ।”

“गाँव तरफ के मेरे † इयार हैं। वहाँ बेकार बैठे थे। साथ लेता आया हूँ, कहीं काम लग गया, तो रह जायेंगे।”

“अच्छा किया।”

“अभी बहाली तो हो रही है न ?”

“नहीं मालूम । उधर तो हो रही थी, इधर का मुझे कोई पता नहीं है ।”

“पता लगाना होगा ।”

“हाँ, लगाया जाएगा ।” दीपन बोला ।

आज ही से दीपन मेरा दोस्त हो गया । जब उस मोपड़ी में रहते दो-चार रोज हो गए, तो आस-पास की मोपड़ियों में रहनेवाले मजदूरों से भी जान-पहचान होने लगी । लगता था, वह समाज ही पैसे-पैसे के लिए मुहताज है । कई मजदूर एक ही खाकी पैट और गंजी पहने काम पर जाते, मोपड़ी में पहुँचकर खाना पकाते और उसे ही पहनकर सो रहते थे । इनमें से कोई तेजाब के कारखाने में काम करनेवाला था, कोई कागज के कारखाने में, कोई चीनी-मिल में, कोई सिमेण्ट फैक्टरी, लकड़ी के कारखाने और कोई पावर हाऊस में । काम करके मोपड़ियों की ओर लौटते हुए मजदूरों के चेहरे से हवाइयाँ उड़ती होतीं । लगता था, कहीं से बाजी हारकर आ रहे हैं । किसी के हाथों में कालिख लगी होती, तो किसी के कंधे पर । किसी के कुरते पर मैला तेल गिरा होता, तो किसी का पूरा मुँह, हाथ-पैर सिमेण्ट की धूल से भरा होता था । कुछ तो दो बजे रात को काम पर जाते और कुछ दो बजे रात को काम से लौटते थे । कुछ साढ़े-पाँच का भोपा बजने पर सुबह ही कारखाने की ओर दौड़ते और बारह एक बजे लौटते थे । मोपड़ी में लौटकर ऐसे मजदूर, मुश्किल से एक-डेढ़ घंटे रह पाते थे कि फिर बड़े जोर से कारखाने का भोपा बजता और वे गंजी पहनते, कंधे पर झगोछा रखते मोपड़ी से बाहर निकलकर कारखाने की ओर लपकते थे ।

मोपड़ी से बहुत करीब, कच्ची और तंग सड़क के किनारे एक मोदी रहता था । उसकी एक छोटी-सी दुकान थी । वह चावल, दाल, आटा, तेल और मसाले बेचता था । एक बोरे में आलू भी रखता । इन मोपड़ियों में रहनेवाले मजदूर उसी की दुकान से सौदा ले आते थे । बीलट भाई ने जैसा बतलाया था, उस मोदी की दुकान से ये मजदूर उधार ही भोजन के सामान ले आते । उस मोदी के पास एक मोटी और गंदी

कापी थी, जिसके ऊपर टेढ़े-मेढ़े हरफों में लिखा था—‘उधारी-खाता’। उधार सौदा देते समय वह उस कापी पर उधार लेनेवाले का नाम, चीजों के नाम और दाम चढ़ा देता। उस मोदी को मैंने कभी भी साफ कपड़े पहनते नहीं देखा। उसके कपड़े बराबर गंदे ही रहते। उसकी गर्दन पर मैल जमी रहती थी। कभी-कभी जब वह तगादे में इन झोपड़ियों के दरवाजे पर आकर खड़ा होता, तो मजदूरों में भय छा जाता था। हल्ला होता—सावजी आए हैं, सावजी आए हैं। जिससे भेंट होती, उससे वह पैसे के लिए तगादा करता और जिससे भेंट नहीं होती थी, वह उसके बारे में और मजदूरों से यह पूछता कि वह कब आएगा, उसकी ड्यूटी कब की है, उसकी तनख्वाह कब मिलेगी, वह घर तो नहीं जानेवाला है, उसकी नौकरी तो बरकरार है, उसकी नौकरी छूटने की तो कोई उम्मीद नहीं है ?

इन्हीं दिनों खा-पीकर मैं, जब बीलट भाई को ड्यूटी पर नहीं जाना होता, रोज रतननगर में टहलता। बीलट भाई मेरी नौकरी की खोज कर रहे थे। पता लगा कि लकड़ी का कारखाना नया-नया खुला है। कुछ रोज पहले, बहाली हो रही थी, मगर इधर रुक गई है। और कारखानों में तो नए आदमी लिये ही नहीं जा रहे हैं। बीलट भाई की ड्यूटी जब दस बजे दिन से छः बजे शाम तक की होती, तब भी मैं झोपड़ी से करीब चार बजे टहलने निकल जाता। कोई भी ड्यूटी बदलने के वक्त दो-बार भोपा बजता। पहला भोपा समय से आधा घंटे पहले और कुछ देर तक बजता था। दूसरा भोपा, मुश्किल से पचास सेकंड बजकर बंद हो जाता था। पहला भोपा बजने का माने मजदूर यह लगाते कि आधा घंटे पहले कंपनी इस समय ड्यूटी पर जानेवाले मजदूरों को खबरदार करती है। समूचे कारखाने का घेरा तीन-चार मील में था। रहते-रहते सब पता चलने लगा। घेरा एक ही था, मगर चीनी का कारखाना एक और अलग था। उसके अपने फाटक थे। उन फाटकों पर दरवानों की अलग से ड्यूटी होती थी। कारखाने का भोपा बजते ही कारखाने के फाटक पर मजदूरों की भीड़ लग जाती थी। एक फाटक पर

मजदूरों की भीड़ लग जाती थी। एक फाटक इतना बड़ा बना था कि उससे मोटरगाड़ी, बैलगाड़ी, ट्राली आती-जाती थी। मौके-मौके पर जब कारखाने के बड़े-बड़े पुर्जे चीनी-मिल में ले जाना होता, तो यह फाटक खुलता था। इस बड़े-से फाटक के अगल-बगल, दोनों ओर एक-एक ऐसे फाटक बने थे कि जिनसे एक साथ दो से ज्यादा आदमी एक बार नहीं आ-जा सकता था। कंपनी के दरवान अक्सर वहीं खड़े होते थे। हाँ, वह फाटक तब भी खुलता था, जब मजदूरों की ड्यूटी बदलती थी। उस बड़े फाटक की बगल में, काठ के दो-तीन बक्स, जिनमें ढक्कन नहीं होते थे, रखे रहते। कारखाने में घुसते समय मजदूर अपनी जेब से एक-एक कार्ड जो लगभग छः इंच लंबा और साढ़े तीन इंच चौड़ा होता था, उस बक्स में गिरा देते। उस वक्त कंपनी का एक आदमी, जो पढ़ा-लिखा जान पड़ता था, वही खड़ा रहता। पीछे मालूम हुआ कि वह आदमी 'टार्डम कीपर' है। वह मजदूरों की हाजिरी और गैर-हाजिरी का हिसाब रखता है। उस बक्स में अपना कार्ड गिराते वक्त मजदूर उस आदमी की ओर भयभीत आँखों से देखा करते। सामने दीवार में घड़ी टंगी थी। वह आदमी कभी मजदूरों की ओर और कभी घड़ी की ओर देखा करता। इसी वक्त मजदूर कारखाने से काम करके लौटते भी थे। उन काम करके लौटनेवाले मजदूरों में से, जिन पर दरवानों को, कुछ चुरा कर साथ में लेते आने का शक होता, वे उनकी नगा-भोली लेते थे और पकड़ लिये जाने पर वह मजदूर बुरी तरह पीटा जाता था। दरवान उन्हें बूट की ठोकरो से मारते थे। कभी किसी की जेब से छेनी निकल आती, कभी छूरी, कभी काँटी और कभी बिना बेंट की छोटी हथौड़ी निकल आती थी। यह सब देख-देखकर मेरा मन डर जाता था। तब मैं यह सोचकर अपने को धीरज देता था कि जब मैं चोरी नहीं करूँगा, तब मुझे मार ही नहीं पड़ेगी। जब दूसरा भोपा बज जाता, तो दस मिनट के बाद वह बड़ा फाटक बंद कर दिया जाता था और कार्ड से भरे हुए काठ के बक्स उठा लिये जाते। बीलट भाई ने मुझे

बतला दिया था कि उसी कार्ड पर मजदूरों की हाजिरी बनती है। बड़ा फाटक बंद होने के बाद जब कोई मजदूर काम पर पहुँचने के लिए आता, तो उसे लौटा दिया जाता था। ऐसे वक्त के लिए शायद एक गुंजाइश और थी। वैसे कुछ मिनट देर कर पहुँचनेवाले मजदूर के कार्ड पर देर से आने का चिन्ह लगा दिया जाता और उतनी देर की उसकी मजदूरी काट ली जाती थी।

इसी तरह जब मैं शाम को फाटक के बाहर खड़ा होता और जब बीलट भाई की ड्यूटी दस बजे दिन से छः बजे शाम तक की होती, तो वे छः बजे निकल आते और मुझसे भेंट हो जाती थी। वहाँ से हमलोग एक साथ भोपड़ी में लौटते थे। एक रोज ऐसे ही मैं फाटक पर खड़ा था कि दूसरा भोपा बजने के थोड़ी देर बाद बीलट भाई भीतर से निकले। अब तक मुझे यहाँ रहते पंद्रह-बीस रोज हो गए थे। कहीं भी नौकरी की बात पक्की नहीं हो सकी थी। मन बड़ा उदास हो रहा था। गए नेपाल तो साथ में कपाल। रतननगर में इतने लोग तो काम ही कर रहे थे, मेरी ही किस्मत जो खोटी है। बीलट भाई नौकरी के आसरे पर अपने मत्थे उधार खिला रहे थे। यह भी बड़ा बोझ जान पड़ता। आज फाटक से बाहर निकलते-निकलते बीलट भाई ने मुस्कुराया।

“घबड़ाओ नहीं, रतननगर में तुम्हारा दाना-पानी लिखता है।” बाहर आते ही वे बोले।

“सो क्या?” मैंने पूछा।

“तुम्हारे काम के लिए एक ठेकेदार के मुंशी से बातें हुई हैं।”

“अच्छा।”

“कल सुबह उसने सिमेण्ट फैक्टरी के ‘गेट’ पर बुलाया है। साथ में तुम्हें भी चलना होगा।”

“चलूँगा।”

“पहले यहाँ काम करो। बैठकर खाने से तो अच्छा रहेगा।” बीलट भाई बोले।

“जरूर । मगर इसमें कैसा काम है, बीलट भाई ?” मैंने पूछा ।

फाटक के सामने मजदूरों के आने-जाने की भारी भीड़ थी । हमें अपनी बातें जोर-जोर से कहनी पड़ती थी । बीलट भाई ने कहा, “सब मालूम हो जाएगा । चलो तो ।”

इसके बाद हमलोग भीड़ से बाहर निकल आए । इस फाटक के सामने, सड़क के किनारे खोमचे में लकठो, लाई, भूँजा, चीनावादाम गुड़ की जलेबी, घुघुनी, कचड़ी और तिलकुट बिक रहे थे । हमलोगों की आँखें एक साथ उन खोमचों की ओर मुड़ी और फिर सामने के रास्ते की ओर फिर गईं । यहाँ से थोड़ी दूर आगे बढ़कर बीलट भाई ने मुझसे बड़ी सर्द आवाज में कहा, “काम तो भाई जरा गदा और मिहनत का है, मगर बेगार से चार पैसे की रोजी भला !” मैंने कहा, “सो तो ठीक है, ठाकुर के यहाँ कौन बैठा रहना होता था ।”

इस तरह बातें करता हुआ मैं बीलट भाई के साथ मोपडी का रास्ता तय करने लगा । कारखानों के चालू रहने की वजह से तरह-तरह की आवाजें कान में समा रही थीं ।



साढ़े छः का भोंपा बज चुका था। कारखाने के फाटक पर मजदूरों की भीड़ लगी थी। ठेकेदार के मजदूर सिमेण्ट फैक्टरी के फाटक से कारखाने में घुसते थे।

“हमलोगों का तीन जगह काम होता है। जाकर देख लो, जहाँ काम करना चाहोगे, वहाँ के लिए रख लूँगा।” ठेकेदार के मुंशी ने कहा।

मैं बीलट भाई के साथ ठेकेदार के मुंशी से मिलने के लिए भोंपा बजने के पहले ही यहाँ आ गया था। कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों के सिवा बाहर के आदमी भीतर नहीं जा सकते थे। बीलट भाई ने ठेकेदार के मुंशी से कहा, “मैं जानता हूँ कि सरकार का काम कहाँ होता है, मगर आप जरा इसे ‘गेट पास’ करा दे। काम मैं इसे दिखला दूँगा।”

“आओ, चलो।” ठेकेदार के मुंशी ने कहा।

बीलट भाई के साथ मैं मुंशी के पीछे-पीछे बड़े फाटक तक आया। मुंशी ने पास खड़े दरवान से कहा, “यह मेरा आदमी है, जाने दोगे।”

आज मैं पहली बार कारखाने के भीतर घुसा। भीतर घुसते ही, थोड़ी दूर के बाद मैं तरह-तरह के कल-पुर्जे देखने लगा। मशीनों के चलने के कारण बड़ी भयानक गड़गड़ाहट पैदा हो रही थी। मैंने बीलट भाई से पूछा, “यह कैसी आवाज है?”

“सिमेण्ट फैक्टरी में पत्थर तोड़ा जा रहा है।”

“कैसे?”

“मशीन से। पत्थर का ही तो सिमेण्ट बनता है।”

“अच्छा।”

इसके आगे जाकर मैंने देखा, भीतर ही रेलवे लाइन थी और उन पर मालगाड़ियाँ खड़ी थीं। मजदूर मालगाड़ियों के भीतर से पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े उतार रहे थे। पचासों मालगाड़ी के डब्बे एक कतार से खड़े थे। पत्थरों के नीचे गिरने से ‘धड़ाम-धड़ाम’ और ‘झनाकू-झनाकू’ की आवाज हो रही थी। किसी मजदूर की कमर में एक भगोटी थी और किसी की कमर में फटा और पुराना पैट। काम करने में उनके हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे। मगर, पत्थरों की ऊँचाई से तनिक दूर हटकर एक पढ़ा-लिखा आदमी खड़ा था, जो कह रहा था—“ऐसे काम नहीं चलेगा। फुर्ती करो, फुर्ती करो।” तब मजदूर और जोरों से बेलचे चलाने लगते थे। उनके कंधे और माथे से पसीना बह रहा था।

“पहले कहाँ का काम देखोगे?” यहाँ पर बीलट भाई ने पूछा।

“जहाँ चलो।”

“चलो, पहले वर्क-शॉप का काम देख लो।”

“चलो।”

बीलट भाई यहाँ से दायी ओर मुड़े। मैं भी चला। थोड़ी दूर जाकर मैंने देखा, एक छोटी चिमनी से धुएँ के बदले आग की लबी-लंबी लपटे निकल रही थी। बीलट भाई ने उस ओर हाथ उठाकर कहा, “देखो, यही वर्क-शॉप है।”

“यहाँ क्या होता है?” मैंने पूछा।

“चलो, अब तो चल ही रहे हो।” बीलट भाई बोले।

मैं उनके साथ वर्क-शॉप में घुसा। यहाँ के कल-पुर्जे देख-देखकर मैं दंग हो रहा था। रबर की नली से आग की लपटें निकल रही थीं। इसके बारे में बीलट भाई ने कहा कि यह वेल्डिंग-शॉप है, जिसे ठेकेदार चलाते हैं। इसमें कच्चे लोहे की मशीनें ढाली जाती हैं। मशीनों के ड्रटे-फूटे पुर्जे जोड़े जाते हैं। रबर की नली से निकलनेवाली आग की लपटे

जब कल-पुजें से छू जातीं, तो उनसे हरी-पीली लाल और उजली रोशनी निकलती। एक आदमी आँख पर हरे शीशे का, कचौड़ी के इतना बड़ा चश्मा लगाये 'वैलिंग' का काम कर रहा था। लोहे के लाल-लाल गर्म छींटे चारों ओर उड़ रहे थे। वह आदमी अपने हाथों में चमड़े का दस्ताना पहने हुए था। और भी पचासों किस्म की मशीनें खड़ी थीं, जिनपर काम हो रहा था। मशीनों के जरिए लोग लोहे छिल रहे थे। कदम-कदम पर बिजली लगी थी। चलते समय बार-बार बीलट भाई मुँहसे कहते—“देखो, बचकर। उधर करेन्ट है।” कई जगह लोहे के बक्से में कई तार घुसे थे। उस बक्स पर खोपड़ी की तस्वीर बनी थी। जिसके नीचे लिखा था—“सावधान, खतरा, ११०० वोल्ट!” मशीनों से पचासों किस्म की आवाजे निकल रही थीं—घर्घर् घर्घर् ; झक् झक् झक् । घीर-घीर-घीर ॥ धक् धक् धक् ॥

“चलो, वहाँ तुम अपना काम देख लो।”

“चलो।”

यहाँ ठेकेदार का काम हो रहा था। बीलट भाई ने बतलाया, “इस जगह को ‘ढलाई-घर’ कहा जाता है।” नई उम्र के बीस-पच्चीस मजदूर काम कर रहे थे। लोहे का बहुत बड़ा चूल्हा बना था, जिसे कारखाने में पढ़े-लिखे बाबू लोग ‘ब्यायलर’ कहते हैं और हमलोग—बैलट। इसी ब्यायलर में एक ओर से टूटे-फूटे लोहे ढाले जा रहे थे। दूसरी ओर से एक नली की राह, वह लोहा बिलकुल आग के रंग का पानी बनकर गिरता। नली के मुँह पर दो मजदूर कड़े लगी एक बाल्टी को छाने खड़े रहते। लोहे का गर्म पानी जब बाल्टी को भर देता, तो दूसरा आदमी एक पुर्जा दबा देता था और लोहे का गलगलकर गिरना बंद हो जाता। दूसरी ओर जमीन पर, ठही मिट्टी के कई सॉचे बने तैयार थे, जिनमें बाल्टी में भरा लोहे का पानी उड़ेल दिया जाता। पानी उड़ेलने का काम एक मिस्त्री की देख-रेख में हो रहा था। इस काम के बीच लोहे का गर्म-गर्म पानी अनेकों बार उड़ता और उससे मजदूरों

का बदन बार-बार जल जाता था। टाट के टुकड़े से जलती हुई जगह को पोंछकर वे फिर काम में लग जाते थे। ऐसे मौके पर उनके मुँह से निकलता — ‘ऊ हू हू हू... ओह ... !’ — और, अगर टाट से हाथ पोछने में देर होती, तो ठेकेदार का मुंशी कहता, “नौ घंटे तुम हाथ ही पोछोगे या काम भी करोगे ? क्या चाहते हो, आज की तुम्हारी हाजरी कट जाय ?”

“नहीं मालिक, इस बार जरा बड़ा छीटा पड़ गया है !” वे कहते और फिर गर्म बाल्टी लेकर व्यॉयलर की ओर दौड़ते थे।

“देखो, यहाँ उसी ठेकेदार का काम हो रहा है।” बीलट भाई ने कहा।

“समझा।” मैं बोला।

“और तुम्हें भी यही काम करना होगा, जो काम ये मजदूर कर रहे हैं।” बीलट भाई बोले। मैंने कहा, “ठीक तो है।”

“पसंद है ?” बीलट भाई ने पूछा।

“पसंद तो है, मगर अभी दो जगह और काम है न। वहाँ चलो।” मैं बोला।

“आओ।”

वर्क-शॉप में ढलाई-घर का काम देखकर, मैं तो सचमुच डर गया था। मगर मन-ही-मन सोचा, आखिर इतने मजदूर तो काम कर ही रहे हैं न। उनके भी अपने-पराये होंगे। पेट के लिए क्या नहीं करना होता है। कमाया हुआ तो कोई वक्त पर देता ही नहीं, बैठने पर कौन देगा ? मैंने बीलट भाई से पूछा, “अब किस जगह चलोगे ?”

“सोडा-रिकभरी।”

“सोडा-रिकभरी ?”

“हाँ, वहाँ फिटकिरी बनती है। नमक साफ किया जाता है।”

“वहाँ भी ऐसा ही काम है, क्या ?”

“नहीं, वहाँ दूसरा काम है।”

“चलो ।”

यहाँ से थोड़ी दूर दक्खिन की ओर चलकर, हमलोग पूरब तरफ चले । कारखाने के भीतर की सड़के सिमेण्ट की बनी थी, जो बहुत मजबूत और अच्छी दीखती थीं । इसी सड़क से आगे पूरब आने पर मैंने देखा, एक बहुत बड़ा पोखरा बना है । पोखरे के ऊपर लोहे के नल जाल की तरह फैले हैं और नली में बहुत-से छेद हैं, जिनसे छुर्र-छुर्र करके पानी निकल रहा है । वह पानी फिर पोखरे में गिर रहा था । पानी से हल्का-हल्का भाफ भी उड़ता । मैंने बीलट भाई से पूछा, “यह क्या है ?”

“इसमें पानी ठंढा किया जा रहा है । जब यह पानी ठंढा हो जाएगा और जब इसकी जरूरत होगी, तब इसे नल के जरिए खींच लिया जाएगा । देख नहीं रहे हो, इसमें कितने नल लगे हैं ?”

“सो तो देख रहा हूँ ।”

“और वह देखो, वह पावर-हाऊस है ।”

“पावर-हाऊस ?”

“हाँ, बिजली यहीं तैयार होती है । और, यहाँ से बिजली सभी कारखाने में भेजी जाती है ।”

तभी मेरी नजर दाहिनी ओर गई । देखा, इधर बड़े-से मैदान में फुलिया बाँस का पहाड़ खड़ा है । उतने बाँस को गिनने में तो सौ साल से भी ज्यादा लग जाय । बाँस के पहाड़ के दूसरी ओर, फटे-चिटे कपड़े, रूई वगैरह एक दूसरे पहाड़ की तरह रखी थी । लाखों मन से भी ज्यादा रूई और फटे-चिटे पुराने कपड़े थे । मैंने बीलट भाई से पूछा, “यह सब किसलिए है ?”

“इसी का तो कागज बनता है ।”

“कागज, इसी का कागज बनता है ? बाँस, रूई और चिथड़े का ?” मुझे अचरज हुआ । मैं भक्कू बनकर बीलट भाई का मुँह देखने लगा । वे बोले, “अभी तुमने यह सब नहीं देखा है, इसलिए घबड़ा रहे हो । जब देख लोगे, तब परतीत हो जाएगा ।”

“कुदरत का खेल है सब, आदमी भगवान हो रहा है..।” तब मेरे मुँह से निकला था।

“अरे, यहाँ एक-से-एक मशीन हैं !”

मैं बीलट भाई के साथ सोडा-रिकभरी भी पहुँचा। यहाँ का भी काम देखा। एक ओर, न-जाने, कैसी पीले रंग की गीली मिट्टी जमा हो रही थी। उसे ठेकेदार के आदमी लोहे की छोटी-छोटी गाड़ियों में भरकर बहुत दूर पूरब की ओर ले जा रहे थे। उन लोहे की गाड़ियों में छोटे-छोटे चार पहिये लगे थे और उन्हें ठेलकर ले जाना पड़ता था। उस गीली मिट्टी से पैखाने की तरह दुर्गंध आ रही थी। ठेकेदार के आदमी, लोहे की छोटी-छोटी कराही से उस मिट्टी को उठाकर लोहे की गाड़ी में भर रहे थे।

“देखो, एक काम यह भी है।”

“बाप रे, यहाँ तो बड़ी बुरी † बास है।” मैंने कहा।

“अब जो है, वह तुम्हारे सामने है।”

“हूँ ..।”

इस जगह काम करनेवाले मजदूरों के हाथ-पैर उस मिट्टी में पूरी तरह सने हुए थे। यहाँ भी एक ठेकेदार का आदमी था, जो मजदूरों से डाँट-डपटकर काम ले रहा था। मैंने बीलट भाई से पूछा, “और तीसरा काम?”

“चलो।”

“किधर?”

“पावर-हाऊस से उत्तर।”

“चलो, यहाँ तो नाक नहीं दी जा रही है।”

“आदत डाल लोगे, तो नाक दी जाएगी।”

“सो तो है।”

“आओ चलो, वह काम भी देख लो।”

कई रास्ते को पारकर उनके साथ मैं पावर-हाऊस के उत्तर की ओर आया। यहाँ भी एक जगह ठेकेदार का ही काम हो रहा था। यहीं पर एक जगह ले आकर वीलट भाई ने मुझे खड़ा कर दिया। कहा, “देखो, यहाँ भी उसी ठेकेदार का काम होता है।”

“यह सब क्या किया जा रहा है ?” मैंने पूछा।

“देखो, वह सब पावर-हाऊस के वीलट का गला हुआ कोयला है। देखो, कुली उसे ट्राली पर लाद रहे हैं न ?”

‘हाँ।’ मैंने कहा। ट्राली में जो कोयले लादे जा रहे थे, वे लहर-कर जल रहे थे और लकड़ी के लाल-लाल अगारे से उनमें बहुत ज्यादा गर्मी मालूम होती थी। यह ट्राली लोहे की लाइन पर चल रही थी। कुली लोग हाथ और पैर में टाट बाँधे हुए थे। ट्राली में गर्म और जलते हुए कोयले को भरकर, वे बहुत दूर उत्तर की ओर ठेले लिये जा रहे थे। न-जाने, उन ट्रालियों की बनावट कैसी थी, चलते वक्त वे ‘डगमग-डगमग’ करती और उनसे जलते हुए कोयलों के टुकड़े गिर जाते थे। लोहे के चार पहियों के ऊपर एक चौकोर कराह बना था। बहुत दूर, उत्तर में उस ट्राली को ले जाकर, कुली कराह को बायीं ओर से पकड़कर, दाहिनी ओर उलट देते थे और कोयला गिर जाता था।

“यह सब कोयला उधर कहाँ जा रहा है ?” मैंने पूछा।

“वहाँ कोयले का टाल है। यही कोयला वहाँ ठंडा करके बिकता है। कंपनी के मजदूरों को यह कोयला चार आने मन मिलता है। वहाँ पर कोयला तौलने की मशीन है। दरवान है, जो पहरा देता है और कंपनी का एक किरानी रहता है, जो बिक्री का हिसाब रखता है।”

“यह कोयला अब कंपनी के काम में नहीं आ सकता ?”

“नहीं, पावर-हाऊस के लिए तो यह कोयला अब राख है। पावर-हाऊस में तो बहुत बड़े-बड़े कोयले जलते हैं। इसको तो ‘छाई’ कहते हैं।

इनमें भी दो किस्म का कोयला होता है। एक बड़ा और एक छोटा। छोटा चार आने मन धिकता है और बड़ा बारह आने मन।”

“हूँ...।” मैंने कहा।

करीब दस मिनट तक चुपचाप वहाँ खड़ा-खड़ा मैं यह काम देखता रहा। पचासों कुली इस काम में जुटे हुए थे। ठेकेदार का आदमी खड़ा था। काम करनेवाले कुलियों में से किसी को इतनी फुर्सत नहीं थी कि वे दूसरी ओर देखे या आपस में कुछ बातें कर सकें। सूरज आसमान की पहाड़ी पर चढ़ता जा रहा था। गर्मी बढ़ती जा रही थी। कुली पसीने से नहा रहे थे। ट्रालियों के ढीले पहिये जब लोहे की पटरियों पर दौड़ते, तो ठीक ऐसी ही आवाज होने लगती थी—घर र र र र घर, घर र र र र घर...। और, जब आगे टाल पर कोयले को उलटकर टाली को इस ओर लौटाते, तो इस तरह की आवाज में ऐसी आवाज मिल जाती थी—ढन् ढन् ढन् ढन्...।

“यह काम कैसा है?” वीलट भाई ने पूछा।

“अच्छा है।”

“कहाँ का काम पसंद है, यहाँ करोगे काम?”

“करूँगा।”

“करने की बात नहीं है, जहाँ तुम्हारा मन भरे। घबड़ाओ मत, अमिका भवानी का नाम लेकर पहले एक जगह काम से अटक जाओ। फिर सरकारी के लिए कोशिश करूँगा। परदेश में पहले पैर रखने के लिए जगह बनायी जाती है। धीरज से रहोगे, तो फिर बैठने के लिए भी जगह मिल जाएगी। बोलो, क्या सोचते हो?”

“ठीक कहते हो वीलट भाई! कोई-न-कोई काम पकड़ लेना चाहिए।” मैं बोला।

“† खंखार कर बोलो, तो चलकर मु शी से बातें करूँ।”

“हाँ, चलो बातें करो न । मैं खँखार कर ही बोल रहा हूँ ।”

“बस तो जय अमिकाजी कहो ! चलो, मुंशी अभी फाटक पर ही होगा ।”

“चलो ।”

“बात पक्की हो जाएगी, तो बारह बजे आ जाओगे । आधे रोज की हाजिरी बन जाएगी ।” बीलट भाई ने सलाह दी ।

“आ जाऊँगा ।” मैंने कहा और बीलट भाई के साथ सिमेण्ट फैक्टरी के फाटक की ओर मुड़ा । फिर वही बाँस, रुई और चिथड़ी का ढेर ! मशीनों के चलने की गड़गड़ाहट !! मेरी नजर में नए-नए कल-कारखानों का तमाशा !!! अब दूर ही से सिमेण्ट फैक्टरी का फाटक मुझे ललचाने लगा ।

फाटक पर आते ही ठेकेदार के मुंशी से भेंट हो गई । बीलट भाई के साथ मैं आकर खड़ा हो गया । मुंशी के आमने-सामने करीब दस-पंद्रह मजदूर खड़े थे । हमलोगों को देखते ही उसने बीलट भाई से पूछा, “काम दिखला दिया ?”

“जी, सरकार ।”

“कहाँ काम करना है ?”

“पावर-हाऊस ।”

“व्यायलर पर ?”

“जी ।” बीलट भाई बोले ।

“काम पसंद है ? कहीं ऐसा न हो कि दो रोज करके भाग जाओ । देखो, ऐसे आदमी को मैं नहीं रखता ।” मुंशी ने मेरी ओर देखकर कहा ।

“नहीं, ऐसा नहीं करूँगा मालिक !” मैंने कहा ।

“मजदूरी कितनी मिलेगी, मालूम है ?” मुंशी ने पूछा ।

“..... ।” मैं मुंशी का मुँह ताकने लगा ।

“तुम्हे तो मालूम होगा, बीलट ?”

“जी...।”

“देखो, बारह आने रोज मिलेगे । साढ़े बाईस रुपए महीना पडता है ।” मुंशी ने मेरी ओर देखकर कहा । उसकी शान-भरी आँखें मेरे पैर से सिर तक घूम गई । उसने अपने बाये हाथ के खाते को खोलते हुए पूछा, “बोलो, मजूर है तो कार्ड बना दूँ । काम पर लग जाओ ।”

“मजूर है ।” मैंने कहा ।

“लो, कार्ड बना देता हूँ ” ।” कहकर मुंशी ने ठीक एक वैसा ही कार्ड निकाला, जैसे कार्ड की चर्चा मैं कर चुका हूँ ।

“क्या नाम है ? उसने पूछा ।

“मगरू ।” मैंने कहा ।

“बाप का नाम ?”

“मगडू ।” मैं बोला । इस पर मुंशी जरा हँस पड़ा । उसने मेरे साथ मेरे बाप का भी नाम लिख लिया और वह कार्ड मेरे हाथ में पकड़ाकर बोला, “अब तुम कल से काम पर आओ । यही सुबह साढ़े का भोंपा बजते-बजते आ जाना । मैं यही रहूँगा । मुझसे मिल लोगे ।”

“अच्छा, सरकार ।” मैं बोला ।

“देखो, इस कार्ड को खोना मत ।”

“नहीं, इसे जोगाकर रखूँगा ।” मैंने कहा और मुंशी के सामने ही उस कार्ड को कंधे पर से अँगोछा उतारकर उसके एक कोने में बाँध लिया । फिर बीलट भाई के साथ वही खड़ा-खड़ा मुंशी का मुँह देखने लगा । तभी उसने कहा, “अब जाओ, कल आना ।”

“सलाम मुंशीजी !” बीलट भाई बोले ।

“सलाम सरकार ।” मैंने कहा और हम दोनों वहाँ से लौटे ।

मोपड़ी में लौटकर देखा, दीपन खिचड़ी पका चुका है । पीतल के थाल में खिचड़ी को उड़ेलकर वह हँडिया धो रहा था । चूल्हे के मुँह पर एक ओर आठ-दस मिरचा भूनकर रखा था । बीलट भाई ने पूछा, “आज खिचड़ी बना ली ?”

“चावल कम था भइया ।” दीपन बोला ।

“और चोखा ?”

“साब के यहाँ आलू नहीं मिला । पैसे भी नहीं थे । मिरचे पका लिये हैं । इसमें नमक-तेल मिला दूँगा । मजा आ जाएगा ।”

“सो तो है ।” बीलट भाई बोले ।

“क्या हुआ, हुआ काम ?” दीपन ने मुझसे पूछा ।

“हाँ, पावर-हाऊस में व्यायलर पर ठीक हो गया ।” बीलट भाई ने जवाब दिया ।

मैं चुपचाप टाट पर चलकर बैठ रहा । टाट पर बैठ लेने के बाद मैंने गमछे से अपना कार्ड खोला । देखा, उसकी पीठ पर कई बातें किताब के हरफों में लिखी हैं । कार्ड के पीछे ठीक ऐसा ही लिखा था—

सूचना

- १ इस कार्ड या टोकन को तुम सम्हाल कर रखो । कार्ड के खो जाने पर अपने ठेकेदार से कहो ।
२. महीना पूरा होने के सात रोज बाद जब तुम्हारी मजदूरी न मिले, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए ।
३. ढोले कपड़े पहनकर काम करने की सख्त सुमानियत है ।

बाहुकूम

लेबर ऑफिसर

सेठ रतनमल इन्डस्ट्रोज, रतननगर

तो फिर क्या बतलाऊँ दोस्त ? इसके दूसरे ही दिन से मैं कारखाने का मजदूर हो गया । गाँव मुझसे छूट गया, शहर मुझसे मिल गया । दो पीढ़ी पीछे की बातों का इतना लंबा बयान कर देना मैंने इसलिए जरूरी समझा, ताकि तुम यह समझ सको कि लड़कपन से ही मगरा आ कैसे लोगों के बीच रहा, किन मुसीबतों के बीच से वह गुजरता रहा और उन मुसीबतों का उस पर कैसा असर हुआ; क्योंकि गम और खुशी का जो असर इंसान पर होता है, उसकी हकीकत से बचकर रहना बड़ी

मुश्किल बात है। नामुमकिन भी हो, तो कोई ताज्जुब नहीं। गाँव पर खैखर काका ने एक दिन मुझसे कहा था, “मंगरुआ, अब तो कहीं नौकरी पकड़ ले। यहाँ बेगार से पेट नहीं भरेगा।”

“देखो, अब तुम कमाने लायक हो गए। घर से बाहर निकलकर रोटी कमाओ।” टीपू भाई ने समझाया था।

“मैं तो चाहता हूँ कि घर के लोगों के साथ ही गाँव छोड़कर भाग जाऊँ।” मेरे मुँह से निकला।

आज भी जब कभी वहाँ की कोई घटना याद आ जाती है, तो रोएँ खड़े हो उठते हैं। जब खेतों में, मकई में X बाल निकल आते हैं तब खेत की रखवाली होने लगती है। मुझे भी एक बार कोरार में पहरा देने का काम मिला था। बीच मकई के खेत में चार लंबे-लंबे बॉस गाड़कर मचान बना था। अछैबरा मेरी पलानी के दरवाजे पर आकर कह गया, “मंगरुआ, आज से कोरार पर के दसकठवा खेत में तुम पहरा देना। मोनसीजी ने कहा है।”

“अच्छा।” मैंने कहा।

सो, महीने रोज तक रात-भर मचान पर बैठा-बैठा खाली टीन पीटना पड़ा था। नींद हराम हो गई थी। जहाँ कहीं थोड़ी-सी खटखटाहट मालूम होती कि उतरकर खेत में टहलना पड़ता। रात-भर कनस्टर पीट-पीटकर मैं चिल्लाता :—

धा हे, लंगडो, धा !
 एक बाल टूटी, पचीस बाल लेब
 चोरवा के बाप के फाँसी देब
 गहना-गुड़िया खिलाम कई लेब
 चिलम चढ़ाई गाँड़ दागिये देब
 धा हे, लंगडो ! धा...!!

इतनी कड़ी मिहनत करके भी मैं मकई का एक बाल नहीं तोड़ सकता था। जब उन हरे-हरे बालों को देखकर मुझसे नहीं रहा जाता, तो मैं मचान से उतर पड़ता था और उनके छिलके को † नोह से जरा-जरा * नखोरकर भीतर के उजले-उजले और पीले-पीले गोटाये हुए दाने को देखकर मन भर लेता था। जब कभी मोनसीजी मुझे दिन में भी भेज देते। कभी-कभी मुझसे पूछ भी देते, “हाँ रे, बाल नखोरा हुआ क्यों है ?”

“सरकार, सियार और कुकुर को तो टीन बजाकर हड़का देता हूँ, बाकी साली ‡ रुक्खी नहीं मानती है।” मैं कहता।

लेकिन, एक रोज मुझसे न रहा गया। भोर में, पहरा देकर अपने घर लौटते वक्त मैंने एक बाल तोड़ ही लिया और पेट के नीचे भगोटी में पेड़ू के पास खोस लिया। ऊपर से एक फटा-चिटा कुरता था। जैसे ही बाल लेकर मैं खेत से बाहर हुआ कि देखा, अछैबरा आ रहा है। उसने मेरे पास आते ही पूछा, “क्या है रे, रात में साहिल भी आया था ?”

“नहीं।”

“कुकुर ?”

“ना।” मैं बोला।

“तुम्हारा पेड़ू क्यों इतना ऊँचा हो गया है ?”

“कुछ तो नहीं, ऐसे, ही।” कहकर मैं पीछे की ओर खिसकने लगा।

“इधर आ तो, देखूँ।” उसने कहा और मेरी ओर लपका।

“कुछ तो नहीं है।” मैं एक कदम पीछे और खिसक गया।

“आ आ साले, पहरा देते हो या खेत उजाड़ते हो ? नमकहराम साले...” कहते हुए अछैबरा ने मुझे पकड़ लिया। मेरे कुरते के नीचे से फटका देकर उसने बाल खींच लिया। यह बात जब मोनसीजी के

कानो तक पहुँची, तो मुझे बनाकर पीटा गया और सोलह आने जुर्माना भी हुआ ।

ठेकेदार के मुंशी ने मुझे जो कार्ड दिया था, उसके पीठ पर की छपी बातें पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई । महीना लगने के सात रोज बाद साढ़े बाईस रुपए तो मिल ही जायेंगे । दूसरे रोज से मैं मजदूरी करने लगा । टाट के टुकड़े हाथ-पैर में बाँधकर ट्राली ठेलना मुझे अच्छा लगने लगा । रोज वैसे ही सिमेंट फैक्टरी के फाटक पर ठेकेदार के आदमियों की भीड़ लगती और हमलोग कारखाने में घुसते थे । ठेकेदार का मुंशी हमलोगों को ठीक वैसे ही कारखाने की ओर खदेड़ता, जैसे भूखे भेड़ों को गडेरिया घर से निकालकर खेतों में छोड़ रहा हो । भोर में सात बजे जो ट्राली पकड़ता, सो बारह का भोपा बजने पर ही छोड़ता । बीच में डेढ़ घंटे की छुट्टी मिलती । फिर एक और डेढ़ के भोपे बजते । इसके बाद डेढ़ बजे ट्राली पकड़ता, तो ठीक छः का भोपा बजने के बाद छुट्टी मिलती थी । पूरे नौ घंटे ठेकेदार का आदमी सिर पर सवार रहता । जब कभी काम देखने के लिए ठेकेदार आ जाता, तो और खलबली मच जाती थी । तब उसका आदमी और कड़ाई से काम लेने लगता ।

यहाँ सावजी की दूकान में तीनों आदमी के नाम पर उधारी-खाता चलने लगा । खाने का सामान कभी मैं अपने नाम पर लाता । कभी बीलट भाई अपने नाम पर आप ले आते और ऐसे ही दीपन भी ले आता था । ऐसा इतजाम बीलट भाई ने ही किया था । तब यह हुआ था कि तीनों आदमी का खर्च एक जगह जोड़ लिया जाएगा । जो कम पैसे का सामान ले आया होगा, वह अगले महीने में लाकर हिसाब पूरा कर देगा । कार्ड पर जो यह बात लिखी थी कि महीना पूरा होने के सात रोज बाद जब तनखाह नहीं मिले, तो लेबर आफिसर के पास रिपोर्ट करनी चाहिए । सो, जब मैं काम करने लगा, तो बिल्कुल बेकार साबित हुई ।

ट्राली पर तुरत के व्यायलर से निकले हुए कोयले को लादकर, जब मै टाल की ओर ठेलता हुआ बढ़ता, तो लगता, जैसे देह मे आग लग गई। पैरो मे, टाट बाँधे रहने पर भी ऐसा लगता, जैसे चिनगारी पर चल रहा होऊँ। थिल्लकुल हाँफ जाता था। पावर-हाऊस से 'गड़गड़' और 'सॉय-सॉय' की आवाज निकलती होती थी। यहाँ पर काम करते वक्त मुझे एक कुली से दोस्ती हो गई। उसका नाम तो था 'रकटू' मगर मुशी उसे रकटुआ कहकर पुकारता था। वैसे ही 'मंगरू' के बदले मै 'मंगरुआ' कहा जाने लगा। कार्ड पर का कानून बराबर रद्द होता था। महीना लगने के पंद्रह रोज, बीस रोज बाद हिसाब साफ होता था। इसमे एक दिक्कत और थी। मेरे साथ जितने कुली काम करनेवाले थे, किसी की हालत ऐसी नहीं थी कि वे महीना पूरा होने पर तनख्वाह लेने का सब्र कर पाते। हमलोगों की इस कमजोरी से ठेकेदार बहुत फायदा उठाता। वह हर हफ्ते या दस रोज पर कुछ पैसे दिलवा देता। इस मिलनेवाली रकम को हमलोग 'खर्चा' कहते थे। हफ्ते या दस रोज पर 'खर्चा' बँटता था। खर्चा बँटते वक्त कारखाने के फाटक के बाहर बड़ी भीड़ इकट्ठी होती। हमलोग मुशी को घेरकर खड़े हो जाते। वह बारी-बारी से नाम रखकर हमलोगों को पुकारता और दो रुपए, तीन रुपए दे दिया करता था। इसके बदले वह अपने खाते पर हमारे अँगूठे का निशान ले लेता था।

“बाबू, तीन रुपए से काम नहीं चलेगा।” हमलोग कहते।

“तो कितना चाहिए ? सारी झोली उठाकर दे दूँ ?” मुशी डपटता।

“सरकार, आज तो भूखे काम पर आया था। मोदी उधार सत्तू भी नहीं देता।”

“तो मैं क्या करूँ ? जानो तुम, जाने तुम्हारा मोदी। मुशी कहता।

“मर जायँगे मालिक, कुछ और दे दीजिए।” हम मजदूर कहते।

“तुम बहुत ज्यादा बोलता है। लेना है तो ले, मेरा दिमाग मत चाट।”

“मालिक, पाँच रुपए भी दीजिए, तो मोदी मान जाएगा।”

“ज्यादा बक-बक मत कर। नहीं काम चलता, तो काम छोड़ दे। तेरा उधार चुकाने का क्या मैंने ठेका ले रखा है?”

मुंशी के इस तरह बोल देने पर हमलोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगते थे। सबके चेहरे से मजबूरी टपकने लगती थी। ऐसे ही महीना पूरा होते-होते हमलोग दस-बारह रुपए पा जाते थे। बाकी आठ, नौ, दस रुपए के लिए फिर झूझती होती। एक बार ऐसी ही झूझ चल रही थी। दोपहर में हमलोग पावर-हाऊस के पास रोज की तरह काम में जुटे हुए थे। इसी वक्त ठेकेदार के मुंशी को कोई अपना आदमी बुलाकर कहीं ले गया। मेरे दिमाग में एक बात सूझी। मैंने अपने दोस्तों से पूछा, “अगर ऐसे ही पाँच रोज और पैसे न मिले, तो क्या खाओगे?”

“.....” कोई खास जवाब न मिला।

“रहो, मैं सलाह करता हूँ। व्यायलर से बाहर निकला हुआ कोयला सभी मिलकर जल्दी टाल पर पहुँचाओ। फिर थोड़ी देर में जब और कोयला बिदुर जाएगा, तब ट्राली चलाना। किसी तरह थोड़ा वक्त निकालो, मैंने एक उपाय सोच लिया है।” मैंने कहा।

मेरी बात सुनकर मेरे कुली दोस्तों के कान खड़े हो गए। उन्हें मेरी बातों पर यकीन न हुआ, तो वे बोले, “मुंशीजी के सामने बोलो, तो मरद बखर्न। ऐसे काम नहीं चलेगा।”

“बोलूँगा।” मैंने कहा।

“दिल्लगी करते हो।” वे बोले।

“नहीं, सच कहता हूँ। मगर दौड़कर कोयला फेंको, ठेकेदार का काम मत नुकसान हो।” मैंने सलाह दी।

“अच्छा।” मैंने सुना, और फिर दन् दन् दन् दन् दन् दन् !

कोयले की ट्रालियाँ दौड़ने लगीं। कुली हाँफ-हाँफकर ट्राली ठेलने लगे और घंटे-भर में व्यायलर से नीचे गिरा हुआ कोयला साफ हो गया। ऐसा मैंने इसलिए कराया कि अगर बीच में मुंशी चला भी आए, तो

अट-पट न कर सके। सीधा-सा जवाब दे दिया जाता, “जो कोयला था सो तो फेंक दिया, अब कोयला गिरेगा तो फिर फेंकेगे।” बगल में कोयले की राख का एक टीला था। सब लोग टूली छोड़-छोड़कर उसी पर जमा हुए। रकटू मेरी बायीं ओर आकर बैठ गया। तब मेरे दोस्तों ने मुझसे पूछा, “हाँ, जरा जल्द बतलाओ। तुम्हे कौन-सा उपाय सूझ गया है?”

“हमलोगों की हाजिरी का जमे कार्ड है न, उसके पीछे लिखा है कि अगर महीना लगने के सात रोज बाद तक तनख्वाह न मिले, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए।” मैंने कहा।

“लेबर आफिसर क्या करेगा?” दोस्तों ने पूछा।

“वह दिलवा देगा।” मैं बोला।

“जो भी हो भइया, मगर ऐसा उपाय लगाओ कि मुंशीजी और ठेकेदार साहब के खिलाफ कहीं बोलने का मौका न आ जाय।” दोस्तों ने एक साथ कहा। सिर्फ रकटू ने ऐसा न कहा। लेकिन, सच बतलाता हूँ, इतना सुनने के बाद ही उस रोज मेरे दिल के सूखे खेत में इन्कलाब का बीज पड़ गया।

सौलह



लेबर आफिसर के पास रिपोर्ट करना बड़ी हिम्मत का काम साबित होने लगा । मेरे साथ काम करनेवाले कुलियो मे से सिर्फ रकटू के सिवा और कोई तैयार न हुआ । सुनने मे आया कि इस तरह की रिपोर्ट किसी कुली ने आज तक न की । अभी ठेकेदार का मुंशी आया भी न था कि फिर जले हुए कोयले गिरने लगे । मैंने कुलियो से कहा, “तब खटो चुपचाप । चलो, ट्राली खींचो ।”

लोहे की पतली-पतली पटरियों पर फिर ट्रालियाँ दौड़ने लगी । कोयले की गर्मी से हम सभी फिर जलने लगे । मैंने रकटू से कहा, “तुम अपनी ट्राली मेरी ट्राली के आगे-आगे ले चलो । टाल की ओर बढ़कर बातें भी कर लूँगा ।”

“अच्छा ।” रकटू बोला ।

चार-चार कदम की दूरी पर हम दोनों अपनी-अपनी ट्राली ठेलने लगे । रकटू ने मुझसे दोस्ती कर ली थी, मगर अपने साथ काम करनेवाले कुलियो के लिए मेरे दिल में कोई काला नहीं था । उनके इनकार कर जाने की वजह मैं समझ गया । लगी हुईं रोजी छूटने का डर था । वैसे डर तो मुझे भी था, मेरी हालत उनलोगों से कुछ अच्छी नहीं थी, मगर न जाने, क्यों अपने हक की लड़ाई लड़ने की मुझमें जिद्द पैठ गई । हाथ मे टाट के छोटे-छोटे टुकड़े लपेटे मैं रकटू से बातें करने लगा था । ट्राली पावर-हाऊस से कोयले के टाल की ओर और टाल से पावर-हाऊस की ओर धकेली जा रही थी । आस-पास एक ही आवाज—ढन् ढन् ढन् ढन् ढन्... ।

“तो बोलो, रिपोर्ट करने के लिए तैयार हो ?”

“हाँ, तैयार हूँ ।”

“पीछे डरोगे तो नहीं ?”

“नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ ।”

“आज रिपोर्ट करूँ ?”

“करो ।” रकटू बोला ।

“और मान लो, कहीं ठेकेदार निकाल दे, तो ?” मैंने पूछा ।

“देखा जाएगा ।”

“मैं एक उपाय बतलाऊँ ?”

“बताओ ।” रकटू बोला ।

“स्टेशन पर गठरी ढोयेगे । दिन-भर में चार-पाँच गाड़ियाँ आती हैं । सो आजकल लड़ाई का जमाना है । मुसाफिरों की कमी नहीं होगी । क्या दिन-भर में दस बारह आने पैसे भी न होंगे ?” मैंने कहा ।

“नहीं होगा तो उससे क्या, रिपोर्ट करनी चाहिए । आवे आम, चाहे जाय लबेदा ।”

“वाह रकटू, सचमुच तुम मेरे दोस्त हो सकते हो । चलो, आज ही रिपोर्ट करता हूँ ।”

इतने दिनों से यहाँ रहते-रहते इतनी जानकारी हो गई थी कि लेबर आफिस कहाँ है और रिपोर्ट का माने यह है कि अपनी शिकायत लिखकर देनी चाहिए । रिपोर्ट करने की बात पक्की हो गई । तभी ठेकेदार का मुंशी चला आया । वह अपनी आदत की तरह फिर हमलोगों से ललकार-ललकारकर काम लेने लगा । काम में हमलोग किसी तरह मिहनत नहीं चुराते थे, मगर वह जो नहीं मानता था । आज जैसे ही बारह का भौपा बजा कि मुंशी से अपना-अपना कार्ड लेकर मजदूर कारखाने से बाहर निकलने लगे । जिधर आँखें उठाकर देखता, उधर ही से मजदूर कारखाने के फाटक की ओर दौड़ते हुए नजर आ रहे थे । मेरे साथ रकटू ने भी अपना कार्ड ले लिया । इस कार्ड पर छोटे-

छोटे तीस या इकतीस खाने बने होते । सभी खाने के ऊपर सिलसिले से तारीख दी हुई होती थी । उसी के अनुसार हमलोगों की हाजिरी बनती थी । सुबह कारखाने में घुसते वक्त मुंशी हमलोगों से कार्ड ले लेता और फिर बारह बजे लौटते वक्त दे देता था । इस बीच कार्ड पर हाजिरी बन जाती थी । मगर, इसमें एक दिक्कत और भी थी । डेढ़ बजे कारखाने में घुसते वक्त भी वह कार्ड मुंशी को देना पड़ता था और फिर छः बजे वह कार्ड मुंशी लौटा देता । भूलवश, अगर कोई कुली वह कार्ड मुंशी को नहीं दे पाता, तो उसकी आधे दिन की मजदूरी कट जाती थी । हाँ, तो मुंशी से अपने-अपने कार्ड लेकर थोड़ी देर तक हमलोग भी सिमेण्ट फैक्टरी के फाटक की ओर दौड़े । मगर आगे चलते-चलते मैं रुका तो रकट भी खड़ा हो गया ।

“मैं एक बात सोच रहा हूँ ।” मैंने कहा ।

“क्या ?”

“चलो, पेपर फैक्टरी ।”

“वहाँ क्या ?” रकट ने पूछा ।

“वहीं रिपोर्ट का कागज लिखायेंगे ।” मैं बोला ।

“कौन लिखेगा, तुम ?”

“मैं लिख तो सकता हूँ, मगर पहले तो मुझे लिखने का कायदा नहीं मालूम है और दूसरे यह कि मेरी लिखावट अच्छी नहीं होती । चलो न, वहाँ किसी बाबू से लिखवाऊँगा, अंग्रेजी में । अंग्रेजी में लिखने पर सुनवायी जल्दी होगी ।” मैंने कहा ।

“चलो ।”

यहाँ से हमलोग पेपर फैक्टरी की ओर मुड़े । दो मिनट में जरा एक बात और सुन लो । कारखाना चौबीस घंटे चालू रहता था । चौबीस घंटे में मजदूरों की ड्यूटी तीन बार बदलती थी । इन तीन समय के कामों के बीच नाम थे—‘ए शिफ्ट’, ‘बी शिफ्ट’, और ‘सी शिफ्ट’ । जो मजदूर दस बजे से छः बजे शाम तक काम पर रहते, उनकी ड्यूटी

को 'बी-शीफ्ट' कहा जाता था। वैसे ही छः बजे शाम से दो बजे रात तक के काम को 'सी-शीफ्ट' और दो बजे रात से लेकर दस बजे दिन तक के काम को 'ए-शीफ्ट' में गिनते थे। और, जो लोग सुबह भौंपा बजने पर काम में आते, दोपहर को जिन्हे दो घंटे की छुट्टी मिलती और फिर दो बजे से आकर जो शाम के पाँच बजे तक काम करते थे, उनकी ड्यूटी को 'जेनरल' ड्यूटी' कहा जाता था। हर फैक्टरी में हर किस्म की ड्यूटी होती। कारखाना कभी भी नहीं बंद होता था। आसमान से बाते करनेवाली चिमनियों के ऊपर शाम होते ही लाल रोशनी जलने लगती थी। कहते थे कि वह लाल रोशनी इसलिए जलायी जाती है कि रात में जाते वक्त कोई हवाई जहाज उनसे टकरा मत जाए। चिमनी से निकलते हुए धुआँ के बीच वह रोशनी एकदम जलती होती — लाल-लाल ! अगर तुम कहीं की अच्छी पेपर फैक्टरी देखने जाओगे, तो सबसे पहले तुम्हें पेपर फैक्टरी का पहला हिस्सा 'बंबू-क्रशर' दिखलाया जाएगा। बाँस यहीं पेरा जाता है। कागज बनाने के लिए एक खास किस्म का बाँस होता है। हमलोग उसको 'फुलिया बाँस' कहते हैं। यह साधारण लाठी से कुछ मोटा और आठ-नौ फुट से ज्यादा लंबा नहीं होता। ऐसे ही पाँच-पाँच बाँसों का एक-एक पुल्ला बंधा होता है। कारखानों में जब बाँस से लदी मालगाड़ी आती है, तो उन्हे उतारकर एक जगह इकट्ठा कर लेते हैं। बाँस को ढेर से लेकर 'बंबू क्रशर' तक डेढ़ फुट चौड़ी लोहे की लाइन बनी होती है और इन पर चलने के लिए लोहे की ट्राली भी होती है। मजदूर इन्हीं ट्रालियों पर बाँसों के पुल्ले भर-भरकर 'बंबू-क्रशर' तक ले आते हैं।

हाँ, तो बीलट भाई उसी पेपर फैक्टरी के 'बंबू क्रशर' में काम करते थे। मैं रकटू के साथ बंबू क्रशर पहुँचा। देखा, बीलट भाई ट्राली पर बाँस लादे, उसे ठेलते हुए बंबू क्रशर में घुस रहे हैं। छुट्टी के वक्त मुझे वहाँ देखकर पूछा, "अभी यहाँ कैसे मंगरू ?"

"एक काम है।" मैं बोला।

“खाना खा लिया ?”

“नहीं ।”

“तो खाओगे कब ?”

“एक काम है, किसी से करा दो । पीछे दौड़कर खा आऊँगा ।”

“क्या काम है, कहो ।”

“किसी बाबू से दोस्ती है ?” मैंने पूछा ।

“बाबू लोगो से मेरी दोस्ती कैसे होगी ? क्या चाहते हो ?”

“देखो, यह भी मेरा दोस्त है ।”—रकटू की ओर इशारा करके मैं कहने लगा, “यह बेचारा भी मेरा साथ दे रहा है । देखो, महीना लगे पंद्रह रोज हो गए । ठेकेदार ने हमलोगों का हिसाब न साफ किया । और एक बात जानते हो, हमलोगों के कार्ड के पीछे क्या लिखा है ?”

“क्या लिखा है ?” बीलट भाई ने पूछा ।

“देखो लिखा है—अगर महीना पूरा होने के सात रोज बाद तक ठेकेदार तनखाह न दे, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए । हमलोग रिपोर्ट करना चाहते हैं, किसी से रिपोर्ट लिखा दो ।” मैंने कहा ।

“अरे, तुम्हें क्या हो गया है, मंगरू ?”

“जो हो गया है, सो ठीक हो गया है । इसके बिना काम नहीं चलेगा ।” मैं बोला ।

“अरे, बड़ी मुश्किल से तो उसने तुम्हें रख लिया और अब रिपोर्ट करोगे, तो निकाल न देगा ?”

“देखा जाएगा, तुम लिखा तो दो ।” रकटू ने कहा ।

“देखो भाई, सोच लो । नौकरी मिलना मजाक नहीं है ।”

“हमलोग सोचकर आए हैं । तुम मत डरो ।” मैं बोला ।

“अच्छा आओ । चलो अंदर । मिस्त्रीजी से कहूँगा । मगर मेरा दोष न देना ।” बीलट भाई बोले और ट्राली को ठेलते हुए बबू कशर में घुस गए । पीछे-पीछे रकटू भी मेरे साथ अंदर आ गया । बबू कशर चालू था । बॉस के पेराने से ‘ठक्-ठक्-कड़ाक्’ की आवाज हो रही थी ।

पहले बीलट भाई ने ट्राली से बाँस उतारे, फिर बीस फीट ऊँची मशीन के ऊपर काम करते हुए एक आदमी को देखकर बड़े जोरो से कहा, “हो ओ हो ८० ०० ।” मशीन से ऐसी आवाज हो रही थी कि बिना चिल्लाये काम नहीं चलनेवाला था ।

“क्या है ?” ऊपर बैठे हुए आदमी ने हाथ उठाकर इशारा किया ।

“नीचे आओ ।” हाथ से इशारा कर बीलट भाई बोले ।

उनका इशारा पाते ही ऊपर से वह आदमी उतर आया । मैंने देखा, उमके हाथ में लोहे के दो-तीन औजार थे और उसकी उँगलियों में मशीन का तेल लगा था । उस आदमी की उम्र करीब अड़तीस-चालीस वर्ष की थी । देखने में वह दुबला-पतला था । आँखों की चमक कम हो गई थी । मगर उसकी उँगलियाँ बहुत ही मजबूत जान पड़ती थी । वह एक हाफ कमीज और पैट पहने था । उसने हमलोगों को इस तरह देखा, जैसे वह कुली नहीं । उसका ओहदा हमलोगों से कुछ ऊँचा हो, जैसे । आते ही उसने बीलट भाई से पूछा, “किसलिए बुलाया ? कहो ।”

‘एक काम है मिस्त्री, अभी फुर्सत होगी ?’

“कहो न ।”

“वही तो पूछ रहा हूँ । एक रिपोर्ट लिखनी है ।”

“लाओ कागज, लिख दूँगा ।”

“कागज कहाँ है, वहाँ से ले लूँ ?” बीलट भाई ने पूछा ।

“ले लो, साहब चले गए न ?”

“हाँ ।”

“ले लो, ले लो ।”

वही पर बगल में एक काठ की छोटी-सी कोठरी बनी थी । उसमें कुर्मी थी, टेबुल थी, टेबुल पर कागज, पेंसिल, स्याही और टेलीफोन रखा था । और पीठ की ओर दीवार में, शीशे में मढ़ी हुई बाँस की तस्वीर टँगी थी । पता चला कि इसी कमरे में ‘शीफ्ट इंचार्ज’ रहता है, जो मजदूरों के काम की देख-रेख और समय-समय पर उन्हें ‘सस्पेड’ भी किया

करता था। बंबू क्रशर में घुसने के लिए लोहे के चदरे के दो मजबूत दरवाजे थे। वीलट भाई ने मुझसे कहा, “तुम इनसे रिपोर्ट लिखा लो। मैं दरवाजे पर खड़ा-खड़ा देखता हूँ। कही साहब आ गए, तो हम दोनों † ससपिन कर दिये जायेंगे।”

“हाँ, तुम बाहर खड़े रहो वीलट। मैं भीतर ही रिपोर्ट लिख देता हूँ। कलम, दावात सब तो है ही।” मिस्त्री बोला।

वीलट भाई बंबू क्रशर के दरवाजे पर आकर खड़े हो गए। मैं और रकटू मिस्त्री के साथ उस काठ की कोठरी में घुसा। वीलट भाई के और कुली दोस्त बॉस ढोने का काम कर रहे थे। मशीनों से वही आवाज निकल रही थी—‘ठक्-ठक् कड़ाक् कर्र कड़ाक्’! कोठरी में घुसते ही मिस्त्री ने साहब की टेबुल से कागज उठाया, कलम उठायी और हमलोग की रिपोर्ट तैयार होने लगी। पहले मैंने सारी बातें उसे समझा दी थीं। रिपोर्ट के नीचे मैंने अपनी दस्तखत की और रकटू ने अँगूठे में स्याही लगाकर मेरी दस्तखत के पास ही निशान लगाया।

“तुम्हारा घर कहाँ है?” मिस्त्री ने मुझसे पूछा।

“छपरा जिला।”

“छपरा जिला?”

“हाँ।”

“किस थाने में?”

“दिघवारा।”

“मेरा भी घर छपरा ही है, मगर शहर में।”

“कहाँ?”

“साहेबगंज।”

“अच्छा, तब हमलोग जवारी भाई हुए।”

“हाँ, वीलट से कैसी दोस्ती है?”

“हमलोग पास ही के रहनेवाले हैं। तुम्हारा नाम क्या है ?”

“फपसी।” मिस्त्री ने कहा।

“अच्छा, फिर भेंट करूँगा। तुम तो मिस्त्री हो, साहब लोगो से जान-पहचान होगी। कहीं सरकारी काम में लकड़ लगा दो, तो तुम्हारा बड़ा नाम लूँगा।” मैं बोला।

“सुना है, फिर बहाली होनेवाली है। मिलोगे, तो बातें करूँगा।”

“कहाँ डेरा है तुम्हारा ?”

“कुली क्वार्टर में रहता हूँ। अट्टारह नंबर। सो तो बीलट जानता है।”

“अच्छा।”

फपसी मिस्त्री से इस तरह जान-पहचान भी हो गई और मैं रिपोर्ट लेकर बाहर निकला। बाहर निकलते वक्त दरवाजे पर खड़े बीलट से कहा, “हो गया काम। अब तुम जाओ।”

यहाँ से हमलोग बड़ी तेजी के साथ लेबर आफिस पहुँचे। मगर इतनी हिम्मत कहाँ थी कि लेबर आफिस में घुसकर सीधे लेबर आफिसर के हाथ में रिपोर्ट दूँ। बाहर एक टेबुल पर चपरासी बैठा था। उससे कहा, “एक रिपोर्ट देनी है, कैसे दूँ ?”

“भीतर जाना मना है। मुझे दे दो। मैं साहब की टेबुल पर रख आऊँगा।”

“और इसका जवाब ? मैंने पूछा।

“जवाब अभी थोड़े मिल जाएगा ? साहब के पास एक यही कागज तो नहीं है। आज कागज दे जाओ, पीछे पता लगा जाना।”

“लो, इसे ले लो। मगर देखो, इस कायदे से साहब के आगे रखना कि काम बन जाय।” मैं बोला। मेरी बात पर चपरासी मुस्कुरा पड़ा था। अब समझता हूँ कि वह मेरा गँवारपन था। आखिर उस रोज यों ही अपनी रिपोर्ट पेश कर हम दोनों फाटक से बाहर निकले और नजदीक की सच्ची की दुकान की ओर लपके। वक्त का कुछ अंदाज

नहीं था। दो का भोपा तुरत बजेगा या अभी देर है, हम नहीं सोच सकते थे।

रतननगर के चारों ओर सिमेण्ट की ऊँची चहारदीवारी बनी थी। चहारदीवारी के ऊपर पतले-पतले और नुकीले शीशे के टुकड़े लगे थे। सिमेण्ट कटरी से उत्तर की ओर मजदूरों के रहने के लिए कुछ क्वार्टर कंपनी ने बनवा दिये थे। कुलियों के रहने के लिए करीब एक सौ कमरे बने थे। एक कमरे का भाड़ा एक रुपया लगता और एक कमरा तीन या चार कुलियों के नाम पर मिलता था। क्वार्टर आमने-सामने की कतार में बने थे। बीच की जगह में एक या दो पानी के नल थे। पानी भरने के लिए अक्सर मजदूरों में झगड़ा हुआ करता। नल पर बराबर भीड़ लगी रहती थी। इन्हीं क्वार्टरों की बगल से होकर एक कच्ची सड़क पूरब की ओर जाती थी। पूरब और उत्तर के देहातों से, ईख की लदी बैलगाड़ियाँ इसी सड़क से आती और सूगर-फैक्टरी के फाटक में घुसती थीं। सड़क छाया की बनी थी और सड़क के आखिर में, एक बोर्ड टंगा था। जिस पर लिखा था—

सेठ रतनमल इन्डस्ट्रीज़

प्राइवेट रोड

यह आम रस्ता नहीं है।

लेकिन, वैसे किसी आदमी के आने जाने की मनाही नहीं थी। और, इसी सड़क की बगल से कंपनी का बहुत ही गदा नाला बहता था। इस नाले की चौड़ाई करीब आठ फीट और गहराई दस-ग्यारह फीट थी। कुलियों के क्वार्टर और उस गंदे नाले में सिर्फ बहुत कम चौड़ी सड़क की दूरी थी। कारखाने की सारी गदगी इसी नाले से होकर बहती थी। इसी नाले के किनारे कुलियों के लिए एक बमपुलिस बना दी गई थी, जिसमें आठ-नौ पैखाने थे। पैखाने में टीन के दरवाजे लगे थे, जो बहुत ढीले और पुराने पड़ गये थे। उनके ऊपर मोरचे जम गये थे। शायद हफ्ते में इनकी सफाई दो-एक बार हो जाती होगी। यह सब मैंने

तब देखा, जब झपसी मिस्त्री से मिलने इधर आया था । नाले के उत्तर में मेहतरो के क्वार्टर थे । गिनती में कुल पंद्रह या बीस । इनकी भी वही हालत थी । इसके पूरब में बहुत बड़े मैदान के उस पार, पच्छिम की ओर कारखाने के बड़े-बड़े अफसरों के बँगले थे । उन बँगलों के सहन में रंग-विरंग के फूल लगे थे । बीच की दूबे मशीन से काटी जान पड़ती थी । बालछड़ी की हरी-हरी और घनी झाड़ी को माली लोहे की बड़ी-बड़ी कैची से छाँट रहे थे । मोटर-गाड़ी रखने के लिए बँगले से सटा ही एक अलग मकान था । उन बँगलों के आस-पास से जब कभी शाम या रात में गुजरता, तो लगता, जैसे स्वर्ग की बगल से होकर जा रहा हूँ । कहीं से साहब और साहेबाइन की खिलखिलाहट सुनायी पड़ती, कहीं से टेलीफोन की घनघनाहट और कहीं से रेडियो बजते सुनायी पड़ते थे । सामने, जो बहुत ही लंबा-चौड़ा मैदान था, उसी में साहब लोगो के नौकर, साहब के छोटे-छोटे बच्चों को चार पहियोवाली गाड़ी पर बैठाकर टहलाते थे । किसी बँगले के फाटक पर लिखकर टंगा था, 'बिना पूछे अदर मत जाओ ।' किसी पर लिखा था, 'पुकारने के लिए कौलिंग-बेल का बटन दबाइए' और कहीं-कहीं बड़े-बड़े हरफों में लिखकर टंगा था—

कुत्ते से बचकर । फूल मत तोड़ो,
कुत्ता काट खाएगा ।

इधर और नए-नए कारखाने खुलने लगे थे । सुनने में आता था कि जापान सिंगापुर तक चला आया है । दिन-भर में पचासों हवाई जहाज पूरब की ओर जाते । कभी कभी जब पाँच-पाँच या ऐसे ही आठ-नौ हवाई-जहाज एक साथ जाते, तो देखकर हमलोग अंदाज लगाते थे कि लड़ाई जोरो की हो रही है और जहाज में बमगोले भरकर भेजे जा रहे हैं । सड़को पर बिजली के खम्भे में जहाँ-जहाँ बिजली के बल्ब लगे थे, उन सबों में सरकार ने 'लैम्प-कैप' लगवा दिया था । सरकार की ओर से यह हिदायत भी कर दी गई थी कि कोई भी आदमी घर के बाहर बिना 'लैम्प-कैप' के बत्ती नहीं जला सकता । इससे एक

फायदा यह होता था कि बत्ती की रोशनी ऊपर आसमान की ओर नहीं जा सकती थी। बत्ती की सारी चमक नीचे जमीन की ओर मुड़ जाती थी। उन दिनों लोग कहा करते थे कि बहुत उमीद है कि जापान इधर भी चला आए। बत्तियों को देखकर वह समझ जाएगा कि नीचे कोई बड़ा कल-कारखाना है और इसे बर्बाद करने के लिए हवाई जहाज से बमगोले गिरा देगा।

बिना छावनी की मालगाड़ियों पर मशीनें जा रही थी। कंपनी रोज नए आदमी बहाल करने की खबर देती और चुप लगा जाती थी। मैं समय मिलने पर रूपसी मिस्त्री से मिलता और इस बात का पता लगाता कि नई बहाली होनेवाली है या नहीं। अपनी रिपोर्ट का पता लगाने भी मैं रकटू के साथ लेबर आफिस कभी-कभी पहुँच जाता। मगर, कुछ पता नहीं चलता था। लेबर आफसर का चपरासी कटाह कुत्ते की तरह भूँककर हमलोगों को भगा देता। ठेकेदार की मनमानी पहले की तरह चल रही थी। मैं, अपनी माँ-बहन और सनीचरी के लिए कुछ भी न भेज सका था। बड़ी इच्छा होती थी कि उसी साढ़े बाईस रुपए में कुछ काट-कपटकर भेजूँ। मगर, एक मुश्त न साढ़े बाईस रुपये मिलते थे और न मैं दो पैसे बचा पाता था। मोदी का उधारी खर्च बराबर सिर पर चढ़ा रहता। बीलट भाई महीने में सत्ताईस रुपए के अलावे आठ-दस रुपए ओभरटाइम से बना लेते थे। सो, वे हर महीने एक मनीआर्डर फॉरम जरूर ले आते थे। इस बीच मैंने एक पोस्टकार्ड घर भेज दिया था। जिसमें लिखा था कि 'मुझे नौकरी लग गई है। अभी कुछ कम पैसे पाता हूँ। आगे तरक्की होने की भी उम्मीद है। घबड़ाने की जरूरत नहीं है। आगे रुपए भी भेजूँगा।'

इन्हीं दिनों पावर-हाऊस में डबल व्यायलर बनाया गया। कारखाने और बन जाने के कारण एक पावर-हाऊस से काम नहीं चल रहा था। अब तो अधिक कोयला जलने और गिरने लगा। हमलोग जितने कुली थे, उनसे निश्चित समय के अंदर व्यायलर के सारे कोयले नहीं

फेंके जा सकते थे। पहले तो ठीकेदार ने बड़ी कड़ाई से काम लिया, मगर पीछे जब काम नहीं निकला, तो एक रोज राख के ढाल पर खड़ा होकर ठीकेदार के मुंशी ने हमलोगों से कहा, “देखो, अब काम बढ़ रहा है। तुमलोगो को ओभरटाइम करना होगा।”

कुलियों को ‘ओभर-टाइम’ का माने समझाने की जरूरत नहीं थी। यह सभी जानते कि जिनलोगों को कंपनी बहाल करती है उन्हें ‘सरकारी मजदूर’ कहा जाता है। इनके साथ सुविधा यह रहती है कि इनकी तनखाह अधिक होती है। साल-भर में चौदह रोज की छुट्टी ले, तो उसकी मजदूरी नहीं कटेगी। दूसरी सुविधा यह थी कि बात-बात में वे नौकरी से नहीं हटाये जा सकते थे। चोरी करने या अफसरो से झगड़ा करने पर ही उन्हें निकाला जाता था। हमलोगों को यह भी मालूम था कि काम की कमी रहने से वे मजदूर काम से हटाये नहीं जा सकते। उन्हें काम देने की जिम्मेवारी कंपनी के ऊपर होती है। लेकिन, ठीकेदारी में काम करनेवाले मजदूरों के साथ इनमें से कोई भी एक सुविधा नहीं थी। इन्हें उन कुलियो से चार-पाँच रुपए वेतन भी कम मिलता। वेतन भी समय पर नहीं दिया जाता था। न छुट्टी मिलती थी और न सालो भर कमा पाते थे। जब कभी काम नहीं रहता, तो भोपा बजने के साथ कारखाने के फाटक पर पहुँचे हुए मजदूर लौटा दिये जाते।

“आज काम नहीं है। जाओ, आज गीतगोविन्द गाओ।” उनसे कहा जाता।

“जाओ, आज दिन-भर झाल बजाओ।” मुंशी मुस्तुराकर कहता। एक बात और बतला दूँ। एवजी पर काम करनेवाले कुलियों को ‘कजुअल कुली’ कहा जाता था। जब किसी कारखाने में कुलियों की कमी हो जाती, तो ऐसे कुली काम पर ले लिये जाते थे। इन कुलियों को काम पर बुलाने का अधिकार कारखाने के इंचार्ज को होता और इन्हें भेजने का अधिकार ‘टाईम कीपर’ को होता था। मान लो, एक मशीन पर एक ड्राइवर, एक आयल मैन, जो मशीन के पुर्जों में तेल

देता है, और चार कुली काम कर रहे हैं। समझ लो, किसी 'शीफ्ट' में उन चार कुलियों में से दो गैरहाजिर हो गए। तो फिर दो से तो काम नहीं चल सकता। और आदमी और कामों के लिए हैं। फिर यहाँ का काम कैसे होगा? ऐसे ही काम पर 'कैजुअल कुली' बुलाये जाते हैं। एक आध घंटे तक कंपनी के कुली का इंतजार किया जाता है। जब वह नहीं आता, तब वहाँ का इंचार्ज टाईम-कीपर को फोन द्वारा सूचना देता है कि मेरे कारखाने में इतने कुली भेज दो। कुलियों के सिवा मिस्त्री या और कोई अफसर 'कैजुअल' नहीं होते। लेकिन, कैजुअल कुलियों का भी शीफ्ट बँटा होता है। हर शीफ्ट में दो या एक टाईम-कीपर होते हैं। रतननगर में टाईम-आफिस कारखाने के बड़े फाटक की बगल ही में थी। आफिस के बाहर सिमेंट की सड़क थी और सड़क की ओर ही टाईम-आफिस की खिड़कियाँ बनी थीं। उन पर हरे-हरे परदे लगे थे। कैजुअल कुली बेचारे इन्हीं खिड़कियों पर अपने-अपने कार्ड लेकर खड़े रहते थे। किस रोज, वे किस फैक्टरी में काम करने के लिए भेज दिये जायँगे, कोई ठीक नहीं रहता था। खैर—

“करेंगे सरकार।” हमलोगों ने कहा।

“रोज तीन घंटे काम करना होगा।” ठेकेदार का मुंशी बोला।

“करेंगे।”

“देखो, छः बजे से लेकर नौ बजे रात के काम के लिए चार आने और मिलेंगे। तुमलोगों के वेतन में साढ़े सात रुपए और बढ़ जायँगे। साढ़े बाईस और साढ़े सात कितने हुए, कुछ समझा? पूरे तीस रुपए तो सरकारी कुलियों को भी नहीं मिलते। उन्हें कितना मिलता है, मालूम है?” कहकर मुंशी ने पूछा।

“मालिक, सत्ताइस रुपए।” हमलोगों ने कहा।

“कहो, तब ये तीस रुपए कहाँ का थोड़ा है।” मुंशी बोला।

हमलोग ओभर-टाईम में खटने के लिए तैयार हो गए। मैंने भी सोचा, खटकर खाना क्या पाप है। बैठे-बिठाये कौन देता है? कहा

भी है, 'बूँद-बूँद से घट भरे।' साढ़े सात पैसे तो कोई मौके पर देता ही नहीं है, साढ़े सात रुपए तो बहुत हैं। ठेकेदार के मुशी ने कहा, "बस, तो आज ही से शुरू कर दो। ठेकेदार साहब का हुक्म है।"

उसी रोज से ओभर-टाईम का काम भी होने लगा। इस बीच मैं और रकटू यह सोचते कि अगर हमलोगों की रिपोर्ट पर लेबर आफिसर पूरा खयाल करे और ठेकेदार पर बिगड़े, तो आगे का समूचा रास्ता ही खुल जाय। सबको वक्त पर और एक मुश्त वेतन मिलेगा। महीने भर खाने के लिए हमलोग एक बार सामान खरीदकर रख देंगे। तब खर्च का हिसाब भी बैठेगा। कुछ बचेगा, सो घर भेजेगे। और तभी हमलोगों के साथ काम करनेवाले सभी कुली समझेंगे कि मंगरूआ जो कहता है सो करता है और रास्ते का काम करता है। मगर, रिपोर्ट का कुछ पता नहीं चल रहा था। ओभर-टाईम खटते समय मुशी हमलोगों को बहुत रपेटता था। देहचोर, कामचोर कहता और गालियाँ भी देता था। उसकी गालियों का जवाब हम हँसकर या मॉफी माँगकर दिया करते थे। काम करते समय पैरों को लोहे की गर्म पटरियाँ जलाती और हाथों को गर्म ट्राली जलाती थी। हमलोग हाथ और पैर में टाट के टुकड़े बाँधे रहते थे। कभी-कभी जलते हुए कोयले से हाथ सट जाता, तो टाट में आग लग जाती थी और उसे खोलकर फेंकते-फेंकते हाथ पर दो-एक फफोले निकल ही आते थे। लेकिन, ऐसा रोज नहीं होता था।

एक रोज नौ बजे तक ओभर-टाईम खटने के बाद भी व्यायलर के नीचे का कोयला साफ नहीं हुआ। अभी एक घंटे की और दरकार थी।

"अभी कोई मत जाओ।" मुशी बोला।

"क्यों मालिक, अब तो नौ बज गए।" कुलियो ने कहा।

"अभी एक-डेढ़ घंटे और रहो। छः पेंमे और ज्यादा मिलेगे।"

"रहेगे सरकार!"

ढन् ढन् ढन् ढन् ढन् ढन्...। ट्रालियाँ फिर दौड़ने लगी।

हाँ, ट्रालियाँ फिर चलने लगीं। व्यायलर के नीचे का कोयला साफ किया जाने लगा। वैसे मैं रकटू के साथ ही अपनी ट्राली ले आता और ले जाता था। दस-पाँच कदम की ही दूरी पर मेरी और उसकी ट्राली रहती थी। रात के साढ़े नौ बज रहे थे। पावर-हाऊस के ऊपर से बिजली का इतना बड़ा बल्ब इस ओर जल रहा था कि बहुत दूर तक किसी दूसरी रोशनी की जरूरत नहीं महसूस होती थी। मगर, टाल की ओर, जहाँ पहुँचकर हमलोग कोयला उडेलते थे, यह रोशनी ठीक तरह नहीं पहुँच पाती थी। उधर गोधूलि की तरह का अँधेरा जान पड़ता था। आज नौ बजे के बाद काम लेने में मुशी और डॉट-डपट करने लगा। ट्राली पर कोयला भरकर उसे दौड़ाते हुए हमलोग टाल की ओर ले जाते। इसी दौड़-धूप में रकटू मुझसे बिछड़ गया। अब तो कोयले के टाल से लेकर पावर-हाऊस तक के रास्ते में ट्राली ले जाते या ले आते मिल जाता था। इतनी हिम्मत नहीं थी कि ट्राली एक जगह रोककर हमलोग फिर साथ हो जाते।

एक बार मैं ऐसे ही ट्राली में कोयला भरकर ठेलता हुआ टाल की ओर जा रहा था। अपनी ट्राली से बहुत आगे, मैंने देखा, कोई कुली ट्राली को दौड़ाता हुआ आ रहा है। उसकी ट्राली के पहियों से जोरो की घनघनाहट सुनायी दे रही थी। उसकी ट्राली के कोयले से आग की छोटी छोटी लाल-लाल लपटे निकल रही थी। मैंने दूर ही से देखा, उसके हाथ में बँधे हुए टाट के टुकड़े में आग लग गई। उसने अपने हाथ झाड़ता हुआ अपने को सँभालना चाहा। मैंने यह भी अंदाज लगाया कि अपने साथ-साथ वह ट्राली भी छोड़ना नहीं चाहता है। तभी मेरी आँखों ने एक बहुत खराब घटना देखी, जिसे मैं आज भी नहीं भूल पाता हूँ। एक हाथ से दौड़ती हुई ट्राली को रोक लेने की कोशिश करता हुआ वह खुद रेल की पटरी की बगल में गिर पड़ा और बड़े झोंके के साथ रोकी गई ट्राली, जिसमें जलते हुए पत्थर के कोयले थे, उसकी देह पर उलट गई। इसके बाद जब मैं अपनी ट्राली को दौड़ाता हुआ

उसके पास पहुँचा था, तो मेरे कानों में उसकी आखिरी आवाज सुनायी पड़ी थी, “अरे बाप रे, मरा ! ट्राली देह पर गिर पड़ी... ॥”

फिर ट्राली ने अपने बजन से उसे हमेशा के लिए दबा दिया । आग ने अपनी गर्मी से, उसके शरीर के एक-एक बूँद खून को सुखा दिया । पीछे बड़ी मुश्किल से ट्राली उठायी गई । कुली पहचाना गया । वह मेरा पहला इन्कलाबी दोस्त था—रकटू ।

दूमरे गोज रकटू इस दुनिया से सदा के लिए चला गया । मैं अकेला उसकी ओर से भी रिपोर्ट के फैसले का इंतजार करने और हक की लड़ाई लड़ने के लिए रह गया । उसके इस तरह जलकर मर जाने पर ठेकेदार ने बहुत अफमोस जाहिर किया । इस घटना के तीसरे या चौथे रोज जब मैं काम पर गया, तो ठेकेदार के मुँशी ने मेरे हाथ से अपना दिया कार्ड वापस लेते हुए कहा, “अब तुम दूमरा दरवाजा देखो ।”

“क्यों सरकार, मुझसे कौन भूल हुई है ?” मैंने पूछा ।

“तनख्वाह के लिए तुमने लेबर ऑफिस में रिपोर्ट की थी ?”

“जी मालिक !” मैं बोला ।

“क्यों रिपोर्ट की ?”

“सरकार, कार्ड के पीछे लिखा है ।”

“लिखा तो है । मगर एक तुम्हीं तो नहीं थे । सभी कुलियो ने क्यों नहीं रिपोर्ट की ?”

“सरकार, मैंने कहा था, मगर सब तैयार नहीं हुए ।” मैंने बड़ी सीधी तरह जवाब दिया ।

“तो जाओ, जिसके पास रिपोर्ट की थी, उसी से काम माँगो । तुम अपने को बहुत चालाक और पढ़े-लिखे समझते हो ।”

“सरकार, मैंने तो कानूनी काम किया था ।”

“वही तो कहा, तुम बहुत कानून जानते हो ।”

“मेरी तनख्वाह ?”

“कार्ड रख लिया है । हिसाब किया जाएगा, कमी आकर ले जाना ।”

“कब ?”

“तुम्हारे बाप का नौकर तो नहीं हूँ। अकेला तुम्हारा हिसाब कौन करेगा ?”

“अच्छा . . . ।”

कारखाने का दूसरा भोगा बजते-बजते मै भोपड़ी में लौट आया। दीपन दो बजे रात को काम पर चला गया था। भोपड़ी में बीलट भाई अवेले चूल्हा सुलगा रहे थे। मेरा मन कुछ उदास जरूर हो गया था। भीतर आकर मैं टाट पर बैठ गया। बीलट भाई ने मुझे देखकर पूछा, “लौट क्यों आए, क्या आज काम नहीं मिला ? वहाँ तो काम की कमी का सवाल ही नहीं उठता।”

“हाँ, काम की कमी तो नहीं है।”

“तो ?”

“निकाल दिया साले ने। तनख्वाह के लिए उस रोज रिपोर्ट की थी न।” मेरे मुँह से निकला।

“मैंने तो पहले ही कहा था। नौकरी में अपनी बात नहीं, मालिक की बात रखी जाती है, बाबू।”

“कोई हर्ज नहीं, देखा जाएगा।”

“सार्इ-वूड में और नई मशीनें बैठी हैं। कल बहाली होगी, चलना।”

“सच, कब ?”

“आज मैं ड्यूटी पर से पता लगाता आऊँगा। पहले कैजुअल में भी भरती करे तो हो जाना।”

दूसरे रोज आठ बजे सबेरे लेबर आफिसर के सामने कारखाने के फाटक पर कुलियों की बहाली होने लगी। बीलट भाई के साथ मैं भी पहुँच गया था। बीलट भाई सीधे लेबर आफिसर के पैरो पर अपना गमछा रखकर बोले, “मरकार, यह बहाल नहीं होगा, तो यहीं भूखो मर जाएगा।”

रतननगर की जितनी जमीन में साथ-आठ अफसरों के बँगले थे, उतनी जमीन में करीब डेढ़ सौ कुली और पचास-साठ मेहतरों के लिए क्वार्टर बने थे। पूरे रतननगर की गदगी कुली-क्वार्टर के बगलवाले नाले से होकर बहती थी। उस नाले की दुर्गन्ध कुलियों के एक-एक क्वार्टर में पहुँचती। मगर, उसी दुर्गन्ध के बीच रहने के लिए वे कुली आदत डाल चुके थे। कुछ मजदूर आस-पास के देहातो से आते थे। बाहर के परदेशी मजदूर, कारखाने के बाहर, स्टेशन पर या बनगाँव में भाड़े का कमरा लेकर रह रहे थे। बनगाँववाले साधारण कोठरियों को भी मँहेंगे भाड़े पर लगाते थे।

जब मैं कैजुअल कुली में बहाल हो गया, तो मुझे 'शीफ्ट' ड्यूटी मिल गई। अब मैं अपनी हर ड्यूटी में टाईम आफिस की खिड़की पर जाकर खड़ा हो जाता। कभी मैं काम पर भेजा जाता और कभी वापस चला आता था। बेईमानी यहाँ भी होती थी। दो-चार कुली टाईम-कीपर के अपने आदमी होते थे। उनमें कोई कहार होता, कोई कुरमी और कोई कोइरी। कोई टाईम-कीपर के क्वार्टर में जाकर चौका-बर्तन करनेवाला होता। कोई बाजार से तरकारी खरीदकर ला देता, कोई गेहूँ पिसवा लाता था। कोई लकड़ियाँ-फाड़ता और टाल पर से कोयले ढोकर ले आता था। इसके लिए टाईम-कीपर उन कुलियों को कोई रकम नहीं देता था। लेकिन, वे कुली टाईम-कीपर का बहुत ही अहसान मानते और उनकी तारीफ के गीत गाते थे। इसकी वजह यह थी कि टाईम-कीपर उन्हें रोज काम पर भेजा करता। मान लो, किसी फैक्टरी

से चार कैजुअल कुली की माँग आई। वैसी हालत में टाईम-कीपर अपने उन्ही खुशामदी कुलियो को भेज देता था। उसके दिल में इन्साफ नाम की कोई चीज नहीं थी। देहातों से आनेवाले मेरे कई कैजुअल कुली दोस्त, टाईम-कीपरो के डेरे पर घी पहुँचाया करते थे। मगर, मुझे उन पर गुस्सा नहीं आता था। मैं समझता था कि यह भी उनकी मजबूरी है। भूख की मार इंसान को हैवान बना देती है, इंसान टूट जाता है।

पाँच महीने तक मैं कैजुअल कुली में काम करता रहा। छठे महीने में मैं सरकारी कुली हो गया। झाई वूड फैक्टरी में मेरी बहाली हुई थी। यह लकड़ी का कारखाना था। इसमें लकड़ी के तरह-तरह के सामान तैयार होते थे। हवाई-जहाज में लगाने के लिए भी कुछ चीजें तैयार की जाती थीं। कुर्सियों पर के शीट बनते। उसे लोग 'चेयर-शीट' कहते थे। मेरे साथ कई कुली 'यार्ड' में काम करते थे। मालगाड़ी पर लकड़ियाँ लादकर आती थीं और कारखाने के जिस ओर वे मालगाड़ियाँ खड़ी रहनीं, उसे लोग 'यार्ड' कहते थे। बरसात के दिनों में, जब पानी फूम-फूम कर बड़े जोरों से बरसता होता, उस वक्त भी मुझे और मेरे साथियों को भीग-भीगकर काम करना पड़ता था। उसी हालत में, हमलोग मालगाड़ी के डिब्बे से लकड़ी की वजनदार सिल्लियाँ उतारते और ट्राली पर लादकर उसे चेम्बर तक ले आते थे। चेम्बर एक बहुत चौड़े कुएँ की तरह था। लेकिन, वह गोल नहीं था, वह था चौकोर। वह सिमेण्ट का बना था। उसकी दीवारों के चारो ओर बिजली के तार जाल की तरह फैले हुए थे। ट्राली पर ले आयी हुई सिल्लियाँ 'क्रेन' के जरिए आहिस्ते-आहिस्ते चेम्बर में उतारी जाती थी। जब सिल्लियों से चेम्बर भर जाता, तो उसका मुँह ढँक दिया जाता था। इसके बाद शायद उसमें स्टीम छोड़ी जाती। इस स्टीम के जरिए लकड़ी को जरूरत के अनुसार मुलायम बना लिया जाता था। फिर इस चेम्बर से लकड़ियाँ निकालकर † पीलिंग मशीन

पर भेजी जाती । पीलिंग मशीन पर इन सिल्लियों से जरूरत के मुताबिक नाप का हिसाब करके, लकड़ी छिलकर निकलने लगती । कागज की तरह लकड़ियाँ बड़ी आसानी से छिलती थीं । अगर वे कही फट जाती, तो उन्हें 'टेपिंग मशीन' से साट दिया जाता था । कारखाने के इंचाज हमलोगों के काम की बदली भी किया करते थे । कभी मालगाड़ी से सिल्ली उतारनी पड़ती, कभी छिली हुई लकड़ियों को मैदान में सूखने के लिए देना पड़ता । दस कुलियों के ऊपर एक मेट होता था । वह हमलोगों से काम कराता था । मेट के ऊपर सुपरवाइजर होता था । सुपरवाइजर के ऊपर 'शीफ्ट इंचार्ज' होता । और, शीफ्ट इंचार्ज के ऊपर इंचार्ज होता था । इंचार्ज साहब कुलियों से बातें नहीं करते थे । हमलोगों का संबंध सिर्फ मेट और सुपरवाइजर से रहता था । मेट और सुपरवाइजर कुलियों को बहुत सताते । हमलोग मेट की नाक के बाल की तारीफ किया करते थे । मेट को कुलियों से तीन रुपए ज्यादा वेतन मिलता था । अपने शीफ्ट के सुपरवाइजर और इंचार्ज की बेगार भी खटनी पड़ती थी । ड्यूटी के वक्त कारखाने से बाहर निकलने की सख्त मनाही थी । शीफ्ट इंचार्ज को जब अपने डेरे पर से खाना मँगवाना होता, तो किसी कुली को 'गेट-पास' देकर अपने बँगले पर भेज देते थे । गेट-पास पर बाहर जाने का कारण भी लिखने का कायदा है । सो, वे कोई-न-कोई कारखाने के काम का कारण लिख मारते थे । कई कुली तो ऐसे थे, जो कार्ड डालकर कारखाने से बाहर हो जाते और साहब के बँगले पर चौका-बर्तन करते थे । मगर, वही कुली जब अपने काम के लिए पंद्रह मिनट की भी छुट्टी माँगता, तो उसे डपट दिया जाता था । सुपरवाइजर मुफ्तसे कभी-कभी टाल पर से अपने कोयले मँगवाया करता था । जो उसकी बात नहीं मानता, उसे वह काम के समय बहुत तंग करता था । उसके ऊपर काम का इतना बोझ लाद देता कि बेचारा कर नहीं पाता था । फिर उसके खिलाफ वह रिपोर्ट कर देता । बेचारा कुली 'सस्पेंड' कर दिया जाता था ।

एक भूल मैंने यहाँ भी कर दी । अपनी हर गरीबी और मजबूरियों के बाद भी न-जाने, क्यों मैं इस तरीके को खत्म करना चाहता था । मुझे बार-बार अपने पहले इन्कलाबी दोस्त रकटू की याद हो आती थी ।

एक रोज की बात है । मैं सुबह ही शीफ्ट इंचार्ज की गाय के लिए बनगाँव भूसा खरीदने चला गया था । तीन कास से दो मन भूसा सिर पर रखकर ले आना पड़ा था । फिर दस बजे काम पर आ जाना पड़ा । यहाँ काम कर ही रहा था कि एकाएक सुपरवाइजर मेरे पास आकर खड़ा हो गया । उसने मुझे पुकारा, 'मगरूआ ?'

"जी, हुजूर ?" मैं बोला ।

"साहब से गेट-पास दिलवा देता हूँ । एक काम करता आ ।"

"क्या काम है ?" मैंने पूछा ।

"है एक काम ।"

"कहिए न ।"

"तू पहले ट्राली छोड़ न । मैं काम बतलाता हूँ ।"

"कहिए ।" मैंने ट्राली छोड़कर कहा ।

"आज मैं चार रुपएवाले क्वार्टर में जा रहा हूँ । मेरे डेरे पर चला जा । वहाँ मेरे भाई होंगे । उनसे कहना, मैं फैक्टरी से आया हूँ । जो भी सामान इस डेरे से उस डेरे में ले जाना हो, ले जाओगे । दो-तीन चारपाई होंगे, एक खाट और तीन-चार बक्से ।" सुपरवाइजर बोला ।

"... ।" उसके इतना कहने पर मैं दो मिनट तक सोचता रहा । काम करते वक्त यही सुपरवाइजर हमलोगों को डाँटा करता था । दौड़-दौड़कर सिल्ली दोने पर भी वह हमलोगों डपटकर कहता, "चलो, चलो । ऐसी देहचोरी करने से काम नहीं होगा । कंपनी से तनखावा लेते हो या बेगार खटते हो ? कंपनी के पैसे कोई हराम के तो नहीं हैं ।" लेकिन, अभी वही सुपरवाइजर तो कंपनी के कुलियों से अपना काम करा

रहा है। तब क्या बतलाऊँ ? मेरे मुँह से निकला, “माफ़ कीजिए, मुझसे यह नहीं होगा।”

“क्यों ?”

“क्यों क्या, ऐसे ही।”

“ऐसे ही क्यों ?”

“आप नहीं समझते ?”

“मैं समझूँगा, तो तुम्हें भी अच्छी तरह समझा दूँगा।” सुपर-वाइजर बोला।

“समझ लूँगा। मगर, मैं इतना बहुत पहले से समझता हूँ कि मेरे काम की तनख्वाह कपनी देती है, आप नहीं देने। आप तो इस जगह पर हैं, जो हमलोगों से बेगार ले रहे हैं। नहीं तो क्या, आप यह गैर-ईमानदारी नहीं करते ?”

“हूँ... ऐसी बात ? मगर आप, तो मुझे नहीं पहचानता ?”

“पहचानता हूँ। हम दोनों कपनी के नौकर हैं। मगर आप पढ़े-लिखे हैं, इसलिए सुपरवाइजर हैं। मैं मूर्ख हूँ, इसलिए कुली हूँ।”

मेरे आस-पास और भी कुली खड़े थे। मेरी बात सुन-सुनकर सब बगलें झोंकने लगे थे। मैंने देखा, अपनी तौहीनी देख, सुपरवाइजर की आँखें गुस्सा से लाल हो आईं। उसके बायें हाथ में कुछ कागजात थे और दाहिना हाथ खाली था। मैंने अच्छी तरह देखा कि गुस्से से उसका दाहिना हाथ थर-थर काँपने लगा था। अपनी बातें कहकर मैं बड़ी बेपरवाही के साथ उछलकर मालगाड़ी के डब्बे पर चढ़ गया और पास खड़े एक कुली से कहा, “पकड़ो, इस सिल्ली को उधर से पकड़ो। ट्राली खाली पड़ी है।”

“तो तो नहीं जाएगा, मंगरुआ ?”

“ना।” मैंने कहा। इस बार मैंने सुपरवाइजर की ओर देखा तक नहीं।

“अच्छा, फिर तुम्हें देख लूँगा।” बोलता हुआ वह पीलिंग मशीन की ओर लौट गया। मैंने आँखें उठाकर देखा, वह गुस्से से भरा चला जा रहा था। उसके कदम बड़ी तेजी के साथ उठते और पूरे वजन के साथ ट्राली की पटरियों के इधर-उधर गिरते थे।

प्लाई-वूड फैक्टरी में, मेरे शिफ्ट में जितने कुली काम करते थे, उनमें से सभी इस बात को जानते थे कि ठेकेदारी में से मेरी नौकरी क्यों छूट गई। यो तो सभी मेरी हिम्मत की तारीफ करते थे, मगर उनमें से खुद किसी में इतना साहस नहीं था कि मेरे कदम से अपने कदम मिला पाते। साहबों के डर से सबों की हिम्मत पस्त थी। वैसे ही जब आज मुझसे गुस्सा होकर सुपरवाइजर चला गया, तो मेरे साथ के सभी कुली मेरा मुँह देखने लगे और सबों ने एक साथ कहा, “अब तुम्हारा दाना-पानी उठा जान पड़ता है।”

“तो क्या?” मैंने पूछा।

“यह भी पूछना है? नौकरी बच जाए, तो खैर समझोगे।”

“बाह चलो, देख लूँगा। पकड़ो, सिल्ली पकड़ो।” मैं बोला।

मेरे इतना कहने पर सबों ने होठ बिचका दिये। मगर, उनकी आँखों का फीका-फीका नीला रंग शायद मेरी तारीफ कर रहा था। फिर माल-गाड़ी के डिब्बे खाली किये जाने लगे, ट्रालियाँ फिर भरी जाने और दौड़ने लगीं। पीलिंग मशीन की गड़गड़ाहट ने हमलोगों की इस आपसी फुसफुसाहट को अपने में छिपा लिया। शाम को, छः बजे जब मैं कारखाने से बाहर होने लगा, तो पता चला कि हमलोगों का ही एक साथी सुपरवाइजर के डेरे पर चला गया था। कारखाने के फाटक से बाहर निकलने पर मैंने उसे बड़ा धिक्कारा, मगर वह अपनी गलती मंजूर करने के बदले मुझसे गुस्सा हो गया। उसने मुझे यह धमकी भी दी कि वह इन बातों को सुपरवाइजर से कह देगा। लेकिन, इसके बदले मैंने उसे कोई भली-बुरी बात नहीं सुनायी। उसकी हिम्मत तो साहबशाही के नीचे दब गई थी।

पावर-हाऊस के ठेकेदार का काम चल रहा था। सिमेण्ट फैक्टरी के फाटक से साढ़े छः का भोगा बजते ही उसके आदमी कारखाने में घुसाये जाते। किसी के गमछे में भूँजा बँधा होता, तो किसी के गमछे में लकठो। कोई फुलाया हुआ * बूट फाँकता हुआ कारखाने के भीतर दौड़ता, तो कोई गुड़ का छोटा-सा ढेला। जब मेरी ड्यूटी दिन की नहीं होती, तो मैं सिमेण्ट फैक्टरी के फाटक पर जाकर उन कुलियों की बुरी हालत और गरीबी का तमाशा देखता था। दोपहर में, कारखाने का भोगा बजने पर, ठेकेदार के कुली कारखाने से बाहर आते। फाटक के बाहर खाने की सस्ती चीजे खोमचे में बिकती होती थीं। कोई घुघनी खरीदता, कोई कचड़ी, कोई तेल की जलेबी, कोई सत्तू, कोई गुड़ की मिठाई और कोई उबाला हुआ सकरकंद खरीदकर गमछे में रख लेता था। ऐसी ही कुछ चीजे खरीदकर वे खा लेते और जब नल के नीचे मुँह लटकाकर पानी पीने लगते, तो बार-बार अपना मुँह हटा लिया करते थे। वे अपना मुँह बार-बार क्यों हटा लेते हैं, यह पूछने की कोई जरूरत नहीं थी। मैं तो खुद वहाँ काम कर चुका था, वहाँ की तकलीफें भेल चुका था और जानता था कि लगातार पाँच घंटे गर्म कोयले की ट्राली ठेलने के बाद, जब वे सस्ती चीजे खाकर, अन्न की कमी को जब पानी से पूरा करना चाहते हैं, तो कलेजे पर बड़े जोरो का धक्का लगता है। लगता है, पेट में जाता हुआ पानी फिर मुँह में लौटा आ रहा है। उस वक्त बड़ी तकलीफ होती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता, जैसे दम घुट जाएगा। इसके बाद दो घंटे का समय बिताने के लिए वे वहीं नल के सामने, थोड़ी दूर पर, अपना गमछा बिछाकर सो रहते थे। खोमचेवाले हड्डा और बिढनी के डर के मारे खोमचे के एक कोने में, मिट्टी के छोटे-से बर्तन में ऐसी लकड़ी जलाये रहते कि उनसे बहुत धुआँ निकलता रहता था। मगर जब कंपनी की लारियाँ, जिनका काम कंपनी के सामान ढोना और सीजन के दिनों

में, देहातों से गन्ना लादकर ले आना था, दौड़ती आती, तो सड़क की धूल पूरे खोमचे पर छा जाती थीं।

चार रोज के बाद मैं 'ए-शीफ्ट' में ड्यूटी करने आया। दो बजे रात से दस बजे दिन तक की ड्यूटी में खाने-पीने के बाद मैं टाट पर तो चला जाता, मगर अच्छी तरह नींद नहीं आती थी। दिल में हमेशा डेढ़ के भोपा बजने का इंतजार काम करता होता। और, डेढ़ का भोपा बजते ही कारखाने की ओर दौड़ना पड़ता था। आज दो बजे फैक्टरी में पहुँचा, तो देखा, सिल्ली से भरे मालगाड़ी के बहुत डिब्बे जाम पड़े थे। आते-आते ही उस काम से भिड़ जाना पड़ा। उस रोज का सुपर-वाइजर पीछे पड़ा हुआ था।

“जल्दी-जल्दी उतारो। चेम्बर खाली पड़ा है। मशीन रुकी हुई है।” सुपरवाइजर एक साँस से कहने लगा।

“उतार ही तो रहा हूँ।” मैं कहता।

“कहने से काम नहीं चलेगा, फुर्ती-फुर्ती हाथ चलाओ।”

“अब कितनी फुर्ती होगी?” मैंने कहा।

“तुम्हें बात ही बनाने तो आता है, तू काम थोड़े करता है?”

“यह काम नहीं है, तो और क्या है?”

“सुपरवाइजर जान-बूझकर मुझसे उलझने की कोशिश कर रहा था। वैसे मेरे साथ पचासों कुला वहीं काम कर रहे थे। मगर, वह बार बार मेरे पास आकर मुझे झटके दे रहा था। थोड़ी देर के बाद उसने कहा, “उतरो, तुम मालगाड़ी पर से उतरो। तुम ट्राली ठेलो। पाँच आदमी के साथ देह चुराना बड़ा आसान होता है।”

“जाता हूँ, सरकार!”

मैं टेरिंग मशीन पर पहुँचा। यहाँ मुझे काम करते पंद्रह-बीस मिनट ही हुए होंगे कि वह सुपरवाइजर दौड़ा हुआ आया। उसने मेरी ओर गुस्सा से देखकर कहा, “तू यहाँ आकर पत्थर क्यों हो गया? पीलिंग

मशीन पर सिल्ली उठाने-चढ़ाने के लिए एक कुली घट रहा है, वहाँ क्यों नहीं चला गया ? काम करना नहीं चाहता, तो बोल ?”

“काम ही करना तो चाहता हूँ, सरकार ।”

“तो फिर, दौड़ वहाँ, जल्द जा ।” वह बोला ।

मैं पीलिंग मशीन की ओर भागा । थोड़ी देर में वह वहाँ भी पहुँचा । उसने ड्राइवर से पूछा, “क्यों भाई, काम हो रहा है न ? अब और आदमी चाहिए ।”

“नहीं, अब ठीक है ।” ड्राइवर बोला, जो पीलिंग मशीन चला रहा था । सुपरवाइजर ने मुझे देखते हुए कहा, “अब तू यहाँ मत रह । तू बें साव में दौड़ जा । वहाँ क्रिशिंग मशीन के नीचे बहुत कुनाई इकट्ठी हो गई है । टोकरी से उठा-उठाकर वह जगह साफ कर । तू एकदम मरा हुआ कुली है । अपने मन से काम करना जानता ही नहीं । सुना है या नहीं, कंपनी में जितने हरामखोर कुली हैं, चुन-चुनकर उनकी छँटनी की जानेवाली है ?”

“जो हरामखोर होंगे, वही तो ?”

“और तू अपने को क्या समझता है ?” सुपरवाइजर ने पूछा । सचमुच उसका यह सवाल मुझे बहुत बुरा लगा । मैंने कहा, “खट कर खानेवाले कभी हराम का नहीं खाते । जरा जबान सभालकर बोलिए, हुजूर ।”

“तू मुझे बोलना सिखलाता है ?”

“आप बहुत बेकार बातें बोलते हैं ? मैं काम नहीं कर रहा हूँ, तो क्या बैठा हूँ ?”

“तू ‘बें साव’ में क्यों नहीं जाता ?”

“जाऊँगा, आपने कहा तो जाऊँगा क्यों नहीं । मगर एक मगरूआ दस मंगरूआ तो नहीं हो जाएगा ।” मैंने कहा ।

† प्लाई वूड फैक्टरी का वह विभाग, जहाँ मशीनों के जरिए लकड़ी की चीर-फाड़ होती है ।

“लगता है, अब तेरे लिए मुझे रिपोर्ट करनी होगी ।”

“वह तो आपके हाथ की बात है ।”

“अच्छा . ।” कहकर सुपरवाइजर चेम्बर की ओर लौट गया । मैं वहाँ से दौड़ा-दौड़ा ‘बैन साव’ पहुँचा ।

दूसरे रोज दस बजे दिन को जब मैं सुपरवाइजर के पास अपना कार्ड माँगने गया, तो उसने कहा, “तुम्हारा कार्ड मेरे पास नहीं है ।”

“कहाँ है ?” मैंने पूछा ।

“साहब के पास ।”

“साहब से कैसे माँगूँ ?”

“मुँह से माँगो । मुँह से बहस कैसे करते हो ?”

‘शीफ्ट-इंचार्ज’ एक पजाबी साहब थे । मैं उनके पास आकर खड़ा हो गया । दस का भौंपा बज चुका था । साहब भी जाने की तैयारी कर रहे थे । मुझे सामने खड़ा देखकर पूछा, “क्या है ?”

“सुपरवाइजर साहब ने कहा है, अपना कार्ड साहब से माँग लो ।”

“हूँ...तेरा ही नाम मंगरू है ?”

“जी ।”

“तुमने काम करते वक्त सुपरवाइजर से झगड़ा किया है ?”

“जी नहीं हुआ, वे तो . ।”

“चुप रहो । मैं बहस सुनना नहीं चाहता । यह लो, अपना कार्ड । दस रोज काम पर मत आना । दस रोज के लिए सस्पेंड हुए ।”

“सरकार, वे तो खुद मुझे हरामखोर... ।”

“बस, चुप रहो । सुपरवाइजर झूठ बोलेंगा... । लो कार्ड, जाओ ।”

“सरकार, मैं तो गरीब आदमी हूँ । दस रोज कहाँ से खार्ज... ?” मैंने कहा ।

“इसका जवाब मेरे पास नहीं है ।”

“हुजूर... ।”

“फिर बकबक करता है, जाता है या नहीं . ?”

मैं अपना कार्ड लेकर वापस चला आया। मेरे कार्ड पर साहब ने लाल स्याही से कुछ लिख दिया था। बीलट भाई की ब्यूटी छः बजे शाम से थी। दीपन को आज 'रेस्ट' पड़ा था। भोपड़ी में लौटने पर दोनो मिले। यहाँ आने पर जब मैंने अपने ससपेण्ड होने की बात बतलायी, तो दोनो ने अफसोस तो जाहिर किया, मगर साथ-साथ मेरी आदत पर रज भी हुए।

“अब समझो, तुम्हारी नौकरी भी खतरे में है।”

“सुपरवाइजर से लड़कर कहाँ-कहाँ बचोगे ?”

“जल में रहकर मगर से बैर ?”

“जिसकी मातहत में काम करते हो, उसी की बात का जवाब देते हो।”

“वह तो खैर मनाओ कि ससपेण्ड होकर ही रह गए।”

“देखो, अब आगे सम्हलकर रहना बाबू।”

“जब आदमी का दाना-पानी उठता है, तो अकल पर यों ही पर्दा पड़ जाता है।”

“मौके पर कोई दस पैसे नहीं देता, दस दिन की मजदूरी कौन देगा।”

“अब तुमलोग जो कहो, मगर जो होना था सो हो गया....।”
उनकी बातें सुनकर मैंने कहा।

उस रोज दिन-भर, मैं बड़ा उदास रहा था। छः बजे शाम को जब बीलट भाई काम पर चले गए, तो मैंने दीपन से पूछा, “डेर पर ही रहोगे या कहीं चलोगे घूमने ?”

“कहाँ जाऊँ, चलो बनगाँव से टहल आएँ।” दीपन बोला।

“पास में कुछ नगदनरायन है ?” मैंने पूछा।

“क्या काम है ?”

“है तो बोलो।”

“है तो।”

“आज मुझे डेढ़ रुपए दो । पीछे ले लोगे ।”

मेरे इस तरह कहने पर दीपन ने मुझे डेढ़ रुपए दे दिये । इसके बाद पैट और कुरता पहनकर, न-जाने वह कहाँ टहलने चला गया । इसके चले जाने के बाद मैंने सोपड़ी की टट्टी भिड़का दी और रेलवे-पुल पारकर स्टेशन के दक्खिन ओर चला आया । यहाँ से बनगाँव जाने के लिए कई रास्ते थे । आज के पहले भी वीलट भाई के साथ मैं बनगाँव टहल चुका था । लोगों ने बतलाया था कि पहले बनगाँव बिलकुल देहात था । कारखाने की वजह से कुछ-कुछ कस्बे की तरह हो गया है । बनगाँव में तब भी सैकड़ों पचानवे घर मिट्टी के थे । बड़ी लाईन के स्टेशन के आस-पास चूना तैयार करने के कई भट्टे थे । उनसे बराबर उजला-उजला धुआँ निकला करता था । स्टेशन के इस पार से बनगाँव जाने के लिए तीन-चार रास्ते थे । एक सड़क सीधी पूरब की ओर जाती थी, जो पक्की तो थी, मगर बेमरम्मत । रेलवे लाइन की बगल में, जो लंबा मैदान था, उसमें हिंदुस्तानी फौज की छोटी छोटी बैरक थी । जब कभी मैं बनगाँव से किरासन तेल लेकर लौटता, तो इसी रास्ते से आता, तब उनलोगों की फ्रेड भी देखता था । एक और सड़क थी, जो स्टेशन से शुरू होकर, थोड़ी दूर पूरब तक जाकर ही दक्खिन की ओर मुड़ जाती । दक्खिन मुड़ते ही थोड़ी दूर आगे जाकर एक भट्टो मिलती थी । तब यहाँ पचास और सत्तर नंबर की देशी शराब बिकती थी । शाम को पीनेवालों की भीड़ देखते ही बनती थी और इसी सड़क के दोनों ओर कुछ ऐसे मकान थे, जिनमें रंडियाँ रहती थीं । शाम के वक्त अच्छे-अच्छे कपड़े और जेवर पहनकर ये अपने दरवाजों पर बैठी, ग्राहकों से बातें करती होती । उनकी आँखों में कहीं भी शर्म का नामोनिशान नहीं रहता था । शराबी उनके दरवाजे पर खड़े होकर बड़ी बेहयाई के साथ बातें करते । जब कोई मर्द उनके घर से निकलकर बाहर जाने लगता, तो सिर्फ उसी ओर सिर गड़ाये देखता, जिधर उसे जाना होता था । रंडियों के दरवाजों के आस-पास झुंगी पहने और शराब की बोतल लिये कुछ गुंडे टहला करते थे ।

लोगों का कहना था कि वे लोग रडियो के आदमी हैं। मैंने यह भी सुना था कि इनलोगों के यहाँ गाने-बजाने का कोई इंतजाम नहीं है।

आज स्टेशन के इस पार आकर मैं उसी रास्ते में घुसा, जहाँ थोड़ी दूर आगे चलकर भट्टी थी। सूरज डूब चुका था। कुछ-कुछ अँधेरा भी हो गया था। आसमान में कहीं-कहीं तारे भी दीख रहे थे। मैं आगे बढ़ा। जहाँ से यह सड़क शुरू होती थी, वहाँ पान-बीड़ी सिगरेट की दूकानें थी। दो-एक ऐसी भी दूकानें थीं, जिनमें गंजी, गमछे, बिस्कुट, लेमनचूस वगैरह बिकते थे। मैंने उन दूकानों की ओर सरसरी निगाह से देखा। यहाँ से आगे बढ़ते ही आस-पास के मकान के दरवाजों पर रडियाँ बैठी हुईं नजर आईं। मैं धीरे-धीरे भट्टी में पहुँच गया। यहाँ बड़ी भीड़ थी। जिस खिड़की से शराब के लिए लोग बोतलें बढ़ा और ले रहे थे, उस पर बिल्कुल रेल-पेल मची हुई थी। शोर मच रहा था—“पहले मुझे दो।” सामने एक ईंट का ओसारा था, जिसके भीतर खोमचे में घुघनी, फुलौड़ी, तेल में तली छोटी-छोटी आर्टें की लिट्रियाँ और पकी हुई मछली बिक रही थी। उन खोमचों से अजीब किस्म की गंध आ रही थी। खोमचे के काठ में किरासन तेल से जलनेवाली बत्ती लगी थी, जिनसे बहुत ही काला-काला धुआँ निकल रहा था। खोमचे के आस-पास पीनेवाले बैठे थे। पीनेवालों के आगे एक-एक बोतल थी और मिट्टी के चुकर। पूरब की ओर, जिस छोटे-से मकान की खिड़की के भीतर से शराब बिक रही थी, दो-चार शराबी पीकर गिरे हुए थे और आपस में गाली-गलौज कर रहे थे। सब एक दूसरे को अपनी-अपनी बातें समझा रहे थे। हाथ में एक रुपए का नोट और एक अट्टनी दबाकर मैं भी खिड़की की भीड़ में शामिल हो गया। इस भीड़ में बदन पर इतने धक्के लगे कि जिसका कोई हिसाब वहीं, कौन धक्के दे रहा है और क्यों धक्के दे रहा है, यह सवाल करते ही मार खा जाने की उमीद बनी थी। इसलिए एक रुपए छः आने में एक बोतल लेकर मैं किसी तरह बाहर निकल आया। दो

आने की मछली खरीदी। मछलीवाले ने एक छोटी-सी ढकनी में मछली दी और पूछा, “चुकरी भी लोगे, पियोगे कैसे।”

“हाँ, हाँ, चुकरी भी दो।”

अपने आगे मछली और शराब रखकर मैं चुपचाप बैठ गया। मेरा मन तो आज उदास था ही, मैं इस बात को भूल जाना चाहता था कि वाजिब बात बोलने के लिए भी मैं ससपेड किया गया हूँ। वाजिब बातें बोलने की आदत इसलिए डालता जा रहा था कि गाँव पर यह देखने का बहुत मौका मिला, खुशामदी बनने से कुछ फायदा नहीं होता। गर्दन बड़ों के पैरो के नीचे ही आती है। ठाकुर के तलवे सहलाते-सहलाते दिमाग में भूसा भर चुका था। अब तो यही तबियत होती थी कि किसी तरह वह भूसा बाहर निकल जाए। थोड़ी-सी मछली खाकर जब मैंने एक चुकरी शराब पी ली, तो मुझे रकटू की याद हो आयी। हिम्मत ही से सही, अगर रकटू होता, तो इस हालत में मेरा साथ जरूर देता, मेरे साहस की तारीफ करता।

याद नहीं है, शराब पीकर मैं कब गिरता-पड़ता मोपड़ी में पहुँचा। दस रोज तो किसी तरह गुजारना ही था। उसके बाद का भी नहीं मालूम था कि अब क्या होगा। ग्यारहवें दिन मैं काम पर पहुँचा। मेरे कार्ड पर फिर हाजिरी बनी और मैं काम करने लगा। वह सुपरवाइजर मेरे पीछे पड़ा हुआ था। कुछ खुद तग करता, कुछ मेट से तग करवाता था। मेरी नाक में दम हो रहा था। किसी तरह एक महीना और बीता। घर पर माँ के नाम मैंने पंद्रह रुपए भेज दिये थे।

एक रोज सचमुच कारखाने में सुना कि कुछ कुलियों की बदली होने वाली है। † एसिड प्लांट से कुलियों की माँग आई थी। एसिड प्लांट के काम की कड़ाई के बारे में मैं सपसी मिस्त्री से सुन चुका था। उनकी बदली एक महीना पहले वहीं हो चुकी थी। बीलट भाई भी बंबू क्रशर

† तैजाब बनाने का कारखाना।

से 'लेदर-बोर्ड' में बदल गए थे। लेदर-बोर्ड पेपर फैक्टरी का ही एक हिस्सा होता है। वहाँ पर कागज बनाने के लिए फटे-चिटे चिथड़े, पुराने रद्दी कागज, पानी और मशीन के जरिए गलाये जाते हैं। कुलियों को पानी में भीग-भीगकर काम करना होता है।

इसके चार ही रोज बाद मैंने सुना कि मेरी भी बदली हो गई। मेरे साथ सात-आठ और कुलियों की बदली हुई थी। आज की ड्यूटी खत्म होने के बाद कल मेरा 'रेस्ट' पड़नेवाला था। छुट्टी के वक्त मेरा कार्ड मुझे लौटाते हुए उसी सुपरवाइजर ने कहा, "कल तो तुम्हारा 'रेस्ट' है। परसों 'बी-शीफ्ट' में यहाँ मत आना।"

"कहाँ जाऊँगा?"

"एसिड स्लाट।"

"तिजाब फैक्टरी?"

"हाँ, कालापानी।"

"अच्छा।"

"तुम्हारे पाँच-सात दोस्त भी तो जा रहे हैं।" सुपरवाइजर बोला।

"जी।"

"जाओ, वहीं आनंद करो।"

"जी।" मेरे मुँह से फिर निकला।

वैसे मैं दो-एक बार एसिड स्लाट देख चुका था। मगर वहाँ के काम के बारे में मेरी कोई जानकारी नहीं थी। बीलट माई ने बतलाया कि वहाँ का काम बहुत बड़ा और कड़ा है। लेकिन, मैंने मन को सन्न दिलाया, धीरज बँधाया। आखिर एसिड स्लाट चल रहा है या नहीं, उसमें हड्डी, मांस और कुल खूनवाले कुली ही तो काम करते होंगे? एसिड स्लाट लोहे के मजदूर के इंतजार में बंद तो नहीं बैठा है? काम तो करूँगा ही।

रोज की तरह आज भी साढ़े नौ का भोपा बज चुका था। कारखाने के 'मेन-गेट' पर आज कुछ दूसरी किस्म की भीड़ थी। मैं कारखाने के भीतर घुसना चाहता था, मगर भीड़ देखकर जरा रुक गया। कारखाने के सामने की बीच सड़क पर एक तीस-पैंतीस साल का आदमी कॉग्रेसी भंडा हाथ में लिये खड़ा था। वह खादी की धोती, खादी का कुरता और गाँधी टोपी पहने था। उसके बाये हाथ की कलाई में घड़ी बँधी थी। उसके आस-पास वैसे ही कपड़े पहने तीन-चार आदमी खड़े थे। उसमें से एक के पास * भोंपू था। जो आदमी हाथ में भंडा लिये हुए था, वह मजदूरों की ओर देख-देखकर बोल रहा था। कभी वह मुँह में भोंपू लगाकर और कभी ऐसे ही बोलता था—

“...रतननगर के मजदूरों। अब वह जमाना जा रहा है, जब हमलोग पूँजीपतियों के जूते के नीचे की धूल बने हुए हैं। अब आपके लिए भी वह समय आ गया है, जब आप अपनी ताकत और एकता के बल पर देश के जमींदार और पूँजीपतियों को यह बतला दें कि आपकी कड़ी मिहनत और पसीने की कमाई से ही वे लोग आराम की जिंदगी बीता रहे हैं। मैं आपलोगों को यह बतलाने।”

पूँजीवाद, नाश हो!

मजरदूर-राज, कायम हो!!

कमानेवाला, खाएगा !!

बीच में उस आदमी के आस-पास खड़े उसके दोस्त नारे भी लगा रहे थे । फिर वह आदमी अपनी बातें दुहराने लगता था—

“मैं आपलोगों को यह बतलाने आया हूँ कि देश की दौलत और देश की सामग्री में आपका कितना बड़ा हाथ और कितना हिस्सा है । मैं तो समझता हूँ कि देश के पैसे-पैसे पर आपका अपना हक है ; क्योंकि वे पैसे आपके पैदा किये हुए हैं ।” मैं अहमदाबाद से अपना घर-द्वार छोड़कर आपलोगों के बीच सिर्फ आपकी सेवा करने के लिए आया हूँ । अब आपका यह काम है कि मुझे अपनी सेवा करने का अवसर दे । और, मैं आपकी सेवा तभी कर सकूँगा, जब आप अपने में एकता कायम कर मेरे बतलाये हुए रास्ते पर चलें । हमारी यही इच्छा है कि यहाँ मजदूर-संघ कायम किया जाए । मजदूर-संघ कायम करने से यह फायदा होगा कि हमलोग एक जगह एक समय पर मिलकर अपनी तकलीफों के बारे में विचार कर सकेंगे और अपनी उचित माँगों को पूँजीपति मिल-मालिक के सामने रख सकेंगे । और, यह सब तभी हो सकेगा, जब इस तिरंगे झंडे के नीचे खड़े होकर आप मजदूर-एकता कायम करने की कसम खायेंगे ।”

महात्मा गाँधी की, जय !

तिरंगे झंडे की, जय !!

मजदूर-एकता की, जय !!!

“ ..आपकी सुविधा के लिए रतननगर की चहारदीवारी के उस पार, दक्खिन ओर हमने एक किराये का मकान ले लिया है । वहाँ मजदूर-संघ का दफ्तर रहेगा । मेरे साथ, आपके जो तीन-चार सेवक आए हैं, वे भी वहीं रहेंगे । आपलोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग अब तक अपने को कुर्ए का मेढ़क समझते आए हैं, मगर अब ऐसा मत समझिए । आपलोगों की भलाई के लिए अगर मुझे

फाँसी भी पड़ना पड़ा, तो मैं खुशी-खुशी फाँसी का फंदा अपने गले में डाल लूँगा। आज मैं रतननगर क्लब के मैदान में आपलोगों के लिए ही एक सभा कर रहा हूँ। यह आपलोगों की सभा है। अतः, आप मजदूर भाइयों से प्रार्थना है कि आप लोग ठीक साढ़े पाँच बजे रतननगर क्लब के मैदान में आइए। ठीक छः बजते-बजते सभा की कार्रवाई शुरू हो जायगी। मैं तो समझता हूँ।

मजदूर-एकता, कायम हो !

मजदूर-संघ, जिन्दाबाद !!

महात्मा गाँधी की, जय !!!

‘...मैं तो समझता हूँ कि पूँजीपतियों के अत्याचार के बोझ से आपकी गर्दन टूट रही होगी। लेकिन क्या, आपने कभी सोचा है कि आप इस अत्याचार से कैसे छुटकारा पा सकते हैं? एक ही दवा है, इस मर्ज की। और वह दवा है, आप में आपसी एकता। जब तक आपलोग आपस में एकता नहीं कायम करेंगे, पूँजीपति राज का अन्त नहीं होगा। आपको मालूम होना चाहिए कि पचासों वर्ष से हमलोग जिस आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, वह आजादी हमलोगों को हासिल होने जा रही है। कांग्रेस ने अंगरेजों से इसलिए लड़ाई ली कि उसमें एकता थी, और उसे महात्मा गाँधी की तरह नेता मिला है। यह जो झंडा आप मेरे हाथ में देख रहे हैं, वह कांग्रेस का झंडा है—बापू का प्रेम और अहिंसा का हथियार। बापू चाहते हैं कि देश में आदमी के जीने-खाने और नौकरी का ऐसा प्रबंध हो जाए कि कोई भी धनी आदमी गरीब आदमी को खा न सके। तो याद रखिए, हमें महात्मा गाँधी के आदर्शों पर ही चलकर अपनी एकता को मजबूत बनाना है ००१”

रतननगर के मजदूरों, एक हो !

नारे लग रहे थे और वह आदमी गल्ला फाड़-फाड़कर मजदूरी को अपनी बाते समझा रहा था। मगर, मजदूर उसकी ओर सिर्फ अचरज भरी आँखों से देख रहे थे। किसी की समझ में कोई बात अच्छी तरह नहीं बैठ पा रही थी। लगता था, जैसे वह आदमी एक तमाशा है। मुझे तो ड्यूटी पर जाना था। इसलिए मुझे घबड़ाहट थी। दिल तो चाहता था कि सारी बातें सुनूँ, समझूँ और इस बीच शामिल भी होऊँ। मगर, यह सोचकर सब्र कर लिया कि सभा तो साढ़े-पाँच बजे होगी। छः बजे कारखाने के बाहर निकलते ही रतननगर क्लब के मैदान में पहुँच जाऊँगा। फिर भी अपनी दिलजमई के लिए मैं उस आदमी के सामने जाकर, बिल्कुल करीब में खड़ा हो गया।

“कहाँ सभा होगी ? मैंने पूछा।

“रतननगर क्लब के मैदान में।”

“कब ?”

“साढ़े पाँच बजे। जितनी जल्द लोग जुट जाएँगे, उतनी ही जल्द सभा का काम शुरू हो जाएगा।”

“अच्छा, मैं आऊँगा।” मैं बोला।

“जरूर आना। अपने साथ काम करनेवाले दोस्तों को भी ले आओगे।” उधर से कहा गया।

“ले आऊँगा।” मैं बोला।

तभी बड़े जोरो से दस का भोपा बजा। मैं दौड़ा-दौड़ा कारखाने के फाटक में घुस गया। बगल में रखे हुए काठ के बक्स में अपना कार्ड गिराकर मैं एसिड ब्लाट की ओर भागा।

यहाँ काम करते हुए मुझे महीने रोज से ऊपर हो गया था। रूपसी मिस्त्री मेरे ही शिफ्ट में काम करते थे। स्वभाव के बड़े अच्छे थे। बड़े मिलनसार, मुझसे जी-भरकर बातें करते। अब तक मेरी जिदगी में जो कुछ गुजरा था, गाँव में रहते हुए मैंने अपनी आँखों से जो कुछ

देखा था, सब मक्कसी मिस्त्री को बतला चुका था। मेरे दुःख-दर्द को सुनकर वे बहुत ही अफसोस जाहिर करते और मेरा मुँह देखने लगते थे। ऐसा लगता था, जैसे मेरी बातें सुनने में उन्हें खुद भी कुछ मिलता है। नास्ता करने के लिए कारखाने में जब कभी कुछ ले आते, तो मुझे भी देते थे।

एसिड झाट का काम सचमुच कड़ा और खतरवाला था। आठ घंटे तक गंधक और तूतिये की जहरीली हवा की साँस लेनी पड़ती थी। इस कारखाने में काम करनेवाले किसी भी मजदूर के चेहरे पर रौनक नहीं थी। सबका खून चूसा हुआ जान पड़ता था। चौबीस घंटे तेजाब का गंध और भट्टी के जलनेवाले गंधक का धुआँ एसिड झाट के भीतर और आस-पास फैलता रहता था। गंधक का धुआँ पीला-पीला होता। गंध अजीब किस्म की होती थी। बतलाना कठिन है। नाक में समाती, तो माथा फटने लगता था। व्यायलर और तेजाब की टकी के पास जो मजदूर काम करते होते, उनके हाथ-पैर बराबर जलते रहते थे। तेजाब के छींटे कपड़ों में छेद कर देते थे। इसके लिए कपनी हमलोगों को तीन तरह की चीजे देती थी। स्वास्थ्य खराब न होने पाए, इसलिए महीने में एक सेर गुड़ मिलता था। बदन पर तेजाब के छींटे पड़ते थे, इसके लिए महीने में एक सेर सरसों का तेल मिलता था और कपड़े साफ करने के लिए महीने में एक पाव सोडा दिया जाता था। पीछे जब भेजिटेबुल घी झांट खुला, तब मजदूरों को दो बड़ी साबुन भी दिया जाने लगा, क्योंकि भेजिटेबुल घी झांट में साबुन भी बनता था। सिमेण्ट फैक्टरी के मजदूरों को शायद महीने में सिर्फ एक पाव सोडा ही मिलता था। एसिड झाट में काम करनेवाले मिस्त्रियों को साल में दो बार एक पैन्ट और एक कुरते का कपड़ा दिया जाता। ये दो चीजे कुलियों को नहीं दी जाती थीं। मक्कसी मिस्त्री अब खाकी पैन्ट और कुरता पहनकर काम पर आते थे।

व्यायलर में गंधक डालने के लिए एक-एक फीट लबी लोहे की मजबूत ट्रालियाँ होती थी। उनके नीचे तीन-तीन इंच के चार पहिये लगे होते थे। उन्हीं ट्रालियों में गंधक भरकर मुझे व्यायलर के भीतर धकेलना पड़ता। एसिड झांट में गंधक और तूतिए का पहाड़ बराबर खड़ा रहता था। काम करते-करते कुलियो के हाथ-पैर अजीब तरह से फट गए थे। उनसे कभी-कभी खून निकल आता था। व्यायलर में गंधक धकेलते समय बड़ा ही कड़वा और पीला-पीला धुआँ भीतर से बाहर की ओर आता और नाक-मुँह में समाने लगता था। ऐसे वक्त में जब कभी मपसी मिस्त्री वहाँ कोई पुर्जा मरम्मत करते होते और धुआँ लगने पर जब मैं घबड़ाकर, अपना मुँह पीछे की ओर फेरने लगता, तो वे हँस देते।

“हँसते क्यों हो, मपसी भैया ?” मैं पूछता।

“मुँह क्यों घुमाते हो ?” वे पूछते।

“धुआँ नाक में समाता है।”

“तुम बड़े बुद्धू हो।”

“सो क्या ?” मैं पूछता।

“इसके लिए तो कंपनी गुड़ और तेल देती ही है। गुड़ खाकर देह बनाओ और काम पर आओ, तो नाक में सरसों का तेल डालकर आया करो।”

“अच्छा, तो अब समझा।” मैं बोलता था।

आज मेरे काम पर पहुँच जाने के कुछ पहले मपसी भाई आ गए थे। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि ‘एन्-शीफ्ट’ का मिस्त्री उन्हें चाज दे रहा था। जाते-जाते ही मैंने अपना अँगोछा एक पाये पर रख दिया और खइनी निकालकर मलने लगा। इसके पहले सुपरवाइजर की टेबुल की ओर देख लिया। वह नहीं था। वह होता, तो खइनी मलने का मौका ही नहीं देता। इधर तुरत ही दौड़ा आता। खइनी मलता हुआ मैं कभी व्यायलर और कभी गंधक की पहाड़ी की ओर देख लेता था। तभी मेरे कानों में आवाज सुनायी पड़ी, “अरे, जरा इधर भी मंगरू।”

“अच्छा . . ।” मैंने उधर देखकर कहा । रूपसी भाई ने खइनी के लिए इशारा किया था ।

“आज पीछे क्यों रह गए ?” रूपसी भाई ने पूछा ।

“देखा नहीं, गेट पर कैसी भीड़ थी ?”

“भीड़ ,”

“हाँ, वही आदमी जो बोल रहा था । शाम को तो रतननगर क्लब के मैदान में बड़ी भारी सभा होगी । बातचीत से गाँधीजी के दल का आदमी मालूम होता है । अब सम्म लो रूपसी भाई कि हमलोगों का सब दुख-दरिदर भाग गया ।”

“तो कैसे, रे ?”

“अरे, अब तो मजदूर-संघ बनेगा । हमलोग अपने हक के लिए लड़ेंगे । मिल-मालिक भी समझेगा कि रतननगर के मजदूर भी कुछ हैं ।”

“देख लेना, कुछ नहीं होगा ।” रूपसी भाई बोले ।

“तुम कैसे जान गए कि कुछ नहीं होगा ? अजीब आदमी हो तुम, बोलिस-सासतर जानते हो क्या ? गाँधी बाबा के दल को भी दिल्लगी सम्म करना सरासर बेवकूफी है । सुना है, गाँधी बाबा अंग्रेजों को यहाँ से भगानेवाले हैं ।” मेरे मुँह से निकला ।

“तो तो तब से सुन रहा हूँ, जब से होश हुआ ।”

“अरे, समय तो लग ही जाता है भाई । मगर जाने दो, हमलोगों को अंग्रेजों से क्या लेना-देना है ? हमलोगों को तो बस मिल-मालिक से लड़ना है, सो हमारी मदद के लिए आज देख ही लिया, गाँधी बाबा का दल आ पहुँचा । अब देखना, तनखाह भी बढ़ेगी, छुट्टी भी मिलेगी और साहब लोगों का सब रोब-दाब भी जाता रहेगा । मगर सभा में ही नहीं जुटोगे, तो फिर कुछ नहीं होगा ।” मैंने कहा ।

“मैं नहीं चाहता कि मेरा दाना-पानी रतननगर से उठ जाए ।”

“मतलब ?”

“जो सभा में जाएगा, वह अफसरों की आँख पर चढ़ जाएगा ।”

“तब अफसर क्या करेगे ?”

“कोई-न-कोई नुस्ख लगाकर निकाल देगे ।”

“लेकिन, इसीलिए तो मजदूर-संघ बनाया जाएगा । फिर तो सब काम इन्साफ से होगा ।”

“देखो, वह सब तो सामने ही आएगा ।”

“सभा में नहीं चलोगे ?”

“तुम चलोगे ?”

“मैं तो चलूँगा ।”

“चलना, देखा जाएगा । अफसर लोग रहेंगे, तो धीरे-से हट जाऊँगा ।”

“अच्छा, मगर चलोगे जरूर ।”

“चलूँगा ।”

मैंने इस बीच खड़नी मल ली । रूपसी भाई की बात मेरे दिल में गड़ तो रही थी, मगर मैं भीतर-ही-भीतर इस बात के लिए तनिक भी राजी न हुआ कि सभा में नहीं जाना चाहिए । जो हमलोगों के लिए फाँसी पड़ने पड़ने तक को तैयार होकर आया था, उसके बुलाने पर नहीं जाना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता था । दस बजे से छः बजे तक की ड्यूटी के बीच मैंने कई बार रूपसी भाई से पूछा, “चलोगे न ?”

“छः बजने भी तो दो ।”

“हाँ, वही तो ।”

“चलूँगा, चलूँगा ।”

मेरा मन गुदगुदा रहा था । पेशाब करने के बहाने, पैखाना जाने के बहाने और तेजाब की आखरी टंकी पर काम करनेवाले मिस्त्री को हथौड़ी दे आने के बहाने मैं बार-बार घड़ी के काँटे देख आ रहा था । ऐसा लगता था, जैसे आज साढ़े पाँच बजेगा ही नहीं । कभी सोचता कि अगर रूपसी मिस्त्री की तरह रतननगर के सभी मजदूर डरकर सभा में न जाँय, तब तो मजदूर-संघ कायम हुआ, कुछ बाकी है । अगर

किसी तरह संघ कायम हो जाए, तो साहब और सुपरवाइजर लोगो की बादशाही भी खत्म हो जाएगी। सबको आठ घंटे काम करना होगा। ड्यूटी के भीतर जैसे मजदूरों को दस मिनट के लिए छुट्टी नहीं मिलती, वैसे साहब और सुपरवाइजर भी ड्यूटी के वक्त डेरे पर नहीं जा सकेंगे। फिर उनकी गाली और धौस भी नहीं बर्दाश्त करनी होगी।

सवा दस बजे से लेकर साढ़े पाँच बजे तक मैं व्यायलर की भट्टी में गंधक भोंकता रहा। गंधक का पीला और कड़ुआ धुआँ पीता रहा। लेकिन, जब बड़े जोरों से साढ़े पाँच का भोपा बज गया, तो वहाँ से मन बिल्कुल उचटने लगा। आँखों के सामने गंधक की ऊँचाई और तेजाब की टंकी थी, और मन के सामने रतननगर क्लब का वही मैदान था, जहाँ आज सभा होनेवाली थी। मैंने गर्दन ऊँची करके रुपसी भाई को पुकारा और कहा, “अब तो साढ़े पाँच का भोपा भी बज गया।”

“कार्ड मिला ?”

“नहीं, अभी नहीं।”

“तब कैसे चलोगे ?”

लेकिन, छः का भोपा बजते-बजते कार्ड भी मिल गया। सभा में रुपसी भाई चलना नहीं चाहते थे, मगर कारखाने के गेट से बाहर आते ही मैंने उनका हाथ पकड़कर कहा, “चलो, चलो। अब सीधे वहाँ चलो।”

वहाँ जाने की तबियत न रहने पर भी वे मेरे साथ रतननगर के मैदान में आ गए। बहुत थोड़े मजदूर जुटे हुए थे। वहाँ आकर मैंने देखा, बीच मैदान में दो चारपाइयाँ बिछी थीं। चारपाई पर उजले रंग की चादर बिछी थी, जिस पर गाँधी टोपी पहने अहमदाबाद से आए हुए नेता भी बैठे थे। उनके पीछे, चारपाई से सटाकर एक बहुत बड़ा तिरंगा झंडा गड़ा हुआ था। रुपसी भाई के साथ चलकर मैं भी एक ओर बैठ रहा। थोड़ी देर में सभा की कार्यवाही शुरू हो गई। नेताजी ज्योंही उठकर बोलने के लिए तैयार हुए कि चारपाई पर बैठे उनके साथियो

ने तालियाँ बजायीं और सामने बैठे हुए मजदूरों को भी ताली बजाने का इशारा किया—

तड् तड् तड् तड् तड् तड्

मजदूर बहुत कम जुटे हुए थे। इसलिए ताली की गड़गड़ाहट अधिक देर तक नहीं होती रही। रूपसी भाई ने बड़े खयाल से अपने चारों ओर देख लिया। कनखियों से मैंने भी देखा था, एक भी अफसर नहीं आया था। सभा के नेता ने पहले मजदूरों को बड़े ध्यान से देखा। फिर उनके बाये हाथ में जो रुमाल था, उससे अपना ललाट पोंछा। इसके बाद रुमाल को बाये हाथ से दाये हाथ में लेकर मजदूरों से कहा, बोलिए एक बार, महात्मा गाँधी की जय !”

“महात्मा गाँधी की जय !”

“रतननगर के प्यारे मजदूर साथियो ! सघ का प्रचार और संघ के कामों की जानकारी न रहने पर भी, थोड़ी-बहुत संख्या में, अपने प्यारे-प्यारे कदमों को तकलीफ देकर आप जो इस सभा में आए हैं, यह मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता की बात है। पौधा निकलने और उसमें फल लगने के पहले खेत में एक बीज ही बोया जाता है। फिर उसे हवा और पानी का भोजन दे-देकर पालना होता है। थोड़ी-ही संख्या में सही, मगर आए तो। इससे पता चलता है कि आपको अपनी तकलीफें दूर करने की जरूरत है। आप मजदूर-संघ कायम करना चाहते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि देश की आमदनी का सैकड़े अस्सी भाग इन पूँजीपतियों, मिल-मालिकों की तिजोरी में बंद हो जाता है। गाँवों में जमींदार राज कर रहे हैं और शहरों में—ये उद्योगपति। गाँवों में जमींदार आपको चूस रहे हैं और शहरों में ये उद्योगपति। मैं जब अहमदाबाद में था, तो मेरे ये मित्र, जो आपके सामने यहाँ बैठे हैं, यहाँ आकर आपकी सारी तकलीफों का पता लगा गए। सुनकर मेरी आँखों में आँसू भर आए। और, तभी मैंने प्रतिज्ञा की कि रतननगर के मजदूरों

की तकलीफ को मैं अपनी तकलीफ समझूँगा और रतननगर के मजदूरों को जब चैन मिलने लगेगा, तभी मैं भी चैन लूँगा " ।

तब् तब् तब् तब् तब् तब्

"...तो मैं आपलोगों से यह पूछता हूँ कि आपलोगों की जो तनखाहे नहीं बढ़ रही हैं, आपको कारखाने के नफे में हिस्सा जो नहीं मिल रहा है, आपकी छुट्टियाँ जो नहीं बढ़ायी जा रही हैं और आप पर जो आपके अफसरों की तानाशाही शान बनी हुई है, सो क्यों बनी हुई है ? आप में से कोई इसका जवाब दे सकता है ? दीजिए दीजिए.... कोई भी आदमी जवाब दे....।"

सभी मजदूर चुप ।

"....मैं समझ गया । आप नहीं जानते । आपको कभी इन बातों पर सोचने और समझने का मौका नहीं मिला । आप कोल्हू के बैलों की तरह मिल-मालिकों के भय का परदा आँखों पर डाले, दिन-रात इन कारखानों में जुते रहे हैं, अपना पसीना बहाते रहे हैं । अफसरों की धमकियों के भय ने आपको अपना सर ऊँचा करने नहीं दिया । इन सारी बातों की एक ही जड़ है । वह है—आप में एकता का न होना । जब तक आप में एकता की कमी बनी रहेगी, ये उद्योगपति और जमींदार आपकी कमजोरियों से फायदा उठाते रहेंगे, आपके पसीने की गाढ़ी कमाई से पैदा हुए पैसे से अपनी तिजोरी भरते रहेंगे और आप हमेशा, जिंदगी भर अपनी बुरी हालत पर रोते रहेंगे....।"

रतननगर के मजदूरों, एक हो !

मजदूर-एकता, कायम हो !!

मजदूर-संघ, जिन्दाबाद !!!

"...तो रतननगर के मजदूर भाइयो, मैं आपलोगों से चिल्ला-चिल्लाकर कहने आया हूँ कि पहले आपलोग आपस में एकता कायम

करें। और, इसी एकता को कायम करने के लिए मैंने मजदूर-संघ खोला है। इसी सिलसिले में मैं आपको मजदूर संघ के उद्देश्य से परिचित करा देना चाहता हूँ। आपसे यह छिपा नहीं होगा कि हिंदुस्तान किसान और मजदूरों का मुल्क है। हम जो अंग्रेजों के साथ लड़ रहे हैं, वह सिर्फ इसलिए नहीं कि अंग्रेज हिंदुस्तान से भाग जायें। अगर उनके भाग जाने के बाद भी देश के मजदूर और किसानों को भरपेट रोटी नहीं मिल सके, तो अंग्रेजों से आजादी के लिए लड़ना कोई माने नहीं रखता। महात्मा गाँधी एक ऐसे भारत के लिए विदेशी हुकूमत से लड़ रहे हैं, जहाँ हिंदू-मुसलमान, ब्राह्मण, राजपूत और हरिजन सभी भाई-भाई की तरह रहेंगे, जहाँ कोई भी भूखों नहीं मरेगा, कोई किसी को अपने से छोटा नहीं समझेगा। और, उन्हीं के आदर्शों पर हम मजदूर-संघ कायम कर रहे हैं कि रतननगर के मजदूर भूखों मरकर कारखाने में अपनी तंदुरुस्ती न खराब करें। उन्हें उनकी अपनी मिहनत की उचित मजदूरी मिले। उनके बच्चे भी पढ़ सकें, उनके लिए भी दवा-दारू का प्रबंध हो और साल-भर की अपनी गाढ़ी कमाई के नफे में उन्हें भी हिस्सा मिले। मजदूर-संघ कायम करने का मेरा उद्देश्य यह है कि हम इस तिरंगे झंडे के नीचे खड़े होकर, संघ को मजबूत बनायें। हम सभी एक जगह जुटकर समय-समय पर सभा करें। एक संगठन में रहकर अपने नेता के जरिए अपनी तकलीफों और माँगों की खबर मिल-मालिक के कानों तक पहुँचाएँ। अगर खबर देने पर भी मिल-मालिक हमारी बातों को अनसुनी कर दे, कान में तेल डालकर बैठ रहें, तो हम अपनी एकता और संगठन का हथियार अपनावें। आप जानते हैं, हमारी उन्नति और संगठन का हथियार क्या होगा? हमारी एकता। और, संगठन का हथियार होगा, तिरंगे झंडे के नीचे शांति और अहिंसापूर्ण हड़ताल। मैं समझता हूँ कि इस हथियार से बचने के लिए मिल-मालिकों के पास कोई भी ढाल नहीं है ...।”

तड़-तड़-सड़-तड़-तड़...। तालियों की आवाज हुई।

मजदूर एकता, कायम हो !

कमानेवाला, खाएगा !!

तिरगे झड़े की, जय !!!

बड़े जोरों से नारे लगाए गए । अहमदाबाद से आए हुए मजदूर-सेवक फिर बोलने लगे—

“...मैं जानता हूँ कि सघ कायम करने और सभाओं में आने के लिए कंपनी की ओर से आपको तरह-तरह की धमकियाँ भी दी जायेंगी, मगर उन धमकियों से डरकर ही आप अपना अधिकार खो देंगे । जब एक झड़े के नीचे खड़े होकर हम अपने सगठन को मजबूत बनायेंगे और संघ के किये हुए फैसले को अमल में लायेंगे, तो मैं समझता हूँ कि संसार की कोई भी शक्ति आपका बाल बाँका नहीं कर सकेगी...।”

“इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि आप संघ के सदस्य बन जाएँ । संघ का सदस्य बनने में न कोई खतरा है और न कोई खर्च । पहली बार की सदस्यता के लिए एक मजदूर को एक रुपया देना होगा, जिसके लिए आपको सघ की ओर से छपी हुई पक्की रसीद मिलेगी । फिर दूसरे महीने से आपलोगों को सिर्फ चार आने पैसे देने होंगे और उसके लिए भी आपको रसीद दी जाएगी । सदस्य बनकर आप जो पैसे संघ को देंगे, वे पैसे सघ के काम के लिए, यानी आपके काम के लिए खर्च होंगे ।

इतना बोलकर, पूरी तरह याद नहीं, शायद मजदूर-सेवक बैठ गए । इसके बाद उनके साथियो ने, जो चारपाई पर ही बैठे थे, रसीद-बही निकाली और मजदूरों की ओर देखकर कहा, “अब आप में से जिन-जिन भाइयों को मेम्बर बनना है, वे एक-एक रुपया देकर मेम्बर बन जाएँ । रसीद आपको यही दे दी जाएगी ।”

“...मजदूरों के बीच पूरी शान्ति छाई रही । मेम्बर बनने के लिए किसी ने इच्छा तक न जाहिर की । चारपाई के चारों ओर सन्नाटा । फिर मजदूर-सेवक ने तनिक ललकारकर कहा, “यहीं आपके भाग्य का

फैसला होनेवाला है। पहले काँग्रेस से भी लोग ऐसे ही डरते थे, मगर आज हर एक आदमी काँग्रेस में आना चाहता है, हर कोई काँग्रेस की मदद के लिए तैयार है। एक बार फिर ऐसा वक्त आएगा, जब हिंदुस्तान के सभी नगरों के मिल-मजदूर आपसे सबक सीखेंगे और चाहेंगे कि रतननगर का मजदूर-संघ ही उनका नेतृत्व करे।”

“..... ।” फिर भी सन्नाटा।

“...अच्छा, अच्छा, कोई बात नहीं। जो भाई संघ का मेम्बर बनना चाहे, वे समय मिलने पर संघ के दफ्तर में आकर ही अपना चंदा दे जायेंगे। रसीद उनको वहीं से मिल जाएगी। लेकिन, आपलोग हाथ उठाकर बतलाइए कि आपलोगों को यह मजदूर-संघ कायम करना पसंद है या नहीं। जिन भाइयों को पसंद है, वे लोग हाथ उठावे और जिन्हे पसंद नहीं है, वे हाथ गिराये रहे। मगर जो भाई हाथ नहीं उठायेगे, संघ उन्हें अपने से अलग नहीं मानेगा और उनके दुःख-सुख में बराबर हिस्सा बँटाएगा...” मजदूर-सेवक ने कहा।

और तब मैंने देखा कि सभा में जितने मजदूर जुटे थे, सबने अपने हाथ ऊपर उठा दिये। अपना दाहिना हाथ मैंने भी खूब ऊँचा करके उठाया। भूपसी भाई शायद डर रहे थे। वे कभी हाथ ऊपर उठाते और कभी धीरे-से नीचे कर देते थे। यह मुझे बहुत बुरा लगा।

“ऐसे क्यों करते हो भूपसी भाई?” मैंने धीरे-से पूछा।

“न जाने क्यों, मन में बड़ा सकोच होता है।” वे बोले।

“तो एक काम करो। या तो हाथ उठा रहने दो या गिरा दो।”

“तुम क्या चाहते हो?”

“मैं तो चाहता हूँ, हाथ उठाना चाहिए।”

“तो ले, अब यह हाथ कभी नहीं गिरेगा।” कहकर भूपसी भाई ने बड़ी हिम्मत करके अपना हाथ उठा दिया।

इसके थोड़ी देर के बाद नारे लगाकर सभा खत्म कर दी गई। वहाँ से भूपसी भाई अपने क्वार्टर चले गए और मैं अपनी झोपड़ी की ओर

लौटा । रात-भर मैं मजदूर-सेवक की बातों पर सोचता रहा और उसकी सारी बातें मुझे उचित जान पड़ने लगीं ।

दूसरे रोज मुझे तनख्वाह मिली । तनख्वाह के रुपए लेकर मैं सीधे मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा । एक रुपए का नोट देकर अपने नाम की रसीद कटवायी और रसीद को फटे कुरते की जेब में सम्हालकर रख लिया । वहीं मुझे यह मालूम हुआ कि मजदूर-सेवकजी का नाम दयानाथ पेदारकर है । पेदारकर का मैं माने नहीं सम्म सका, मगर दयानाथजी तो पूरे याद रहे । उधर से लौटते वक्त दयानाथजी के साथ काम करनेवालों से बड़ी बात हुई ।

“रतननगर के तुम पहले मजदूर हो, जो आज यहाँ आकर मेम्बर बन गया ।” वे बोले ।

“जी, और कोई नहीं आया ?” मैंने पूछा ।

“नहीं, अभी तक कहाँ कोई आया है ? तुम अपने साथियों को ले आओ ।”

“कोशिश करूँगा ।” मैंने कहा ।

“जरूर करो । आगे चलकर रतननगर के मजदूरों के तुम्ही नेता होंगे ।” वे बोले ।

“यह आप क्या कह रहे हैं, नेता तो बड़े लोग होते हैं, पढ़े-लिखे लोग ।”

“सो तो है, मगर तुम जितना ही त्याग करोगे, मजदूर तुम्हें प्यार करने लगेंगे । फिर तो तुम्हारे लिए खाना और कपड़े का कोई सवाल नहीं रह जाएगा । वे तुम्हें सब देगे ।”

“कैसे ? मैंने पूछा ।

“सब अपने-आप समझ जाओगे । पहले मजदूरों को समझा-बुझा-कर संघ का मेम्बर बनाओ ।”

“अच्छा ।”

“देखो, हमलोग यहीं रहते हैं। गाहे-बेगाहे यहाँ आ जाया करना। सभा वगैरह बुलानी होगी, तो तुम्हे अपने साथ ले चलेगे।”

“अच्छा, आऊँगा।” मैंने वादा किया।

मैं वहाँ से फोपड़ीवाले डेरे में लौट आया। रात को काम पर गया, तो अपने मेम्बर बन जानेवाली बात मैंने फपसी भाई से कह दी। सुनकर तो पहले उनके कान खड़े हो गए, पीछे कहा, “अच्छा किया, मेम्बर बन गए तो अच्छा ही किया।”

“क्यों, ऐसा क्यों कहते हो फपसी भाई?” मैंने पूछा। अभी वे तेजाब की टंकी की ओर देखने लगे थे।

“अरे मंगरुआ, तू कहाँ भूला हुआ है? हमलोगों के लिए कोई कुछ नहीं करेगा, सब कोई अपना काम बनाने आया है। अंगरेज हमलोगों को भूखों मार रहे हैं, मगर गाँधी बाबा क्या घर-घर गेहूँ बाँटते फिरेंगे? जबतक कुर्सी नहीं मिलती, तबतक लोग यों ही बाते करते हैं।”

“जा जा, तुम्हें तो हरदम मजाक ही सूझता है।” मैं बोला।

“अच्छा, मैं मजाक नहीं करता। कल मैं भी मेम्बर बन जाऊँगा।”

“सच, बन जाओगे?”

“हाँ।”

दूसरे रोज फपसी भाई भी मेम्बर बन गए। रतननगर क्लब के मैदान में हर एतवार को सभा बुलायी जाती थी। जब मैं ड्यूटी पर नहीं होता, तो मैं भी कारखाने के फाटक पर दयानाथजी के साथ काम करनेवालों की पाँत में खड़ा होकर नारे लगाता, मिल-मालिक के खिलाफ जो कुछ बोलना, उनलोगों से सीख लिया था, बोलता और मजदूर भाइयों को सभा में आने के लिए कहता था। कुछ ही दिनों में रतननगर के हर कारखाने के मजदूर मेरे नाम और चेहरे से परिचित हो गए। शूगर फैक्टरी, सोडा रिकवरी, पेपर फैक्टरी, सिमेण्ट फैक्टरी, सिमेण्ट आसवेस्टस, झाई-वूड फैक्टरी, पावर हाऊस, वर्कशॉप, मशीन

शॉप, कहाँ के मजदूर 'मंगरू' को नहीं जानते थे। कुछ अरसे में मजदूर-संघ का रजिस्ट्रेशन हो गया। कंपनी से लड़कर दयानाथजी ने मजदूरों की तनख्वाह में एक रुपया और बढ़वा दिया। छुट्टी में भी एक रोज बढ़ गया। अब पहले से मजदूर-संघ का दफ्तर भी अच्छे मकान में चला गया। बाहर बहुत बड़ा साईनबोर्ड टॉग दिया गया—

मजदूर-संघ

र त न न ग र

दयानाथजी के जितने चेले थे, उनमें सबसे ज्यादा मुझे प्यार करते थे, मोहनलाल बड़ोदकर। मैं उन्हें 'बड़ोदकर बाबू' ही कहा करता था। एक दिन जब मैं मजदूर-संघ के दफ्तर में चंदा के दस रुपए जमा कराने गया था, तो उन्होंने बहुत ही ठढी आवाज में मुझसे कहा, "मंगरू, तुम बड़े काम के आदमी हो। तुम्हारा दिमाग बहुत तेज है। किसी भी बात को बहुत जल्द समझते हो, दूसरे को तुम समझा लेते हो। लेकिन, जब मैं तुम्हारी एक कमजोरी की ओर देखता हूँ, तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है ..।"

"तो क्या बड़ोदकर बाबू, क्या मैंने कोई अपराध किया है?"

"नहीं, अपराध नहीं किया है। मगर, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी कमजोरी दूर हो जाए और तुम इस संघ के काम आ सको।"

"कहिए सरकार, मुझमें तो बड़ी कमजोरियाँ हैं। पहले तो मैं बिरादर का चमार हूँ, दूसरे कुली हूँ, तीसरे मूरख हूँ, और चौथे आपसे भी बातें करने की हिम्मत कर लेता हूँ।" मैं बोला। बड़ोदकर बाबू अपनी आँखों से मेरी आँखों में उतरकर बोले, "मंगरू, मैं चाहता हूँ कि तुम शुद्ध-शुद्ध लिखना, शुद्ध-शुद्ध पढ़ना और शुद्ध-शुद्ध बोलना जान लो। इस में संबंध मैं तुम्हारी हर सहायता करने को तैयार हूँ। बोलो, यह कमजोरी दूर करना चाहते हो?"

मेरे मुँह से निकला, "यही कमजोरी तो मेरे दिमाग का जखम है।"

मजदूर-संघ में आने-जाने और काम करने की वजह से मेरी बुरी हालत कुछ सुधर तो नहीं गई थी, मगर इतना यकीन हो गया था कि मेरी नौकरी बात-की-बात में नहीं छूट जाएगी। इसलिए मैं दो रोज के लिए गाँव चला गया और घर के सभी लोगों को रतननगर ले आया। माँ थी, मेरी जनाना और मेरी छोटी बहन। बुधिया की उम्र पाँच-छः वर्ष थी। जब ये तीनों रतननगर आ गईं, तो रहने के लिए एक अलग कोपड़ी का किराया चार रुपए तय हुआ। सत्ताईस रुपए में चार रुपए इसी तरह निकल गए, बाकी बचे तेईस रुपए। घर से, जो अलमुनियम के बर्तन थे, उन्हें ही साथ ले आया था। चावल, दाल, नमक-मसाले रखने के लिए मिट्टी के बर्तन मोल ले लिये। गाँव पर से जब चलने लगा, तो गोपाल साव बनियाँ ने अपनी छाती पर मुझे मार लिये। कहा, “चमार-दुसाध से कौन मुँह लगाये! छोटे सरकार काँप्रे सी होकर जेहल अगोर रहे हैं। अब मेरे रुपए सात जनम में भी न मिलेंगे।”

“घबड़ाओ मत साव, मैं रतननगर से तुम्हारे रुपए भेज दूँगा।” मैं बोला।

“ऐसे वादे बहुत सुनता रहा हूँ। तेरा बाप भी तो चटगाँव से रुपए भेजता ही रह गया।” गोपाल साव बोला।

“यह तो वदे की बात है साव। मुझ पर यकीन करो, वहाँ जाकर जरूर भेज दूँगा।” मैंने कहा।

“अरे, अब तो भगवान ही इसाफ करेंगे। अगले जनम में तुम्हारी छाती पर पीपल का पेड़ बनकर वसूल करूँगा।”

“ऐसा न कहो । हाँ, एक बार मैं तो नहीं, मगर सात-आठ बार मैं थोड़े-थोड़े भेज दूँगा ।”

“अरे छोड़ो, बिल में घुसे हुए चूहे की बिल्ली राह देखे, तब तो उसका पेट भरा ।”

“राम कहो, मुझ पर यकीन तो करो ।”

“अरे जा-जा, तेरा क्या विश्वास । तुमलोगों ने जिसका खाया, उसका कभी दिया भी ?”

जैसे भी हो, मैं तो रतननगर आ ही गया । गोपाल साव के मेरे यहाँ सत्तर रुपए निकलते थे । यहाँ आकर मैंने फैसला कर लिया कि उसके यहाँ हर महीने पाँच रुपए भेजा करूँगा । कंपनी की ओर से जो राशन मिलता था, उसके लिए कार्ड भी बनवा लिया था । तेईस में से पाँच रुपए और निकल गए । बाँकी बचे अठारह रुपए । वैसे तो अठारह रुपए में, बैसी महँगी के जमाने में चार आदमी का खर्च चलना ही मुश्किल था और उस पर भी एक मुश्त राशन खरीद लेना और भी एक टेढ़ा सवाल था । सो, मोदी के उधार-खाते से मेरा नाम नहीं ही कट सका । हर महीने चार आने पैसे देकर मजदूर-सघ की रसीद लेना भी जरूरी था । मेरी झोपड़ी की बगल की झोपड़ी में एक मेट रहता था । वह यहीं कहीं पास के देहात का रहनेवाला था । हो सकता है, उसके घर पर अपना खेत भी रहा हो । वह चावल और दाल अपने घर से ले आता था । उसकी बीबी भी यहीं रहती थी । साथ में दो छोटे-छोटे बच्चे थे । जाति का वह कहार था । जब कभी जात-पाँत की बातें चल पड़ती, तो वह अपने को कहार नहीं मानता था । उसका कहना था कि कहार जाति की पैदाइश जरासंध के खन्दान से है । और जरासंध राजपूत था, इसलिए वह भी राजपूत है । अकलू राम कहने से कनमनाता था, अकलू सिंह कहने पर मस्त होकर बातें करता । मेट होने के कारण मुझसे कम बातें कहता था । मगर, इतना मुझे याद है कि महीने रोज के बाद ही मेरी जनाना से उसकी जनाना ने दोस्ती कर ली थी ।

उधारी-खाता पर सौदा देनेवाला मोदी मेरे साथ कुछ कड़ाई करने लगा। मैं चाहता था कि वह मेरे मन का हो जाए और वह चाहता था कि मे उसके मन के काबिल हो जाऊँ। तनखाह मिलने पर वह चाहता था कि मैं उसका पाई-पाई अदा कर दूँ। एक रोज तो इसी बात को लेकर उससे झगड़ हो गई। दूकान पर झोपड़ी के और भी मजदूर इकट्ठे हो गए थे। तनखाह जिम रोज मिली, उसके दूसरे रोज मैं उसके यहाँ दो छटाँक सरसो का तेल लेने के लिए पहुँचा। मेरे हाथ में तेल की शीशी थी।

“तनखाह मिल गई, मंगरू ?” मोदी ने पूछा।

“हाँ।”

“कब, कल ?”

“हाँ।”

“तो हिसाब साफ करो न। बोलो, खाता निकालूँ ?”

“अभी रहने दो। कल सुबह आऊँगा।”

“कोई बात नहीं। मेरा मतलब यह कि इस महीने का हिसाब अगले महीने के लिए नहीं लटकना चाहिए।”

“तो कैसे होगा ?”

“तुमने क्या समझा ?” मोदी ने पूछा।

“एक ही बार सब कैसे अदा करूँगा ? मेरे नाम पर कितना है ?” मैंने पूछा।

इस पर मोदी ने झटपट उधार-बही वाला खाता निकाला और झटपट जोड़कर बोला, “बस, इकतीस रुपए, पंद्रह आने।”

“बाप रे बाप, इतना एक बार कहाँ से दे पाऊँगा, साव।” मैं बोला।

“अब जहाँ से दो। मुझे भी तो * गोले पर देना होता है। तुमलोग तो मुझे सूद भी नहीं देते, मूढ़ ही महीने-दो-महीने लटकाये रहते हो। मुझसे तो गोलेवाला सूद भी ले लेता है। देखो, कही से भी पिछला हिसाब साफ कर दो।”

“तुमसे झूठ वादा क्यों करूँ, मेरे लिए इतने रुपए एक बार देना मुश्किल है।”

“तब ?” उसने मेरी ओर धूरक पूछा।

“तब क्या कहूँ, किसी तरह काम चलाओ।”

“नहीं, जब इतने की औकाद नहीं थी, तो क्यों घर की सारी फौज ले आए ?”

“घर पर कोई जमींदारी तो नहीं थी साव, ले आता नहीं तो क्या करता ?”

“तो फिर यह सब साव के भरोसे ही ले आए क्या ?”

“नहीं, धीरे-धीरे कोई इंतजाम होगा। देखो, कंपनी के सामने हमलोग माँग रखनेवाले हैं। तनख्वाह बढ़ जाएगी।”

“वह सब मैं नहीं जानता। मूम मोटाकर बिल्ली थोड़े ही हो जाएगी ?”

“अच्छा, अच्छा। तेल दे दो, दो छटाँक।” मैंने तनिक मुस्कुराकर कहा। शायद इसीलिए कि मेरे मुस्कुराकर बोलने से उसका गुस्सा कम हो जाता। मैंने अपनी तेल की शीशी उसकी ओर बढ़ायी।

“यह क्या ?” उसने झिझककर पूछा।

“तेल दो। दो छटाँक, सरसो का।”

“नहीं, ले जाओ। अब एक पैसे का सामान उधार नहीं दूँगा।”

“क्यों, तुम्हारा कभी का पचा लिया है क्या ?”

“पचाओ चाहे मत पचाओ। अब मैं लटपट-सटपट नहीं सुन सकता। अपने-आप कह रहे हो कि तनख्वाह कल ही मिल गई। आकर आज हिसाब क्यों नहीं साफ कर गए.....?” मोदी बोला। इसके बाद वह मेरी ओर मे मुँह फेरकर पास खड़े और ग्राहकों की ओर मुखातिब हो गया। था तो मैं गरीब, मजबूर भी था। मगर, एकाएक मुझे गुस्सा हो आया। पाँच मिनट तक तो मैं चुपचाप खड़ा रहा।

“सुनो साव।” पीछे मैंने कहा।

लोहे के पंख

“क्या है, क्यों तंग कर रहे हो ? एक बार तो कह दिया कि नहीं दूँगा । छिः छिः, एक तो उधार लेना, दूसरे माथा खाना ।”

“तेल तो दे दो । आगे कोई सौदा मत देना ।” मैं बोला ।

“और तेल क्या तुम्हारे डर से दे दूँ , तुम्हारे बाप का खेत जोतता हूँ क्या ?”

“जरा तरीके से बातें करो साव ! अपनी जुबान मत खराब करो ।”

“जा जा, बड़ा आया है मेरी जुबान सुधारने । कमीने कहीं के ।”

“साव, जरा होश में आकर बातें करो ।” मुझे गुस्सा आने लगा ।

“होश में आकर बातें मैं करूँ या तुम करोगा ?... .. ।” साव अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और मुश्किल से आधा कदम मेरी ओर बढ़ आया । वह दमे का रोगी था । हाँफता हुआ बोला, “पहले तू दूकान से नीचे जाता है या नहीं ?”

“दूकान से नीचे क्यों जाऊँ, कोई चोर थोड़े ही हूँ ?”

“तू चोर नहीं, चोर का जना है ।” वह बोला ।

“चुप रहो साव । ऐसे बोलोगे, तो राख लगाकर जीभ खींच लूँगा ।”

“साले, जाता है या नहीं तू मेरी दूकान से ।” कहते हुए साव ने चीनी का एक खाली टीन उठा लिया और अपने हाथों में उसे लेकर इस तरह घुमाया, जैसे टीन को मेरे माथे पर पटक देगा । मैंने एक कदम आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये । कहा, “अब कहो, मारोगे मुझे टीन से ? मारो । मगर मुँह से गाली निकालोगे, तो जीभ तरास लूँगा ।”

“अरे बाप रे, मैं मरा ... दौड़ो ... मंगरुआ मेरी जान ले रहा है .. बचाओ-बचाओ .. ।” मोदी ने शोर किया ।

“चुप रहो, क्यों झूठ बोल रहे हो ... ?”

“अरे बाप रे, दौड़ो, दूकान लुट रहा है ... !”

मेरे लाख मना करने पर भी मोदी चिल्लाता रहा । परदे के भीतर से निकलकर उसकी बहू-बेटियाँ बाहर आ गई । भोपड़ी तक हल्ला हुआ, सो मजदूर उधर से दौड़े हुए आए ।

चिराग-बत्ती जलने का समय निकला जा रहा था । पश्चिम का आसमान पूरब की ओर अपना अधियारा फैलाता हुआ रात के ठहरने का इंतजाम कर रहा था । दूकान के नीचे मजदूरों की भीड़ लग गई । मेरी माँ भी चली आयी, साथ में छोटी बहन भी । सनीचरी शायद लाज के मारे नहीं आ सकी । मैंने भीड़ के पीछे देखा, दीपन हाथ में शगब की एक बोतल लिये खड़ा है । उसके पाँव जमीन पर ठीक से जम नहीं रहे थे । वह खड़ा रहते हुए भी लड़खड़ा रहा था । संयोग से आज मोदी का बेटा घर पर नहीं था । नहीं तो अगर वह रहता, तो मार-पीट जरूर हो जाती । मेट की तस्वीर नजर नहीं आई । वह शायद 'सी शीफ्ट' में काम करने चला गया था । मेरा खयाल है, वह होता तो जरूर मेरे खिलाफ बोलता । बाकी जो मजदूर शोर सुनकर आए थे, उनलोगों ने बीच-बचाव कराने की कोशिश की । मगर, दीपन अपनी जगह पर बोतल लिये खड़ा-खड़ा बक रहा था—“मारो साले बनिए को... उधार खिला खिलाकर • इसने हमलोगों का खून पी लिया...। तनखाह •..... मिलने पर • जेब में रखने के लिए... • साले को दो बोतल के दाम के सिवा कुछ बच ही नहीं पाता... ।”

“चुप रहो दीपन, तुमने बहुत ज्यादा पी लिया है... भोपड़ी में चले जाओ...” मजदूर समझाने लगते थे ।

“अबे साले, तू मुझे समझाने आया है और तू नहीं पीता क्या... मैं तो... मैं तो इसी बोतल से साले मोदी का सर फोड़ दूँगा • उधार देकर एक तो साला बाजार-भाव से मर्हंगा देता है... दूसरे जान-बूझकर बजन में भी कम देता है... पैसे की मजबूरी है इसलिए नहीं बोलते... नहीं तो साले को मैं कच्चा ही निगल जाऊँ... ।”

बड़ी दिक्कत से यह झगड़ा खत्म हुआ। पीछे खुद मैं ही बहुत समझा-बुझाकर दीपन को झोपड़ी में ले आया। वह तो बोलत चलाकर मोदी को मारने के लिए तैयार था। सुबह जब उसे यह मालूम हुआ कि मोदी को उसने कल क्या-क्या कहा था, तो सर पकड़कर एक बार जमीन पर बैठ गया। मुझसे कहा, “साव का गला तुम घोट रहे थे और सजा मिली मुझे।”

“मैं साव का गला कहाँ घोट रहा था ?”

“गला नहीं घोट रहे थे तो और क्या कर रहे थे, कल शाम में किसलिए शोर मचा था ?”

“गला नहीं घोट रहा था, दोस्त।”

“कुछ तो जरूर किया था।” वह बोला।

“हाँ, मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये थे।”

“और मैंने पी ली थी, सो जाकर उसे गाली बक आया। ठीक बात है न ?”

“हाँ, वहाँ से मैं ही तो तुम्हें संभालकर ले आया था।”

“सो तो मुझे मालूम हुआ है। मगर अब बताओ, मेरे पास चावल नहीं है, क्या खाकर ड्यूटी जाऊँगा ?”

“क्यों, जाओ साव के यहाँ से ले आओ।”

“अब वह मुझे उधार देगा, तुम्हें विश्वास है ? तुम मजदूर-संघ में क्या जाने लगे, दगे और मार-पीट को दिल्लगी समझ लिया।”

“देगा, देगा, तुम्हें उधार देगा। उधार अब मुझे नहीं देगा। तुमको तो जानता है कि तुम नझे मे बोल रहे थे।” मैंने कहा।

“जाता हूँ माँगने। अगर नहीं देगा, तो तुम्हारा सर खाकर ड्यूटी पर जाऊँगा।” वह बोला।

इतनी बातें मुझसे कर लेने के बाद दीपन बड़ी असावधानी के साथ अपनी झोपड़ी की ओर चला गया। उसके फटे हुए कुरते की आस्तीन नीचे लटक रही थी। बीलट भाई उस झोपड़ी को छोड़कर किसी कुली

के साथ रहने के लिए कुली क्वार्टर में चले गए थे। दीपन की स्नोपड़ी का नया साझीदार किसी कचड़ीवाले की दूकान में खाया करता था। दीपन सिर्फ अपना खाना पकाता था। दीपन के चले जाने के बाद में उसके बारे में बहुत कुछ सोचता रहा। भले-बुरे, नफा-नुकसान, इज्जत और अपमान के बारे में वह भी तो सोचता है, मगर अपने बुरे दिन के जाल में इस तरह फँसा हुआ है कि बोलना नहीं चाहता। बनगाँव जाने के रास्तेवाली भट्टी में जब मैं शराब पीने गया था, तो मैंने सोचा कि इन मजदूरों के कटरे में सिर्फ एक मैं ही ऐसा नीच हूँ जो पीता हूँ और आज भी पीने जा रहा हूँ। मगर, धीरे-धीरे पता चला कि यहाँ सभी पीते हैं और मुझसे बुरी तरह पी लेते हैं। पीने से किसी को भी एतराज नहीं था। सब पीते थे। कुछ तो भट्टी में ही लड़खड़ा जाते और कुछ कटरे में लौटते-लौटते ऊल-जलूल बकना शुरू करते थे।

साव के मेरे यहाँ इकतीस रुपए पंद्रह आने निकलते थे। सो, दूसरे रोज जब उसका बेटा पास के देहातों से चावल खरीदकर लौटा, तो मुझसे लड़कर दस रुपए ले गया। पास में सात रुपए बच गए। बचना चाहिए था आठ रुपए, मगर एक रुपए का नगद सामान ले आना पड़ गया। थोड़ी दूर पर ही रेलवे-पुल के पास सिक्खों का गुरुद्वारा था। पहले यहाँ कोई गुरुद्वारा नहीं था। सुनने में आया कि यह गुरुद्वारा कारखाने के सिक्ख कर्मचारियों ने स्थापित किया है। उसी गुरुद्वारे के पास दो-तीन खिचड़ी-फरोस की दूकानें थीं। तीनों दूकानें मारवाड़ी की थीं और यहाँ की जमीन रतननगर के हल्के में थी। रतननगर के भीतर अधिकतर मारवाड़ियों को ही दूकान खोलने के लिए इजाजत दी जाती थी।

आज मैं खिचड़ी खाकर ड्यूटी पर चला गया। शाम को छः बजे काम पर से लौटा, तो देखा, स्नोपड़ी में माँ नहीं है—बुधिया नहीं है। समय से मैं कुछ देर करके लौटा था। मुझे देखकर सनीचरी ने पूछा, “अभी छुट्टी हुई है?”

“नहीं, छुट्टी तो थोड़ी देर पहले ही हो गई। मजदूर-संघ चला गया था।” मैं बोला। मजदूर-संघ का माने वह कुछ भी नहीं समझ सकी, इसलिए चुप रह गई। उसने मुझसे कहा, “बैठो। दिन की थोड़ी-सी खिचड़ी बची है, खाओगे ?”

“क्यों, खिचड़ी बची कैसे ? बुधिया ने नहीं खायी ?”

“वह रहती, तब तो खाती। उसी का हिस्सा तो बच गया है। पानी पी लो।”

“वह कहाँ गई और माँ ?” मैंने पूछा।

“दोनों साथ ही गई है।”

“कहाँ, गीलट के यहाँ ? उसका डेरा कहाँ देखा है ? वह तो बनगाँव रहता है। हाँ, इतना मालूम है कि वह भी अपनी जनाना को ले आया है।”

गीलट मेरे मामा के गाँव का था। बीलट भाई से जब मैंने उसे मिलाया था, तो उसका नाम जानकर वे ठठाकर हँस पड़े थे। कहा था, “चलो अच्छा है। मैं बीलट हूँ और तुम गीलट।” गीलट मेरे मामा का पड़ोसी था। जब मेरी बदली एसिड प्लांट में हुई, तब उससे जान-पहचान हो गई। मेरी और उसकी उम्र मिलती-जुलती थी। माँ के रतननगर ले आने पर मैं उसे पकड़कर अपनी झोपड़ी में ले आया। माँ ने स्वागत में उसे गुड़ की शर्बत पिलायी थी। गाँव के रिश्ते में वह माँ का भतीजा लगता था। लेकिन, मेरी सारी बात काटकर सनीचरी ने कहा, “बनगाँव नहीं गई है। गई है *खँचिया लेकर कोयला चुनने।”

“कोयला चुनने ?”

“हाँ।” सनीचरी बोली।

“कहाँ, किस जगह ?”

“यह नहीं मालूम।”

तब मैं टाट पर चुपचाप बैठ गया और सोचने लगा, जितने लोग कारखाने में काम करते हैं, उतने ही लोगों को कंपनी कोयला देती है। बाकी लोग तो लकड़ी से खाना बनाते हैं। बनगाँव में कोयले की कोई दुकान नहीं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनकी जान-पहचान के कारखाने के कर्मचारी हैं। कंपनी से कोयला मिलने के लिए कर्मचारियों के पास कार्ड हैं। होटलवाले कंपनी के कर्मचारियों से दोस्ती रखते हैं। जान-पहचान कर लेते हैं। बाकी लोगों को कोयला मिलना कठिन हो जाता है।

मैंने देखा था कि कुछ बच्चे रेलवे-लाईन पर गिरे हुए कोयले, जो इंजन से गिरते हैं, चुनते रहते हैं। कुछ को होटलों और बार्टरों के पीछे फेके हुए कूड़े-कर्कटों के बीच से कोयला चुनते हुए देखा था। मुझे यह भी मालूम था कि ऐसे कोयले बटोरकर वे छोटे-छोटे हलवाईयों की दुकानों पर बेच देते हैं। कुछ चाय के दुकानदारों से बेच देते हैं और एक टोकरी कोयले का मोल मुश्किल से चार पैसे मिलता है। मेरे दिमाग में यह बात घर कर गई कि मेरी माँ और बुधिया जरूर ही इसी खयाल से कोयला चुनने गई है। तब मैंने खिचड़ी नहीं खाई। सनीचरी से पूछा, दोनों कब गईं ?”

“तुम्हारे काम पर चले जाने के थोड़ी देर बाद।”

“फिर बीच में नहीं आई ?”

“नहीं। सनीचरी बोली।

मैंने एक बार मन में यह तय किया कि चलकर माँ और बुधिया को खोज लाऊँ। मगर कहाँ जाता, किस जगह जाता। बनगाँव और रतननगर की चौहद्दी तो कोई आध मील की थी नहीं। मन मारकर रह गया। —“बुधिया से कहोगी, खिचड़ी नहीं खाएगी तो जियेगी कैसे ?” कहकर मैंने सनीचरी की ओर देखा। सनीचरी बोली, “खिचड़ी तो खाती ही है।”

“पकौड़ी के लिए भी तंग करती थी ?” मैंने पूछा।

“नहीं।” सनीचरी बोली।

मेरी बहन बुधिया खिचड़ी तो खाती थी, मगर चाव से नहीं खाती थी। खिचड़ी पकाने में हमलोगों को सुविधा होती। कुछ चावल की बचत हो जाती थी। मैंने सनीचरी से कहा, “मेरी स्लेट किधर रखी है, जरा दे दे। मैं पढ़ने चला जाऊँ।”

“चावल के हँड़िये के पीछे रखी है। ठहरो, देती हूँ।”

ड्यूटी से निकलकर, जब भी ऐसा समय मिलता, मैं मजदूर-संघ में पढ़ने के लिए चला जाया करता था। बड़ोदकर बाबू मुझे बहुत प्यार और अपनापन के साथ पढ़ाते थे। अब मैं हिंदी अच्छी तरह लिख सकता था। हिंदी के अखबार बहुत आसानी से पढ़ लेता और उनके शब्दों को समझ लेता था। इधर बड़ोदकर बाबू मुझे अंग्रेजी पढ़ाने लगे थे। बाजार से मैं फर्स्ट-बुक खरीद लाया था। अंग्रेजी के छब्बीसों अक्षर याद हो गए थे। चारों तरह से लिखना भी जान गया था। अब बड़ोदकर बाबू मुझे शब्दों का ज्ञान करा रहे थे। सनीचरी से स्लेट लेकर मैं मजदूर-संघ चला गया। हाँ, इन दिनों की मुझे एक बात भली तरह याद है। मजदूर-संघ की ओर से मुझे मजदूरों को मेम्बर बनाने के लिए एक छपी हुई रसीद-बही दी जाती थी। मैं मौके-मौके पर मजदूरों को समझा-बुझाकर मेम्बर बनाता और उन्हें रसीद देकर मेम्बरी फीस वसूल करता था। जिस दिन मैं मेम्बरी फीस के अधिक पैसे बटोरकर बड़ोदकर बाबू के हाथ में देता, उस दिन वे मुझे बड़ी देर तक और बहुत मिहनत से पढ़ाते थे। दयानाथजी हमलोगों से बहुत गंभीरता का व्यवहार करते। बराबर पटना, काशी, प्रयाग, कलकत्ता, लखनऊ और बंबई आते-जाते रहते। पूछने पर पता चलता कि मजदूरों की भलाई के लिए सब जगह दौरा कर रहे हैं। सैलून का हजाम आकर दफ्तर में ही बाल काट जाता। मशीन से दाढ़ी बनाते और दाढ़ी बना लेने के बाद न-जाने उसमें क्या मल देते थे। तब उनकी दाढ़ी बहुत खुशबूदार हो जाती थी। कभी आस-पास से होकर अपने कमरे में जाने लगते, तो

मन करता कि घंटों उनकी दाढ़ी की खुशबू पीता रहूँ। जब रतन-नगर में रहते, तो हर तीसरे रोज कपड़े बदलते थे। मजदूर-संघ के दफ्तर से बाहर निकलते, तो हाथ में एक चमड़े का बैग लटका लेते थे। रतन-नगर के जो दो बड़े अफसर थे, उनमें एक को वर्क्स मैनेजर कहा जाता था और दूसरे को लोग जेनरल सेक्रेटरी कहते थे। वर्क्स मैनेजर से जेनरल सेक्रेटरी का पावर शायद कुछ ज्यादा था। दयानाथजी इन दोनों अफसरों के दफ्तर में बेघड़क घुसकर उनसे बातें करते थे।

आज जब मैं मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा, तो बड़ोदकर बाबू बहुत खुश दीख पड़े। मुझे पढ़ाते वक्त उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक कहा, “आज का अखबार देखा है या नहीं, अंग्रेजों ने हमें आजादी देना स्वीकार कर लिया।”

“आजादी देना स्वीकार कर लिया ?”

“हाँ, सच।”

“तो आजादी मिल गई या पाँच-सात रोज के अंदर मिलनेवाली है ?”

मैंने ऐसा सवाल अपनी अज्ञानता के कारण ही किया।

“नहीं, आजादी कोई खेल थोड़े ही है। मगर मिलेगी, जल्द, बहुत जल्द।”

“सो कैसे ?”

“चुनाव होगा।”

“अच्छा, कौन राजा बनेगा ? गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू या जिन्ना साहब ?”

“राजा कोई नहीं बनेगा ?”

“तो फिर राज्य कैसे चलेगा ?”

“जनतंत्र राज्य में राजा नहीं होते।” बड़ोदकर बाबू बोले।

“जनतंत्र क्या है ?”

“जनतंत्र राज्य पर सारा अधिकार जनता का रहता है। हुकूमत के पदों पर जनता जिसे चुन कर भेज दे, वही उस पद पर रहकर हुकूमत

करेगा । और हर पाँचवें वर्ष जनता को यह अधिकार होगा, कि अपनी पसंद का पदाधिकारी उस पद पर बिठावे ।” वे बोले ।

“तो क्या हर पाँचवे साल पदाधिकारी बदलना जरूरी है ?” मैंने पूछा ।

“नहीं, जरूरी नहीं है । मगर, हर पाँचवें साल चुनाव होता है और जनता जनतंत्र सरकार के जिस पदाधिकारी के काम से सतुष्ट न हो, उसे उस समय हटा देती है । उसके पद के लिए नया उम्मीदवार खड़ा होता है और जनता उसे वोट देकर विजयी बनाती है ।”

“अब समझा... ।” बिना पूरी तरह समझे ही मैंने कह दिया । मगर, मन में यह जानकर चुलबुलाहट जरूर पैदा हो गई कि अब तो आजादी मिल रही है । मुझे १९४२ का जमाना याद आने लगा कि अंग्रेजों ने कितनी निर्दयतापूर्वक हिंदुस्तानियों का शिकार किया था । गोरी पुलिस ने किस तरह हिंदुस्तान के विद्यार्थियों की छाती से गोली की ताकत आजमायी थी । मैंने बड़ोदकर बाबू से कहा, “क्यों बाबू, अब तो उनलोगों से १९४२ के आंदोलन का बदला लिया जाएगा, जिनलोगों ने आंदोलन दबाने में अंग्रेज सरकार की मदद की थी ?”

“अवश्य ।”

“हाँ, यह बड़ा जरूरी होगा । इसी के चलते तो कितने हिंदुस्तानी अफसरों की तरफ़ी हो गई ।”

“सबको सजा मिलेगी ।” बड़ोदकर बाबू बोले ।

“और जमींदार लोग ?”

“सबकी जमींदारी खत्म कर दी जाएगी ।”

“तब तो बड़ा अच्छा होगा ।” मैं बोला ।

“चुनाव में मदद करोगे न ? मजदूरों से पाँच-पाँच रुपए चढ़ा लेना होगा ।”

“माँगूंगा । भला, आजादी के लिए तो बे पेट काटकर देगे ।”

“मजदूर तो हाथ में हैं न ?”

“अरे, वाह, सब गाँधी बाबा का नाम जानते हैं ।” मैंने कहा ।

“फिर चावल, दाल, तेल, कपड़े सब सस्ता हो जाएगा ।”

“और हमलोगो की तनखाह भी बढ़ेगी ?”

“इसमें भी शक है ?”

“एक बात कहूँ बाबू ?” मैंने कुछ संकोच से कहा ।

“क्या ?”

“जरा अखबार दीजिएगा ? मैं पढ़कर फिर कल लेता आऊँगा ।”

“हाँ, ले जाओ और अभी से इसका प्रचार मजदूरों में करो ।”

“हाँ, सुनकर सभी मूँछ पर ताव देने लगेंगे ।”

उस रात मैं अधिक नहीं पढ़ सका और बड़ोदकर बाबू से हिंदी का अखबार लेकर झोपड़ी की ओर लौटा । झोपड़ियों में किरासन तेल की दिबरियाँ जल रही थीं । आते ही सुना कि तीन-चार मजदूर पीकर लौटे हैं । उनमें कोई भी होश में नहीं है और किसी ने एक का सर बोतल से फोड़ दिया है । लेकिन, ऐसी घटनाएँ यहाँ बराबर हुआ करती थीं, इसलिए मैं चुपचाप अपनी झोपड़ी में घुस गया । बीच में जो कूड़े-ककट से भरी खाली जगह थी, उसमें बेहोश मजदूर गिरे पड़े थे और उनकी बड़बड़ाहट सुनायी पड़ जाती थी ।

झोपड़ी के भीतर आ जाने पर मुझे इतना होश न रहा कि मैं से कोयला चुनने के बारे में कुछ पूछ-ताछ करूँ । चुपचाप *गेनरा पर जाकर बैठ रहा । बुधिया सो गई थीं । मैं ने कहा, “खा ले न ।”

“नहीं, अभी नहीं खाऊँगा ।”

“क्यों, भूख नहीं लगी है ?”

“लगी है, थोड़ी देर बाद खाऊँगा । दिबरी जरा सामने रख दे ।”

“खा ले न । पीछे पढ़ता रहना ।”

“नहीं, पहले दिबरी ला ।”

*फटे और घुराने कपड़ों का सिला हुआ बिज्जावन ।

माँ ने मेरे आगे दिवरी लाकर रख दी । मैं अखबार के पन्ने उलटने लगा । आजादी मिलने की खबर पहले ही पेज पर बड़े मोटे-मोटे हर्फों में छपी थी । फिर नीचे उसका पूरा विवरण छपा था । मैं नजर गड़ा-गड़ाकर ध्यान से पढ़ने लगा । जिन्ना माहब शायद कांग्रेस से अलग होकर मुस्लिम-लीग के नेता हो गए थे । मुसलमानों के लिए उन्होंने पाकिस्तान की माँग की थी, सो अंग्रेजों ने उनकी माँग मजूर कर ली थी । वायसराय के सम्झौते के सिलसिले में यह भी तय हो गया था कि दोनों दल के नेता चुनाव लड़ेंगे । कुछ मुसलमान राष्ट्रीय हो गए थे । जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि हिंदुस्तान अब दो टुकड़े में बँट जाएगा । एक परिवार में फूट पैदा हो गई और पड़ोसी ने फायदा उठा लिया । अखबार में यह समाचार भी पढ़ा कि यह आजादी जो मिल रही है वह पूरी आजादी नहीं होगी । अभी दो वर्ष तक अंग्रेज गवर्नर इस बात की तहकीकात करेंगे कि अभी हिंदुस्तान के नेता देश की हुकूमत सभाल सकते हैं या नहीं । इस इम्तहान में दोनों देश के नेताओं को जब कामयाबी मिल जाएगी, तभी सच्ची आजादी मिलेगी । —मैंने सोचा, घी का लड्डू टूटता भी भला । गाँधी बाबा, जवाहरलाल नेहरू और छपरा जिले के राजेन्द्र बाबू कम होशियार नहीं हैं । राज सँभल जाएगा ।

इस खुशी के कुछ रोज पहले की बात है । अखबार में भी समाचार छपते थे । पता चला था कि काहिमा और इम्फाल की पहाड़ियों को पारकर सुभाष बाबू हिंदुस्तान में चले आ रहे थे । जब पल्टन का रसद-पानी घट गया, तो आजाद हिंद फौज गिरफ्तार कर ली गई । तब बड़े-बड़े नेताओं ने दिल्ली के लाल-किले में आजाद हिंद फौज की ओर से मुकदमा लड़ा था । कुछ रोज पहले अखबार में समाचार छपा था कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने फिर से बैरिस्टर बनकर बहस की थी । तब आजाद हिंद फौज को रिहा कर दिया गया । उस फौज के बड़े-बड़े अफसर कई बार रतननगर आ चुके थे । उन्हें मालायें पहनायी गई थीं,

और उनलोगों ने लंबे-लंबे तकरीर दिये थे । सभा में बड़े जोशीले नारे लगाये जाते थे—

लाल किले से आई आवाज,
आजाद हिंद फौज जिंदाबाद !
नेताजी के दाहिने हाथ,
ढीलन, सहगल, शाहनवाज ।

एक बार जब कैप्टन शाहनवाज रतननगर में आए थे, तो उनके सम्मान में बहुत बड़ी सभा हुई थी । अपने भाषण में उन्होंने बतलाया था कि बर्लिन में एक बार हिटलर ने नेताजी से हाथ मिलाया था और कहा था कि हिटलर की राजधानी से अंग्रेजों को निकाल-भगाने के लिए मैं आपकी सभी सहायता करूँगा । वहाँ से नेताजी पनडुब्बी जहाज में बैठकर जापान की राजधानी टोकियो चले आए थे । वहाँ टोकियो के राजा की मदद से उन्होंने एक बहुत बड़ी फौज इकट्ठी की और उस फौज का नाम रखा—आजाद हिंद फौज अथवा आई० एन० ए० । जय-हिंद की प्रथा नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने ही चलायी ।

फिर जब कैप्टन ढीलन आए, तो उन्होंने कहा कि नेताजी के बारे में यह बतलाना मुश्किल है कि वे लड़ाई में मारे गए । वे बहुत बहादुर और चालाक सेनापति थे । लड़ाई के मैदान में, जब चारों ओर से तोपों की गड़गड़ाहट होती रहती, बम के भयानक धमाके होते रहते, नेताजी उस वक्त भी पीछे नहीं रहते थे । हमलोगों के लाख सम्झाने पर भी वे अपने को बचाने की कोशिश नहीं करते थे । उनका कहना था कि ब्रिटिश सरकार ने अभी कोई ऐसा हथियार नहीं तैयार किया, जो इन्हे मार सके । लड़ते-लड़ते जब हमारी फौज कुछ थक जाती, तो नेताजी फौज के बीच में खड़े होकर कहते, “सिपाहियो, इस आजादी की जंग में मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकता । मैं तुम्हारे साथ भूखों मर सकता हूँ, प्यासा रह सकता हूँ और तुम्हारे सामने मरते दम तक अपने खून की

एक-एक बूँद का हिसाब दे सकता हूँ और कुछ नहीं। उधर देखो, कान लगाकर सुनो। तोपों की गड़गड़ाहट के पीछे से आवाज आ रही है। हिंदुस्तान हमलोगों को बुला रहा है। इम्फाल और काहिमा की पहाड़ियों के उस पार से हिंदुस्तान का लाल-किला हमसे खून माँग रहा है। बम के हर धमाके से आवाज निकल रही है—खून दो, आजादी लो। खून। खून ॥ खून ॥

कॉंग्रेस की सिफारिश पर ही चुनाव के बाद रतननगर कारखाने में आजाद हिंद फौज के सिपाहियों को नौकरी मिली। मगर, पीछे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि देश की आजादी के लिए जान से खेलनेवाले रतननगर के कारखाने में दरवानी करते थे। मैं आज भी एक ऐसी घटना याद किया करता हूँ कि कॉंग्रेसी होने के कारण एक साधारण टाईम-कीपर को कंपनी ने राशनिंग अफसर बना दिया था। राशनिंग अफसर होने के बाद उस टाईम-कीपर ने ठेकदारी भी ले रखी थी और ठेकदारों की तरह ही मजदूरों का खून चूसता था।

आजादी के संबंध में एक-एक खबर खोजकर पढ़ लेने के बाद मैंने खाना खाया और तब माँ से पूछा, “तुम और बुधिया कोयला चुनने क्यों चली गई थी?”

“क्या हर्ज है। बहुत औरते ऐसा करती हैं। चुन-चुनकर ही आज पाँच आने का कोयला बेचा है।

“हूँ ..।” मेरे मुँह से निकला। इससे अधिक मैं कुछ बोल न सका। गेनरे पर पड़ा-पड़ा मैं बड़ी देर तक मिलनेवाली आजादी के बाद एक नए हिंदुस्तान का नक्शा बनाता-बनाता न-जाने कब सो गया। शराब से बेहोश मजदूरों की बड़बड़ाहट बिल्कुल शांत पड़ गई थी।

हिंदुस्तान की आजादी के लिए चुनाव लड़ने की तैयारियाँ होने लगीं। रतननगर और बनगाँव के स्कूली लड़के सूरज निकलने से बहुत पहले ही उठते और झंडे लेकर प्रभात-फेरी करते थे। सन् १९४२ ई० के आंदोलन में गोली के घाट उतरतेवाले स्कूली लड़कों की पीढ़ी, तब होते-हुते गली-गली आजादी के गीत गाती फिरती थी। उनके कुरते की जेब पर बिल्ला लगा होता, जिस पर लिखा रहता 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक'। उनके चेहरे पर एक नई आशा और उमंग की रोशनी झलकती थी। कंधे पर या हाथ में तिरंगा झंडा लिये वे जुलूस लेकर नगर की गली-गली में घूमते और राष्ट्रीय गीत गाते थे।

इस समय दयानाथजी पेटारकर ने रतननगर के मैदान में मजदूर-संघ की ओर से पच्चीसों बार सभाएँ कीं। चुनाव-कोष में चंदा देने के लिए उन्होंने बड़े जोशपूर्ण भाषण किये और मजदूरों से एक-एक दिन की मजदूरी ली गई। पता लगा कि रतननगर के मालिक ने कई हजार रुपए चंदा दिये थे। उन दिनों मेरी सम्झ में यह बात नहीं आई कि पूँजीवाद की ताकत को नाश करनेवाली संस्था कांग्रेस को इस पूँजीपति ने क्यों इतने रुपए दिये? आस-पास के गाँवों से देहाती वोटरों को ले आने के लिए रतनमलजी ने अपनी ओर से बारह ट्रक मय ड्राइवर और पेट्रोल के दिये थे। जब वोट पडने लगा, तब रतननगर के थाने में एक तमाशा खड़ा हो गया। लाल बक्स कांग्रेस का था और हरा बक्स मुस्लिम-लीग का। रतननगर थाने के चारों ओर एक तरह से मेला लग

गया था । छोटे-छोटे पेड़ों पर बैठकर राष्ट्रीय स्वयसेवक लाउड-स्पीकर के जरिए नारे लगा रहे थे —

लाल बक्स में, वोट दो !

हरा बक्स, गद्दारों का !!

हिंदुस्तान, जिंदाबाद !!!

वोटरों को साथ ले आते हुए राष्ट्रीय स्वयसेवक थाने के पास पहुँचते-पहुँचते गाने लगते—

वोट का है जमाना, सँभल जाइएगा ।

कोई पेड़ा खिलाये, तो खा लीजिएगा ,

कोठरिया में जाकर, बदल जाइएगा ।

भीड़ में खड़ी जनता यह सब सुन-सुनकर खुशी की हँसी हँस देती । ऐसा मालूम होता था, जैसे आजादी के लिए लोगों ने जो मन्त्रते मानी थी, वह पूरी कर रहे हैं । वोट देनेवाला, फटे-चिटे कपड़े पहने देहाती आदमी स्वयसेवक के साथ लपकता हुआ पोलिंग-बूथ की ओर जाता था । लगता, जैसे पोलिंग-बूथ में जाते-जाते ही उसके सुख का सपना सच हो जाएगा । ट्रक से उतरते हुए देहातियों की भीड़ कुछ अजीब-सी लगती थी । किसी के कंधे पर अपने शरीर की नाप से भी बड़ी लाठी होती, किसी के कंधे पर फटा-पुराना गमछा, किसी के माथे पर मैले कपड़े की पगड़ी, जिसके एक छोर के कोने में, खइनी के लिए चुनउटी बँधी दीखती थी । ट्रक से उतरकर वे चारों ओर बड़े अचरज के साथ देखने लगते और तब राष्ट्रीय स्वयसेवक उनके हाथ खींच-खींचकर कहते, “चलो, चलो । पहले वोट दे लो । उधर क्या देखते हो ? चलो, तुमलोगो के भोजन का प्रबंध हुआ है । वोट देकर चलो, खिलवा दूँगा ।”

“ठहरो बाबू... ।”

“देर मत करो । समय खत्म हो रहा है ।”

“मैं भूल गया । मुझे फिर से बतला दो ।”

“क्या भूल गए ?” स्वयंसेवक पूछते ।

“गाँधी बाबा का बक्स किस रंग का है, वोट उसी में देना होगा न ?”

“हाँ, याद रखो । काँग्रेस का बक्स लाल है ।”

“बस, बस । याद कर लिया । गाँधी बाबा को छोड़कर हम दूसरे को नहीं जानते ।”

“बस, तो चलो । ठीक है ।”

और इस तरह काँग्रेस के स्वयंसेवक, जो स्कूली लड़के होते, वोट देनेवालों को झूट-पट पोलिंग-बूथ तक छोड़ आते थे । मैंने बड़ोदकर बाबू के कहने पर पैसे की हर तगी रहते हुए भी कारखाने से पाँच रोज की छुट्टी ले ली थी । देहात से आए हुए वोटरो को खिलाने के लिए इतजाम किया गया था । इस महुँगी के जमाने में भी सैकड़ों बोरे चावल आया था । मैं भोजन पकाने के लिए लकड़ी फाड़ता था । रसोई बनती जाती और लोग खाते जाते । जब काम चलने के लायक लकड़ी फाड़ लेता, तब दौड़कर थाने के पास वोट पड़ने का तमाशा देखने चला जाता था । इसी समय एक काँग्रेसी और एक लीगी में झगड़ा हो गया । अगर दारोगा ने बीच-बचाव न किया होता, तो मामला गंभीर हो जाता । मार-पीट की नौबत आ गई थी । झूठ क्यों बोलूँ, मैं भी दौड़कर एक लठिया खोजने चला गया था । बात यह थी कि एक मौलवी साहब अपनी बीबी के साथ मुस्लिम-लीग के बक्से में वोट देने आए थे । वोट देकर तो वे चले गए, मगर फिर दुबारे उनकी बीबी दूसरे मौलवी साहब की बेगम बनकर वोट गिराने चली आईं । उन्होंने अपना नाम भी दूसरा बतलाया । हालाँकि बेचारी बुरका बदलकर आयी थी, मगर काँग्रेसी सज्जन ने पहचान लिया और इस पर उन्होंने आपत्ति की । स्थिति गरम होने लगी, तो मौलवी साहब ने अपनी छड़ी उठायी और काँग्रेसी ने उनकी तुर्की टोपी उछालकर उन पर धूँसा ताना ।

मुक्त पर आजादी का नशा कुछ कम नहीं चढ़ा हुआ था। पैसे की बड़ी तंगी थी। तनख्वाह मिलने में भी देर। घर में * कटाकटी चल रही थी। लेकिन न मैं माँ की परवा करता, न बुधिया की और न सनीचरी की। चुनाव के भीड़-भाड़ में इतनी फुर्सत भी नहीं थी कि किसी सगी-साथी से कुछ हथफेर माँग लाता। मेरे पीछे में कोयला चुनने के लिए माँ अपनी बेटी और पतोहू को भी ले जाने लगी। मैं बड़ी रात को फुर्सत पाता, तो वहीं काँग्रेस कमिटी के दफ्तर में एक ओर पड़ रहता। पाँचवे रोज वोट पड़ने का काम खत्म हुआ और मैं करीब छः बजे सोपड़ी के दरवाजे पर पहुँचा। यहाँ आते-आते ही मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा दिल दहल गया। सोपड़ी के दरवाजे पर बैठी सनीचरी जोर-जोर से रो रही थी और मेरी माँ जमीन पर गिरी रो और छाती पीट रही थी। उन दोनों की रूलायी से ऐसी आवाज आ रही थी, जैसे कोई अपना आदमी मर गया हो।

“अरे, इस तरह क्यों रो रही हो, क्या बात है ?” मैंने पूछा।

“.....।” दोनों में से किसी ने कुछ न कहा। वे रोती रहीं।

“अरे, तुम कहाँ थे मँगरू ?” बगल से दौड़ा हुआ दीपन आया। अंधेरा हो चुका था। उसके हाथ में किरासन तेल की डिबरी थी।

“मैं तो थाने पर था। वोट पड़ रहा था न।”

“और यहाँ क्या हो गया, सो भी कुछ मालूम है ?”

“नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।”

“आओ, आओ, इधर देखो। अब क्या गाँधी बाबा बुधिया को ज़िंदा कर देगे ?”

“क्या बात...?” मैंने डरते हुए पूछा।

“राम राम, तुम भी कैसे आदमी हो...?” कहता हुआ दीपन मुझे वहाँ से जरा पीछे की ओर ले गया, जहाँ मैं खड़ा था। मेरे आने

* सुखमरी।

पर झोपड़ियों में रहनेवाले मजदूर जिनकी इस वक्त ड्यूटी नहीं थी, झोपड़ियों से निकल-निकलकर इधर ही आने लगे। वहाँ से करीब दस कदम आगे पूरब की ओर मुझे ले जाकर, दीपन ने ढिबरी की रोशनी में बुधिया की लाश दिखलायी। कोयला चुनने के लिए दो टोकरियों में बुधिया जोड़-बटोरकर रखी गई थी। सिर अलग था, घड़ अलग। जाँघें अलग थीं, पैर अलग। अपनी प्यारी बहन बुधिया को इस शकल में देखकर मुझ पर क्या गुजरा होगा, शायद यह बतलाने की जरूरत नहीं महसूस होती। प्यार, जो बहन के लिए होना चाहिए, वह धनी भाई के दिल में भी रहता है और गरीब भाई के दिल में भी। क्या बुधिया के लिए मेरे दिल में कोई मुहब्बत नहीं थी? थी, बड़ी-से-बड़ी मुहब्बत थी। दो मिनट तक दिमाग ने काम नहीं किया कि मेरी मजबूरियाँ मेरे साथ कैसा मजाक किया करती हैं।

“यह क्या दिखला रहे हो, दीपन?” मेरे मुँह से निकला।

“जो देख रहे हो, सो ठीक देख रहे हो।”

“मगर यह सब कैसे...?”

“बुधिया कोयला चुनते वक्त इंजन के नीचे आ गई...।”

घर में क़फ़न के लिए कोई एक गज भी नया कपड़ा नहीं था। माँ और सनीचरी रोना नहीं बंद कर सकी। मेट की जनाना पास आकर तो खड़ी हो गई, मगर छूत से या भय से—कह नहीं सकता, उसने मेरी माँ और सनीचरी को समझाने की कोशिश न की। मेरा कलेजा फट रहा था, मगर किसी तरह हिम्मत बटोरकर मैंने बुधिया की लाश के टुकड़े को सभालकर एक ही टोकरी में कर लिया। ढिबरी की रोशनी में मैंने अच्छी तरह देख लिया कि खून बिल्कुल सूख गया है। टोकरी के ऊपर मैंने अपना पुराना गमछा ढँक दिया और दीपन से पूछा,

“चलोगे, इसे गाड़ देने?”

दीपन बोला, “चलूँगा।”

“चलो।” मैंने कहा और साथ में एक कुदाल ले ली।

बुधिया की लाश से भरी टोकरी जब मैंने माथे पर उठायी, तो माँ और सनीचरी और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगीं। माँ तो अपनी कमजोर छाती पर इस तरह मुझे मारने लगी, जैसे सड़क या मकान की छत पर दुरमिस चलायी जा रही हो। उस वक्त उन दोनों की रुलायी में कितना दर्द था, कहा नहीं जा सकता था। जानवर माताएँ भी नहीं चाहतीं कि उनकी सतान को उनसे कोई अलग कर दे। फिर यह तो सदा-सदा की जुदाई थी। ऐसी जुदाई, जिसके बाद भेट होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। रात अपने रंग गहरा कर रही थी, अधियारा अपनी चादर फैला रहा था।

माथे पर मरी और कटी हुई बुधिया को टोकरी में लिये जब मैं दीपन के साथ नदी-किनारे पहुँचा, तो बिल्कुल अंधेरा हो चुका था। चारों ओर सूनापन ! हवा में साँय-साँय की आवाज !! हमलोग अब बालू पर चल रहे थे। सामने ही नदी की धारा चुपचाप बह रही थी। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जा रहे थे, आम-पास की भयंकरता बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे हमलोग पानी के पास पहुँच गए। मेरा पहला इन्कलाबी दोस्त रकटू यही जलाया गया था, पानी में एकाएक न-जानें कैसे और क्यों, बड़े जोरों से छपाक् की आवाज हुई। जैसे मेरा दोस्त रकटू पानी से निकलकर यह पूछना चाहता हो, “बतलाओ, तुम अपने और मुझ-जैसे मजदूर दोस्तों के लिए क्या कर रहे हो ?”

“तुम तो अब नहीं रहे रकटू, मगर अब हिंदुस्तान ने आजादी की लड़ाई जीत ली है। अब यहाँ अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव नहीं रह जाएगा। अब मजदूरों को सुख मिलेगा, शांति मिलेगी। तनखाइ बढ़ेगी। उनके वच्चों के पढ़ने का इंतजाम होगा, दवा के लिए अस्पताल खुलेंगे, इसीलिए तो देख नहीं रहे हो, कितने संतोष के साथ कोयले चुनकर पेट भरनेवाली अपनी प्यारी बहन बुधिया को इस बालू के नीचे सुलाने आया हूँ। देखो, यह भी तुम्हारी बहन ही हुई, इसका खयाल रखना। इंजन के खतरनाक पहियों से इसे हमेशा बचाना, उसकी

भयानक सीटी की आवाज इसके कानों में न पड़ने देना । खाने के लिए चिल्लाये, तो अँगोछे से इसका मुँह बाँध देना, मगर कोयला चुनने के लिए मत जाने देना । इसे कहना, यह उन दिनों का इंतजार करेगी, जब मजदूर 'मजदूर' होते हुए भी देश के स्वामी समझे जायँगे और किसी भी मजदूर का बच्चा बुधिया की मौत न मरेगा ।" मैंने सोचा, रकटू का भूत आएगा तो यही कह दूँगा ।

मगर पानी के भीतर से न रकटू निकला न रकटू का भूत । मैंने दीपन से पूछा, "यह कैसी आवाज हुई ?" उसने बहुत धीमे स्वर में कहा, "कोई बड़ी मछली कूद-फाँद रही होगी ।"

"हूँ...।" मेरे मुँह से निकला ।

"कहाँ गाड़ोगे ?" दीपन ने पूछा ।

"कहा गाड़ूँ ?"

"यही गाड़ो न, यहाँ का बालू नरम जान पड़ता है ।

"अच्छा ।" कहकर मैंने अपने माथे से टोकरी उतारी । फिर उसे बालू पर ही एक ओर रखकर हम दोनों ने जाँघ भर गहरा बालू खोदा । बुधिया को छिपाने के लायक काफी गड्ढा हो गया । दीपन ने कहा, "बस इतना ठीक है ।"

"हूँ...।" मैंने कहा ।

"चलो, अब नदी का पानी छिड़क दो ।"

"हाँ ।"

टोकरी को उठाकर मैं वहाँ ले गया, जहाँ बालू और कंकरीली मिट्टी से नदी का पानी टकरा रहा था । पाँच चुल्लू पानी से मैंने लाश को नहला दिया । फिर उसे उठाकर खोदे हुए गड्ढे के करीब ले आया । मैंने न-जानें, जान-बूझकर भी दीपन से क्यों पूछा, "अब गाड़ दूँ ?"

इसके बाद टोकरी और गमछा सहित मैंने बुधिया को उसे गड्ढे में डाल दिया और ऊपर से इतना बालू भर दिया कि बुधिया फिर निकलकर रेलवे-लाइन पर कोयला चुनने नहीं गई ।

“हाँ, अब तो सब ठीक ही हो गया।” दीपन बोला।

हाँ, तो अंग्रेज गवर्नरों की मातहत में जब काँग्रेस के नेता सरकारी पदों पर चले गए, तब बनगाँव की काँग्रेस कमिटी के दफ्तर का रंग ही बदल गया। टेबुल पर खादी के कपड़े बिछे, परदे खादी के टंगे और खादी तथा आजादी का प्रचार होने लगा। कपड़े का कंट्रोल तो अब भी था, मगर काँग्रेस कमिटी के सेक्रेटरी की दस्तखत पर कुछ लोग जरूरत से भी अधिक कपड़े लेने लगे। खादी की धोती और कुरता पहने अगर कोई आदमी कंट्रोलवाली दूकान के सामने खड़ा हो जाता, तो दूकानदार गद्दी छोड़कर उसके पास चला जाता और अब के साथ पूछता, “कहिए, आपकी क्या सेवा करूँ?”

“नहीं, कुछ नहीं।”

“तो आप यहाँ खड़े क्यों हैं?”

“यूँ ही।”

“नहीं, आपको कष्ट हो रहा है। चलकर अंदर दूकान में बैठिए न।”

“नहीं, मुझे कोई तकलीफ नहीं है।”

“देखिए, कोई सेवा लेनी हो, तो आशा दीजिएगा। दूकान आप ही की है।”

इसी साल मिल के बने हुए कपड़ों की इतनी चोरबाजारी हुई कि बाजार से कपड़े गायब हो गए। खुद सनीचरी के लिए मैंने एक साड़ी जो तीन रुपए चार आने की थी, आठ रुपए दो आने में खरीदी। कुछ ही रोज में मैंने देखा कि जिस काँग्रेस कमिटी के दफ्तर के पास अपनी एक साईकिल नहीं थी, उस दफ्तर में अपनी जीपगाड़ी आ गई। थाना काँग्रेस कमिटी के मंत्री जीपगाड़ी पर चढ़कर टहलने लगे। तभी वीलट भाई चार रोज की छुट्टी लेकर गाँव पर गए। उन्होंने आकर बतलाया कि दिधवारा थाने से बच्चा बाबू एम० एल० ए० हो गए। इधर अखबार पढ़ने, मजदूर-संघ में रहने और बड़ोदकर बाबू से बराबर राजनीतिक बातें पूछते रहने के कारण मुझे इतनी समझ हो गई थी कि एम० एल० ए०,

एम० एल० सी०, और एम० पी० किसे कहते हैं। वीलट भाई तो मूर्ख थे, मगर न-जाने उन्होंने मुझसे क्यों ऐसी बात कही। वे बोले, “चुनाव में लोगो ने ईमानदारी की लुटिया डूबो दी।”

“सो क्या ?” मैंने पूछा।

“यहाँ का तो मुझे मालूम नहीं। कौन घर के कैसे हैं। मगर बच्चा बाबू को तो ज्वार भर जानता है।”

“हाँ, जानता है कि सन् ४२ के आंदोलन में वे भी गिरफ्तार हुए थे। जेल गए थे।” मैंने कहा। बात भी सही थी।

“जेल चले जाने से क्या होता है ?”

“तुम क्या कहना चाहते हो ?” मैंने पूछा।

“ज्वार भर के लोग जानते हैं कि दर्जनो पुस्त से वे लोग किसानों को सता-सताकर, उनकी चूतड़ों पर बेंतें लगाकर लगान वसूल करते आए हैं, रैयतों से वे बेगार लेते आए हैं। उनकी अपनी जमींदारी में कौन ऐसा गिरहस्त किसान बचा, जिसके यहाँ बेदखली की नोटिस तामिल नहीं हुई ? मुझे तो बड़ा अचरज होता है कि उसी खांदान के लड़के बच्चा बाबू दो-एक बार जेल जाकर चुनाव में अगर एम० एल० ए० ही हो गए, तो वे जमींदारी राज कैसे खतम करेंगे ? मुझे तो दाल में कुछ काला मालूम होता है।” वीलट भाई बोले। उनकी आवाज में गंभीरता थी।

“तुम पागल तो नहीं हो गए हो, वीलट भाई ?” मैंने पूछा।

“सो क्या, मुझमें कौन ऐसा लच्छन है ?”

“यह तुम क्या कह रहे हो ?”

“ठीक तो कह रहा हूँ।”

“छिः छिः, ऐसी बात मुँह पर न लाओ।”

“अरे.....।” वीलट भाई ने अचरज जाहिर किया।

“राम, राम, ये लोग महापुरुष हैं। जो आदमी गाँधी बाबा के दल में चला जाता है, उसकी सारी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं।”

“मगर सब कोई गाँधी बाबा की तरह नहीं हो सकता । मैं तो समझता हूँ कि अगर गाँधी बाबा को यह बात मालूम हो जाए कि बच्चा बाबू का घराना ऐसा है, तो वे उन्हें फौरन निकाल-बाहर कर दें ।” बीलट भाई बोले ।

“हूँ.....।” कहकर मैं कुछ सोचने लगा ।

“और एक बात मालूम है या नहीं ?”

“क्या ?”

“सुनने में आया कि बच्चा बाबू के थाने में जाते ही दारोगा कुर्सी छोड़कर खड़ा हो जाता है । एक आदमी ने बतलाया कि वे जब थाने में कपड़े के कंट्रोल की दूकानें खुलवाने के लिए सिफारिश करने छपरा गए थे, तो कलक्टर और एस० डी० ओ० ने उनसे हाथ मिलाया था । सन् ४२ में इन्हीं लोगों ने न गोली चलवायी थी ?”

“सो ऐसे लोगों को सजा मिलेगी ।” मैं बोला ।

“सचमुच ?”

“हाँ, तुम तो यहाँ नहीं थे न । बीच में एक रोज बड़े मिनिस्टर आए थे । उन्होंने अपने भाषण में कहा कि अंग्रेजी हुकूमत के समय के जिन सरकारी अफसरों ने सन् १९४२ के क्रांतिकारियों को तबाह करने में अंग्रेज सरकार का हाथ बँटाया, उन सबों को कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाएगी, ताकि उनको पता चल जाए कि देशद्रोह करने का फल बुरा होता है ।” मैंने बतलाया ।

“तब तो बड़ी अच्छी बात है ।”

हिंदुस्तान अब दो भागों में बँट चुका था । एक नया देश बन गया । इस देश का नाम न आज तक किसी ने इतिहास में पढ़ा था और न अपने कानों से सुना था कि इस नाम का देश कहीं है । सो जिन्ना साहब ने मुसलमानों के लिए एक नया मुल्क पैदा कर ही लिया । हिंदुस्तान के कितने जिलों में बिना सिलसिले के बन गया—पाकिस्तान । अखबारों में समाचार छपा था कि पाकिस्तान की राजधानी कराची

बनायी गई है। सुना कि दो वर्ष के बाद जिन्ना साहब वहाँ के सबसे बड़े अफसर हो गे।

इधर कारखाने में मिल-मालिक के साथ हमलोग एक हक की लड़ाई लड़ रहे थे। दयानाथजी एकाएक न-जाने क्यों, अहमदाबाद चले गए और जाते वक्त बड़ोदकर बाबू को मजदूर-संघ का सब कुछ बनाते गए। खुद मुझे नहीं मालूम कि पढ़ने में मैं इतना तेज क्यों हो सका। चुनाव के बाद कारखाने की ओर से एक क्लब और खुल गया। जिसका नाम पड़ा, मजदूर-क्लब। इस क्लब में खेलने के तो सामान थे ही, पढ़ने के लिए एक पुस्तकालय भी खुला। अखबार भी मँगाये जाने लगे। उन दिनों पढ़ने से 'आर्यावर्त्त', 'इंडियन नेशन', 'सर्चलाइट' 'प्रदीप' और दैनिक 'विश्वमित्र' आता था। बनारस से 'आज', 'संसार' और 'साप्ताहिक संसार' आता। इलाहाबाद से 'लीडर' और 'भारत' और क्या बतलाऊँ? बहुत से अखबार आते थे। इस क्लब के मेम्बर सिर्फ मजदूर ही बन सकते थे। और वही मजदूर, जो रतननगर कारखाने में काम करते हों। मेम्बर होने पर क्लब को आठ आने प्रतिमाह देना पड़ता था। पुस्तकालय जो खुला, सो उसमें हिंदी के बहुत-से उपन्यास-नाटक, कविता, इतिहास और उपदेश की कहानियों से भरी पुस्तके पढ़ने को मिलतीं। मैं ऋटपट मेम्बर हो गया। ऐसी बात नहीं थी कि अब मैं खुशहाल हो गया था, बल्कि मेरे दिमाग में यह जहर कहो या अमृत, भर गया था कि जब तक मैं पढ़-लिख न जाऊँगा, तब तक अपनी तकलीफों को दूर करके अपने सभी मजदूर दोस्तों की भलाई के लिए कोई भी ठोस कदम नहीं उठा पाऊँगा। इसलिए भोजन की तरह ज्ञान पाना मेरे लिए जरूरी हो गया। कभी पढ़ने के लिए क्लब से उपन्यास ले आता, कभी नाटक, कभी उपदेश की कहानियाँ और कभी बड़े-बड़े लोगो की जीवनियाँ ले आता था। उपन्यासकार प्रेमचंदजी का नाम मैंने यहाँ से ही जाना। उनकी किताबे पढ़ने में बड़ा आनंद आता था। पीछे पता चला कि उपन्यासों में जिन घटनाओं का वर्णन रहता है

वे सब झूठी और लेखक के मन की गढ़ी होती हैं। मगर, जब मैं प्रेमचंदजी के उपन्यासों को पढ़ने लगता, तो ऐसा जान पड़ता कि वे मेरे मन में छिपी हुई बातों को जान गए थे। काम से न सही, मन से ही सही, उनकी पुस्तकों से रोज-रोज की कूढ़न में कुछ शांति मिल मिल जाती थी। क्लब में जाकर, जब मैं लाइब्रेरियन से प्रेमचंद की ही पुस्तकें माँगता, तो वह मेरी ओर घूरकर देखने लगता था।

हाँ, क्लब में राजनीतिक पुस्तकों की बड़ी कमी थी। मगर मुझ-जैसे मूर्ख के पढ़ने के लिए उतनी ही पुस्तकें काफी थीं। जब रात के दो बजे से मेरी ड्यूटी होती, तब आठ बजे ही सोपड़ी से निकल पड़ता। बिजली बत्ती के खम्भे के नीचे बैठकर डेढ़ बजे रात तक किताब पढ़ता और डेढ़ का भोपा बजते ही कारखाने में घुस जाता था। इधर अंग्रेजी की जानकारी भी बढ़ गई थी। बड़ोदकर बाबू ने व्याकरण खूब रटवाया। मैंने शब्दों के माने खूब रटे। मगर, एक बात और बतला दूँ। इतना ज्ञान पा लेने के बाद भी अपने लिए मेरे दिल में जो छोटापन था, उससे मैं बच नहीं सका था। पढ़े-लिखे बाबू लोगों के साथ मैं नहीं बैठ सकता था। उनसे बराबरी बातें करने की हिम्मत नहीं होती थी। मन में हरदम यह शोर हुआ करता, “मैंगरूआ, तू जाति का चमार और कुली है।”

लेकिन, मेरे इतना पढ़ लेने से झपसी भाई बहुत खुश थे। वे साथ के मजदूरों से मेरी तारीफ करते। एक बार जब उन्होंने अपने इंजीनियर से मेरे लिए यह सिफारिश की कि हुजूर यह तो जाति का चमार भर है। अंग्रेजी का अखबार पढ़ता है। सरकार, अगर इसको ‘हेल्पर’ बना लिया जाए, तो बेचारा आदमी बन जाएगा। तो इंजीनियर ने कहा था, “आदमी जरा बदमाश मालूम होता है। मुझे मालूम है, मजदूर-युनियन में बराबर आता-जाता है। चुपचाप इसे व्यायलर में गधक मौकने दो।”

कारखानों में ‘हेल्पर’ का माने होता है, कारखाने का वह कर्मचारी जो मिस्त्री (फीटर) के काम में सहायता करे। वह मिस्त्री को अपना उस्ताद मानकर सब कुछ करता है। काम सिखलाने की लालच से

वह मिस्त्री की बहुत खुशामद भी करता है। आगे चलकर यही आदमी मिस्त्री (फीटर) हो जाता है। उसकी तनख्वाह बढ़ जाती है। हेल्पर होने पर आदमी की इज्जत ऐसे भी बढ़ जाती है कि उसकी गिनती कुलियों में नहीं, कारीगरों में होती है। आखिर रुपसी भाई की सिफारिश बेकार साबित हो गई।

मजदूरों की तकलीफों का सरकार कुछ खयाल नहीं कर रही थी। मिल-मालिक की ओर से हमलोगों पर अत्याचार किये जा रहे थे। चोरी के जुर्म या अपने अफसर से बहस करने के अपराध में जब कोई मजदूर बर्खास्त कर दिया जाता, तो बर्खास्त होने की तारीख से लगातार उसे सप्ताह-दो-सप्ताह फुर्सत नहीं दी जाती थी, इसका माने यह नहीं कि उससे काम लिया जाता था। उसे बर्खास्त होने का एक कार्ड मिलता था। जिसे लेकर उसे राशन ऑफिस, लेबर ऑफिस, और कई दफ्तरों में इसलिए जाना पड़ता था कि कंपनी यह देख ले कि उस मजदूर के नाम पर कंपनी ने कुछ उधार तो नहीं दिया है, ताकि उसके आखिरी हिसाब से उतनी रकम या जो सामान वह ले चुका हो, उसका दाम काट लिया जाए। इन सब दफ्तरों के अफसर जब यह लिख देते कि उसके नाम पर कंपनी का कुछ भी बाकी नहीं है, तब उसे तनख्वाह दे दी जाती थी। मगर इस तरह की रिपोर्ट लेने में मजदूर उतने पैसे खा चुका होता था, जितने पैसे उसे कंपनी देनेवाली होती थी। अगर किसी मजदूर को कंपनी की ओर से क्वार्टर मिला है और उसकी नौकरी छूट गई, तो उसे नोटिस दी जाती थी कि वह चौबीस घंटे के अंदर क्वार्टर छोड़ दे। जो मजदूर ऐसा नहीं कर पाता, उसके सामानों को दरवान के जरिए बाहर फेंका दिया जाता और क्वार्टर में कंपनी का ताला लग जाता था। चोरी के जुर्म में जो मजदूर रात की छ्थूटी में पकड़ा जाता, उसे सुपरिन्टेण्डेंट के दफ्तर में बदल दिया जाता और बदन तोड़-तोड़कर दरवान उन्हें पीटते थे। कारखाने से निकलते वक्त छुट्टी के समय कुछ मजदूर जूट को तेल में भिंगो लेते या कहीं से कपड़े बटोरकर छुट्टी में रख

लेते, जिनसे मशीन के पुर्जे पोंछे जाते थे, और साथ में डेरे पर चुल्हा सुलगाने के लिए ले जाना चाहते। अगर उतनी भीड़ में भी दरवान देख लेता, तो उनके हाथ से उसे छीन लेता और भीतर ही सामने की ओर फेक देता था। जब दरवानों की ड्यूटी बदलने लगती, तो जाते वक्त वे खुद उन जूटों को उठाकर ले जाते। ऐसा मैंने कई बार देखा था।

ग्रिश एक प्रकार का बहुत ही गाढ़ा तेल होता है, जो कारखानों में रहता है। इससे मशीन के पुर्जे आसानी से चलते हैं। उनमें मोरचा नहीं लगता। जहाँ मशीन के दो पुर्जे आपस में रगड़ खाते हैं, वहाँ पर भी यह तेल दिया जाता है। इस तेल में एक और खूबी होती है। मिट्टी के दीये में डालकर इससे बड़ी आसानी के साथ तेल का काम लिया जाता है। यह बहुत तेज और जल्द जलता है। एक दिन एक दरवान ने मुझसे पूछा, “तुम कहाँ काम करते हो ?

“एसिड प्लांट में।”

“तुम्हारे यहाँ ग्रिश रहता है ?”

“हाँ, रहता है।”

“एक काम करो तो दोनो आदमी का काम चले।” उसने कहा।

“क्या ?” मैंने पूछा।

“कल से मेरी ड्यूटी मेन-गोट पर रहेगी। अगर तुम मेरी ड्यूटी में कारखाने से निकलो, तो जूट के भीतर खूब ग्रिश लपेटकर ले आना। मैं तो तुमसे छीनकर फेक दूँगा। मगर पीछे उठाकर ले आऊँगा। दरवानी क्वार्टर में रहता हूँ—तीन नंबर। पीछे आकर थोड़ा तुम भी ले लेना।”

“लेकिन यह तो चोरी है।”

“चोरी .. ?” वह रुका।

“हाँ, चोरी है। मुझसे यह नहीं होगा। मैं खुद अपने लिए भी नहीं ले आता।”

“चुल्हा कैसे सुलगाते हो, यार ?”

“लत्ते से ।”

“वाह....”

“हों...” कहकर मैं चल पड़ा ।

इन्हीं दिनों सोशलिस्ट पार्टी की तेजी होने लगी । पटने से एक साप्ताहिक आता था । हिंदी और अंग्रेजी दोनों में—‘जनता’ । उसमें कांग्रेस सरकार की कमजोरियों का पर्दाफाश किया जा रहा था । पंडित जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गाँधी की राजनीतिक पालिशी की खिल्लियाँ उड़ायी जा रही थी । कांग्रेस अधिकारियों की हुकूमत के तरीके पर छींटे डाले जा रहे थे और पक्की खबर के तौर पर लोगो में यह विश्वास पैदा किया जा रहा था कि सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता वही हैं, जो पहले आजादी मिलने के दिनों तक नेहरूजी के साथ स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे थे । मजदूरों के ऊपर यह प्रभाव पड़े बिना बाकी न रहा कि कांग्रेस की नीति में यदि कोई गहरा दाग न होता, तो इतना योग्य नेता उससे अलग न हो गया होता । धीरे-धीरे सोशलिस्ट पार्टी का भी दफ्तर खुल गया और कई मजदूर सोशलिस्ट हो गए । तभी मजदूरों की ओर से मिल-मालिक के यहाँ ‘बोनस’ की माँग भेजी गई । कंपनी की सालाना आमद में जो हिस्सा मजदूरों को दिया जाता है, उसे बोनस कहते हैं । इसमें कुछ महीने की तनख्वाह मजदूरों को दी जाती है । लेकिन, कंपनी ने बोनस देने से इन्कार कर दिया । उत्तर मिला कि कंपनी को इस साल बहुत घाटा हुआ है । मजदूर-संघ की सभा में यह फैसला किया गया था कि अगर कंपनी हमारी माँगों को स्वीकार नहीं करती, तो हमलोग हड़ताल करेंगे । कारखाने बंद कर देंगे । मजदूरों की दूसरी सभा बुलाकर बड़ोदकर बाबू ने कंपनी का फैसला मजदूरों को इस तरह सुना दिया—

“मजदूर भाइयो ! मैंने आपकी उचित माँगें कंपनी के सामने रखीं । बहुत समझाने की कोशिश की । मगर मिल-मालिक के कानों पर जूँ तक न रेंगा । तब यह हुआ कि यह मामला पंचायत में चली जाए । सरकार

ने ऐसे मामलो का निपटारा करने के लिए जजों को बहाल कर रखा है । मैंने आप लोगों की ओर से कंपनी की यह सलाह मान ली । पंचायत पर मेरा विश्वास है और आप लोगों को भी विश्वास होना चाहिए । ऐसी हालत में, जबकि हमारा देश संकट के काल से गुजर रहा है, हमें नई आजादी को संभालना है, मेरी समझ में हड़ताल करना उचित नहीं । शांति के तरीके से जो झगड़ा निबट जाय, वही अच्छा है । हम सरकार की ओर से बहाल किये गये पंच से भी आपकी माँगों के लिए लड़ेंगे और हमे पूरा यकीन है कि आपको बोनस मिलकर रहेगा । इसलिए आप लोगों से मेरी प्रार्थना है कि रोज की तरह आज भी आप काम पर जायें और शांतिपूर्वक पंच के फैसले का इंतजार करें । ”

बड़ोदकर बाबू के मुँह से इतनी बातें सुनकर सभा में आए दस हजार मजदूर बिल्कुल सर्द हो गए । सभी आपस में काना-फूसी करने लगे, वे सभा के मैदान को छोड़-छोड़कर न-जाने, क्या-क्या भुनभुनाने लगे । सभा के बीच से कोई नारा नहीं सुनायी पड़ा । महकमियत फैलने लगी ।

उस रोज हड़ताल की बात उठ जाने बाद मजदूर सोशलिस्ट पार्टी की ओर अपने-आप खिंचने लगे। मगर, न-जाने क्या कारण था कि बड़ोदकर बाबू के चेहरे पर उदासी का एक चिह्न भी न दीख पड़ा। मैं उनका मुँह लगूँ हो गया था। मुझे इस बात की बड़ी फिक्र हो गई। जिन मजदूरों को मैंने बड़ोदकर बाबू की देख-रेख में चलनेवाले मजदूर-संघ का मेम्बर बनाया था, उनसे बात-बात पर बहस होने लगी। वे बड़ोदकर बाबू की झडाबरदारी को कबूल करने के लिए अब तैयार नहीं हो रहे थे। इसी वक्त सोशलिस्ट पार्टी की ओर से एक बहुत बड़ी सभा हुई, जिसमें कांग्रेस की नीतियों की सोशलिस्ट नेताओं ने ऐसी खरी-खोटी आलोचना की कि मजदूरों की सहानुभूति पा लेना उनके लिए कुछ मुश्किल नहीं पड़ने लगा। सभा में एक साथ हाथ उठाकर मजदूरों ने सोशलिस्ट पार्टी के बतलाये हुए रास्ते पर अपना संघर्ष चलाने का निश्चय कर लिया। रतननगर की हालत में विचित्र सरगमी पैदा हो गई। मैदान में, कारखाने में, भोपड़ी में, रास्ते में, शराबखाने में और कारखाने की ओर से मिले हुए गंदे और तंग क्राटरों में मजदूर इस विषय पर बातें करते होते कि मजदूर-संघ हमारी भलाई करनेवाला है या सोशलिस्ट मजदूर युनियन। सोशलिस्ट पार्टी की ओर से जो दफ्तर खोला गया था, उसका नाम उन लोगों ने 'सोशलिस्ट मजदूर युनियन' रखा था। लेकिन, मुझे यह जानकर भी खुशी हुई थी कि सरकार ने अभी 'सोशलिस्ट मजदूर युनियन' को रजिस्ट्रेशन नहीं दिया है। इसका अर्थ यह था कि सरकार ने उस युनियन को कानूनी मान्यता नहीं दी है। अभी वे लोग गैरकानूनी ढंग के मजदूर-नेता समझे जाते हैं।

रूपसी भाई अपनी जनाना और बाल-बच्चों को कार्टर में ले आए थे। मैंने एक दिन मजाक किया, “रूपसी भाई, भउजी के हाथ का बना कभी मुझे चखाओ न। अरे भाई, छोटे भाई का भउजी में आधा हिस्सा होता है।

“अरे भाई, तुम भउजी को ले न जाओ। बाल-बच्चे भी बिना मिहनत के मिल जायेंगे।” रूपसी भाई बोले।

“हे हे हे हे...।” मैं हँस पड़ा।

“दाँत क्या * चिआरता है, चल आज खा ले। भतीजे-भतीजी को भी देख लेना।”

“रही बात पक्की।” मैं बोला।

“पक्की नहीं तो कच्ची ? चल। जो साग-सत्तू बना होगा, उसी में शामिल हो जाना।”

“और हमलोग हैं किस लायक रूपसी भाई ?” मेरे मुँह से निकला।

“सामने ही टंकी में तेजाब खौल रहा था। गंधक और तृतीया की दुर्गन्ध नाक में समा रही थी। मैं व्यायलर में ट्राली पर गंधक भर-भरकर झोक रहा था। उसका पीला-पीला और तीखा धुआँ मेरे मुँह और नाक की राह घुसकर मेरे फेफड़े की ताकत बढ़ा रहा था। तभी एक ओर से इजीनीयर आया और दूसरी ओर से सुपरवाइजर। रूपसी भाई दूसरी ओर भागे और मैं ट्राली में जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर गंधक के टुकड़े भरने लगा। सुपरवाइजर मेरी पीठ के पीछे आकर खड़ा हो गया।

“मैंगरू, तुम बहुत बातें करते हो। काम करने में तुम्हारा जी नहीं लगता क्या ?” उसने पूछा।

“सरकार, कर तो रहा हूँ...।”

“हाँ, हाँ, काम करो। कंपनी से काम के बदले पैसे लेते हो, बात करने के बदले नहीं।”

“जी, सरकार.....।”

मैं अभी बोलना ही चाह रहा था, मगर सुपरवाइजर एक अजीब हीन भाव से मुझे देखता हुआ आगे बढ़ गया। सिर्फ उसके नए अंग्रेजी जूते की चरमराहट मेरे कानों में दो घड़ी तक सुनायी पड़ती रही थी। पावर-हाऊस के स्टीम-बैकुम की आवाज ‘सो-सो, सी-सी’ करती हुई आदमी और मशीन का मुकाबिला करा रही थी। लोहे की गरम-गरम ट्रालियाँ मेरी तलहथियो में खून को पी जानेवाली गर्मी पहुँचा रही थीं। व्यायलर के दूसरी ओर गंधक का पानी पतले पाईप की टोटी से बूँद-बूँद कर गिर रहा था।

रोज की तरह शाम को फिर कारखाने में साढ़े पाँच और छः का भोपा बजा। कारखाने से बाहर निकलते ही मैं रुपसी भाई के साथ क्वार्टर की ओर चल पड़ा। रास्ते में कई सोशलिस्ट मजदूर मिले, जो पहले मेरे कहने पर मजदूर-संघ के मेम्बर बन गए थे। कुछ तो मुझे देखकर आँखे फेर लेते, कुछ मुस्कुरा पड़ते, कुछ अपनी धँसी-धँसी आँखे झुकाकर आगे बढ़ जाते थे। उनलोगों के लिए मेरे दिल में किसी तरह की घृणा का भाव नहीं था, मगर इतना दुःख मुझे जरूर होता कि वे लोग कांग्रेस की ताकत को वगैर समझे एक दूसरी पार्टी में यो ही शामिल हो गए। अकेले गाँधीजी का ही मुल्क पर इतना बड़ा प्रभाव है कि एक सोशलिस्ट पार्टी क्या, दसों सोशलिस्ट पार्टी भी कंपनी को नहीं झुका सकती। फिर कभी कच्ची राजनीति का पानी दिमाग पर असर कर जाता। पार्टी का कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए। जो मजदूर की भलाई करके दिखलाये, मजदूर उसे ही अपना झंडाबरदार मानेंगे। किसी के मनाये कोई क्या मानेगा...१

“नमस्ते, साथी !” एक मजदूर ने मेरे आगे आकर कहा। उसके पैट पर ग्रिश और तेल के गहरे दाग लगे हुए थे। देखने में वह बिल्कुल काला था। उसकी कमीज कंधे पर फटी हुई थी। उसकी धँसी हुई, भूरी-भूरी और छोटी-छोटी आँखों में एक अजीब फैसला किया हुआ रंग झलक रहा था। नमस्ते करने के बाद उसने नीचे से ऊपर तक मुझे

घूरकर देखा । मैं उसे पहचान गया । वह पेपर फैक्टरी के बंबू-कशर में ऑयल-मैन था । ऑयल-मैन का काम मशीन के पुर्जों में, जहाँ-जहाँ ड्राइवर या मिखी बतलाये, तेल देना होता है । मेरे कहने पर वह मजदूर-सघ का मेम्बर बना था । मैंने उसके नमस्ते का जवाब दिया ।

“और सुनाओ, क्या खबर है ? साथी कहना किसने सिखलाया ?” मैंने पूछा ।

“पार्टी ने ।”

“पार्टी ने ? क्या तुम भी सोशलिस्ट हो गए ?” मैंने पूछा ।

“हाँ, तिरंगे झंडे में अब क्या रखा है ? गाँधी बाबा हमलोगों के लिए क्या कर रहे हैं ? अपने साथ के दोस्तों को रासटरपति, गवर्नर और मुनिस्टर बना दिया । उससे हम मजदूरों का क्या ?”

“तो फिर तुम्हारी पार्टी ने क्या फैसला किया, हड़ताल करोगे ?”

“जरूर । हड़ताल होकर रहेगी । सोशलिस्ट पार्टी का रिश्ता मुल्क के बड़े-बड़े सेठों से नहीं, सीधे मजदूरों से है ।” वह बोला ।

“और, अगर हड़ताल नाकामयाब साबित हुई, तो ?”

“हड़ताल नाकायाब कैसे होगी ? हम नाकामयाब होंगे, तो कारखाना नाकामयाब हो जाएगा, कारखानों में ताले लग जायेंगे, पावर हाऊस ठंढा हो जाएगा और रतननगर के मजदूरों की हार, सारे मुल्क के मजदूरों की हार होगी; क्योंकि आज सोशलिस्ट पार्टी की युनियन ही मुल्क के हर कल-कारखाने के मजदूरों की रोजी और रोटी की लड़ाई लड़ रही है ।” उसने कहा ।

“किसी की शिकायत करना आसान है, मगर किसी की अच्छाई पहचानना आसान नहीं ।” मैं बोला ।

“हाँ, किसी को बहलावा देना आसान है, मगर किसी के लिए कुछ करना आसान नहीं ।”

“अच्छा, देखो क्या होता है । बोनस दिलवाने के लिए बड़ोदकर बाबू कुछ ठंढा न रखेंगे ।” मैंने कहा ।

“अच्छा चलूँ, जरा बनगाँव जा रहा हूँ...” वह बोला।

“अच्छा, फिर मिलूँगा।”

रूपसी भाई के साथ मैं उनके क्वार्टर में आया। उनके बच्चे तो मेरा मुँह ताकने लगे और भउजी लजाकर एक ओर बैठ रही। उसने बिच्चे भर का घूँघट भी काढ लिया था। मैंने रूपसी भाई के बच्चों को देखा। गिनती में वे चार थे। तीन लड़की और एक लड़का। लड़का तीनों लड़कियों से बड़ा था। उम्र उसकी करीब तेरह-चौदह साल की थी। बाल छोटे-छोटे थे। गाल पिचके थे। दुबला-पतला था और फटे-चिटे कपड़े पहने रहने की वजह बदसूरत जान पड़ता था। उन तीन लड़कियों में जो सबसे बड़ी थी, वह एक फटी हुई पुरानी और मैली साड़ी पहने थी। उससे छोटी के बदन में सिर्फ एक साधारण छीट की कुर्ती थी और जो सबसे छोटी थी, वह नंगी थी। उसे सर्दी हो गई थी और उसकी नाक से पोंटा निकल रहा था। इस क्वार्टर के पूरे ब्लॉक में दो-तीन मजदूर ऐसे और थे, जो अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर रहते थे। कमरे से बाहर निकलकर बर्तन मॉजने के लिए सामने थोड़ी-सी जगह थी। वहाँ रूपसी भाई ने फूस की टट्टी बनाकर आड़ कर दिया था। अपनी जनाना को लजाते देखकर वे बोले, “लजाओ नहीं, यह मेरा छोटा भाई है। और जानती हो, यह कहाँ का है?”

“.....” भउजी फिर चुप रही।

“अपने ही जिले का है। आमी का।”

“.....” भउजी फिर चुप रही।

“अरे लजाओ नहीं, यह तो तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को देखने आया है।” रूपसी भाई बोले।

“बैठने के लिए कहो...” कहती हुई भउजी ने घूँघट हटा लिया।

मैंने रूपसी बहू भउजी को देखा, जी भरकर देखा। मजदूर की बीबी थी भउजी। गले में सिर्फ एक चाँदी की हँसुली थी और नाक में सिर्फ एक बहुत पतली लकड़ी, १ इंच से भी छोटी। हँसुली पर मैं

जमी थी। रूपसी भाई ने उससे कहा, “मैं मंगरू को लेकर मोड़ पर नाश्ता करने जा रहा हूँ। अब जब कभी आएगा, तो इसके सामने होश्रोगी न ?”

“हूँ...।” भउजी बोली।

एक दूकान पर आकर हमलोगों ने बिस्कुट खायी और चाय पी। रूपसी भाई ने मुझे बीड़ी पिलायी। इसके बाद वे अपने कार्टर की ओर चले और मैं रतननगर मजदूर-सघ की ओर चला।

अब शाम हो चुकी थी। सड़को पर बत्तियाँ जलने लगी थीं। मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था और रतननगर के मजदूरों की असली हालत के बारे में सोचने की कोशिश कर रहा था। मजदूरों को पूरी उम्मीद थी कि इस साल बोनस जरूर मिलेगा। मैंने भी सोचा था कि बोनस के रूप से एक बढ़िया कबल जरूर खरीद लूंगा। मगर, अब जाड़े का अंत हो रहा था। न हड़ताल हुई, न बोनस मिला। कंपनी ने घाटा दिखला दिया था। और, फिर चारों ओर से सुनाई पड़ रहा था कि अब सिमेण्ट फैक्टरी का डबल सेक्शन होनेवाला है और वनस्पति घी का कारखाना खुलेगा। उस रोज सोशलिस्ट नेता ने मजदूरों की सभा में कहा था, “साथियो जरा दो मिनट गंभीर होकर अपने मिल-मालिक के बारे में सोचो। जब तुमलोगों ने बोनस की माँग की, तो कंपनी ने आपको घाटा दिखलाया। मगर आप यह भी सुनते होंगे कि सिमेण्ट फैक्टरी की डबल मशीने बैठनेवाली हैं। नकली घी बनाने का कारखाना खोला जानेवाला है। कंपनी को तो हर साल घाटा हो रहा है और कंपनी इतनी सीधी है कि हर साल घाटा बर्दाश्त कर नए-नए कारखाने खोलती जा रही है। तुम्हारी माँग को टालने के लिए तुमलोगों का मामला सरकार द्वारा नियुक्त किये गए पंच के हवाले कर दिया गया है। यह सरकार किसकी है, महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू की। और, महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू कौन हैं, जो हिंदुस्तान की इस नई राजनीति में अब तक मुल्क के इने-गिने पूँजीपतियों के हाथ के कठपुतले

बने रहे ।.....” और तब बड़े जोरो से तालियों की गड़गड़ाहट हुई थी । उस रोज बड़ोदकर बाबू के भाषण के बाद जो मजदूरों में मासूमियत छा गई थी, वह मासूमियत आज भागती-फिरती हुई नजर आ रही थी । मजदूरों ने उस रोज नारे बुलंद किये थे—

सोशलिस्ट पार्टी, जिन्दाबाद !

मजदूरों की पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी !!

मेरे आगे-आगे दो मजदूर आपस में धीरे-धीरे बातें करते हुए चले जा रहे थे । उनकी भुनभुनाहट से मुझे पता चला कि वे पार्टी की बातें कर रहे हैं । मैं बहुत श्रंदाज से उनके पीछे इतनी दूरी पर होकर चलने लगा कि उनकी गुफ्तगू सुन सकूँ । उन दोनों में से एक ने कहा, “आज तो दूधनाथ बतला रहे थे कि अपनी पार्टी का रजिस्ट्रेशन भी हो गया ।”

“सच ?” दूसरे ने खुश होकर पूछा ।

“हाँ, अब देखना मजदूर-संघ कितने दिन टिकता है ।”

“और पंचायत में मामला चला गया है, सो ?”

“उससे क्या, मामला को पंचायत में मजदूर-संघ ने भेजा है । हमारी पार्टी तो सोशलिस्ट पार्टी है । सोशलिस्ट पार्टी के साथ तो कंपनी ने कोई समझौता नहीं किया है । हमारी पार्टी पंचायत को नहीं मानेगी, हड़ताल होकर रहेगी ।”

“तब तो मजदूर-संघ का नाम भी डूब जाएगा ।”

“समझो, डूब गया । कोई भले मत माने, बड़ोदकर बाबू तो कंपनी में मिल गए हैं । सुना है, एक मुश्त मोटी रकम मिली है ।”

बड़ोदकर बाबू को एक मुश्त मोटी रकम मिलने की बात सुनकर मेरा कलेजा मुँह को आने लगा । मैं अब ऐसा हो गया कि आगे अपने मजदूर-संघ की शिकायत सुन नहीं सकता था । या तो उन लोगों से झगड़ पड़ता या वहीं जमीन पर बैठ रहता । इसलिए मैं अब बहुत पीछे हो गया और दूसरी राह पकड़कर रतननगर मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा । भीतर जाकर मैंने देखा, बड़ोदकर बाबू कुर्सी पर ऊन का लंबा

कोट पहने बैठे हैं। सामने डेस्क पर चाय रखी है और एक तश्तरी में दो लंबे-लंबे रसगुल्ले रखे हुए थे। उनके बाएँ हाथ की दो उँगलियों के बीच अधजली सिगरेट दबी थी और वे धीरे-धीरे उसे पी रहे थे।

“नमस्कार बाबू।” जाकर मैंने कहा।

“खुश रहो मॅगरू ! सुनाओ, क्या खबर है ?”

“सब ठीक है।”

“बैठो।” वे बोले।

मैंने एक स्टूल खींच ली और उसी पर बैठ रहा। तश्तरी में जो रसगुल्ले रखे हुए थे, उन्हें देखकर अब मैं यह फैसला करने लगा कि सचमुच वे रसगुल्ला हैं या नहीं; क्योंकि वे बहुत सूखे और चिकने जान पड़ते थे। तश्तरी में एक छुरी भी रखी हुई थी। मैंने पूछा, वह क्या है बाबू ?”

“कौन ?

“वही, जो तश्तरी में रखा है।”

“तुम नहीं पहचानते ?”

“नहीं।”

“तुम बड़े उल्लू हो.....।”—बड़ोदकर बाबू मुस्कुराकर बोले, “इसे भी नहीं पहचानते, अरे यह सर्दी की दवा है।”

“अच्छा, अस्पताल से मिली है न ? देखिए, अस्पतालवालों को जरा, आदमी पहचानकर दवा देते हैं। एक बार मैं अपनी सर्दी की दवा लेने गया था, तो मुझे लाल-लाल पानी दे दिया।” मैं बोला।

बात भी सही थी। इस पर बड़ोदकर बाबू फिर हँस पड़े। बोले, “तू मेरा शिष्य है। गुरु मानता है, इसीलिए इसका नाम और गुण बतला देता हूँ।”

“बतलाइए।” मैंने कहा।

“यह मुर्गी का अंडा है। जाड़े के दिनों में इसका सेवन करना चाहिए। सर्दी असर नहीं करती और रात को पेशाब बहुत कम लगती है।

खाओगे, खाओ तो तुम्हें भी आधा काटकर दूँ। मैं तो सिगरेट पीकर खाऊँगा और तब चाय।” वे बोले।

“ना, मैं नहीं खाऊँगा...”। मगर, आप तो अहिंसावादी न हैं, बाबू। सुना है, गाँधीवादी विचारधारा को माननेवाले जीव-हत्या महापाप समझते हैं। आप अंडे कैसे खाएँगे...” कहकर मैंने पूछा।

“अरे, सब चलता है यार ! इस दफ्तर में कौन गाँधीवाद का इम्तहान लेने आ रहा है। दफ्तर से बाहर, जब प्लेटफार्म या किसी सभा के पंडाल पर ऐसी भूल कल्लू और तुम टोको, तो कुछ इनाम भी दूँ... हे हे हे...” कहकर बड़ोदकर बाबू हँस पड़े।

“एक बात मालूम है ?” मैंने पूछा।

“क्या ?”

“सोशलिस्ट पार्टी को सरकार ने रजिस्ट्रेशन दे दिया।”

“यह बात मुझे तुमसे पहले मालूम है।” कहकर बड़ोदकर बाबू ने मेरी आँखों में जासूस की तरह देखा।

“अगर गुस्सा न हों, तो एक बात और बतलाऊँ।”

“क्या, बतलाओ।”

“आप गुस्सा होंगे। मगर मैंने सुना है, मजदूरों में यह बात फैल रही है।”

“कहो, काम की बातें छिपायी नहीं जाती।” वे बोले।

“दो सोशलिस्ट मजदूरों बातें कर रहे थे कि बड़ोदकर बाबू कंपनी से मिल गए हैं। मिल-मालिक की ओर से उन्हें एक मुश्त मोटी रकम मिली है।”

“कहने दो। यह सब राजनीति के दाव-पेच हैं। रूस के मजदूरों में ट्राट्स्की को बेईमान साबित करने के लिए स्टालिन ने अफवाह फैला दी थी कि वह मेन्शेविक हो गया है और जार के समर्थकों से लाखों रूबल पा रहा है।”

“अच्छा।” मैंने अचरज से कहा।

“हालाकि ट्रास्ट्की ही सच्चा कम्युनिस्ट या बोल्शेविक था। आखिर हुकूमत के पद पा लेने पर स्तालिन ने उसे मेक्सिको में गोली मरवा दी। लेकिन, मास्को पब्लिकेशन्स की पुस्तकें पढ़कर देखो, उनमें कहीं भी स्तालिन के इस पाप का वर्णन नहीं मिलेगा। सच पूछो, तो ट्रास्ट्की कट्टर बोल्शेविक था। अन्न और पैसे के बिना तबाह मजदूर यह सब कहाँ जानते हैं ?” बोले बड़ोदकर बाबू।

अब तक मैंने मास्को का नाम भर सुना था। यह नहीं जानता था कि वहाँ किताबें भी छपती हैं। वे हिंदुस्तान में भी बिकती हैं। दूसरी बात यह कि अगर कम्युनिस्ट पार्टी उस वक्त हिंदुस्तान में थी भी, तो तब इस पार्टी का का मुल्क में कोई बोलबाला नहीं था। अगर किसी मजदूर की जोश भरी बातें हमलोग दबाना चाहते, तो हँसकर कहते, “बस बस, हम जान गए कि तुम कम्युनिस्ट हो।” और, वह मजदूर शरमा जाता, जैसे वह बेवकूफ बनाया गया हो। आपस में किसी मजदूर को ‘कम्युनिस्ट’ कहकर हमलोग उसका मजाक उड़ाते थे। लोगों में आम तौर से यह चर्चा हो जाया करती थी कि कम्युनिस्ट बड़े बदतमीज और गुंडे होते हैं। उन दिनों मेरे मजदूर साथियों के दिल में कम्युनिज्म के लिए न कोई सहानुभूति थी और न उसके विषय में अधिक जानने की कोई तमन्ना। बोल्शेविक और मेन्शेविक किसे कहते हैं, मैं कुछ नहीं जानता था। मगर, बड़ोदकर बाबू के कहने के ढंग से मैंने इतना अंदाज जरूर लगा लिया कि मेन्शेविक रूस के पूँजीपति होंगे और बोल्शेविक रूस का मजदूर-वर्ग, पिछड़ा वर्ग।

“नहीं, मैंने तो कोई भी रूसी किताब नहीं पढ़ी।” मैं बोला।

“पढ़नी चाहिए। जब इस मैदान में हो, तो जानकारी रखो। समय-समय पर मजदूरों को समझाना होगा, सभाओं में बोलते वक्त मिसाल देने होंगे। कहोगे तो तुम अपनी पार्टी के फायदे की ही बात, मगर बुरी और गलत बातें भी जरा अच्छे तर्ज के साथ कही जाती हैं, तो

साधारण लोग हाथ में आ जाते हैं। फिर साधारण लोगो का मैदान बहुत बड़ा है—यही मजदूर और किसान।”

इतनी बातें कहकर बड़ोदकर बाबू ने मेरी ओर इस तरह देखा, जैसे उन्होंने कोई बहुत ही गुप्त बात मुझे बतला दी। उनके ललाट पर लंबी-लंबी तीन रेखाएँ खिंच गईं। वे बोले, “देखो, यह बात किसी से बतलाना नहीं। राजनीति में तो यही सब चलता है।”

“जी.....” मैं बोला। बड़ोदकर बाबू छुरी से काट कर अडे खाने लगे।

डेस्क पर एक ओर चिट्ठी-पत्री रखी थी और दूसरी ओर पुस्तके। दूसरे कमरे में बड़ोदकर बाबू के दो सहायक कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे थे। अडे खाकर बड़ोदकर बाबू चाय पीने लगे और मुझसे पूछा, “और बतलाओ, मजदूरों का भीतरी हाल क्या है?”

“मजदूर सोशलिस्ट होते जा रहे हैं। नए महीने का चंदा मुझे कोई नहीं दे रहा है।”

“क्यों?”

“कहते हैं, हमारी पार्टि सोशलिस्ट पार्टि है।”

“मगर तुम पूछते नहीं, सोशलिस्ट पार्टि ने अभी तुम्हारे लिए क्या किया है?”

“वे कहते हैं, करेगी। यह सरकार तो पूँजीपतियों की सरकार है। काँग्रेस में जितने लोग बड़े-बड़े पद पर हैं, वे सभी धनी घर के हैं। सरकार उनकी है। और, पूँजीपतियों की सरकार ने जो पंच बहाल किया है, वह मजदूरों के पक्ष में कोई भी फैसला नहीं देगा। वे दलील देते हैं कि जो मजदूरों का नुमाइंदा होता है, वह मजदूरों की सलाह पर चलता है, सरकार की सलाह पर नहीं।” मैंने कहा। सचमुच कारखाने-के भीतर, जो मजदूर सोशलिस्ट हो गए थे, उनसे इस तरह की बहस हो जाया करती थी। दिल्ली, पटना और भी दो-तीन जगह से सोशलिस्ट पार्टि के अखबार आने लगे थे। मजदूरों में उनकी खूब खपत होने

लगी थी। मजदूर बड़े चाव से, पैसे का अभाव रहने पर भी पार्टी के अखबार को खरीदते। जो खुद नहीं पढ़ सकते, दूसरों से पढ़वाकर सुनते थे। दो-चार मजदूर सोशलिस्ट अखबारों को बेचने के अगुवा बन गए थे। उन अखबारों की बड़ी बिक्री होती। कारखाने के मेन-गेट पर, पार्टी-आफिस के सामने और वहाँ, जहाँ मजदूर जाकर तनखाह लेते थे। इधर दो-चार रोज में ही, रतननगर के मैदान में, सोशलिस्ट पार्टी की एक बहुत बड़ी सभा होनेवाली थी, जिसमें सुना जाता था कि सोशलिस्ट मजदूर युनियन के नेता हड़ताल की तारीख का फैसला सुनायेंगे।

“देखा जाएगा। यहाँ आकर हमलोगों ने जिस खयाल से मजदूर-संघ कायम किया था, वह खयाल पूरा हो चुका।” वे बोले।

“सो क्या ?” मैंने पूछा।

“फिर कभी बतलाऊँगा।” बड़ोदकर बाबू ने कहा।

“तो क्या अब मजदूर-संघ यहाँ नहीं रहेगा ?”

“मैं यह भी नहीं बतला सकता। मेरे ऊपर भी तो और लोग हैं। वे लोग जैसा कहेंगे, वैसा होगा।” बड़ोदकर बाबू बोले।

बड़ोदकर बाबू की बातें निराशा से भरी थी। मैं बड़े संदेह में पड़ गया, आखिर मजदूर-संघ का क्या होगा ? मैंने एक लंबी साँस छोड़कर उनसे कहा “अब जो होना होगा, सो तो होगा ही। मुझे कोई किताब पढ़ने के लिए दीजिए।”

“कैसी किताब लोगे ? ले जाओ, पढ़कर लौटा देना।”

“आप अपनी पसंद से दे दीजिए, जिसे पढ़कर मैं कुछ सीख सकूँ। जो मेरी समझ में आ जाए।” मैं बोला।

“अच्छी बात है...।” कहकर बाबू ने एक पुस्तक मेरी ओर बढ़ा दी।

पुस्तक लेकर उन्हें प्रणाम करने के बाद मैं मजदूर-संघ के दफ्तर से बाहर निकला और अपनी झोपड़ी की ओर चला। थोड़ी दूर जाकर बिजली

की रोशनी में यों ही मैंने एक बार पुस्तक खोली । पुस्तक का नाम था— 'आधुनिक राजनीति का विकास' । लेखक का नाम अब याद नहीं रहा । लेकिन, पुस्तक खोलते ही उसके भीतर से एक कागज गिर पड़ा । उठाकर देखा, तो एक चिट्ठी थी । मैं नहीं कह सकता, किस तारीख को वह चिट्ठी भेजी गई थी । मगर इतना याद है कि उस चिट्ठी को दयानाथ पेटारकर ने बड़ोदकर बाबू के नाम नागपुर से भेजा था । मैं उसे पढ़ने लगा । झूठ क्यों बोलूँ ? उसकी एक-एक लाइन याद नहीं । मगर जहाँ तक याद है, वह यह कि चिट्ठी में यही बातें और इसी तरह थीं—

नागपुर

प्रिय बड़ोदकर,

सप्रेम नमस्कार !

तुम्हारा पत्र मिला । बड़ी प्रसन्नता हुई । राजनीति का रास्ता जितना ही साफ है, उतना ही बीहड़ भी है । तुम खुद पढ़े-लिखे और समझदार हो । मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता कि तुम्हें राजनीति की शिक्षा दे सकूँ, क्योंकि अपने विषय में भी मैं बराबर यही सोचता रहा हूँ कि मुझमें लाख ऐब है, मुझमें हजारों कमियाँ हैं । फिर भी राजनीति के अखाड़े में जो पंद्रह वर्ष तक मैंने पैतरे लगाए हैं, उससे थोड़ा-बहुत हम दोनों ने सीखा है ।

यह जानकर हार्दिक दुःख हुआ कि रतनगर के मजदूर तुम्हारे हाथ से निकले जा रहे हैं । तुम अपने भाषण देने की कला को और भी प्रभावशाली बनाओ । दो-चार पढ़े-लिखे मजदूरों को कुछ ले-देकर इस बात के लिए राजी करो कि वे मजदूरों के बीच में तुम्हारी सच्चरित्रता और ईमानदारी का बखान करते रहे । उनका यह काम हो कि वे कारखानों में काम करते समय भी तुम्हारी चर्चा करते हुए यह बतलावें कि बड़ोदकरजी एक गरीब किसान के बेटे हैं । जमींदार और देश के पूँजीपतियों से उन्हें दिली दुश्मनी है । किसी एक मजदूर से इस बात का

प्रचार कराओ कि बड़ोदकर बाबू हर रोज भारतमाता की तस्वीर के आगे हाथ जोड़कर कहते हैं कि हे भारतमाता ! जिस तरह सरदार भगत सिंह अंग्रेजों के खिलाफ रहने के कारण फाँसी पर लटकाये गए, उसी तरह मुझे भी देश की पूँजीवाद व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने के जुर्म में फाँसी चढ़ने का मौका दो । इससे यह लाभ होगा कि नवयुवक मजदूरों के तुम सबसे प्रिय नेता हो जाओगे । नए खूनवाले क्रांति का नाम सुनकर मस्त हो जाते हैं । सोशलिस्ट कांग्रेस के खिलाफ बोल रहे हैं । कभी-कभी सभा में तुम भी हल्की आलोचना कर दो । फिर तो 'निष्पक्ष नेता' कहलाने की बाजी मार लोगे । मगर, बापू के आदर्श को मानने की बात धुमा-फिराकर जरूर दुहरा दोगे । अभी जनता की नजरों से कांग्रेस उतनी नहीं गिरी है, जितना तुम सोचते हो । लेकिन, इतनी बात याद रखो कि अगले चुनाव में असेम्बली के पद के लिए बहुत से कांग्रेस-विरोधी दल खड़े होंगे । अपने भाषण और काम के जरिए ऐसा तिकड़म लगाओ कि मजदूर यह फैसला न कर सकें कि उनकी भलाई कौन पार्टी कर सकती है । तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि हिंदुस्तान के मजदूर-किसानों को इतनी अक्ल है कि वे अपने लिए योग्य नेता और योग्य पार्टी का चुनाव कर लेंगे । उनके लिए कुछ करना तो पीछे की बात है, तुम्हारा पहला काम यह होना चाहिए कि अपनी बातचीत से उन्हें प्रभावित कर लेना । सभा बुलाओ, तो देर करके जाओ । सहायकों को पहले भेज दो । उन्हें बतला दो, तुम्हारे स्टेज पर पहुँच जाने पर भी वे तुम्हारी सादगी, तुम्हारे त्याग और तुम्हारे सिद्धांत की प्रशंसा करते रहे । जब तुम बोलने के लिए उठो, तो सबसे पहले कहो, "साथियो, अभी आपके सामने मेरे मित्रों ने जो मेरी प्रशंसा की है, मैं सत्य कहता हूँ, मैं सचमुच उस प्रशंसा के काबिल नहीं । मुझे तो तभी बड़ी खुशी होती है, जब मेरा कोई मित्र मेरी शिकायत, मेरी कमजोरियों को मेरे आगे रखता है ।"

देखना, इस पर तालियों की गड़गड़ाहट होगी । उससे तुम्हें यह लाभ होगा कि मजदूरों में यह बात फैल जाएगी कि ये बहुत ही आदर्शवादी हैं ।

अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते, ऐसे लोग बड़े त्यागी होते हैं। और, उनके दिल में तुम्हारे लिए बड़ा प्रेम पैदा होगा। मजदूरों के सामने कभी भी मूल्यवान कपड़े पहनकर मत जाओ। खादी की धोती और कुरता काफी है। पैर में बाटा कपनी की चपल पहनो। तुम चश्मा नहीं लगाते, गलती करते हो। चश्मा ले लो, इससे चेहरा भड़कदार मालूम देता है। जब भी भाषण करो, उसकी एक कापी अखबारों में छपने के लिए भेज दो। कभी-कभी दफ्तर में सवाददाताओं को बुलाकर आँमलेट और चाय का प्रबंध कर दो। बस, काम तमाम! मैदान सोशलिस्टों के हाथ में रहने दो, माइक्रोफोन तुम पकड़े रहो। अफवाह फैलाओ, सोशलिस्ट अखबार तो अपनी पार्टियों की तारीफ छापते ही हैं। दूसरे अखबार छापे, तब तो। मजा आ जाएगा। इसीलिए तो हमलोग कांग्रेस का कोई स्वतंत्र अखबार नहीं निकाल रहे हैं।

यहाँ मेरे एम० एल० ए० हो जाने से तुम सोचते होगे कि पेढारकर ने बाजी मार ली। उमर में तुम मुझसे छोटे हो और कांग्रेस में आए भी मुझसे पीछे। अगले चुनाव का इतजार करो। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि रतननगर के मैनेजिंग एजेण्ट रतनमल के लड़के ही हैं और तुम टेलीफोन पर भी उनसे हजार-पाँच सौ माँग लेते हो। मगर देखो, दोनों तरफ का कील-काँटा दुरुस्त रखो। अगर मजदूर हाथ से निकल गए, तो मैनेजिंग एजेण्ट टेलीफोन पर बातें भी न करेगा। रुपए जो कमा रहे हो, अपने खर्च के बाद जो बचे, सो सम्हाल कर रखो, क्योंकि संभव है कि अगले चुनाव में वोट ऐसे न मिले, खरीदने हों, क्योंकि विधान के अनुसार चुनाव लड़ने का हक हर पार्टी को हो जाएगा। इधर हिंदू महासभा वाले बहुत जोर मार रहे हैं।

शेष कुशल है। जिन बातों की मैंने तुम्हें हिदायत दी है, उन पर गौर करोगे। और भी कोई दिक्कत हो, तो लिखना। चूँकि अभी कांग्रेस अंग्रेज गवर्नरों की देख-रेख में हुकूमत कर रही है, इसलिए हम मजबूर हैं। नहीं तो, किसी-न-किसी रूप में सरकारी तौर पर भी तुम्हें

वहाँ जमाने में मदद की जाती । खैर, नन्हे ने इतिहास में एम० ए० कर लिया है । उसे राजनीति में घुसने की सलाह दे रहा हूँ । तुमने तो उसे देखा भी है, बड़ा चंचल है । भाई साहब कहते हैं कि मेरा बेटा कहीं नौकरी कर ले, तो अच्छा है । मगर मैंने जबसे नफे-नुकसान का हिसाब बतलाया है, तबसे चुप हूँ । अभी नया आदमी है । हर पार्टी के रूख को देखना पड़ रहा है । पत्र जल्द दोगे ।

तुम्हारा शुभचिंतक
दयानाथ पेंढारकर

बार्डिस



इन्हीं गरीबी और तबाही के दिनों में मेरी एक जिम्मेवारी और बढ़ गई। मैं एक लड़के का बाप बन बैठा। बच्चा होने के बाद मेरी सनीचरी को कुछ अच्छा खाना मिलना चाहिए था, मगर उसे तो मेरी माँ चार रोज तक हरदी का हलुवा तक न खिला सकी। वह बहुत कमजोर हो गई, उसका शरीर टूट गया। पंद्रह रोज के बाद दूध भी सूख गया। कंपनी की ओर से मजदूरों की भलाई के नाम पर जो रतननगर अस्पताल खुला था, उसमें दिखलाने के लिए सनीचरी को ले गया। उसने तो कुछ नहीं बतलाया, मगर माँ ने मुझसे कहा, “उसे ले जाकर अस्पताल में दिखला दे। बहुत कमजोर हो गई है, सर में चक्कर आता है। खड़ी होती है, तो खड़ा नहीं हुआ जाता।”

“अच्छा, दिखला दूँगा।” मैं बोला।

“नहीं, इसमें देर मत कर।”

“क्यों, यह ज्यादा खतरनाक बीमारी है क्या?”

“हाँ।” माँ ने कहा।

मैं सनीचरी को लेकर आठ बजे अस्पताल पहुँचा। डाक्टर आए, तो बड़े-बड़े बाबू लोगों के लिए पुर्जा लिखने लगे। मैंने सनीचरी को देखने के लिए कहा, तो बोले, “तुम अपने मरीज को लेकर ठहरो, पीछे ठीक से देखूँगा।”

“अच्छा मालिक।” मेरे मुँह से निकला।

डाक्टर साहब ने मुझे ग्यारह बजे याद किया। अब वे शायद अपने बंगले लौटना चाहते थे। उन्होंने मुझसे कहा, “इस तरह ज्यादा बीमार डालकर अस्पताल नहीं ले आना चाहिए...।”

“जी सरकार, मैं कहीं जानता था कि यह इस तरह लाचार हो जाएगी।”

“जल्दी करो। इसे उस कमरे में जाने दो...।” कहकर डाक्टर ने सनीचरी की ओर देखा। वह बगलवाले कमरे में चली गई। वहाँ शायद परदे में औरतों को देखा जाता था। सनीचरी को देखकर डाक्टर पाँच मिनट में अपनी जगह पर चले आए। मुफ्तसे कहा, “मरीज को बाहर बैठने के लिए कहो।”

“अच्छा, सरकार...।”

मैं उस कमरे से सनीचरी को हाथ पकड़कर बाहर ले आया और अस्पताल के बरामदे में बिठा दिया। फिर जब डाक्टर के पास गया, तो वे मुफ्तसे सनीचरी का हाल पूछने लगे। मैंने अपनी जानकारी के मुताबिक सारी बातें बतला दीं। तब अस्पताल से मिलनेवाले पुर्जे की ओर आँखें घुमाकर डाक्टर ने पूछा, “बाजार से दवा ला सकते हो?”

“बाजार से...।” मैंने पूछा।

“हाँ, बाजार से। वनगाँव में दवा की दुकानें हैं।”

“सो तो है हुजूर, मगर मैं तो यहीं एसिड हॉट में काम करता हूँ।” मजदूरों को तो दवा मुफ्त मिलती है न?” मैं बोला।

“हाँ, एक दवा यहाँ से भी मिलेगी—मिक्शर।”

“बाकी?”

“बाजार से लाकर खिलानी होगी।”

“जी।” मैं सँद होकर बोला।

“बोलो, लिख दूँ?” डाक्टर ने पूछा।

“सरकार, मैं तो मरीब आदमी हूँ। कितने की दवा खरीदनी होगी?”

“दाम मैं नहीं जानता। कहो, तो लिख दूँ।”

“लिख दिया जाए, सरकार...।” मैंने कहा।

“एक सूर है और दो दवा। खरीदकर ले आना, तो पूछ जाओगे, कैसे पिलानी होगी।”

“जी !” मेरे मुँह से निकला ।

डाक्टर से पुर्जा लेकर मैंने अस्पताल से पीने की एक दवा ले ली । मैंने देखा, एक बहुत बड़ी बोतल में पानी की तरह वह दवा भरी थी । उसी दवा को कम्पाउण्डर ने मेरी शीशी में भरकर दे दी । फिर सनीचरी को लेकर मैं झोपड़ी में चला आया । शाम को पुर्जा लेकर दवाओं का दाम पूछने मैं बनगाँव पहुँचा । एक सूर्य और दो दवाओं का दाम दूकानदार ने चालीस रुपए बतलाए ।

“चालीस रुपए ?” मैंने पूछा ।

“हाँ, लेनी है दवा ?”

“अभी नहीं । दाम लेकर आऊँगा, तब ।” कहकर मैंने दूकानदार के हाथ से दवा का पुर्जा वापस ले लिया और दूकान से बाहर निकल आया । मेरी सम्झ में नहीं आ रहा था कि दवा के लिए ये चालीस रुपए कहाँ से आएँगे और इसके लिए कौन-सा रास्ता निकाला जा सकता है । आखिर बहुत कोशिश करने पर भी कोई तरीका दिमाग में नहीं समा सका । सनीचरी का दूध सूख गया था, सो मेट की जनाना ने माँ को यह सलाह दी थी कि अपने पोते को गाय का दूध पिलाओ । दूध-दही तो मेरे जैसे लोगों के लिए सपना था । घी खाने की बात तो हमलोग सोच भी नहीं सकते थे । स्टेशन के उस पार, एक खटाल में दूध का भाव पूछने गया । ग्वाले ने बतलाया, “रुपए का डेढ़ सेर मिलेगा । मेरे यहाँ फेट-फाट नहीं चलता । नगद पैसा, नगद काम । सामने दुहवा लो ।”

“उधार दे सकते हो ?” मैंने पूछा ।

“कहाँ रहते हो, भैया ?”

“रतननगर के अहाते के पास । पोखरे पर, जहाँ मजदूरो की झोपड़ियाँ हैं ।”

“कौन काम करते हो ?”

“खलासी...।” मैंने कहा। कुली कहते शर्म लगी। खलासी का ओहदा कुली से एक सीढ़ी ऊपर होता है।

“घर यही हैं या भाड़े की मोपड़ी में रहते हो?” ग्वाले ने सवाल किया। मैंने जवाब दिया, “घर तो मेरा यहाँ नहीं है, भाड़े पर रहता हूँ।”

“कौन बिरादर हो?”

“मोची।” मैंने कहा।

“.....।” ग्वाले ने अब चुप्पी लगा ली और सामने खड़ी गाय की जाँघ से मस नोचने लगा।

“मुझे कुछ बतलाया नहीं, उधार दोगे?” मैंने पूछा।

“नहीं भैया, उधार नहीं होगा। मैंने पहले ही कह दिया, नगद पैसा, नगद काम।” ग्वाले ने बिना मेरी ओर देखे ही कहा।

“क्या विश्वास नहीं है?”

“दुनियाँ में सब विश्वास पैसे का होता है, आजकल आदमी का विश्वास कोई नहीं करता। उधार देकर कई वार छक चुका हूँ।”

“गाय दूह रहे हो चौधरी.....।” तभी मेरे कानों में यही शब्द सुनायी पड़े।

“हाँ, अब दूहने ही जा रहा हूँ। बर्तन लेकर आ जाओ।” ग्वाला बोला।

मैंने जब तक पीछे फिरकर देखना चाहा, तब तक वह आदमी मेरे आगे आकर खड़ा हो गया। मैंने उसे देखा, उसे पहचान तो नहीं सका। मगर उसके बाये हाथ में जो रिकशे की बत्ती थी, इससे मैंने अंदाज लगाया कि वह रिकशावाला है—रिकशा खींचता है। उस आदमी ने भी मुझे एक बार देखने की कोशिश की, मगर मेरी ओर उसकी आँखें और गर्दन इस तरह फिरी, जैसे वह बहुत ही जल्दबाजी में हो। मैंने ग्वाले से कहा, “अच्छा भाई, नगद ही ले जाया करूँगा।”

“अच्छी बात है, ले जाना।”

“अच्छा, चला चौधरी! लड़के को बर्तन लेकर भेज देता हूँ।”

“हाँ, जाओ । अब भेज ही दो । विलंब नहीं है ।”

मैं उस आदमी के साथ खटाल से बाहर निकला । वैसे उम्र उसकी चालीस वर्ष से अधिक की नहीं रही होगी, मगर वह पचास से ऊपर का जान पड़ता था । भीतर से शरीर में भले ही ताकत हो, मगर बाहर से, लगता था, जैसे उसका शरीर गिर रहा है । उसके बाये हाथ में रिक्शे की बिना जलायी हुई बत्ती हिल रही थी । इसकी कौफियत देना मेरे लिए मुश्किल ही है कि खटाल से बाहर निकलते ही मैंने उससे क्यों बातचीत की, मगर जब दिल ही न माने, तब कोई क्या कर सकता है ? वहाँ से बाहर निकलते ही मैंने पूछा, “तुम कारखाने में काम करते हो ?”

“नहीं ।” उधर से जवाब मिला ।

“फिर, कहाँ काम करते हो ?”

“मैं रिक्शा चलाता हूँ ।”

“अच्छा, देखो बुरा न मानना, एक बात पूछूँ ?”

“पूछो ।”

“रोज कितना कमा लेते हो ?” मैंने पूछा ।

“कमा तो सकता था, पेट भरने का एक रास्ता भी था । मगर, रिक्शा अपना जो नहीं है ।”

“रिक्शा अपना नहीं है ?”

“ना, रिक्शा तो दूसरे का है । उनका यही कारोबार होता है । यहाँ उनके पट्टे रिक्शे हैं ।”

खटाल से बाहर, एक बरगद का बहुत बड़ा पेड़ था । हमलोग उसी पेड़ के नीचे खड़े होकर बातें करने लगे थे । सामने सड़क पर, जो बिजली-बत्ती जल रही थी, उसकी रोशनी को बरगद के पेड़ की जटाएँ यहाँ अच्छी तरह नहीं फैलने दे रही थीं । अभी पूरा अँधेरा भी नहीं फैल सका था । मैंने रिक्शेवाले से पूछा, “आखिर तुम्हारा-उनका क्या हिसाब है, वे तुमसे क्या लेते हैं ?”

“दो रुपए आठ आने वे मुझसे रोज ले लेते हैं ।”

“इससे कम नहीं ?”

“नहीं ।”

“और, अगर तुम्हे सवारी नहीं मिले तो ?”

“इसकी जिम्मेवारी उनके ऊपर नहीं है ।”

“एक बात बताऊँ, अगर तुम मेरी मदद करो तो मैं भी रिक्षा हाँकूँ ।”

“मेरी मदद की क्या जरूरत है ? जैसी मिहनत करोगे, वैसी मजदूरी पाओगे ।”

“नहीं, तुम अपने रिक्षे के मालिक से मेरी जान-पहचान करा दो । रिक्षा दिलवा दोगे, तभी तो चलाऊँगा ।”

“कहाँ रहते हो, तुम ?”

“रतननगर के अहाते के पास । पोखरे पर । मैं तो कारखाने में काम भी करता हूँ ।”

“तो तुमसे दोनों काम कैसे होगा, मर नहीं जाओगे ?” उसने कहा ।

“नहीं, मरूँगा नहीं ... ।” मैंने कहा ।

“..... ।” मेरी इस तरह की सीधी बात से उसने अजीब मुस्कान मुस्कुरा दी । जैसे वह मुस्कान बनायी गई हो, उस मुस्कान के बनाने में उसे काफी मिहनत करनी पड़ी हो । उसने मेरे चेहरे को घूरकर देखा । बोला, “अजीब मस्त आदमी हो दोस्त !” और उसने अपना दाहिना हाथ मेरे कंधे पर बड़े जोर से पटक़ा । मैं इस धक्क़े से हिल गया और सम्हलकर खड़ा होने लगा ।

“मैं तुम्हे जोर दे रहा हूँ और तुम गिर रहे हो ?” उसने पूछा ।

“मैंने तुम्हारी बात नहीं समझी ।” मैं बोला ।

“..... ।” वह फिर मुस्कुराया ।

“बोलो भाई, मेरी मदद करोगे ? बड़े गर्दिश के दिन गुजार रहा हूँ ।”

“चलो, मैं अभी वहीं जा रहा हूँ ।... वहाँ पान की दूकान के सामने रिक्षे को छोड़ आया हूँ । उसका पंक्चर बन चुका होगा । मगर, जरा

ठहरना होगा। मैं अपने डेरे में जाकर बच्चे को खटाल में जाने के लिए कहूँगा।”

“ठहरूँगा, तुम चलो न।”

“चलोगे, मेरे डेरे तक?”

“चलो।” मैं बोला।

मैं उस रिक्शेवाले के साथ उसके डेरे तक आया। उसका डेरा एक बड़ी तंग गली में था। एक कच्ची कोठरी थी, जिसमें काठ का बहुत ही पुराना बेमरम्मत दरवाजा लगा हुआ था। गली के कोने पर, कूड़े की ढेर के पास कुत्ते लड़ रहे थे। इधर बिजली की रोशनी नहीं गई थी। रिक्शेवाले की कोठरी की बगल में दो-तीन और वैसी ही कोठरियाँ थीं। एक कोठरी के सामने, गंदी जमीन पर, कोई आदमी पीठ के बल लेटा अंट-संट बक रहा था। उसके बारे में उसने मुझे बतलाया कि वह बनगाँव म्युनिसिपैलिटी का मेहतर है। पिछले साल हैजे में इसकी बीबी और बच्चे मर गए। शाम में रोज पीकर आता है और यों ही रात-भर पड़ा रहता है। घंटों कुत्ते इसका मुँह चाटते हैं, इसे खबर ही नहीं रहती। फिर सुबह होश आते ही काम पर भागता है।

कोठरी के भीतर से किसी औरत के जोर-जोर से खोंसने की आवाज आ रही थी। कोठरी के बाहर रिक्शेवाले के बच्चे आपस में झगड़ रहे थे। उनमें जो सबसे छोटा जान पड़ता था, गला फाड़-फाड़कर रो रहा था। उसने बड़े बच्चे को दूध ले आने के लिए कह दिया और मुझसे बोला, “चलो अब, तुम्हें भी बातचीत करा दूँ।”

“चलो।” मैंने कहा।

वहाँ से वह मुझे वहीं ले गया, जहाँ उसने रिक्शे को पंखर बनाने के लिए दिया था। उसने मुझे रिक्शे पर बिठा लिया और आगे की बत्ती जलाकर बोला, “चलो, अगर मालिक तैयार हो गए, तो मैं सिखला भी दूँगा।”

“तुम्हारा बहुत नाम लूँगा भाई!”

रास्ते में मेरी और उसकी घरेलू बातें भी हुईं। वह बड़े मजे से रिक्शा खींच रहा था। मैंने उससे पूछा, “तुम कहीं नौकरी भी करते हो?”

“नहीं।” उसने कहा।

“तुम रहनेवाले कहाँ के हो?”

“यहाँ से सात-आठ कोस दूर। देहात में रहता था।”

“यहाँ कितने दिनों से हो, घर भी तो जाते होगे?”

“यहाँ चार-पाँच बरसों से हूँ। घर तो कभी नहीं जाता।”

“क्यों?”

पों...पों...पों...पों...पों...।

सप्...सप्...सप्...सप्...सप्...!!

क्रीन्...क्रीन्...क्रीन्...क्रीन्...!!!

सवारियाँ दोनों ओर से आ-जा रही थीं। उसने मेरे ‘क्यों’ का जवाब इस तरह दिया, “गाँव पर रखा ही क्या है? न अपना घर है, न अपना खेत। एक बार बेगार खटने से इन्कार किया, तो जमींदार ने झोपड़ी के बाँस और छप्पड़ उतरवा लिये। तभी तो भागकर यहाँ चला आया। मगर क्या बतलाऊँ दोस्त, कभी-कभी गाँव की याद जरूर आ जाती है।”

बनगाँव बहुत बड़ी बस्ती थी, खैर अब तो कस्बा हो गया था। कई हिस्सों के, शहरों में मुहल्ले की तरह, इसके कितने नाम थे। मुरलीपुर, नरहरवाँ, पालीचक और पत्थरगंज। रिक्शावाला मुझे पत्थरगंज ले आया। रिक्शे के मालिक का यहीं मकान था। भेट मालिक से नहीं, मालिक के बेटे से हुई। उसने मालिक के बेटे को सवा दो रुपए दिए और कहा, “चार आने पंचर बनाने का लगा है।”

“चार आने?”

“जी, सरकार।”

“देखो, गाड़ी ठीक से चलाया करो। ऐसे पंचर होता रहेगा, तो उसका खर्च तुम्हें ही देना होगा।”

“सरकार, मैं तो बड़ी होशियारी से चलाता हूँ।”

“और इतनी देर से क्यों आए, दूसरा गाड़ीवान इंतजार करके अभी गया है।”

“जरा घर के लिए दूध लेने में देर हो गई।”

“हूँ....।” कहकर वह आदमी कुछ भुनभुनाया।

पहले उस रिक्शेवाले ने उसके चेहरे को बड़े गौर से देखा, फिर मेरी ओर इशारा करके हाथ जोड़ता हुआ बोला, “मालिक, यह मेरा दोस्त है। बड़ी मुसीबत में है। इस पर कुछ दया कीजिए।”

“क्या दया करूँ, क्या चाहते हो?”

“सरकार, यह भी रिक्शा चलाना चाहता है।”

“कहीं रिक्शा चलाया है?”

“जी...।”

“हाँ, सरकार। पहले चलाता था।” मेरी बात काटकर उसने जवाब दिया।

“अब क्या करता है?”

“कारखाने में नौकरी करता है, खलासी है।”

“मगर मैं तो इसे जानता नहीं हूँ। गाड़ी का जिम्मा कौन लेगा?”

“जी, सरकार गाड़ी का जिम्मा मैं लेता हूँ।”

मैं मन-ही-मन रिक्शेवाले के जीवट की तारीफ करने लगा। दस मिनट पहले की जान-पहचान में ही यह मुझ पर इतना विश्वास क्यों करने लगा। रिक्शे के मालिक ने मेरा पूरा-पूरा, घर का और कारखाने का पता लिख लिया और कहा, “जाओ, जबसे मन चाहे, आकर गाड़ी ले जाना। जब हरि तुम्हारी जिम्मेवारी ले रहा है, तब कोई बात नहीं।”

इसी वक्त और रिक्शेवाले वहाँ पहुँच गए। किसी को रिक्शा जमा करना था, किसी को ले जाना था। मेरी उस गरीबी और तबाही के दिनों का वह मेरा नया दोस्त मुझे अपने साथ लेकर वहाँ से लौटा।

अपने डेरे के पास आकर उसने मुझसे कहा, “अब जा सकते हो । रिक्शा मिल जाएगा, एक रोज मैं सिखला दूँगा ।”

“अच्छा, तुम्हारा बड़ा नाम लूँगा हरि भाई ।”

उसकी कच्ची कोठरी के भीतर से, जिसमें शायद बड़ी धुँधली रोशनी हो रही थी, खॉसने की आवाज सुनायी पड़ी । मैंने हरि से पूछा, “कोई बीमार है क्या ?”

“हाँ, बीमार ही है ।” वह बोला ।

“कौन ?” मैंने पूछा ।

“मेरी घरवाली ।”

“क्या हुआ है ?”

“खाँसी है, दमा है और...”

“और ?”

“और कभी-कभी मुँह से खून भी गिरता है । बुखार भी हो आता है ।”

“दवा खाती है ?”

“हाँ, खाती तो है ।”

हरि की बात सुनकर और उसकी जनाना की बीमारी के बारे में जानकर मेरी इच्छा हुई कि उससे कहूँ, “किसी अच्छे डाक्टर से दिखलाओ ।” मगर, इतनी ही देर के संबंध में अब यह जानना बाकी नहीं रह गया था कि उसकी तबाही ने उसकी कमर झुका दी है । उसके आगे एक अजीब बेकसी की दीवार खड़ी है, जो न पिघल सकती है, जो न गिर सकती है, जिसे तोड़ने की ताकत हरि भाई में अब शायद नहीं है । हाँ, सिर्फ उसके आगे टूटने और पिघलने की उम्मीद पर खुद को टूटा हुआ जानकर भी खून और पसीना के गिलावे मिला रहा है-बहा रहा है ।

“अच्छा, मैं कल ही आऊँगा ।” मैं बोला ।

“जरूर आओगे ।”

मैं हरि के यहाँ से अपनी झोपड़ी में चला आया । अब रात हो गई थी । लौटकर आया, तो देखा, दीपन अपनी झोपड़ी के सामने पीकर

चित्त गिरा हुआ है। उसे शायद उल्टी भी हुई थी। मैं उसके मुँह के पास टिबरी ले गया। उसकी गर्दन के नीचे खिचड़ी गिरी हुई थी। माँ से एक लोटा पानी माँगकर, मैंने उसका मुँह धो दिया और उठाकर भीतर उसे पलानी में लेटा दिया। उसके साथ रहनेवाला आदमी छः बजे काम पर चला गया था। अपनी कपोड़ी में भीतर जाते ही सनीचरी ने मुझसे पूछा, “दूध का क्या हुआ ?

“होगा, दूध आएगा। घबड़ाओ मत।” मैं बोला।

“अभी रोता-रोता तो सो गया है। छाती मुँह में देती हूँ, तो पकड़कर खींचता है और चिल्लाने लगता है।”

“चिल्लाता ही होगा। पानी पिलाती हो न ?”

“पिलाती तो हूँ, मगर पीता कहाँ है ? बड़ा भुभुआता है।” सनीचरी बोली। मैंने कुछ जवाब न दिया। जान-बूझकर चुप रह गया।

“खा न ले रे मँगरूआ, भूख नहीं लगती तुम्हें ?” बाहर से आकर माँ बोली।

“दे न।” मैं बोला।

“टमाटर का भुर्ता और रोटी है।” उसने कहा।

“निकाल।”

जैसे ही मेरी माँ मेरे आगे रोटी और भुर्ता लेकर आयी कि बाहर से सुनायी पड़ा, “मँगरू यहीं रहते हैं न ?”

“हाँ, इसी में। सामने।” किसी ने जवाब दिया। आवाज कुछ-कुछ पहचानी हुई मालूम पड़ी।

“रखो। मैं अभी आता हूँ।” मैंने माँ से कहा और कपोड़ी से बाहर निकल आया। बाहर आते वक्त मैंने हाथ में टिबरी ले ली थी। देखा, मुझे खोजनेवाला आदमी वहीं था, जिसकी सोशलिस्ट मजदूर युनियन में बड़ी धाक थी। सभा में बड़े ठाट के साथ बोलता था और ऐसी-ऐसी दलीले देता कि लगता, कांग्रेस सरकार में सचमुच कोई जान नहीं है। मुझे यह भी मालूम था कि सोशलिस्ट मजदूर युनियन का

वह सेक्रेटरी है और युनियन के प्रेसीडेंट का दाहिना हाथ है। सामने जाकर मैंने उन्हें सलाम किया। बोला, “कहिए, क्या आज्ञा है?”

“तुम्हारा ही नाम मँगरू है?”

“जी, मँगरूआ मैं ही हूँ।”

मुझसे जवाब पाकर उस आदमी ने मेरे बायें हाथ को अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया और बड़ी मुहब्बत के साथ उसे दबाता हुआ बोला, “क्यों, इस तरह पार्टी से रंज क्यों हो? तुम्हारे-जैसे औधड़ों के बल पर ही तो यह मसान जोगेगा। कांग्रेस की युनियन ने अबतक जो तुम्हारे लिए किया है, सो तो देख ही चुके। वे लोग तो राजा हैं। राजा और प्रजा की दोस्ती कैसी?”

“सो तो है।”

“महसूस तो करते हो न?”

“जी, महसूस तो करता हूँ।”

“तो, वस आ जाओ पार्टी में। पार्टी को तुम्हारे-जैसे क्राबिल और तजुबेंकार साथी की जरूरत है। सोशलिस्ट पार्टी ही एक ऐसी पार्टी है, जिसकी आलोचनाओं से कांग्रेस के खंभे थर-थर काँपते हैं। मैं तुमसे इसी बात के लिए अर्ज करने आया हूँ। बोनस के लिए हमलोगों ने माँग की थी, मगर मैनेजिंग एजेंट ने कोई खयाल न किया। आज से चार रोज बाद हमलोग हड़ताल करने जा रहे हैं। दफ्तर में आकर लिस्ट देखो। सैकड़ों पंचानवे मजदूर तो सोशलिस्ट हो गए हैं। तुम चाहो, तो सैकड़ों पाँच भी न बचे।”

“अच्छा, आप खड़े हैं। तकलीफ होती होगी। मैं जरा टाट ले आऊँ...” कहकर मैं झोपड़ी में घुसा और अदर से टाट निकाल लाया। वे मेरे हाथ से टाट लेकर बोले, “तुम ठिबरी दिखलाओ, मैं बिछा लेता हूँ।”

टाट बिछाकर हम दोनों वहीं बैठ रहे। ठिबरी बगल में रख दी। मेरा मन संकोच में डूबने लगा था। यह बतलाने में बड़ा दुःख हो रहा

था कि मैं बड़ोदकर बाबू की सारी पोल जान गया हूँ। मजदूर-सघ से मेरा न संबंध न रहे, अब यही चाहता हूँ। और, यह कहना भी बड़ा मुश्किल जान पड़ रहा था कि मजदूरों के मैदान में पैर जमाने के लिए राजनीति का शायद यह पहला कदम है कि उन्हें बड़ा-से-बड़ा सुख और बड़ी शांति दिलवाने की लालच दी जाए। दयानाथ पेढारकर जब रतननगर में आए थे, तो मजदूरों को सुख-शांति दिलवाने की कसमें खाते थे। आप जैसे इन दिनों सभा में बोलते हैं, वैसे ही वे भी फुत्कार मार-मारकर बोलते थे। हाँ, आपके और उनके शब्दों और दलीलों में थोड़े का फर्क जरूर है। मगर मैंने किसी तरह उनकी बात नहीं काटी। मैंने कहा, “बड़ोदकर बाबू शायद हड़ताल पर विश्वास नहीं करते। कहते हैं, हमारे देश को अभी नई-नई आजादी मिली है। मुल्क संकट के बीच से गुजर रहा है। ऐसी हालत में कल-कारखाने को बंद करा देना ठीक नहीं होगा। हमें पंच के फैंसले का इंतजार करना चाहिए।”

“तुम क्या चाहते हो, हड़ताल नहीं हो ? मेरी समझ में तो हड़ताल के सिवा और रास्ता नहीं है। देश की हालत सोशलिस्ट पार्टी ही सुधार सकती है। और, सोशलिस्ट पार्टी का विश्वास है—मजदूर-संगठन और हड़ताल।”

“सो तो ठीक है।” मैं बोला।

“हमारी पार्टी तो हड़ताल कराकर रहेगी।”

“बड़ा अच्छा होगा।”

“ऐसे काम नहीं चलेगा। तुम पार्टी में आ जाओ। जो मजदूर पार्टी के दफ्तर में आते हैं, तुम्हारी बुद्धि और सूझ की दुहाई देते हैं। मुझसे तो यहाँ तक कहा गया है कि रतननगर के तुम ऐसे पहले हिम्मतवर मजदूर हो, जिसने कारखाने में अपने हक की लड़ाई की आवाज उठाई। मुझे यह भी मालूम है कि तुम अंग्रेजी और हिंदी की अच्छी योग्यता

रखते हो। मैं सभापति से कहकर तुम्हे सलाहकारिणी समिति का सदस्य बना लूँगा। तुम्हारी बातें अम्ल में लायी जायँगी।”

“नहीं, मैं इस योग्य कहाँ हूँ, आप इसका खयाल मत कीजिए।” मैंने कहा। वैसे मैं सचमुच इस योग्य कहाँ था।

“नहीं जी, तुम्हारे-जैसे लोग पार्टी में आ जायँ, तो पूरा मुल्क ही सोशलिस्ट हो जाए।”

“आदमी से कुछ नहीं होता, काम से सब कुछ होता है।” मैं बोला।

“आदमी ही तो काम करता है साथी! बोलो तो, शामिल होते हो पार्टी में?”

“ऐसे क्यों कह दू, जरा सोच लूँगा।”

“सोच भी लोगे, मगर कल दफ्तर में आओ। सभापतिजी भी तुमसे मिलना चाहते हैं।”

“सच?”

“हाँ, आओगे। मैं इंतजार करूँगा। उनसे भी बातें हो लेंगी।”

“आज दो बजे रात से तो मेरी ड्यूटी है। दस बजे छुट्टी होगी।”

“ठीक है, दस बजे के बाद ही आना। सभापतिजी को कहीं जाना भी होगा, तो मैं उन्हें रोक लूँगा।”

“अच्छा, मैं आऊँगा...।” मेरे मुँह से निकला।

‘शाबास साथी’, कहकर वे मेरी टाट को छोड़कर उठ खड़े हुए। मैं उन्हें स्लोपड़ियों के अहाते से बाहर तक छोड़ आया। न-जाने, वे वहाँ से पार्टी के दफ्तर में चले गए या कहाँ। मैं अपनी स्लोपड़ी में लौट आया और टाट को जहाँ-का-तहाँ बिछाकर दिबरी की रोशनी में रोटी और टमाटर का भुर्ता खाने लगा।

मेरा बेटा उस रोज शायद रात-भर रोता रहा होगा। मुझे नींद नहीं आई। डेढ़ का भोंपा बजते ही कंधे पर गमछा रखकर मैं कारखाने की ओर भागा। गेट पर कार्ड गिराकर भीतर एसिड प्लांट में आया, तो सपसी भाई से भेट हुई। मैंने सोशलिस्ट मजदूर युनियन के सेक्रेटरी

से हुई सारी बातें उन्हें बतलायी। वे बोले, “मैं तुम्हारे साथ हूँ। इस काम में तुम मुझसे अधिक समझदार हो।”

“इस युनियन की हालत मजदूर-संघ की तरह हुई, तो ?”

“कौन जानता है, मगर मेरा खयाल है कि नई ताकत की मदद करनी चाहिए।”

“हाँ, मौका तो देना ही चाहिए।”

हमलोग अभी बात ही कर रहे थे कि शीफ्ट इंजीनीयर आ गए। ऋपसी भाई उन्हें देखकर बोले, “नमस्ते साहब।” जवाब में साहब ने जरा-सा सिर हिला दिया। मैंने हाथ जोड़कर कहा, “सलाम हुजूर।”

“हूँ...।” कहकर वे आगे बढ़ गए।

“क्या खयाल है तुम्हारा, हड़ताल होगी ?” ऋपसी भाई ने मुझसे पूछा।

“बातचीत से तो यही पता चला है कि हड़ताल होगी।”

हमलोगों की बातचीत अभी खत्म भी नहीं हो पायी थी। मैं अपने और दोस्तों के साथ काम में लगने ही वाला था कि शीफ्ट इंजीनीयर लौटकर आए। आते ही उन्होंने ऋपसी भाई से कहा, “देखो मिस्त्री, तीन नंबर टंकी से एसिड लीक कर रहा है। छेद बंद करो।”

“अच्छा साहब.....।” कहकर ऋपसी भाई तीन नंबर टंकी की ओर दौड़े।

मैं जहाँ व्यायलर पर काम करता था, वहाँ से तेजाब को खोलानेवाली टंकियाँ साफ दिखायी पड़ती थीं। टंकियों के ऊपर बहुत ही तेज रोशनी जल रही थी। मैंने देखा, यहाँ से जाकर ऋपसी भाई टंकी के किनारे पर चढ़ गए। नीचे उनका हेल्पर मरम्मत करने के सामान लिये खड़ा था। रोज-रोज वही काम करने के कारण यह समझते देर न लगी कि वे अपने हेल्पर से कोई काम लेना चाहते थे। मुझे उनकी आवाज सुनाई पड़ी। उन्होंने हेल्पर से कहा, “नीचे की पाइप से एसिड खींचो। टंकी बहुत गर्म है।”

मैं ट्राली में गंधक भर-भरकर व्यायलर में धकेलने लगा । टंकी की ओर से मैंने इसी कारण आँखें फेर ली । मेरे मुँह और नाक में गंधक का जहरीला धुआँ फिर समाने लगा । मैं सोच रहा था कि अब सचमुच मजदूर सोशलिस्ट पार्टी को चाहने लगे हैं । पार्टी का साथ देना बुरा नहीं होगा । बादलों का दल बनकर उगते हुए सूर्य की रोशनी नहीं रोकनी चाहिए । नई कोपले न फूटे, तो नए फल नहीं मिल सकते । तभी कारखाने में बड़े जोर का शोर हुआ, “ऐक्सीडेंट । ऐक्सीडेंट !!

“क्या हुआ ?” गंधक भरने की ट्राली छोड़कर मैंने एक कुली से पूछा ।

“एसिड की टंकी मे मिस्त्री गिर गए... ।” वह बोला ।

“मिस्त्री, कौन मिस्त्री ?” मैंने पूछा और व्यायलर के पास से हटकर टंकी की ओर मुड़ना चाहा । उस कुली ने जवाब दिया, “अरे, मरपसी मिस्त्री । और कौन ? टंकी के ऊपर से पैर फिसल गया ।”

एसिड की गर्म टंकी में गिरने पर आदमी की क्या हालत होगी ? मैं तो काठ हो गया

तेईस



रतननगर अस्पताल के बरामदे पर भीड़ इकट्ठी हो गई थी। मैं भी था, मगर ऋपसी भाई की लाश के पास। सुबह हो गई थी। सूरज के निकलते-निकलते यह खबर न-जाने, ऋपसी बहू भउजी तक कैसे पहुँच गई। वह रोती और चिल्लाती हुई अस्पताल में आई। साथ में उसके बच्चे भी थे। भउजी के कपड़े का ठिकाना नहीं था। आते-आते ही वह ऋपसी भाई की लाश पर गिरने लगी। मैंने उसे रोककर कहा, “यह सब क्या कर रही हो भउजी! ऋपसी भाई बहुत ईमानदार थे। जिसका नमक खाते थे, उसीके काम के लिए जान भी दी है।”

कमरे के फाटक पर बड़ी भीड़ थी। भउजी दीवार से सर को टकराने लगी। मैं जब तक उसे सन्हालता, उसके माथे से खून की पतली धारा बह चली। मेरा अंदाज है कि जिस तरह भउजी उस वक्त रो रही थी, उसके रोने की आवाज अस्पताल के कोने-कोने में क्या, अस्पताल के बाहर भी जा रही होगी। भउजी की रुलायी अस्पताल में कोहराम मचाये हुई थी। ऋपसी भाई का हेल्पर और उसके साथ तीन-चार कुली * रंथी के लिए बाँस काटने चले गए थे। उनकी लाश को उनके क्वार्टर पर ले जाना हमलोगों ने जरूरी नहीं समझा। खौलते हुए तेजाब में गिरने की वजह उनके शरीर की बुरी गत हो गई थी। आँखें पककर फूट गई थीं। कान और हाथ-पैर की उँगलियों का पता नहीं चलता था। पेट के ऊपर का चमड़ा इतना पक गया था कि अगर साधारण झटके के साथ भी उन्हें उठाया जाता, तो पेट फट जाता और अंतर्द्वियाँ

❀ अर्थी ।

बाहर निकल आतीं। तभी सामने की भीड़ को चीरते हुए अस्पताल के दरवान ने लोगों से कहा, “हटिए हटिए, बड़े साहब आ रहे हैं।”

मेरी समझ में नहीं आया कि बड़े साहब कौन हैं। कमरे के फाटक पर की भीड़ तितर-बितर होने लगी। तभी मैंने देखा, एक छः फुट का गोरा-सा आदमी, सूट-बूट पहने, चश्मा लगाये मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने उन्हें देखा भी था और पहचानता भी था। वे थे, पूरे कारखाने के वर्क्स मैनेजर। इनका बहुत बड़ा ओहदा था। कारखाने किस तरह चलाये जाने चाहिए, इसका इम्तहान बिलायत से पास करके आये थे। उनका शरीर इतना दुरुस्त और चेहरा इतना रोबीला था कि उनके पास खड़े रहने की हिम्मत नहीं होती थी। बोलते बहुत कम थे। कारखाने में आते, तो सलामी की बारिश होने लगती। अफसर लोग सलाम करते, तो सिर हिला देते थे। हमलोगों की सलाम न सुनते थे, न हाथ जोड़ते देखते। शायद इसीलिए वे सलामी का जवाब भी नहीं देते थे। उन्हें सामने देखकर मैं लाश की बगल से उठ खड़ा हुआ और बोला, “सलाम साहब !”

“सलाम !” आज पहली बार सलामी का जवाब मिला ! उन्होंने पूछा, “तुम कौन हो, यह तुम्हारे साथ काम करता था ?”

“सरकार, हमलोग एक ही ज्वार के रहनेवाले हैं। हम दोनों एक ही शिफ्ट में काम करते थे। मैं वहाँ एसिड झाँट में कुली हूँ।”

† “...रजवा हो रजवा...कैसे चुपे-चुपे भगल हो रजवा...” मउजी रो रही थी।

“यह औरत कौन है ?” वर्क्स मैनेजर ने पूछा।

“यह उसकी जनाना है, सरकार !”

“हूँ...। यहाँ क्वार्टर में रहता था न ?” बड़े साहब ने पूछा।

“जी।” मैं बोला।

† राजा, तुम कैसे चुपके-चुपके भाग गए ?

“यहाँ इसका कोई और है ? साहब ने सवाल किया ।

“नहीं मालिक, एक मैं ही हूँ । बेचारी की मदद करनेवाला और कोई नहीं है ।”

“इतनी रोती क्यों हैं । रोने के लिए मना करो । इसे चुप होने के लिए कहो ।” साहब बोले ।

“सरकार, मरद का बिछोह बड़ा दुःखदायी होता है । मना करने के लिए तो मैंने कई बार मना किया, मानती ही नहीं ।”

“मैं मना करता हूँ...।” कहते हुए वर्क्स मैनेजर ऋपसी बहू भउजी के सामने जाकर ‘बोली’ बदलते हुए बोले, “रोती क्यों है पगली, तुम्हारा मर्द ही था, तुम्हें तो दुःख होगा ही । मगर वह मेरा मिस्त्री था । उसकी कारीगरी की ताकत मेरी हर मशीन पर छाया रहती थी । मुझे मिस्त्री के इस तरह मरने का सख्त अफसोस है...।”

“.....।” ऋपसी बहू भउजी रोती रही ।

“मुझे इस बात की खुशी है कि इसके खिलाफ अब तक मेरे पास कोई शिकायत नहीं पहुँची थी । तुम्हारा आदमी बहुत ईमानदार था । मैं कपनी की ओर से इसकी वफ़ादारी का दाव देता हूँ...।” कहते हुए वर्क्स मैनेजर ने अपने पतलून की जेब से सौ-सौ रुपए के तीन नबरी नोट निकाले और भउजी की ओर बढ़ाते हुए बोले, “यह लो बख्शीश, तीन सौ रुपए हैं । और भी मिलेंगे...।”

“.....।” भउजी रोती रही । उसने नोटों की ओर देखा तक नहीं । वर्क्स मैनेजर ने उन नोटों को भउजी के हाथ के नीचे गिरा दिये और मुँहसे कहा, “देखो, ये रुपए दें देना । और सुनो...।”

“जी ?” मैं बोला ।

“लाश को जल्दी हटवाओ । यहाँ अस्पताल में भीड़ लगाने से क्या फायदा ?”

“जी, बाँस आ रहा है । तुरंत ले जाऊँगा ।”

शायद इसके बाद वे डाक्टर के कमरे में चले गए । फिर मैंने उन्हें नहीं देखा, न देखने की कोशिश की । भउजी के साथ उसके चारों बच्चे भी रोने लगे थे । ऋपसी भाई का बेटा घोघा 'बाबू हो बाबू' करके रो रहा था । तभी रंथी के लिए बॉस लेकर मेरे दास्त आ गए । ऋपसी बहू भउजी के पास सौ-सौ रुपए के तीन नंबर की नोट यों ही षड़े थे । वह उन्हें छू भी नहीं रही थी । मैं जब उन नोटों को उसके हाथ में देने लगा, तो उसने बड़े क्रोध से हाथ पटका । न-जाने, वह क्रोध किस तरह का था । मैं नहीं कह सकता । हाँ, अब भउजी ने सिर को दीवार से टकराना छोड़ दिया था । बॉस आ जाने पर अस्पताल के बाहर रथी बनायी जाने लगी । ऋपसी भाई के हेल्पर के पास रुपए थे । वह दौड़कर कफन के लिए आठ गज कपड़ा ले आया । मैंने भउजी से कहा, "ये नोट रख लो, भउजी ! एक मूठ तीन सौ रुपए कुछ कम नहीं होते । ऋपसी भाई जिंदगी भर कमाकर मर भी जाते, तो इकट्ठे इतने रुपए नहीं जमाकर दे जाते..."

इसकी कैफियत देना तनिक मुश्किल है कि मेरे मुँह से ऐसी बात क्यों निकली । मगर मैंने जो कुछ कहा था, वही तुमसे बतला रहा हूँ । इस पर भी जब भउजी ने रुपए नहीं रखे, तो मैंने उन नोटों को उसके अँचरा के खूँट में बाँध दिया । तभी मुझसे बतलाया गया कि रंथी बनकर तैयार है । भउजी गला-फाड़कर रोती रही । मैं और मेरे कुछ मजदूर दोस्त, ऋपसी भाई की लाश को बहुत सावधानी के साथ उठाकर अस्पताल के अहाते से बाहर ले आए । लाश को रथी पर रखकर अच्छी तरह बाँध लेने पर मैंने एक मजदूर दोस्त से, जो एसिड प्लांट में ही काम करता था, कहा, "तुम अपने साथ मिस्त्री की जनाना और बच्चों को क्वार्टर में ले जाओ । वहीं रहना भी । हमलोग मजिल से लौटेंगे, तो जाना ।"

ऋपसी भाई भी वही जलाये गए जहाँ रकटू जलाया गया था, जहाँ बुधिया गाड़ी गई थी । दसवे रोज कपनी का क्वार्टर खाली कर देने की नोटिस दी गई । कपनी के यहाँ जितने रोज का वेतन निकलता था, वह ऋपसी बहू भउजी के अँगूठे का निशान लेकर दे दिया गया । बीलट

भाई से तीन रुपए उधार लेकर मैंने माँ को दे दिये और दूध का खटाल दिखला लाया। कहा, “यहीं से दूध ले जाया करना। फिर और रुपए का इतजाम करूँगा।” सोशलिस्ट मजदूर युनियन की ओर से हड़ताल की जानेवाली थी। वहाँ से बार-बार मेरे लिए बुलावे आ रहे थे। मैंने सपसी बहू भउजी से कहा, ‘हड़ताल होनेवाली है। नोटिस से मत डरो। क्वार्टर मत छोड़ना।’

“मुझसे यह कैसे होगा? दरवान कहने आया था कि नहीं निकलोगी, तो जबरदस्ती खाली करा दिया जाएगा।” भउजी बोली।

“तुम चुपचाप रहो देखा, जाएगा।” मैंने कहा।

“अच्छा ..।” भउजी बोली।

घोषा को मैंने अपनी स्लोपड़ी दिखला दी थी। उससे कह दिया था कि अगर कंपनी के दरवान आकर जबरदस्ती क्वार्टर खाली कराने लगें, तो आकर खबर देगा। इधर तीसरे रोज सोशलिस्ट पार्टी के दफ्तर में आना पड़ा और यहाँ आकर मैं सोशलिस्ट हो गया, सोशलिस्ट मजदूर युनियन का मेम्बर बन गया। सभापतिजी ने मेरी पीठ ठोकते हुए कहा, “पार्टी को तुम्हारे-जैसे मजदूर कार्य-कर्ता की जरूरत थी।।” जवाब में मैंने जरा-सा मुस्कुरा दिया।

शाम को मैं सपसी भाई के क्वार्टर पर पहुँचा, तो पता चला कि कंपनी की ओर से कोई भी कड़ी कार्रवाई नहीं की गई है। फिर कोई दरवान क्वार्टर खाली कराने या धमकी देने नहीं आया। इसके चौथे रोज रात को दो बजे से रतननगर-मैदान में, मजदूरों की एक आम सभा बुलाकर हड़ताल की घोषणा होनेवाली थी। तीसरे रोज मैं दो बजे रात में काम पर गया और चौथे रोज दस बजे से दिन में फैक्टरी से बाहर चला आया। स्लोपड़ी में आकर खाना खाया और फिर सपसी बहू भउजी के यहाँ चला गया। उससे रुपए माँगकर खाने के सामान खरीदकर ला दिया, तब वहाँ से सीधा मजदूर युनियन के दफ्तर में पहुँचा। मजदूरों में

यह बात शायद हवा की तरह फैल गई थी कि मगरूआ सोशलिस्ट हो गया। भेट होने पर वे अहसान जाहिर करते और बधाइयाँ दे रहे थे।

खाना खाकर सोपड़ी से बाहर निकलते वक्त मैंने माँ और सनीचरी से कह दिया था कि आज मेरे आने का कोई ठीक समय नहीं है। देर-सवेर होने के कारण वे घबड़ायेंगी नहीं। पूरी तारीख तो याद नहीं, मगर सन् १९४७ ई० का अप्रैल महीना था, जब हम मजदूर सोशलिस्ट पार्टी के लाल झंडे के नीचे खड़े होकर इन्कलाब की आवाज बुलंद करने जा रहे थे, जब हम अपने सोशलिस्ट झंडाबरदार की सलाह पर हड़ताल की घोषणा ही नहीं, हड़ताल भी करनेवाले थे। रतननगर की हवा में एक अजीब गर्मी और उसकुसाहट फैल रही थी। मेरे सोशलिस्ट होते ही, कुछ मजदूर जो अभी इस सोशलिस्ट मजदूर युनियन के मेम्बर नहीं थे, आ-आकर मेम्बर बनने लगे। पाँच बजे शाम तक युनियन के दफ्तर के सामने लगभग दो हजार मजदूर इकट्ठे हो गए। हमारा हड़ताली जुलूस यहीं से निकला। हमारी पार्टी का निशान था—लाल झंडा। झंडे के बीच में हँसिया और हथौड़े का चिह्न बना था, जो मजदूरों की जिदगी, रोजी और रोटी का मिशाल पेश करनेवाला माना जाता था। मैं हाथ में बड़ा-सा लाल झंडा लिये जुलूस के आगे था। मेरे पीछे-पीछे दो-ढाई हजार मजदूर चल रहे थे। हमारे नारे की आवाज की बुलंदगी आसमान को छू रही थी—

मजदूर-क्रांति, जिदाबाद !

दुनियाँ के मजदूरों, एक हो !!

दो बजे रात से, कारखाने बंद करो !!!

दो-ढाई हजार मजदूरों की बुलंद आवाज से एक अजीब इन्कलाब का समों बँधने लगा था। फटे-चिटे कपड़े पहने मजदूर, गला फाड़-फाड़कर नारे लगा रहे थे। दफ्तर के सामने से चला, तो साढ़े पाँच, पौने छः बजे तक रतननगर कारखाने के मेन गेट पर आ पहुँचा। मेन गेट खुला था और मजदूर कारखाने से निकल रहे थे। छः बजे शाम से दो बजे रात

तक की ड्यूटी करनेवाले कारखाने में घुस रहे थे। आज यहाँ पहली बार हमलोगों ने अपने नए नारे बुलंद किये :—

काँग्रेस सरकार ! कसका है, सेठों और जमींदारों की !

मजदूर - एकता कायम कर, काँग्रेस को धक्का दो !!

है मेरा झडाबरदार, सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी !!!

ड्यूटी से छुट्टी पाकर, जो मजदूर कारखाने से बाहर निकले, वे सभी जुलूस में शामिल हो गए। आज के जुलूस का अगुआ मैं जो था। मजदूर मेरी ओर बड़े प्रेम से देखते और पक्ति में बनकर आगे बढ़नेवाले जुलूस में शामिल हो जाते। अब हमारे नारे की आवाज चौगुनी गूँजने लगी। रतननगर के जिन रास्तों से हमारा जुलूस नारे लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था, उनके दोनों ओर कारखाने के बड़े-बड़े अफसरों के बँगले थे। वे अपने बँगले के बरामदे पर आरामकुर्सियों में बैठे हमारे जुलूस की ओर अनमनी आँखों से देख रहे थे। उनकी औरतें, खिडकियों से देख रही थीं और बँगले पर पहरा देनेवाले दरवान बड़े सजग होकर लाठी लिये फाटकों पर खड़े हो गए थे। मुझे यह भी याद है कि गंदे क्वार्टरों में रहनेवाले मजदूरों के कुछ बच्चे भी जुलूस की लाइन के अगल-बगल होकर चल रहे थे। हमारे नारे गूँजने लगे—

जमींदारों का दोस्त, काँग्रेस सरकार !

सोशलिस्ट पार्टी, मजदूरों की पार्टी !!

दो बजे रात से, हड़ताल करो !!!

आखिर हम रतननगर के मैदान में इकट्ठे हुए। धीरे धीरे सभा की कार्रवाई शुरू होने को हुई। युनियन के सेक्रेटरी सभा में आ गए थे, सभापतिजी शीघ्र ही आनेवाले थे। मैं मजदूरों से शांतिपूर्वक बैठकर सभापतिजी के आने का इंतजार करने के लिए प्रार्थना कर रहा था। तभी किसी मजदूर ने मेरे कंधे पर पीछे से हाथ रखकर कहा, “उधर देखो, मंगलु भाई।”

“क्या है ?” फिरकर मैंने पूछा।

“एक आदमी तुमसे मिलना चाहता है।”

“कौन हैं ?”

“मैं नहीं जानता। देखो, उधर खड़ा है।”

भीड़ की बगल में खड़ा एक आदमी मेरी ओर देख रहा था। मैं आदमी के पास गया और बोला, “तुम मुझे खोजते हो ?”

“हाँ।” उसने कहा।

“क्या बात है ?”

“बड़ोदकर बाबू ने एक चिट्ठी दी है।” उस आदमी ने मेरे कान में मुँह सटाकर कहा।

“कहाँ है चिट्ठी, दो।”

“उधर अलग चलकर पढ़ो। एकांत में देने के लिए कहा है।”

“चलो।”

मैं उस आदमी के साथ मैदान की बगल में, जहाँ बिजली बत्ती जल रही थी, गया। उसने मेरे हाथ में एक छोटा-सा कागज का टुकड़ा देकर कहा, “देखो, उन्होंने मना किया है, यह बात किसी को मालूम न होने पाये।”

“अच्छा।” मैंने कहा और बड़ोदकर बाबू की चिट्ठी पढ़ने लगा—

प्रिय मंगरू,

तुम्हारी अक्ल पर इस तरह क्यों परदा गिर पड़ा, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मालूम होता है कि सोशलिस्ट पार्टी वाली ने तुम्हें गहरी लालच दी है। लेकिन याद रखो, न तुम मजदूरों के होकर रहोगे और न पार्टी के। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हुकूमत काँग्रेस के हाथ में आ गई है। जो कोई या जो पार्टी काँग्रेस के खिलाफ चलेगी, सरकार उसे किसी-न-किसी तरह बरबाद कर देगी, तबाह कर देगी। कानून से तुम लड़ सकते हो, संघर्ष कर सकते हो, मगर देश में शांति की सुरक्षा कायम करने के नाम पर काँग्रेस अपनी हुकूमत के हर हथियार का प्रयोग करेगी, इसका विश्वास रखो। अगर तुम अपनी तरक्की और भला चाहते

हो, तो अभी भी वह मैदान छोड़कर चले आओ। मैं पचास रुपए महीने तुम्हे अपने पास से दिया करूंगा और फैक्टरी इंचार्ज के यहाँ सिफारिश करके मेट बनवा दूंगा। सोच-समझ लो। अपनी भूल महसूस करो और यह आखिरी मौका हाथ से न जाने दो।

—बड़ोदकर

चिट्ठी पढ़कर मैं दो मिनट तक सोचता रहा, आखिर यह सब क्या है? इस तरह की नीति इस्तिथार करके मुल्क के मजदूर और किसान का कहाँ तक भला हो सकता है? मैंने चिट्ठी मोड़कर अपनी मुट्ठी में रख ली और उस आदमी का मुँह देखने लगा। लेकिन, उस आदमी ने मुझे अधिक देखने का मौका नहीं दिया, पूछा, “क्या विचार है? लौटोगे या कुछ जवाब देना है?”

“नहीं।”

“क्या नहीं?” उसने पूछा।

“यही कि न मैं लौटूँगा और न कुछ जवाब देना है।”

“बड़ोदकर बाबू से कह दूँगा?”

“हाँ। कहना, मंगरू पार्टी नहीं छोड़ेगा—तब तक नहीं छोड़ेगा, जब तक उसमें कोई दाग न देखे।”

“चिट्ठी लाओ।” उसने कहा।

“कैसी चिट्ठी?”

“जो मैं ले आया हूँ।”

“यह चिट्ठी मेरे नाम लिखी गई है। इसे रख लेने का मुझे पूरा-पूरा हक है। जाओ, अपना काम करो।”

“हड़ताल होगी?”

“हाँ, आज ही! दो बजे रात से।” मैंने कहा।

“अच्छा.....” कहकर वह आदमी न-जाने किधर चला गया। मैं वहाँ से लौटकर जबतक सभा के मंच पर आऊँ कि तबतक मजदूरों ने सभापतिजी की जयजयकार मनाई। चारों ओर आवाज गूँजने लगी—

मानिक बाबू की, जय !

मानिक बाबू, जिंदाबाद ॥

करीब दस-बारह हजार मजदूरों के बीच में खड़े होकर मानिक बाबू व्याख्यान देने लगे । वे अपने भाषण में कांग्रेस सरकार की धज्जियाँ उड़ा रहे थे । बार-बार तालियाँ बज रही थीं । एक जगह उन्होंने कहा, “हड़ताल का प्रस्ताव सामने रखते ही कांग्रेस सरकार और मिल-मालिक की ओर से यह कहा जाता है कि अभी हमारी आजादी बची है । इसे दूध पिलाकर हमें पालना है । विदेशी सरकार देश के धन को चूसकर ले गई है । अभी हम इस लायक नहीं हैं कि मजदूरों की माँग पूरी कर सकें । तो रतननगर के मजदूर साथियो, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि कांग्रेस सरकार के जो मंत्री आजादी हासिल होने के पहले गाँधी-आश्रम और चर्खा आश्रम-जैसे आदर्श आश्रमों में बैठकर सूते काता करते थे, जो कहते थे, उनके रहने के लिए एक छोटी-सी स्तोपड़ी ही काफी है, वे सरकारी बंगले खाली न होने पर, तबादला होते हुए कमिश्नरों की कोठी में आनंद कर रहे हैं । यही तो संकटकाल से गुजरते हुए मुल्क के नेताओं की पहचान है । जो मंत्री-पद को पाने के पहले, जेठ की चिलचिलाती धूप में सड़कों पर पैदल चला करते थे और मुल्क के किसान-मजदूरों को यह दिखलाते थे कि वे मजदूर-किसानों के साथ बढ़ने-घटने वाले हैं । आज उन्हें सरकार की ओर से बीस-बीस हजार रुपए की मोटरगाड़ियाँ मिली हैं, उससे उतरकर पैदल चलना वे पाप समझते हैं । शायद अँग्रेजों के कृपा कर इस सुख-सुविधा के लिए रुपए रख दिये थे ।।”

तड़-तड़-तड़-तड़...

तालियों की आवाज हुई । मानिक बाबू ने आगे कहा, “अपनी कोठियों पर ये मंत्री जो प्रेस-कान्फ्रेंस बुलाते हैं, उसमें प्रेस के प्रतिनिधियों को पार्टी दी जाती है, जिसमें हजारों रुपए खर्च होते हैं और वे रुपए उन्हें जेब से नहीं देने पड़ते । वे रुपए सरकारी खजाने से दिये जाते हैं, जो आप-जैसे मजदूर भाइयों की कठिन कमाई हैं, जो आप

धर लगाये गए कड़े टैंक्स के रूपए हैं। ये रूपए इंगलैंड से अग्रेज भेज रहे हैं या हिंदुस्तान से खर्च होते हैं ? कुल मिला-जुलाकर उनलोगों को तो यह कहना चाहिए कि यह संकटकाल सिर्फ मजदूरों और किसानों के लिए है—हमलोगों के लिए नहीं। हम तो सरकार हैं...।”

“सिर्फ टोपी बदल गई है...टोपी... कटोप की जगह खजवा टोपी हो गई है...” मजदूरों की भीड़ से आवाज आई।

आखिर में, हड़ताल की घोषणा करते हुए मानिक बाबू ने मजदूरों से कहा, “मैंने कंपनी के मैनेजिंग एजेन्ट से कभी भी गर्म होकर बातचीत नहीं की। मैं आपका संदेश पहुँचाने के लिए जब भी उनसे मिला, ठंडे दिमाग से मिला। उनसे बातचीत के सिलसिले में मैंने शुरू से लेकर आखिर तक समझौते की कोशिश की। मैंने कहा, “कुछ आप दबने की कोशिश करे, तो मैं कुछ मजदूरों को भी दबा सकूँगा।...” मगर उन्होंने मेरी कोई शर्त न मानी और हमारी रोजी और रोटी की जायज माँगें ठुकरा दी। फिर आपलोगों की सलाह से, मजबूर होकर हम हड़ताल के लिए तैयार हो गए। मजदूर साथियो ! इस पूँजीवादी सरकार और पूँजीपतियों से लड़ने के लिए हमारे पास हड़ताल के सिवा कोई रास्ता नहीं है। इसलिए, आपलोग आज दो बजे रात से आम हड़ताल करे और यह हड़ताल शांतिपूर्ण ढंग से तब तक चलती रहे, जब तक हमारी माँगें पूरी न हो जायँ। सिर्फ पावर-हाऊस छोड़कर सभी कारखाने आज से बंद रहेगे। और, जो भाई कंपनी के पिट्टूओं के बहकावे में आकर काम पर जायँगे, उन्हें सोचना चाहिए कि इससे सिर्फ उनका ही नुकसान नहीं, रतननगर के मजदूरों का गला कट जाएगा और इस पाप के भागी भी वही होंगे।.....

पूँजीवाद, नाश हो !

हक के लिए, लड़ेंगे !!

बोनस हमारा, दे दो !!!

इसी सिलसिले में जब मानिक बाबू की जयजयकार मनाई जाने लगी, तो वे कुछ गर्म आवाज में बोले, “मानता हूँ, कि मिल-मालिक के पीछे काँग्रेस-सरकार की ताकत है। काँग्रेस-सरकार के पास पुलिस है, कचहरी है, जेल है और कानून है, मगर दोस्तो ! इस बात को हर्गिज मत भूलना कि मुल्क के किसान-मजदूर और जनता की मजबूत मुठ्ठियों में वह ताकत है जो ऐसी सरकार को एक बार नहीं, हजारों बार बदल सकती है। जाओ आपस में एकता रखो, सगठन मत तोड़ो। अपनी ताकत की आजमाइश करो और आज दो बजे रात से कारखाने के एक-एक कल-पुर्जे बद कर दो।

उसी रोज रात के दो बजे से हड़ताल हो गई। मगर पेट ने हड़ताल न की। मेरा बेटा, जिसका नाम मैंने ‘जिउराखन’ रखा था, दूध पीता रहा। सनीचरी बीमार ही रही। लेकिन फैक्टरी के कल-कारखाने बद हो गए। पेपर फैक्टरी, सिमेन्ट फैक्टरी की चिमनियों से धुएँ का निकलना बंद हो गया। मशीनों के चलने की गड़गड़ाहट खत्म हो गई। मुर्दा जलानेवाले नदी के घाट की तरह कारखानों के भीतर मौत की भयानक शांति छा गई थी। पावर हाऊस के गिने-चुने मजदूर काम पर जाते और ड्यूटी से बाहर आने पर, सब काम छोड़कर अपने हड़ताली दोस्तों से मिलते थे। पार्टों के अखबारों के अलावे दूसरे अखबारों ने भी हमारी शांतिपूर्ण हड़ताल की तारीफ की। कोई भी मजदूर हड़ताल के खिलाफ नहीं था। कारखाने के फाटको पर एक बार भी ‘पिकेटिंग’ नहीं करनी पड़ी।

इन्हीं दिनों मैं रिक्शा चलाने लगा। हरि भाई ने सचमुच आठ घंटे के अंदर रिक्शा चलाना सिखला दिया। किस जगह से किस जगह का कितना भाड़ा लेना चाहिए, उसने यह भी बतला दिया था। लगातार सोलह-सोलह घंटे सवारी ढोने पर मुश्किल से तीन-सवा तीन रुपए मिलते, जिनमें ढाई रुपए रिक्शा के मालिक को दे देने पड़ते थे। कभी-कभी तो तीन रुपए भी मुश्किल से हो पाते थे। उस रोज से जिउराखन के

लिए छः आने का दूध चला आता और हमलोग तीन आदमी दो-दो आने की कचड़ी-फुलौड़ी खाकर, भरपेट पानी पीकर सो रहते थे। सनीचरी भी धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही थी। मैं मौका निकालकर चाहता था कि स्टेशन आनेवाले मुसाफिरोँ के सामान भी ज़ेटफार्म तक पहुँचा आऊँ, तो कुछ पैसे मिल जायेंगे। मगर रिकशा रुकते-रुकते रेलवे कुली दूट पड़ते थे।

“कितने कुली चाहिए बाबू ?”

“कहाँ की गाड़ी में बैठना है ?”

“कितने नंबर ज़ेटफार्म पर ले चलो ?”

“दो कुली चाहिए।” उत्तर मिलता।

“नहीं, नहीं। लाइए न, सब मैं ही ले चलता हूँ। डेढ़ कुली के पैसे दे दोजिएगा...” कुली कहता।

“ठीक है, सामान उठाओ।” मजदूरी मिलती।

फिर गर्दन टूटने की हर उम्मीद रहने पर भी एक कुली दो गदहों का बोझ सिर पर लाद लेता। जो सिर पर न अँटता, उसे बगल में दबा लेता था। नहीं तो थरमस, बाल्टी या लालटेन आदि से उसके हाथ जरूर ही फँस जाते थे। ऐसी हालत में, जब मैं देखता कि पेट ही के लिए एक इंसान दो गदहे का काम कर रहा है, तो अपने रिकशे पर आए हुए मुसाफिरोँ से यह कहना मेरे लिए बड़ा कठिन हो जाता कि उनका सामान ज़ेटफार्म तक मैं ही ले जाऊँगा। कुली के पैसे वे मुझे ही दे देंगे। पेट ही के लिए तो मैं घोड़ा बना था। जब मानिक बाबू को इस बात की खबर मिली कि मंगरू रिकशा चला रहा है, तो मुझे युनियन के दफ्तर में बुलाकर धीरे-से कहा, “तुम क्यों इतनी मुसीबत भेल रहे हो ? तुम तो हमारी पार्टी के खास आदमी हो। जब तक हड़ताल है, तब तक अपने खर्च के लिए यहीं से पैसे ले जाया करो। मैं सेक्रेटेरी से कह देता हूँ।”

“नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।”

“क्यों, तुम्हें एतराज क्या है ?”

“एक मैं ही तो नहीं हूँ। मेरी ही तरह कारखाने के कितने मजदूर संघर्ष कर रहे हैं।”

“लेकिन, सब के लिए तो ऐसा इंतजाम करना मुश्किल है। पार्टी के पास इतने पैसे कहाँ हैं।”

“तो रहने दीजिए। संघर्ष तो सभी कर रहे हैं, हड़ताल में तो सभी शामिल हैं।”

“तुम बड़े जिद्दी हो मंगरू...।” कहकर मानिक सिंह चुप हो गए। मैं लौट आया।

इसी हड़ताल और संघर्ष के दिनों में मैंने रिक्शे के मालिक को ढाई रुपए देकर, दो-तीन रोज तक ऊपर से तीन-तीन रुपए कमाये। बनगाँव के दक्खिन ओर बगीचे में, एक अजीब तरह के बालचरों का कैम्प हो रहा था। बाहर से बहुत बालचर आ-जा रहे थे। वे हाफ पैट, हाफ उजली कमीज पहने होते। उनके माथे पर काले रंग की टोपी थी। उनकी गर्दन से एक बैज भी कमर के नीचे लटक रहा था, जिसपर सुंदर-सुंदर अक्षरों में लिखा था—‘राष्ट्रीय स्वयं सेवक’। कैम्प में सुना कि वे लोग लाठी, माले, लेजम और तलवार चलायेंगे। इसके लिए उन्हें मेडल और पदवी भी मिलेगी। खाने-पीने के लिए बड़े ठाट का इंतजाम था। पचासों तंबू गड़े थे। इनमें कुछ लोग ‘शिक्षक’ के नाम से पुकारे जाते थे और पता चला कि इसका प्रधान कार्यालय नागपुर और पूना में है। तंबूओं की बगल में कपड़े का एक बहुत बड़ा बोर्ड टंगा था, जिसपर लिखा था—‘राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, ओ० टी० सी० कैम्प।’ मैं बड़ी दिक्कत से इस बात का पता चला पाया कि यह शुद्ध हिंदू-संस्था है और इसका कोई राजनीतिक लक्ष्य नहीं है। फिर भी यह जानना मुश्किल ही रहा कि आखिर ये लोग चाहते क्या हैं। खुलकर उनमें से कोई यह नहीं बतला पा रहा था कि इस तरह से हिंदू-संगठन कायम किया जा रहा है। कैम्प का जब कार्यक्रम शुरू होता, तो पहले यही गीत गाया जाता—

ले हाथों में तलवार, केसरिया बाना,
मैदानों में आ जाना ।

इसी तरह वे और भी कई तरह के मंगल-गान गाते, जिनमें महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह की प्रशंसा की बातें होती थीं। साथ-ही-साथ हिंदू-राष्ट्र के झंडे की भी जयजयकार की जाती थी। मुझे पूरी तरह याद है कि उस कैम्प में, कोई भी ऐसा नारा नहीं लगाया गया, जिसमें हिंदू-मुस्लिम एकता की आवाज हो, जिसमें 'महात्मा गाँधी' नाम के कोई शब्द आए हों, जिनसे हिंदुस्तान के मेहनतकश मजदूर-किसानों की भलाई करने का जज्बात टपकता हो। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आगे चलकर ये लोग क्या करना चाहते हैं और तीन रोज के बाद कैम्प उखड़ जाने तक भी मैं कुछ न जान सका।

मजदूरों की एकता बिल्कुल नहीं टूटी। हड़ताल पर कोई धब्बा न लग सका और पूरे सोलह रोज के बाद रतननगर के हम ग्यारह मजदूरों को नहीं; ग्यारह हजार मजदूरों को कामयाबी हासिल हुई। कंपनी हमारे आगे झुक गई और हमारी सैकड़ें पंचानबे माँगों को उसने मजूर कर लिया। हमें बोनस भी मिले, छुट्टी के दिन बढ़े और तनखावा भी बढ़ी। जिस रोज हमारे और कंपनी के बीच फैसला हुआ, मैंने सुना कि उसके दूसरे रोज ही बड़ोदकर बाबू अपने सहायको के साथ, दफ्तर में ताला बंद करके कहीं चले गए। बोनस के जो रुपए मिले, उनसे मैंने सनीचरी के लिए दवा खरीदी, सूई खरीदी। फिर भी बोनस के रुप में इतने पैसे नहीं मिले थे कि मेरी गरीबी कुछ दिनों के लिए भी दूर हो जाती। मैं काम पर जाने लगा और काम पर से लौटकर, समय निकालकर मेरा रिकशा खींचना जारी रहा। इन्हीं दिनों तीन रोज की छुट्टी लेकर मुझे ऋषसी आई की जनाना और उनके बच्चों को, उनके घर पर भी छोड़ आना पड़ा था। वहाँ से लौटते वक्त मैंने ऋषसी बहू भउजी से कहा था, "सब भगवान की लीला है भउजी! घोंघा अभी नाबालिग है, बालिग होता, तो कारखाने में नौकरी मिल जाती। खैर, किसी तरह बच्चों का मुँह देखो।

ये रूपसी भाई की निशानी हैं। कभी-कभी आकर तुमलोगों से जरूर भेट कर जाऊंगा।”

अब रतननगर में सोशलिस्ट पार्टी की पूरी धाक जम गई। मुकद्दे मानिकसिंहजी बराबर कहते थे कि वे मेरे लिए अफसरों से सिफारिश कर कोई अच्छी जगह दिलवाना चाहते हैं, मगर मैं भी उन्हें बराबर मना करता रहा। मैं सोचता था कि मेरा यह अकेले का फायदा मेरे सारे मजदूर भाइयों के लिए बहुत भारी गह्वारी साबित होगा। हाँ, मेरी तरह कुछ और मजदूर पार्टी में आने-जाने लगे थे, जो चाहते थे कि युनियन के दावे पर उनकी तरक्की हो जाए और कुछ मजदूरों के साथ ऐसा हो भी गया। मगर मैंने उनके खिलाफ आवाज नहीं लगायी। मेरा खयाल था कि अभी उनमें समझदारी की कमी है। अब हमारे मजदूर भाई को कोई भी अफसर ठोकर नहीं लगा सकता था, कोई अफसर गाली नहीं दे सकता था। मजदूरों के गले में हाथ लगाने से दरबान भी डरने लगे थे। मजदूर तो अब भी मजदूर थे, तकलीफें सारी नहीं दूर हो गई थीं, मगर वे सिर उठाकर चलते थे, सिर झुकाकर नहीं।

इसी तरह चार महीने और बीत गए। आठ अगस्त को १९४२ की क्रांति की याद मनाने के लिए कारखाने में एक रोज की छुट्टी हुई। जूलूस निकला, रतननगर और बनगाँव में सभाएँ हुईं। आस-पास के राष्ट्रीय नेताओं ने आजादी की लड़ाई के इतिहास दुहराए। अगस्त-क्रांति में गोली के घाट उतरे शहीदों के प्रति श्रद्धाजलियाँ दी गईं और पाँच मिनट तक चुप रहकर लोगों ने राष्ट्र में शांति कायम रखने की कसमें खायीं। इसी घटना के एक महीना बाद ही, शायद मितबर के दूसरे सप्ताह का अंत हो रहा था—अखबारों में यह समाचार आया कि पाकिस्तान में हिंदू मुस्लिम दंगा हो रहा है। पाकिस्तान के किसी बहुत बड़े अधिकारी ने कराची रेडियो से कहा था, “दुनिया के मुसलमानों, अब देर मत करो। होशियार हो जाओ। तुम्हारा इस्लाम खतरे में है।”

इन दिनों मेरी ड्यूटी छः बजे शाम से थी। मैं सुबह ही स्टेशन के उसपार, खटाल में, जिउराखन के लिए दूध ले आने जा रहा था। जैसे ही खटाल के नजदीक पहुँचा कि देखा, एक सिगरेट की दुकान पर बैठे मुसलमान दुकानदार को, एक सिक्ख ने अपने कृपाण से दो टुकड़े कर दिया। मैं तो पत्थर की तरह उसी जगह खड़ा हो गया। तभी पूगब की ओर से बड़े जोरों की आवाज सुनायी पड़ी—

बोलो, महावीर स्वामी की जय !

हर-हर महादेव !!

सत् गुरु गोविंद सिंह की जय !!!

तभी एक हिंदू होटल से, जो बगल ही में था, पाँच-सात सिक्ख और निकल आए। उनके पास भी तरह-तरह के हथियार थे। वे लोग पहले सिक्खों की टोली के साथ शामिल हो गए। इसी समय दक्खिन की ओर से आवाज आने लगी—अल्ला हो अकबर ! मैं अल्युमुनियम का लोटा लिये स्टेशन के पुल पर चढ़ता हुआ बड़े जोर से, अपनी झोपड़ी की ओर भागा। ऐसे मौके पर खुदा या भगवान से मिलकर यह पूछना बिल्कुल नासुमकिन काम था कि सचमुच वे खतरे में हैं या इसान खतरे में है। मगर दो ही रोज के बाद सड़के लाश से पट गई। उन्हीं से होकर पुलिस की लारियाँ चलने लगीं। धरती बदसूरत हो गई थी। इसानयत अपनी जगह से टल गई थी। लाशों की सड़ांध तो ऐसी फैली कि कितने लोग हैजे के शिकार हो गए।

भगवान या खुदाताला के यहाँ से इस तरह का कोई भी खत नहीं आया कि वे खतरे में नहीं है, मगर क्या बतलाऊँ दोस्त ! इंसान हैवानियत की आखिरी मजिल तक पहुँच गया । आदमी, आदमी का खून पी रहा था । रतननगर के दंगे को तो पुलिस ने तीन-चार ही रोज में दबा दिया । लेकिन लाहौर, अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ते से जो खबरे मिलती थीं, उन्हें सुनकर रोएँ खड़े हो जाते थे । कितने मंदिर तोड़ दिये गए, कितनी मस्जिदें बरबाद कर दी गईं । न-जाने, उस दंगे में कितनी चूड़ियाँ फोड़ी गईं, कितना सिद्ध धो दिया गया । कितने मुन्ने बर्छियों की नोक पर उछाले गए, कितनी मुन्नियों के हजार टुकड़े किये गए । कितनी बस्तियाँ जला दी गईं । दिल्ली से भागकर आए हुए कई लोगों ने बतलाया कि वहाँ के सिम्ब दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर आकर रेलगाड़ियों में बैठे हिंदू मुसाफिरो से पूछते, “है कोई शिकार, है कोई मुर्गा ?”

“शिकार और मुर्गा क्या ?” मैंने पूछा ।

“मुसलमानो को वे उस वक्त इसी नाम से पुकारते थे ।” वे बोले ।

नोआखाली के मुसलमान हिंदुओं को तबाह कर रहे थे । सुना गया कि अपनी माँ-बहन की प्रतिष्ठा बचाने के खयाल से कई हिंदुओं ने उन्हें अपने-आप काट डाला । इन्ही दिनों महात्मा गाँधी की नोआखाली-यात्रा शुरू हो गई । हिंदू-मुस्लिम एकता कायम करने के लिए वे नोआखाली पहुँचे । अखबारों में मैंने पढ़ा कि वहाँ के मुसलमानों ने सच्चे दिल से इनकी खातिर की । वे मुसलमानों के घर में ठहरे और वहीं

भोजन भी किया। पूरी बात याद नहीं, मगर उन्होंने ऐसा बुरा काम नहीं करने की शिक्षा लोगों को दी थी। कुछ ही दिन के बाद वे नोआखाली से फिर दिल्ली लौट आए। न-जाने दोनों देशों के नेताओं के बीच किस प्रकार की शर्तें तय हुईं। मगर पाकिस्तान के बहुत-से हिंदू हिंदुस्तान में चले आए और बहुत-से मुसलमान पाकिस्तान चले गए। पाकिस्तान से भागकर आए हुए हिंदुओं की हालत अजीब थी। वे सड़कों, बागीचों, स्टेशन के मुनाफिरखानों, धर्मशालाओं और मस्जिदों में भर गए। उनलागों को 'शरणार्थी' कहा जाने लगा। उनके मुँह से भी मुँके लाहौर, अमृतसर के हत्याकांड की बातें सुनने को मिलीं। मगर क्या करोगे सुनकर ? मैं तो तुम्हें अपनी कहानी सुना रहा हूँ। एक-एक बात कहाँ तक कहूँ, इतिहास तो लिख नहीं रहा हूँ।

इसी तरह सन् १९४७ का साल भी बीत गया। फिर कपनी के सामने हमारी युनियन ने बोनस की माँग रखी और कंपनी के मैनेजिंग एजेंट ने फिर चुप्पी मार ली। जनवरी का महीना आ गया। इस बार हमलोगों ने कपनी के सामने इस तरह की माँगें पेश कीं, जो बाद में किसी हद तक नहीं ही पूरा हो सकीं—

(१) कारखाने में कपनी जहाँ-जहाँ पर (ठेकेदारों के द्वारा) काम कराती है और अगर वहाँ सालों भर काम चलता है, तो वहाँ का ठेका तोड़ दिया जाए। वहाँ काम करनेवाले कपनी के आदमी समझे जायें और उनके साथ भी वही व्यवहार हो, जो व्यवहार कपनी अपने जरिए बहाल किए आदमी के साथ करती है। उनकी नौकरी भी पक्की समझी जाए।

(२) रतननगर के कुलियों को, हेल्लरों को, मिस्त्रियों को जिस तरह से वेतन का हिसाब बँधा है, वह हिसाब बदला जाए। जैसे, एक कुली को बीस रुपए वेतन और पच्चीस रुपए मँहगाई के मिलते हैं। लेकिन इसका हिसाब इस इस तरह होना चाहिए, बीस मँहगाई के और पच्चीस रुपए वेतन।

(३) कुल मिला-जुलाकर मजदूरों को पैतालिस रुपए नहीं, पैसठ रुपए मिलने चाहिए ।

(४) बोनस के रूप में चार महीने का वेतन, मंहगाई के साथ दिया जाए ।

(५) कुलियों के रहने के लिए जो नाममात्र के क्वार्टर बने हैं, कंपनी उनकी सख्या बढ़ाए, उनमें बिजली-बत्ती का प्रबंध करे और जब तक कंपनी हर मजदूर को क्वार्टर नहीं दे देती, तब तक बाहर के किराये के रेट पर उन्हे क्वार्टर-एलाउएन्स दे ।

इनके अलावा और भी कई छोटी-छोटी मांगें थीं । मजदूर संघ तो पिछले साल ही खत्म हो चुका था । रतननगर में सोशलिस्ट पार्टी की तूती बोल रही थी । हमलोगों को पूरा विश्वास था कि हमारी मांगें मिल कर रहेंगी । मांगों का जवाब देने के लिए कंपनी को १६ जनवरी तक समय दिया गया था । मांगें पूरी न होने पर कहा गया था कि तीस जनवरी से मजदूर हड़ताल करेंगे । तीस जनवरी के दोपहर तक कंपनी की ओर से कोई जवाब न मिला । शाम को फिर जुलूस निकाल कर, सभा करके हमलोग हड़ताल की घोषणा ही करनेवाले थे कि खबर मिली, दिल्ली के बिड़ला मंदिर में, प्रार्थना करते वक्त महात्मा गांधी को किसी हिंदू पागल ने गोली मार दी और उनकी मृत्यु हो गई । अब हड़ताल अपने-आप रुक गई, मुल्क में तहलका मच गया । फिर कुछ ही दिनों बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बालचर, शिक्षक और भी उस संस्था के बड़े-बड़े अधिकारी गिफ्तार किये जाने लगे । जेलों के अलावा कई कैप-जेल्स खुल गए । पता चला कि महात्मा गांधी का हत्यारा कोई महाराष्ट्रीय हिंदू युवक है और उसका नाम नाथूराम गोडसे है । इस हत्याकांड के एक दो रोज पहले किसी मदनलाल पहवा नामक आदमी ने भी बिड़ला भवन के पीछे बम फँका था ।

पटने से उन दिनों 'जन्मभूमि' नामक साप्ताहिक पत्र राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले निकाल रहे थे। उस में उनलोगों की ओर से सफाई दी जा रही थी कि महात्मा गाँधी की हत्या में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ।' का कोई हाथ नहीं है, वे लोग निर्दोष हैं और महात्मा गाँधी की हत्या होने से वे बहुत ही दुःखित हैं। पटने से इन्हीं लोगों का साप्ताहिक पत्र 'प्रवर्त्तक' शायद इन्हीं दिनों निकलने लगा था। उस अखबार में भी इसी तरह के लेख होते, ऐसी ही कविताएँ होतीं। मगर इनलोगों की पोल खुलकर रही। जनता की नजरों से ये लोग तभी गिर गए।

मजदूरों की माँग और हड़ताल की बात कई महीने तक दबाकर रखी गई। आखिर जून में कंपनी ने मजदूरों को सिर्फ पंद्रह-पंद्रह दिन का बोनस देना मंजूर कर लिया। सबके वेतन में भी पाँच-पाँच रुपए घट गए। लेकिन, इनके अलावा जो और माँगे थीं, उन पर अगले साल विचार करने का वचन दिया गया। इससे मजदूरों को उत्साह नहीं झूटा। युनियन के सभापति, सेक्रेटरी और पार्टी पर मजदूरों को पूरा-विश्वास था। लेकिन, जब बोनस बँटने का वक्त आया, तब हर मजदूर से, दो-दो रोज की मजदूरी माँगी जाने लगी। कहा गया कि हमारी पार्टी के पास अपना प्रेस नहीं है। हम अपना प्रेस खोलना चाहते हैं। यह चंदा प्रेस खोलने में खर्च होगा। शहर से बड़ी खुबसूरत रसीद-बही छपकर आई थी। चेक की तरह लगती थी। उस पर सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता का नाम भी छपा था। दो-तीन रसीद-बही देकर मुझे भी यह काम सौंपा गया। खजाने की जिस खिड़की पर मजदूरों को बोनस के रुपए मिल रहे थे, मैं रसीद-बही लेकर वही खड़ा रहता। और इस तरह मैं हर मजदूर से, उसके बोनस के रुपए से, दो रोज की मजदूरी ले ही लेता था। मगर मैं उनका चेहरा देखता, वे बड़ी परेशानी और दबाव महसूस कर रहे थे। वे मेरी ओर अजीब नजर से देखकर कहते, "लो, दो रोज की मजदूरी मेरी होगी ही कितनी, ले लो। ले लो।"

"इस तरह क्यों बोलते हो?" मैं पूछता।

“कुछ नहीं, ले लो न ।”

“घबड़ाओ मत, पार्टी का ही काम होगा ।” मैं कहता ।

“घबड़ाने की क्या बात है, जब देना ही है, तो घबड़ाऊँगा क्यों ?”

“पार्टी का जब अपना प्रेस हो जाएगा, काँग्रेस सरकार हमारे आगे हाथ जोड़कर खड़ी रहेगी ।” मेरी ही तरह कोई और प्रेस के लिए रुपए बसूल करनेवाला उन्हें धीरज देता । एक मजदूर ने बहुत ही दुःखित होकर कहा, “यह बोनस मिलना और न मिलना दोनों बराबर ही है ।”

“सो क्यों भैया ? मैंने पूछा ।

“सो तुम नहीं जानते क्या ?” कहकर उस मजदूर ने मेरे आगे अपनी दो रोज की मजदूरी की रकम फेंक दी और बिना वह छपी हुई खुबसूरत रसीद लिये चला गया । मेरे पास खड़े एक मजदूर ने कहा, “उसका देने का मन नहीं था, मंगरु भाई ! शायद इसीलिए पिंपिनाता हुआ चला गया है ।”

“ऐ..... ।” मेरे मुँह से निकला और मैं न-जाने क्या-क्या सोचने लगा ।

उस रोज मेरा रेस्ट था । वैसे तो ड्यूटी खत्म होने पर भी मैं रिकशा खींचता था, आज कारखाने से छुट्टी रहने पर भी मैं रिकशा खींचने नहीं गया । शाम को सीधा युनियन के दफ्तर में पहुँचा । मेरी आवाज सुनते ही मानिक सिंह ने मुझे अपने कमरे में पुकार लिया । इस कमरे में अकेले वही रहते थे । वहाँ एक बढ़िया-सा पलंग बिछा था । टेबुल पर पुस्तकें और बही-खाते रखे थे । उस कमरे की दीवार में, पलंग के सिरहाने की ओर, सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता की तस्वीर भी टंगी थी ।

“कहो, क्या खबर है ?” मुझे अंदर पुकारकर उन्होंने कहा ।

“अच्छी है ।” मैं बोला ।

“बैठो ।”

“ठीक है ।” मैंने कहा ।

“नहीं, नहीं बैठो ।” कहकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और जिस पलंग पर वे लेटे हुए थे, उसके पैताने की ओर मुझे बिठा दिया । मैंने जब सिरहाने की दीवार की ओर देखा, तो तस्वीर पर नजर पड़ी । पूछा, “यह किसकी तस्वीर है ?”

“नहीं पहचानते ?” उन्होंने अचरज से पूछा ।

“नहीं ।” मैंने सरल ढंग से जवाब दिया ।

“अरे, यही हैं जयप्रकाशनारायण ।”

“अच्छा, तो यही हैं जयप्रकाश बाबू ?” मेरे मुँह से निकला ।

“हाँ, अपनी पार्टी के सबसे बड़े लीडर । इनसे मिलो, तो तबियत खुश हो जाए । तुम-जैसे लोगों को गोद में उठा ले । ये उन सभी लोगों को प्यार करते हैं, जो संघर्ष कर रहे हैं, जो देश के मजदूर-किसान के लिए अपनी कुर्बानी कर रहे हैं । राजनीति के बहुत बड़े सुलझे हुए विद्वान हैं । पंडित जवाहरलाल नेहरू तक इनके सवालों का जवाब देने में सोचने लग जाते हैं । सन् १९४२ के आंदोलन के ये अग्रदूत कहे जाते हैं । जेल की चहारदीवारी फाँदकर भाग गए थे ,”

“अच्छा... ।”

“जवाहरलाल नेहरू इनसे बहुत डरते हैं ।”

“बाप रे बाप, ऐसे आदमी से क्यों नहीं डरेगे ?” मैंने कहा ।

“इन्हीं की सलाह से तो प्रेस खरीदा जा रहा है ।” वे बोले ।

“हाँ, मैं आपसे एक बात कहने ही वाला था .. ।”

“क्या, कहो ।” वे बोले ।

“कई मजदूर दो रोज की मजदूरी देने में सकपका रहे हैं । क्या खयाल है, यह चंदा लेना रोक दिया जाए ?”

“अरे, तुम पागल तो नहीं हो गए मंगरू । यह तुम क्या कह रहे हो ? प्रेस नहीं खरीदा गया, तो आगे काम कैसे होगा ?”

“क्यों, प्रेस के बिना काम नहीं हो सकता ?”

“नहीं, कैसे होगा ? तुम नहीं जानते हो, आगे चलकर पार्टी को कितनी जरूरत पड़ेगी । अपना प्रेस होने से हम अपने नेताओं के भाषण छापेंगे, कम मूल्य पर बेचेंगे । समाजवाद पर खुद जयप्रकाश बाबू ने कितनी पुस्तके लिखी हैं, उन्हें छापनी है । पार्टी के पास अपने ढंग की पुस्तके और अखबार रहना बहुत जरूरी है । अपने विचारों के प्रचार का यह बहुत बड़ा साधन है, मगरू । फिर १९५२ में तो हमलोगों को चुनाव लड़ना है । ‘आर्यावर्त्त’, ‘भारत’ और ‘आज’ की तरह हमलोग भी अपना अखबार निकालने लगेंगे । फिर कांग्रेस सरकार के खिलाफ हमारे संपादक लंबी-लंबी टिप्पणी लिखेंगे । जब हमलोग कांग्रेस को जलो-भुनी सुनाएँगे, तब जनता पर इसका असर होगा । पब्लिक समझेगी कि जब सोशलिस्ट पार्टी सचाई के रास्ते पर चल रही है, चलना चाहती है, तभी तो कांग्रेस-सरकार की कमजोरियों को हमारे सामने ला रही है । चौको मत, यह पार्टी-पोलिटिक्स की बात है प्यारे, इसे मजाक मत समझ लेना ।” मानिक सिंह ने समझाकर कहा ।

“नहीं, मजाक क्यों समझूँगा ।” मैं बोला ।

“इस वक्त का चंदा तो किसी हालत में नहीं छोड़ना चाहिए ।”

“जी...।” मैं बोला ।

“पार्टी के लिए तुम मरो, पार्टी खुद तुम्हारे लिए मरेगी ।”

“भगवान न करे कि पार्टी को मेरे लिए मरने की नौबत आए ।”

मैंने कहा ।

“तुम बेवकूफ हो । मरने का अर्थ तुमने क्या लगाया, पार्टी तुम्हारे लिए फेल होने लगेगी ?”

“मैंने तो यही समझा ..।”

“तुम मूर्ख हो । सन् १९५२ के चुनाव में नहीं, तो सन् १९५७ के चुनाव में पार्टी तुम्हें टिकट दे देगी । रतननगर के मजदूरों की ओर से एम० एल० ए० के लिए तुम खड़े हो जाना । फिर चुनाव में जीतने के लिए रुपए-पैसे से भी तुम्हारी मदद की जाएगी । कहीं चुनाव में

जो बाजी मार लिए बच्चू, तो बस किस्मत का सितारा बुलंद हो जाएगा। ढाई सौ रुपए बेतन घर बैठे मिलेंगे। जब-जब एसेम्बली चलेगी, दस रुपए रोज के हिसाब से भत्ता मिलेगा। चाहोगे, तो एम० एल० ए० क्वार्टर भी मिल जाएगा। एसेम्बली में जाओगे, तो ठाट से बिजली पंखे के नीचे कुर्सी पर बैठकर मिनिस्टर्स से बातें करोगे।”

“मगर मैं तो पढ़ा-लिखा जो नहीं हूँ।” मैंने कहा।

“उससे क्या, इसके लिए योग्यता नहीं, वोट चाहिए। सो तो तुम हिंदी-अंग्रेजी पढ़ ही लेते हो। राजनीति की पुस्तकें बराबर पढ़ा करो। ऐसी कितनी बातें होती हैं, जो सबके सामने बोली जाती हैं, कुछ बातें ऐसी होती हैं जो पब्लिक से अलग हटकर पार्टी के खास दोस्तों से कही जाती हैं।”

“जी...।” मैंने कहा।

“तुम अपने लिए कुछ नहीं लेते, यही मुश्किल है।”

“.....।” जवाब में मैं सिर्फ बहुत धीरे-से मुस्कुरा पड़ा था।

इस तरह बीनस बँटते-बँटते मजदूरों के बीच से करीब सत्तर-अस्सी हजार रुपए वसूल किए गए और दूसरे महीने में ही सुना गया कि पार्टी ने एक बहुत बड़ा प्रेस खरीद लिया है। अपनी पार्टी का अखबार अपनी पार्टी की छोटी-छोटी पुस्तकें तो मैं पढ़ता ही, मगर मैंने मजदूर-क्लब के पुस्तकालय में आना-जाना नहीं छोड़ा। वहाँ से भी पुस्तकें ले आकर पढ़ता। पार्टी के अखबार के अलावे, मैं दूसरे-दूसरे अखबार, भी पढ़ा करता।

इन्हीं दिनों की बात है। शाम के सात बज रहे थे। मजदूर क्लब में चारों ओर बिजली बत्ती जल रही थी। अखबार पढ़कर उठा, तो चुपचाप लाइब्रेरियन के पास पहुँचा। उनके पास ही, सामने की कुर्सी पर तीस-बत्तीस वर्ष का एक जवान आदमी, जो देखने में बड़ी जाति का पढ़ा-लिखा मालूम होता था, बैठा था। वह गेहुए रंग की कोकटी का कुरता और धोती पहने था। उसके गाल पिचके हुए तो नहीं थे, मगर

उनमें उभार भी नहीं था। पैरों में बाटा कंपनी वाली चप्पल थी, आँखों पर चश्मा। बाएँ हाथ की कलाई में घड़ी और जेब में फाउन्टेनपेन। गालों के भीतर शायद पान के बीड़े थे, जिन्हें वह धीरे-धीरे चबा रहा था। मैंने लाइब्रेरियन के आगे, अपनी पसंद की एक पुस्तक का नाम लिखकर रख दिया। वे बोले, “बैठ जाओ, अभी पाँच मिनट में मँगवा देता हूँ।”

“अच्छा।” मैंने कहा। यहाँ आलमारियो से पुस्तकें निकालकर देने के लिए दो आदमी थे। लाइब्रेरियन के कमरे के बाहर एक क्लक भी बैठा था, जो पुस्तकों का नाम ‘इसु बुक’ पर चढ़ाया करता। लाइब्रेरियन के कहने से एक कुर्सी पर मैं बैठ रहा। वह आदमी, जिसकी चर्चा अभी मैंने की है, लाइब्रेरियन से इस तरह बातें करने लगा—

“और सुनाइए साहब, कोई नई बात ?”

“सब पुरानी बात है। लाइब्रेरी से क्वार्टर और फिर क्वार्टर से लाइब्रेरी।”

“मैंने तो आपके यहाँ का कैटलॉग देखा है। हिंदी में इधर बहुत-सी नई पुस्तकें निकली हैं। उनका नाम कैटलॉग में नहीं है।”

“हमारे यहाँ तो बजट है। अब नई पुस्तकें नए साल के बजट से खरीदी जायेंगी। आप अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा दें, तो उन्हें मँगा लूँ। प्रकाशकों का पता बतला दें, तो और उत्तम।” लाइब्रेरियन बोले।

“हिंदी में तो अब तक मेरे दो ही उपन्यास निकले हैं, एक कविता संग्रह।”

“अजी, आप-जैसे लोग तो बहुत कम लिखते हैं, मगर अच्छी चीज लिखते हैं।” लाइब्रेरियन बोले।

“हाँ, मेरा तो यही सिद्धांत है। थोड़ा लिखो, ठोस लिखो। फिर मुझ-जैसे साहित्यकारों को जो जन-जीवन की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं, बड़ी दिक्कों का सामना करना पड़ता है।”

“इनसे जान-पहचान है या नहीं ?” उस आदमी की ओर इशारा करके लाइब्रेरियन ने मुझसे पूछा।

“नहीं।” मैंने सीधी तरह जवाब दिया। तब वह आदमी मुझे देखने लगा, धूर-धूरकर।

“कौन हैं आप?” उस आदमी ने मुझसे पूछा। उसके गले की आवाज बड़ी ठढ़ी थी।

“.....” मेरे मुँह से कुछ भी न निकला।

“हमारे रतननगर के एक जागरूक मजदूर। सोशलिस्ट मजदूर युनियन के इने-गिने कार्य-कर्त्ताओं में एक और पुस्तकों के कीड़ा। उपन्यास, राजनीति, जीवनीयाँ बड़े चाव से पढ़ते हैं। इस लाइब्रेरी को तो शक्स ने छान मारा।” लाइब्रेरियन ने बतलाया।

“वाह साहब, आपने तो अच्छे आदमी से परिचय कराया...” कहकर उस आदमी ने मेरी ओर देखा और मुझसे पूछा, “यहाँ कौन-सा काम करते हो, किस फैक्टरी में हो?”

“कुली हूँ, एसिड ब्लांट में काम करता हूँ।” मैं बोला।

“कुली हो?”

“जी!”

“अरे यार, यह क्या कह रहे हो? राजनीति की पुस्तकें समझते हो?”

“जितनी दूर अक्ल दौड़ती है, उतनी दूर तक समझने की कोशिश करता हूँ।”

“शाबास कॉमरेड। खुश रहो...” कहकर उस आदमी ने मुझसे हाथ मिलाया।

“और आप...?” मैंने पूछा।

“अरे, ये बहुत बड़े लेखक और कवि हैं। ये जो कुछ भी लिखते हैं, सिर्फ तुम लोगों के लिए।” लाइब्रेरियन ने बतलाया।

“अच्छा ..।” मुझे अचरज हुआ।

“इनकी किताबें मँगवा रहा हूँ। ले जाना।”

“जरूर ले जाऊँगा।” मैं बोला।

“मैं तो ऐसी ही भाषा लिखता हूँ कि कुली से लेकर प्रोफेसर तक उसका आनंद ले सके ।” लेखकजी ने लाइब्रेरियन से कहा ।

“मैंने प्रेमचंद की पुस्तकें पढ़ी हैं, कमाल की किताबें हैं...” मेरे मुँह से निकला ।

“महात्मा गाँधी की हत्या के बाद मैंने उन पर एक कविता लिखी थी । अठारह पत्र-पत्रिकाओं ने उसे छपा था ।” लेखकजी बोले ।

“आपका नाम ?” मैंने पूछा ।

“मेरा नाम ? युगांतर ।” लेखकजी ने अपना नाम बड़े ही गंभीर स्वर में बतलाया ।

“युगांतर .. ?”

“हाँ, इसी नाम से रचनाएँ छपती हैं ।” लाइब्रेरियन ने बतलाया ।

“मैंने मार्क्स पर एक कविता लिखी थी । श्री पी० सी० जोशी ने मुझसे उन्नीस बार वह कविता सुनी ।” लेखकजी बोले ।

लेखकजी से मिलकर मैं सचमुच महानता को देखने लगा था, मैं निहाल हो गया । सच पूछो, तो जिंदगी में मैंने पहली बार आज एक लेखक को देखा था । ऐसा लेखक जो उपन्यास लिखता है, जो कवि है । जिसकी कविताएँ अठारह पत्र पत्रिकाएँ छाप चुकी थी । जिसकी कविता श्री पी० सी० जोशी एक-दो बार नहीं, उन्नीस बार सुन चुके थे, मैंने मन-ही-मन साचा, नौजवान आदमी है । होगा, कलम का जादूगर ! मैं अपने कम जानकारी पर तरस खाने लगा कि ऐसे लेखक और कवि का नाम मुझे अब तक क्यों नहीं मालूम ? मार्क्स और पी० सी० जोशी का भी मैंने नाम सुना था, मगर उनके बारे में कोई अधिक जानकारी नहीं हासिल की थी । मार्क्स के बारे में इतना जानता था कि दलित जनता की तबाही दूर करने में मार्क्स का बहुत बड़ा हाथ रहा । उसने पुस्तकें लिख-लिखकर निम्न समाज की बिगड़ी हालत सुधारने के तरीके बतलाये थे । पी० सी० जोशी के बारे में यह मालूम था कि वे कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत बड़े लीडर हैं । किंतु, इन दोनों आदमियों के नाम के साथ 'कम्युनिस्ट'

लफ्ज लगा हुआ था, इसलिए मैंने इनमें दिलचस्पी नहीं ली। मजदूरी के बीच, या सोशलिस्ट मजदूर युनियन के दफ्तर में, इस पार्टी की कोई चर्चा बड़ी घृणा के साथ की जाती थी। मेरे दिमाग के भीतर कोई ऐसा समाँ नहीं बँध पा रहा था कि जिससे इस पार्टी और इस पार्टी के लीडरों के नाम का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़े। मैं बराबर यही सुना करता था कि रूस में 'जनता की आवाज' नाम की कोई चीज नहीं है। पार्टी के फैसले के खिलाफ कोई भी अपना तर्क नहीं पेश कर सकता। स्तालिन के खिलाफ किसी भी तरह की दलील देना, सोवियत रूस में सबसे बड़ा पाप समझा जाता है। मुझे बड़ा दुःख होता कि ऐसे लीडर से जनता कैसे खुश रहेगी, जो अपनी शिकायतें या अपनी कमजोरी सुनने का धीरज न रखता हो। लेखकजी ने मुझे 'कॉमरेड' कहकर शाबासी दी थी। मैंने समझ लिया कि वे जरूर ही कम्युनिस्ट हैं। तब मैंने उनसे अधिक बातचीत नहीं की और अपनी माँग की पुस्तक मिल जाने पर लौट आया।

सन् १९४६ का जनवरी महीना शुरू हुआ था। बड़ी कड़के की सर्दों पड़ रही थी। बर्फ की तरह हवा चलने लगी थी। हमारी युनियन की ओर से फिर कंपनी के पास माँगे भेजी गई थीं। बोनस दो, वेतन बढ़ाओ, छुट्टियों के दिन बढ़ाओ, ठेके का काम तोड़ो—यही हमारी कुछ माँगे थीं। दोपहर को पता लगा था कि आज मानिक सिंह और कंपनी के मैनेजिंग एजेंट के बीच माँगों के संबंध में बातचीत हुई है। लेकिन क्या बातचीत हुई है, यह जानने के लिए मैं ठिठुरता हुआ, शाम में, सात बजे के बाद युनियन के दफ्तर में पहुँचा। भीतर पहुँचते ही मानिक सिंह से भेट हुई। मैंने उन्हें सलाम किया। मेरे सलाम का जवाब देकर वे भारी आवाज में बोले, “बैठो मंगरू !”

“आज मैनेजिंग एजेंट के यहाँ गए थे न ?” मैंने पूछा।

“हाँ, गया था।” वे बोले।

“क्या बातचीत हुई ?” मैंने पूछा।

“तुमलोग तो कान में तेल डालकर बैठे रहते हो, कुछ मालूम भी है ?”

“क्या ?” मैंने घबड़ाकर पूछा ।

“इस साल सिर्फ हड़ताल ही नहीं करनी पड़ेगी ।”

“फिर और क्या करना होगा ?”

“जंग लेनी पड़ेगी । इसी साल हमारी एकता, मजदूर-संगठन और पार्टी का इम्तहान हो जाएगा ।”

“सो क्या, बात है ?”

“काँग्रेस की युनियन फिर आ गई । तुमने वह दफ्तर देखा है, जिसमें बड़ोदकर ताला बद करके चला गया था ?”

“नहीं, इधर कुछ दिनों से तो मैं उधर गया ही नहीं ।”

“जाकर देख आओ । वह दफ्तर फिर खुल गया है । दफ्तर के सामनेवाली जगह में जीपगाड़ियाँ खड़ी हैं । काँग्रेस के कार्य-कर्त्ता वहाँ आ-जा रहे हैं । ऊपर में साईनबोर्ड टँग गया है—I. N. T. U. C. ।

“इसका क्या माने ?” मैंने पूछा ।

“इंडियन नेशनल ट्रेड युनियन काँग्रेस । अब फिर काँग्रेसियों को मजदूरों की भलाई करने का खयाल हो आया है । इसके पीछे समझो, काँग्रेस का बहुत बड़ा हाथ रहेगा । और काँग्रेस कौन, वर्तमान हिंदुस्तान की सरकार ! देखो, राजनीति का व्याकरण यह बतलाता है कि यह जो ट्रेड युनियन काँग्रेस यहाँ आई है, वह इसलिए नहीं कि मजदूरों की माँग पूरी करा दे, मगर हड़ताल न होने दे । काँग्रेस सरकार ने इन लोगों को इसलिए भेजा है कि यहाँ से सोशलिस्ट पार्टी उखड़ जाए । और पीछे देख लेना, यह लड़ाई मजदूरों के हक की लड़ाई न साबित होकर पार्टी के कायम रखने और न रखने की लड़ाई साबित होगी । अब हम लोगों को कल ही से बार-बार सभा बुलानी चाहिए और मजदूरों को समझाना चाहिए कि वे इस युनियन के धोखे में मत आएँ । यह पूँजीपतियों और काँग्रेस-सरकार की भाड़े की युनियन है... ।”

अपनी युनियन के सभापति के मुँह से ऐसी बातें सुनकर मैं हक्का-बक्का रह गया । मैं उनका मुँह देखता रहा और पाँच मिनट तक मेरे मुँह से

आवाज नहीं निकली। मैं सोचने लगा कि अचानक यह क्या हो गया। काँग्रेस-सरकार को भी क्या सूझी है, जो इस तरह से हुकूमत के बल पर देश के किसान-मजदूरों का खून चूसना चाहती है। गाँधीजी सत्याग्रह के बहुत बड़े हिमायती थे। अपनी माँग न पूरी होने पर वे भूख-हड़ताल कर देते थे। अपनी माँगों के लिए अगर मजदूर हड़ताल करना चाहते हैं, तो सरकार को क्या आपत्ति है? उचित तो यह था कि हुकूमत के बल पर वह देश के पूँजीपतियों को दबाकर मजदूरों की जिंदगी में सुख और शांति के दिन ला देती। मेरे मुँह से निकला, “यह तो बड़े दुःख की बात है।”

“इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है?” वे बोले।

“मगर मजदूर तो उनकी युनियन को मानते नहीं हैं।” मैंने कहा।

“मैंने सुना है कि कुछ मजदूरों को रुपए और तरक्की की लालच देकर ट्रेड युनियन का मेम्बर बनाया जा रहा है।”

“उससे क्या होता है, मुट्ठी भर मजदूर एक दर्जन कारखाने को नहीं चला लेगे। हम तो हड़ताल करके रहेंगे।”

“मजदूरों में इस बात का बड़े जोर-शोर से प्रचार करना होगा।”

“सो तो करना ही होगा। इस युनियन के सभापति कौन हैं?” मैंने पूछा।

“इसी इलाके के एक एम० एल० ए० हैं।”

“मैं तो समझता हूँ कि ऐसा करके काँग्रेस-सरकार ने हमें अपना एकता और संगठन को दिखलाने के लिए ललकारा है।” मैं बोला।

“हाँ, कल शाम में मजदूरों की एक सभा बुलानी है।”

“जरूर बुलायी जाए।”

युनियन के दफ्तर से लौटकर मैं जब अपनी झोपड़ी में पहुँचा, तो पता चला कि माँ को बड़े जोरों का बुखार हो आया है। मैंने उसके सिर पर हाथ रखकर देखा, बुखार की गर्मी से वह जल रही थी। जिउरा-खन अलग बीमार था। अस्पताल में दिखलाने पर डाक्टर ने कहा कि

लीवर बढ़ गया है। देखने से, एक-डेढ़ वर्ष का बच्चा तीन-चार महीने की तरह लग रहा था। हाथ पैर सूखे-सूखे थे। पेट निकला था। शरीर में ताकत नहीं थी। बीमारी के कारण तो चंचल एकदम था ही नहीं। जहाँ रख दो, वहीं पड़ा रहता था। पैखाना बहुत होता, कभी-कभी बड़े जोरो से चिल्लाने और हाथ-पैर पटकने लगता था। कमजोरी की वजह से, सनीचरी अलग जुड़ैल की तरह लगती थी। रिक्शा खोंचने से कुछ अधिक पैसे नहीं मिलते थे। कभी दूध के लिए पैसे जुटाता, तो कभी दवा का दाम घट जाता। डाक्टर ने बेटा जिउराखन के लिए कई तरह की दवाएँ लिख दी थी, जिन्हे बाजार ही से खरीदकर ले आना पड़ता था। इसीलिए, कभी यह दवा खरीद लाता, तो कभी वह दवा नहीं रहती। मतलब यह कि पैसे की खतरनाक तंगी से मुझे फुर्सत नहीं मिली। दवाओं की कमी के कारण ही, आज से डेढ़ महीने पहले, मेरा रिकशेवाला दोस्त, अपनी बीबी को दफना चुका था। आखिरी हालत में पता लगा कि उसे टी० बी० हो गई है। जान-पहचान हो जाने के बाद, जब भी जाता था, बेचारी बड़े प्रेम से बोलती और नाश्ता करने के लिए पूछती थी। माँ की भयानक बीमारी के कारण उसका छोटा बच्चा हमेशा उससे अलग रहता और माँ के प्यार के लिए दिन-रात बिलबिलाया करता था। दस-बारह घंटे रिक्शा खोंचने के बाद, दिन-भर की कठिन कमाई के कुछ ही पैसे बटोरकर जब हरि अपने उस कच्चे और गंदे घर के दरवाजे पर आता, तो एक साथ उसके सभी बच्चे उसकी कमर और हाथ से लिपट जाते थे। हरि का दिल भर आता था।

माँ बुखार से बेचैन थी। मैंने भरपेट खाया नहीं। एक फिकर माँ की थी और दूसरी फिकर कांग्रेस की ओर से आयी हुई नई यूनियन की। दो बजे रात से मुझे काम पर जाना था। नींद नहीं आयी। जिउराखन भी जाग-जागकर कोहराम मचा रहा था। डेढ़ का भोंपा बजते ही मैं उठा और कारखाने की ओर दौड़ा। भीतर आकर, काम करते वक्त मैंने मजदूर साथियों से सारी बातें समझायीं और उन्हें इस वक्त के लिए

राजी किया कि वे कभी भी राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस का साथ नहीं देंगे। मैंने उनलोगों से बड़ोदकर बाबू के काले कारनामे का जिक्र किया, मगर दयानाथ पेढारकर की चिट्ठी वाली बात नहीं कही। सीधी तरह से इतना जरूर बतला दिया कि काँग्रेस सरकार की भेजी हुई यह युनियन भी ऐसी ही होगी। दिन में दस का भौंपा बजने पर जब लुट्टी हुई, तो उसी ओर से मैं गुजरा, जिधर राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस का दफ्तर खुला था। दफ्तर के सामने आकर मैं सड़क पर खड़ा हो रहा। वहाँ दर्जनों गाँधी टोपियाँ नजर आ रही थी। लोग बातें करते हुए हाथ में खादी का रुमाल लिये बार-बार मुह पोंछ रहे थे। दफ्तर के मकान के ऊपर छत के पास सचमुच एक बहुत बड़ा साईनबोर्ड टंगा था, जिस पर मोटे-मोटे हरफों में लिखा था।

राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस

र त न न ग र

सहन में बायीं ओर दो जीपगाड़ी खड़ी थी। दफ्तर के मकान के ऊपर तिरंगा झंडा गड़ा हुआ था। झंडे के बीच में अशोक-चक्र का चिन्ह था। मैंने यहाँ उस आदमी को भी देखा, जो काँग्रेसी होने और दो-एक बार जेल जाने के कारण साधारण टाईम-कीपर से राशनिंग अफसर हो गया था। मुझे अचरज होने लगा कि भला ऐसे-ऐसे गुरु लोग मजदूरों के किस काम आएँगे? तभी एक मोटे और नाटे कद का आदमी, जो कुछ गंभीर मालूम पड़ता था, दफ्तर के भीतर से निकला और दो-तीन लोगों के साथ, जीपगाड़ी पर सवार होकर कहीं चला गया। एक आदमी से पता चला कि इस युनियन के वही सभापतिजी हैं। लेबर-मिनिस्टर के बड़े प्यारे हैं। काँग्रेस जब आज़ादी की लड़ाई लड़ रही थी, तब ये आध दर्जन बार जेल गए थे। आजकल असेम्बली के मेम्बर हैं। खूब चकाचक है !

हमलोगों ने कंपनी को जो हड़ताल करने की नोटिस दी थी, उसमें अब सिर्फ पाँच रोज बाकी रह गए थे। शाम को, आज ही, सोशलिस्ट मजदूर युनियन की ओर से रतननगर के मैदान में मजदूरों की एक बहुत बड़ी सभा हुई। मानिक सिंह ने लगातार तीन घंटे तक व्याख्यान दिया और कांग्रेस युनियन की कमजोरियों पर रोशनी डाली। आज उनकी आवाज में ठंढी-ठंढी गर्मी मालूम हो रही थी। उन्होंने व्याख्यान देते हुए कहा, “साथियो ! याद रखो, अगर किसी के बहकावे में आकर, तुमलोगों ने कांग्रेस सरकार के एजेन्ट की, जो राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कांग्रेस के सभापति हैं, झडाबरदारी मंजूर कर ली, तो तुम फिर उसी गड्ढे में धकेल दिये जाओगे, जिस गड्ढे में तुम जमाने से सड़ रहे थे, जिस गड्ढे में तुम्हारे जजबात जोश मार-मारकर बार-बार मुँहकी खा रहे थे। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस ट्रेड युनियन के कोई भी अपने स्वतंत्र खयालात नहीं हैं। इनके हर खयालात काँग्रेसी मिनिस्ट्रों के स्कूल से पैदा हुए हैं और उन्हीं की ताकत पर ये तुम्हारे बीच अपनी धाक जमाने आए हैं।अगर तुम्हारे दिल में अपनी पार्टी के लिए मुहब्बत है, अगर तुम अपनी रोजी और रोटी की सच्ची लड़ाई लड़ना चाहते हो, तो आओ, इस लाल झंडे के नीचे खड़े होकर कसम खाओ कि मरते दम तक तुम इस काँग्रेसी-एजेन्ट राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कांग्रेस को अपनी युनियन के रूप में नहीं मंजूर करोगे...।”

“हम कसम खाते हैं !

हम कसम खाते हैं !!

लाल झंडे की जय !!!”

तब दस हजार मजदूरों ने एक साथ यही आवाज बुलंद की।

निश्चित समय पर हड़ताल करने की बात पार्टी ने तय कर ली और जिस रोज हड़ताल होनेवाली थी, उसी दिन जीपगाड़ी में लाउडस्पीकर लगाकर राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस की ओर से रतननगर के कोने-कोने में बड़े जोरों का प्रचार किया गया कि सोशलिस्ट मजदूर युनियन की ओर से जो हड़ताल होनेवाली है, वह सरकारी तौर पर गैरकानूनी करार दी गई है। जो मजदूर इस हड़ताल में भाग लेगा, उसे इसका फल भुगतना पड़ेगा। सरकार ने यह फैसला किया है कि हड़ताली लोगों को सजा देने के लिए वह अपनी किसी भी ताकत का इस्तेमाल कर सकती है। मजदूरों को चाहिए कि वे राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस की झंडाबरदारी मंजूर कर उसके द्वारा किए गए फैसले और सलाह पर चले। आज मुल्क की हालत ऐसी नहीं है कि बात-बात पर कल-कारखाने बंद कर दिये जायें। अपना रोजी और रोटी के लिए लड़ने का मजदूरों का हक है, जिसकी लड़ाई वगैरह हड़ताल किये शांति के तरीके अपनाकर भी लड़ी जा सकती है। राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस से मजदूरों को कोई भलाई नहीं होगी, यह मजदूरों का ग़लत खयाल है।

राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस को कंपनी की ओर से सारी मदद तो मिल ही रही थी, रतननगर के सभी अफसर भी उसी के समर्थक हो गए थे। वैसे भी मजदूर और अफसरों में कभी पटती नहीं थी। कारखाने के भीतर काम करनेवाले अफसर, इंजीनियर, शिफ्ट इंचार्ज और सुपरवाइजर, फैक्टरी इंचार्ज वगैरह अपने ओहदे के बल पर मजदूरों

को पार्टी से अलग करा रहे थे। पार्टी की ओर से यह प्रचार किया जा रहा था कि यह सब कांग्रेस सरकार की धमकी है। कांग्रेस सरकार क्या, किसी भी सरकार की यह ताकत नहीं है कि मजदूरों की सामूहिक हड़ताल को नाकामयाब साबित कर दे। अगर सरकार ने मुल्क के मजदूर और किसानों का अपमान करने का फैसला किया है, तो शायद सरकार के लिए अब वे दिन आ गए हैं, जब वह जनता से अपमानित होने लगेगी। ऐसा करके सरकार अपनी गद्दी आप उलटाना चाहती है और ऐसी सरकार की गद्दी उलटकर ही रहती है। मजदूरों की जमायत में ऐसी बातें कहने के लिए मुझे मानिक सिंह ने सिखला दिया था।

सरकार की किसी भी नीयत का बिना कुछ परवा किये हड़ताल घोषित करने की सभा बुलायी गई। फिर वही जुलूस, वही नारे—इन्कलाब, जिंदाबाद ! रतननगर के मैदान में बहुत ही गंभीर सभा हुई। हड़ताल की घोषणा करते हुए मानिक सिंह ने कहा, “साथियो ! दुनिया का इतिहास तुम्हें खबरदार करता है कि जब भी साम्राज्यवाद के खिलाफ देश के मजदूर-किसानों ने अपनी आवाज बुलंद की, सरकारी और पूँजीवादी व्यवस्था ने उन्हें दबाने की हर कोशिश की और जब मजदूरों ने अपनी एकता की दीवार कमजोर की, उन्हें तबाही और मायूसी के घेरे में गिरफ्तार कर लिया गया। जब-जब मजदूर-किसानों ने अपनी हिम्मत नहीं हारी, अपने अधिकार की पहरेदारी के लिए उन्होंने पुलिस की गोलियों और लाठियों के सामने अपनी पीठ नहीं दिखलायी, तब-तब साम्राज्यवाद की ताकत, पूँजीवाद का झंडा उनके कदमों से गौद दिया गया। फ्रांस और रूस के इतिहास तुम्हें बतलाते हैं कि जनता की एकता की सत्ता सरकार को जब चाहे, बदल सकती है। मानता हूँ, अब हिंदुस्तान में साम्राज्यवाद नहीं रहा, हिंदुस्तान अब एक स्वतंत्र मुल्क हो गया, मगर आजाद मुल्क के मजदूर-किसानों को क्या-क्या हक मिलना चाहिए..... मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता। गाँधीवाद के आदर्शों

पर कायम की गई यह काँग्रेसी सरकार, तुम्हारे हकों के बदले, आज तुम पर गोलियाँ चलाने को तैयार है। देश की जनता पर आज भी गाँधीजी के नाम का बहुत बड़ा प्रभाव है। मगर उनके नाम पर, समझ में नहीं आता कि इस हिंसापूर्ण नीति के दाग कब तक धुलते रहेंगे...।”

मानिक सिंह, जिदाबाद !

सोशलिस्ट राज्य, कायम हो !!

अंग्रेजों से भी खतरनाक, काँग्रेस, काँग्रेस !!!

“रतननगर के मजदूर साथियो ! तुम यह कभी मत सोचोगे कि हड़ताल की पूरी जिम्मेवारी मानिक सिंह ही पर है। वे चाहे तो हड़ताल कामयाब हो सकती है, वे चाहे तो हड़ताल नाकामयाब हो सकती है। तुम अपने में से हर मजदूर अपने को मानिक सिंह समझो। हड़ताल की जिम्मेवारी रतननगर के एक-एक मजदूर पर है। समूचे घड़े में एक जगह छेद होने से समूचा घड़ा खाली हो जाता है। मैंने सुना है कि हमारी आज की होनेवाली हड़ताल को सरकार ने गैरकानूनी करा दिया है। मगर, सरकार को क्या मालूम है कि जनता के जज्बातों का मुँह बंद करके कानून की रक्षा नहीं की जा सकती। तुम्हारे हँसिए और हथौड़े में वह ताकत है कि तुम दुनिया के फासिज्म को इनसे काट और ठोंक-ठोंककर उसकी हस्ती हमेशा के लिए मिटा सकते हो। ऐसी सरकार के खिलाफ किसी भी मुल्क के मजदूर-किसान अपनी गर्म आवाज बुलंद कर सकते हैं, जो उनके ही पैसों और ताकत से उन्हें तबाह करना चाहती हो, उन्हें बरबाद करनी चाहती हो, उन पर गोलियाँ चलाने को आजाद हो। अभी-अभी चुनाव के वक्त काँग्रेस के नेताओं ने आपसे वादे किये थे कि अपनी सरकार कायम होने पर हम सबसे पहले देश की गरीब जनता, मजदूर और किसानों के हर सुख और सुविधा का इंतजाम करेंगे। और, आज तुम देख रहे हो कि अपनी सरकार बनाने के बाद, तुम्हारे सुख और सुविधा का इंतजाम करना दूर रहा, देश के सेठों के हाथ के खिलाफ बनें तो वे तुम पर गोलियाँ बरसाने का खासा इंतजाम कर चुके हैं,

तुम्हारा पेट भरने के बदले वे तुम्हारी छाती पर संगीन की नोकें लिये खड़े हैं . ।”

मजदूर-क्रांति, जिदाबाद !

हक के लिए, लड़ेंगे !!

काँग्रेस-सरकार से होशियार !!!

• “तुम्हारे पास न तो गोलियाँ हैं, न मशीनगन, न जेल, न कचहरी, न कानून । तुम्हारे पास एक ताकत है, वह ताकत है—संगठन और सोशलिस्ट पार्टी के लाल भडे के नीचे खड़े होकर शांतिपूर्ण हड़ताल । काँग्रेस सरकार अब तुम्हारी इस ताकत को भी हड़प लेना चाहती है । मैं समझता हूँ कि तुम किसी भी मूल्य पर अपनी इस ताकत को नहीं बेचोगे और याद रखो, अगर तुमने यह ताकत बेचने की कोशिश की, तो उसकी कीमत तुम्हें मिलेगी—तबाही, गरीबी, मायूसी, भूखमरी ।”

मानिक सिंह के भाषण को मजदूर गुरु-मंत्र की तरह सुन रहे थे । रतननगर का वह विशाल मैदान बीसों हजार मजदूर से भरा था । उनमें से किसी मजदूर को खाँसी आती, तो थूक घोटकर वह उसे दबा देता था । सभा लगातार चार घंटे तक होती रही । मजदूरों में से कोई भी मैदान छोड़कर अपनी जगह से पेशाब करने के लिए भी नहीं उठ रहा था । हाँ, मैदान के किनारे कुछ मजदूर खड़े-खड़े आपस में काना-फूँसी कर रहे थे । उनके हिलने-डुलने, झाँकने-देखने से ऐसा पता चलता था कि वे राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस में शामिल हो गए हैं । वे मैदान में बैठे मजदूरों से बहुत अलग हटकर खड़े थे । इसी समय इस मैदान की बगल की सड़क से बहुत धीरे-धीरे ट्रेड यूनियन काँग्रेसवालों की जीपगाड़ी गुजरी, जिसमें समय तिरगा झंडा लगाये वे मजदूरों को खबरदार करते चले गए कि यह होनेवाली हड़ताल गैरकानूनी करार दी गई है । इसमें शामिल होने वालों के साथ सरकार कड़ी-से-कड़ी कार्रवाई करेगी । मजदूरों को चाहिए कि वे हड़ताल करने की मंशा त्यागकर काम पर जायें । राष्ट्रीय ट्रेड

युनियन उनकी हर माँग की पूर्ति के लिए कंपनी से लड़ेगी, यहाँ वह मजदूरों की सेवा के लिए ही आई है।

“कंपनी के पूँजीपति मालिक का दम तोड़ने और रोटी का ऋगडा हल करने के लिए तुम्हारे पास एक ही रास्ता है और वह रास्ता है— हड़ताल। जाओ, सगठन बनाये रखो और आज दो बजे रात से पावर हाऊस के सिवा सभी कारखाने बंद कर दो...।”

मानिक सिंह के इन आखिरी शब्दों के साथ सभा भंग हो गई। हमलोगों ने अपने नारे बुलंद किए और एक मशाल जुलूस के साथ मजदूरों की विशाल भीड़ वहाँ से आगे बढ़ी। हाथों में मशाल लिये हमलोग नारे लगाते हुए रतननगर के हर रास्ते से गुजरे। मिल-मालिक के बँगले के सामने से भी हमारी भीड़ गुजरी। हजारों तेज मशाल की रोशनी में बिजली की रोशनी बहुत ही फीकी जान पड़ती थी। हमारे नारों की भयानक बुलंद आवाज इस तरह गरज रही थी, जैसे रतननगर के आस-पास से भी कोई ऐसी ही आवाज हमारा साथ दे रही हो। स्टेशन के पास आकर भीड़ कई टुकड़ियों में बँट गई और मजदूर अपने-अपने घरों की ओर जाने लगे। हम पाँच-सात मजदूर, जो इस हड़ताल के अगुआ थे, युनियन के दफ्तर में पहुँचे। आगे की हड़ताल किस तरह चलायी जाए, इस पर बातचीत होने लगी। मानिक बाबू ने हमलोगों को सलाह दी कि जो मजदूर राष्ट्रीय ट्रेड युनियन में चले गए हैं, वे तो काम पर जरूर जायेंगे। उन्हें काम पर जाते हुए रोकने के लिए पिकेटिंग करनी होगी। जुलूस निकालने होंगे। गिरफ्तार होना पड़ेगा, जेलों में जाना होगा। उन्होंने बतलाया कि ऐसी तो उम्मीद नहीं है कि सरकार मजदूरों को दबाने की हर कोशिश करेगी, मगर मजदूरों को सरकार के हर जुर्म सहने के लिए तैयार करना होगा। जब जोरों की गिरफ्तारियाँ होगी, जब मजदूर जेल जाने लगेंगे, तब सरकार की खूब बदनामी होगी और अगर कहीं गोली चल गई, तो राष्ट्रीय ट्रेड युनियन

काँग्रेस और काँग्रेस सरकार की मिनिस्टरी कहीं मुँह दिखलाने के लायक नहीं रह जाएगी ।

यह बात मेरी समझ के बाहर थी कि सोशलिस्ट मजदूरों के खिलाफ सरकार कौन-कौन से रुख इखितयार करेगी । मगर, मैं अपने सभापति के इशारे पर चलने के लिए हर वक्त तैयार था । हड़ताल की वह पहली रात तो खुशी-खुशी कट गई । हड़ताल कैसी चल रही है, कितने मजदूर काम पर जा रहे हैं, इन बातों का पता लगाने के लिए मैं अपने तीन-चार दोस्तों को लेकर कारखाने के मेन गेट पर पहुँचा । दिन के साढ़े नौ बज रहे थे । रोज की तरह कारखाने में साढ़े नौ का भोंपा बजा । भोंपा बजना तो कोई अचरज की बात नहीं थी ; क्योंकि पावर हाऊस के मजदूरों को हड़ताल करने का हुक्म नहीं दिया गया था । गेट पर मेरी ही तरह और भी हजारों हड़ताली मजदूर पहुँचे थे । रोज की तरह वे कारखानों में नहीं घुसे, बल्कि लोहे के विशाल फाटक के सामने चौड़ी सड़क पर खड़े रहे । भोंपा बजते ही मेन-गेट खुलने पर मैंने बाहर ही से भीतर की ओर झाँका, तो देखा, गेट के भीतर आठ सगीनधारी पुलिस अकड़कर खड़ी थी । गेट खुलते ही कई तरफ से मजदूर आ-आकर कारखाने में घुसने लगे । कुछ को तो मैंने चेहरे से पहचान लिया कि वे पावर-हाऊस में काम करते हैं ।

“कहाँ चले भाई ?”

“काम पर ।”

“कहाँ काम करते हो ?

“तुम क्यों पूछते हो ?”

“ऐसे ही, बतलाओ न ।”

“पेपर फैक्टरी ।”

“पेपर फैक्टरी में कैसे जा रहे हो, हड़ताल का फैसला तुमने नहीं सुना था क्या ? सिर्फ पावर-हाऊस के मजदूर काम पर जायेंगे ।”

“चलो, चलो । हड़ताल की ऐसी-तैसी... ।”

मैंने कई मजदूरों से इस तरह की बातें की और वे मेरी किसी भी बात को बिना ध्यान से सुने कारखाने में घुस गए। मजदूरों की इस हड़ताल को नाकामयाब साबित करने के लिए शायद तीसरे या चौथे रोज पूरे रतननगर में १४४ दफा लागू कर दिया गया। फिर पाँचवे रोज रतननगर क्लब के मैदान में पाँच सौ हथियारबंद सिपाही उतर गए। मैदान में उनके तंबू गिर गए। सगीने चमकने लगी—चुमाचम। इस मैदान को चारों ओर से कंटीले तारों से घेर दिया गया। बाहर से दो स्पेशल दारोगा और कुछ पुलिस अफसर भी आए। कारखाने के हर फाटक, हर दफ्तर पर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। पोस्ट-आफिस, टेलीफोन एक्सचेंज और पावर-हाऊस के फाटक पर तो एक-एक छोटी मशीनगन भी तैनात की गई थी। अब सोशलिस्ट मजदूरों ने बड़े साहस से जुलूस निकाला, पिकेटिंग शुरू हो गई। नारे लगने लगे—

कॉंग्रेस सरकार को, एक धक्का और दो !

गहार मजदूरों, होशियार !!

हड़ताल हमारी, जारी है !!

पार्टी की ओर से हड़ताली मजदूरों को एक-एक बैज मिला था। बैज लाल रंग का था। उन पर हंसिया और हथौड़े की तस्वीर बनी थी और उन पर लिखा था—

ह ड़ ता ली म ज दूर

र त न न ग र

फिर धीरे-धीरे गिरफ्तारी भी शुरू हुई। मजदूर गिरफ्तार होने लगे। गिरफ्तार हुए मजदूरों पर अभी कोई मुकदमा नहीं चलाया जा रहा था। वे उसी कंटीले तार से घेरे हुए मैदान के बीच पुलिस की तहकीकात में रखे जाने लगे। लेकिन, इससे मजदूरों के संघर्ष और सत्याग्रह की गर्मी खत्म नहीं हो गई। सरकार के कड़े कानून की हवा से राख फिर-फिर से आग बनती जा रही थी। बंद कारखानों को चलाने के लिए, अपनी तरकी

की लालच में, इंजीनियर जी-जान से कोशिश कर रहे थे। अब मुट्ठी-भर मजदूरों के बल पर, जो हमसे फूटकर ट्रेड युनियन काँग्रेस में चले गए थे, कारखानों का चलना मुश्किल जान पड़ने लगा, तो देहातों से बिल्कुल नए-नए आदमी बहाल किये जाने लगे। इस तरह पंद्रह रोज और लग गए, मगर कारखाने चालू नहीं हुए। देहातों से काम पर आनेवाले नए मजदूरों को हमारे हड़ताली मजदूर दोस्त टोली बना-बनाकर, उन्हें जब रास्ते में रोकने लगे, तो कंपनी की ओर से ट्रक का इंतजाम हो गया। सैकड़ों ट्रक उत्तर के देहातों की कच्ची सड़कों पर दौड़ने लगीं। वे मजदूर ट्रक ही पर आते और ट्रक ही पर जाते थे। रतननगर के बाहर १४४ दफा नहीं लागू किया गया था, इसलिए हड़ताली मजदूर रतननगर के पास के देहातों से आनेवाले नए कमकरो को बाहर ही चलकर सम्मान-बुझाने की कोशिश करते थे। ऐसा करने के लिए मैं भी जाया करता था। मगर, देहातों में भी तो बेराजगारी का सवाल था। वहाँ भी तो बड़े किसानों के द्वारा छोटी कमकर जाति का शोषण हो रहा था। शायद इसीलिए वहाँ के लोग नौकरी की लालच में कारखाने में घुस जाना अच्छा समझते थे। कंपनी और राष्ट्रीय ट्रेड युनियन की ओर से उन्हें विश्वास दिया गया था कि उनकी नौकरी पक्की होगी और उन्हें कभी हटाया नहीं जाएगा। वे कंपनी के बफादार नौकर समझे जायेंगे। जब उनकी ट्रक रतननगर के अहाते में घुसतीं, तो वे नारे लगाते—

ट्रेड युनियन, जिदाबाद !

मजदूरों का दोस्त, ट्रेड युनियन !!

तिरंगे झंडे की, जय !!!

हर एक ट्रक पर उन मजदूरों के साथ दो-तीन सगीनधारी सिपाही बैठे होते थे। इसी वक्त हमलोगों को यह पता लगा कि कुछ कारीगर बाहर के कारखानों से आ रहे हैं, जो मशीनों को चलायेंगे। उन कारीगरों को लंबी-लंबी तनखाहे देने का वादा किया गया है। उसी रोज रात को हमारी युनियन ने यह फैसला किया कि अब पावर-हाऊस के मजदूरों

को भी हड़ताल करने का हुक्म दे दिया जाए। दूसरे मजदूरों के जरिए यह खबर पावर-हाऊस के मजदूरों तक पहुँचा दी गई। उन्हें हुक्म दिया गया कि वे एकाएक पावर-हाऊस की सभी मशीनें बंद कर दे, पावर-हाऊस के व्यायलर को ठढ़ा कर दे। इसकी खबर किसी अफसर को न दी जाए।

पावर-हाऊस के मजदूरों ने यह फैसला किया कि दिन के साढ़े ग्यारह बजे पावर-हाऊस बंद करके वे एकाएक हड़ताल की घोषणा कर, कारखाने से बाहर निकल आँयेंगे। मगर, कोई मजदूर गुमराह हो गया। उसके जरिए यह खबर ऊपर के अफसरों तक पहुँच गई। दिन के दस बजे ही जब पावर-हाऊस अपनी पूरी ताकत के साथ काम कर रहा था, तभी पावर-हाऊस के सुपरिटेण्डेंट चीफ इंजीनीयर के साथ पावर-हाऊस में आए। उनके पीछे एक दर्जन रायफलधारी सिपाही थे। उनलोगों ने मजदूरों को एकाएक हुक्म दिया—

(१) अब तुमलोग किसी भी मशीन में हाथ मत लगाओ।

(२) अपने हाथ के सभी औजार जहाँ-का-तहाँ रहने दो। और

(३) पाँच मिनट के अंदर चुपचाप पावर-हाऊस से बाहर निकल जाओ।

मैं तो उस जगह था नहीं, मगर पीछे मजदूरों ने बतलाया कि उनके साथ वे लोग बड़ी बेरहमी से पेश आए। पाँच मिनट का वक्त खत्म होते ही रायफलधारी सिपाही उन्हें पकड़-पकड़कर पावर-हाऊस से बाहर करने लगे। व्यायलर के कुलियों को कुरता पहने मे तनिक देर हुई, तो उन्हें सिपाहियों ने बूट की ठोकरे लगायीं। कमकमों को तमाचे मार-मारकर सिपाही उन्हें पावर-हाऊस से बाहर निकाल रहे थे। जब पावर-हाऊस इन पुराने मजदूरों से खाली हो गया, तो उसमें एक ही साथ, कुछ पुराने कारीगरों को लेकर, जो राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस का साथ दे रहे थे, पाँच-पाँच इंजीनीयर पावर-हाऊस की ताकत को बरकरार रखने के लिए काम करने लगे। पावर-हाऊस चलता रहा और सोशलिस्ट मजदूर बाहर आकर हम हड़ताली मजदूरों में शामिल हो गए।

इस घटना के दूसरे ही दिन पता लगा कि बाहर से करीब डेढ़ सौ फीटर, हेलपर और मशीन ड्राइवर कंपनी ने बुला लिये हैं। पावर-हाऊस में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हो पायी थी। फिर बाहर से आए हुए कारीगर काम पर लग गए। सबसे पहले सिमेण्ट का कारखाना चालू हो गया। मशीनें चलने लगीं। मशीनों की गड़गड़ाहट शुरू हो गई। अब ऐसा लगने लगा, जैसे हड़ताली मजदूरों की गर्दन पर छूरा रखा जा रहा है। पार्टी के दफ्तर में हड़ताली मजदूर बराबर ही जुटते और हमारे सभापति सबको यह विश्वास दिलाते कि इतने लोगो से कंपनी का काम नहीं चलेगा। हड़ताल सफल होकर रहेगी।

इसी समय कंपनी के मैनेजिंग एजेंट ने एक बहुत बड़ी सभा बुलायी। बाहर से प्रेसवाले भी आए थे। खबर मिली थी कि इस सभा में लेबर मिनिस्टर भी आ रहे हैं। सभा का पंडाल बहुत बड़ा बना था। चारों ओर सगीनधारी पुलिस पहरा दे रही थी। इस सभा के लिए शायद १४४ दफा नहीं लागू था। शाम के करीब पाँच बजे लेबर मिनिस्टर मोटरगाड़ी से आए। उनके आने के समय तक कई राष्ट्रीय गीतों के रेकार्ड बजाये गए।

पहले एक कॉंग्रेसी सज्जन ने लेबर मिनिस्टर की देश-सेवा, त्याग-तप, ईमानदारी और उनकी तेज बुद्धि पर छोटा-सा व्याख्यान दिया। पीछे लेबर मिनिस्टर बोलने लगे। अपने भाषण में उन्होंने कहा, “मैं अभी हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर सभा में भाग लेने के लिए हिंदुस्तान की ओर से जेनेवा गया था। मैंने वहाँ के मजदूरों को देखा कि वे कारखाने के भीतर काम के वक्त में जी तोड़कर परिश्रम करते हैं। वहाँ हर मजदूर के पास रहने के लिए एक छोटा-सा मकान है। करीब-करीब सबके दरवाजे पर एक गाय है। मिल-मालिक की ओर से उन्हें काफी पैसे मिलते हैं। मैं यह नहीं कहता कि वहाँ के मजदूर मिल-मालिक के सामने अपनी कोई माँग ही नहीं रखते। वहाँ के मजदूर भी अपनी माँगें मिल-मालिक के सामने रखते हैं। मगर उनकी माँगों का फैसला हड़ताल के जरिए नहीं, पंच और समझौते के जरिए होता है।”

“.... ..मुझे खबर मिली है कि अपनी हड़ताल को नाकामयाब होते देखकर, हड़ताली, मजदूरों ने अपने उन दोस्तों को, जो पावर-हाऊस में काम कर रहे थे, एकाएक पावर-हाऊस बंद कर देने के लिए उकसाया। अगर कारखाने के जिम्मेवार अफसर पावर-हाऊस को अपनी निगरानी में न ले लिये होते, तो क्या होता ? मालूम है ? तकलीफ सिर्फ मिल-मालिक को ही नहीं होती। रतननगर में रहनेवाले किसी भी आदमी को रोशनी नहीं मिलती, पीने के लिए पानी नहीं मिलता। विदेशों में जाकर मैंने सुना कि अगर किसी-न-किसी तरह वहाँ मजदूर हड़ताल भी कर देते हैं, तो वे पावर-हाऊस को कभी भी बंद नहीं करते। और, उनका जो हड़ताली दोस्त पावर-हाऊस को बंद करने की सलाह देता है, उसे वे शर्मिंदा करते हैं।”

“आपको शायद नहीं मालूम कि आपके ऊपर अपने मुल्क की क्या-क्या जिम्मेवारियाँ हैं। आपके मुल्क की हालत आज जितनी खराब है, वह कारखाने बंद कर देने से नहीं सुधर सकती। आप कारखाने बंद कर देंगे। सिमेंट नहीं तैयार होगा, कागज नहीं तैयार होगा, चीनी नहीं बनेगी और ये सब चीजे हमें विदेशों से मँगानी पड़ेगी। क्या आप इस बात को पसंद करेंगे कि आपके मुल्क की महँगी पूँजी विदेशवालों के हाथ लगे ? मैं तो समझता हूँ कि मुल्क का कोई भी वफादार आदमी ऐसी हालत में कल-कारखाने बंद कराना नहीं चाहेगा। और जो लोग ऐसा करते हैं, जो लोग मजदूरों को ऐसे काम के लिए बहकाते हैं, मैं उन्हें मुल्क का सबसे बड़ा गद्दार समझता हूँ। हमने सुना है, कि सोशलिस्ट युनियन आपकी राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस के खिलाफ भद्दी-भद्दी शिकायतें फैला रही है। मैं तो इस ट्रेड युनियन की तारीफ करूँगा कि जिसने मजदूरों की हर खिलाफत के बावजूद भी कारखाने को बंद न होने दिया और मुल्क के उद्योग को एक बहुत बड़े धक्के से बचा लिया। सोशलिस्ट पार्टी अगर सरकार में आना चाहती है, तो मुल्क के लिए काम करे, मुल्क की हिफाजत के तरीके पैदा करे, मुल्क उसे खुद सरकार

मान लेगी । मगर इस तरह हड़ताल कराने से तो मुल्क के लिए कोई अच्छा काम नहीं हो सकता ..।”

“.. मुझे बतलाया गया है कि काम पर जाते हुए मजदूरों के ऊपर हड़ताली मजदूर ढेले-पत्थर फकते हैं । यह आपके लिए बहुत ही शर्म की बात है । मुझे मालूम है कि आप हड़ताली मजदूर यह जो कुछ भूल कर रहे हैं, सब सोशलिस्ट पार्टी के बहकावे में आकर । तो याद रखिए, ऐसी पार्टी को, जो मुल्क के उद्योग को तबाह करना चाहती है, मुल्क के मजदूरों को भड़काकर सरकार में आना चाहती है, यहाँ से उखाड़ फेंकने के लिए सरकार अपनी कोई भी ताकत छिपाकर नहीं रखेगी । अगर ऐसी पार्टी को उखाड़ फेंकने के लिए रतननगर में खून की नदी बहाने की भी जरूरत समझी गई, तो उसका भी इतजाम हो जाएगा....।”

“.....मजदूर भाइयो ! आपको शायद नहीं मालूम कि आज हमारे मुल्क के आसमान में युद्ध और अशांति के बादल मँडरा रहे हैं । इस वक्त हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए कि युद्ध और अशांति के बादल हमारी मुल्क पर बरस पड़े । अँग्रेज यहाँ से चले गए, मगर जाकर वे हमारी ओर से हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं । हमारे सामने पाकिस्तान की दोस्ती निभाने का सवाल है, हमारे सामने हिंदुस्तान और हैदराबाद के झगड़े का सवाल है, हमारे सामने भारत और कश्मीर का मामला पड़ा है..” हम संसार के किसी भी राष्ट्र के सामने बदनाम होना नहीं चाहते..। ऐसी हालत में जब मुल्क में, इस तरह की अशांति फैली रहेगी, तो हम मुल्क की हालत हर्गिज नहीं संभाल सकेंगे, आपकी हालत भी नहीं सुधर पायगी..।” मैं तो आपसे यह अपील करने आया हूँ कि आप काम पर जायें, अपने कारखानों को चलायें और अपनी माँगों के लिए ट्रेड युनियन काँग्रेस के झंडे के नीचे आकर शांतिपूर्ण ढंग से कपनी के साथ समझौता करें..।”

“मुझे आपसे एक बात कहनी है . ।” कहता हुआ भीड़ से एक मजदूर आगे बढ़ा ।

“क्या कहना है ?” मिनिस्टर ने पूछा ।

“मैं आपसे कुछ सवाल करना चाहता हूँ ••।”

“अच्छा, अभी चुप रहो । भाषण खत्म हो लेने दो । सवाल का जवाब दिया जाएगा ।” पंडाल पर मिनिस्टर की बगल में खड़े एक पुलिस-अफसर ने कहा । मैं उस मजदूर को पहचानता था । वह वर्क शॉप का मिस्त्री था और हड़ताल में शामिल था । मगर, लेबर मिनिस्टर का भाषण खत्म होते ही पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया । इसके बाद कंपनी के मैनेजिंग एजेंट ने एक छोटा-सा व्याख्यान देते हुए कहा, “मैंने मानिक सिंह के साथ बराबर समझौते की कोशिश की । मैंने उनसे कहा कि दोनों युनियन रहने दिया जाए । दोनों युनियन मिलकर काम करें । कुछ ही रोज में यह पता चल जाएगा कि मजदूर किस युनियन को चाहते हैं । मगर, इस पर वे तैयार नहीं हुए । तब मैंने उनसे यहाँ तक कहा कि तब दो रोज के भीतर मजदूरों से वोट ले लिये जायें कि वे किस युनियन को चाहते हैं । वोट के बाद जो युनियन विजयी होगी, मैं उसी के साथ समझौता करने की कोशिश करूँगा” ••मगर वे इस पर भी तैयार न हुए । आखिर मैं लाचार हो गया । रतननगर के सभी हड़ताली मजदूरों से मेरी प्रार्थना है कि वे काम पर चले आएँ” ••अगर पाँच रोज के भीतर वे काम पर नहीं आ गए, तो उनकी नौकरी की जिम्मेवारी कंपनी के ऊपर नहीं होगी ••।”

सभा खत्म होने के बाद फिर १४४ दफा लागू कर दिया गया । इस घटना के दूसरे रोज पुलिस-अफसरों ने दूसरा रास्ता इस्तिहार किया । हमारी युनियन के दरवाजे पर एक दर्जन रायफलधारी सिपाही तैनात कर दिए गए । अब मजदूर जत्थे बाँधकर युनियन में नहीं जा सकते थे । चार-पाँच मजदूर एक •साथ टहल भी नहीं सकते थे । ऐसा करनेवाला को पुलिस अपने हिरासत में ले लेती थी । इसी रोज शाम को मैं अकेला युनियन के दफ्तर में पहुँचा । सुना था कि हमारे सभापतिजी

अनशन करने जा रहे हैं। जाकर मैंने मानिक सिंह से भेट की और कल की मीटिंग की सारी बातें उन्हें बतलायी।

“क्या मैंनेजिंग एजेंट ने आपसे यह कहा था कि दोनों युनियन को मैं मजदूरों का नुमाइंदा मानता हूँ ?” मैंने पूछा।

“नहीं, बिल्कुल गलत बात है।” वे बोले।

“क्या आपसे उन्होंने यह भी कहा था कि मजदूरों से वोट लिये जायें, जिस युनियन की जीत होगी, मैं उसके साथ समझौता करूँगा ?”

“नहीं तो।” उन्होंने जवाब दिया। इसके बाद वे मेरा मुँह देखने लगे।

“अगर ऐसा भी होता, तो कुछ बेजा न था। हमलोग तो अवश्य ही जीत जाते। फिर इतनी परेशानियों का मुकाबला भी न करना पड़ता।” मैं बोला।

“तुम किसकी बात में पड़े हो, मंगरू ? कपनी बाहर से इतनी जिदाली जाहिर कर रही है। भीतर कुछ जान नहीं है। हमें हड़ताल में कामयाबी मिलेगी।”

“सो तो है। मगर मैंने एक बात कही। वोट लेने का रास्ता भी कुछ बुरा न था।”

“एक बात बतलाऊँ तुमसे ?”

“बतलाइए।”

“वोट लेनेवाली बात सही है। मगर, मैंने इसे अच्छा नहीं समझा। जब यहाँ के मजदूर सोशलिस्ट मजदूर युनियन पर निर्भर ही थे, तो यहाँ एक दूसरी युनियन को आना ही नहीं चाहिए था। जबरदस्ती एक सरकारी युनियन को बुलाकर वोट लेने की सारी बातें बेकार हैं।” वे बोले।

“जो भी हो, मगर यह एक सहूलियत का रास्ता जरूर होता।” —मैंने जोर देकर कहा, “अब मान लीजिए, अगर हमारी हड़ताल नाकाम-याब हो गई, तो हड़ताली मजदूरों के साथ कपनी कैसा बर्ताव करेगी ?”

“कुछ नहीं होगा। देख लेना, हड़ताल सफल होगी। इतनी बात पर झुककर मैं सोशलिस्ट पार्टी के पैरो में कुल्हाड़ी नहीं मार सकता था। मेरे ऊपर भी तो पार्टी के और बड़े-बड़े लोग हैं। तुम घबड़ाते क्यों हो, दो रोज का हाल और देख लो। दफा १४४ तो रतन-नगर में ही लागू है न ? हम अपने हड़ताली मजदूरों की एक सभा बीच नदी में बुलायेगे। तुम आज ही से इसका प्रचार शुरू कर दो। नदी में घुटने भर से अधिक पानी नहीं है। तुमने तो देखा होगा, पहले दो छोटी-छोटी धाराएँ हैं। आगे तो सिर्फ बालू-ही-बालू है। सभा वहीं बालू पर होगी। वहाँ मजदूरों के बीच मैं एक जोरदार भाषण देकर सबका जोश बढ़ा दूँगा।” उन्होंने कहा।

“जी, अच्छा होगा। हड़ताली कुली तो भूखों मरने लगे हैं।” मैं बोला।

“मगर एक बात याद रखो। किसी भी मजदूर से वोट लेकर समझौता करनेवाली बात मत बतलाना। बल्कि किसी-न-किसी तरीके से उन्हें यह समझना पड़ेगा कि मैनेजिंग एजेंट ने जो वे बातें कहीं थीं, वे सरासर गलत हैं। वोट लेकर अपने भाग्य का फैसला आज बड़े-बड़े राष्ट्र कर रहे हैं। भला, इसमें मानिक सिंह को क्या एतराज होता ?” मानिक सिंह ने मुझे सिखलाया।

“जी। मैंने कहा।”

“पार्टी-पॉलिटिक्स की भीतरी बातें गुप्त रखी जाती हैं।” वे बोले, धीरे से।

“जी।”

फिर रात-भर मैंने रिक्शा खींचा। सुबह थोड़ी देर कुछ सोया भी नहीं और रतननगर के कुली क्वार्टर में मानिक सिंह के संदेश का प्रचार करने पहुँचा। यहाँ आने पर कुलियों से दूसरी ही बात सुनने को मिली। सुनकर मैं अवाक रह गया।

“एक बात तुम्हे मालूम है कि नहीं, मंगरू भाई ?”

“क्या ?”

“हमारी हड़ताल को दबाने के लिए घुड़सवार फौज आ गई है।”

“घुड़सवार फौज आ गई है, मैंने तो नहीं देखा।”

“जाकर देख आओ।”

“कहाँ ?”

“उत्तर की चहारदीवारी के बाहर। बागीचे में।”

“सच ?”

“सॉच को आँच क्या, चलो तुम्हारे साथ मैं भी चलता हूँ।”
कहकर एक कुली मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो गया।

वहाँ से मैं अपने उस मजदूर दोस्त के साथ रतननगर के उत्तर की चहारदीवारी के बाहर घुड़सवार फौजों को देखने गया। सचमुच बागीचे में करीब डेढ़ सौ घुड़सवार फौज आ गई थी। एक खुले तंबू के भीतर सैकड़ों रायफले खड़ी करके रखी थीं और वहाँ एक सिपाही सगीन लिये खड़ा था। खूबसूरत और बड़े-बड़े मजबूत घोड़े चना खा रहे थे। कभी-कभी उनकी हिनहिनाहट से सारा बागीचा गूँज उठता था। घुड़सवार सिपाही आपस में न तो हिंदी बोल रहे थे, न उर्दू, न अंग्रेजी, न हिंदुस्तानी। वे बड़े लंबे और तंदुरुस्त दीख पड़ते थे। उनका बदन खून से लाल दीख पड़ता था।

“ये लोग कहाँ के रहनेवाले हैं ? मैंने एक सिक्ख हड़ताली से पूछा।

“ये लोग काबुल के रहनेवाले हैं। पश्तो बोलते हैं।”

“अच्छा...।” मैंने कहा।

कुलियों से बातें करके मैं पार्टी युनियन की ओर लौटने लगा। सवा नौ बज रहे थे। दाढ़ीवाले एक काबुली घुड़सवार सिपाहियों के सरदार का चेहरा मुझे याद आ रहा था, जो बंदूक की नली साफ करता हुआ हमलोगों को देख रहा था और एकाएक उसने हमलोगों के सामने आकर कहा, “जाओ, भागो। यहाँ भीड़ मत लगाओ। भागो, नहीं तो जूते मारूँगा...”। तबतक कारखाने में साढ़े नौ का भौपा बज गया।

फिर मैं कारखाने के मेन गेट पर आ पहुँचा। पहले ही की तरह मेन-गेट खुल गया था और मजदूर कारखानों में जा रहे थे। मगर, ये हड़ताली मजदूर नहीं थे। तभी मैंने देखा कि मेरा रिक्शावाला दोस्त हरि कारखाने में घुसा जा रहा है। मैंने उसे ऊँची आवाज देकर पुकारा, “हरि, ओ हरि भाई ?”

मेरी आवाज सुनकर हरि अपने चारो ओर देखने लगा। जब मुझपर नजर पड़ी, तो उसने दूर ही से पूछा, “क्या बात है, कोई जरूरी बात है तो कहो। वरना, मैं काम पर जा रहा हूँ। सुना नहीं, पहला भोंपा बज चुका है ?”

“सुना है, मगर जरा आओ न। जरूरी बात है।” मैं बोला। तब हरि लौटकर मेरे पास आ गया।

“कहाँ जा रहे हो ?” मैंने पूछा।

“काम पर।”

“तुम्हे कारखाने में नौकरी कैसे लग गई ?”

“यही हड़ताल में। नए लोग बहाल हो रहे थे, मैं भी बहाल हो गया।”

“तुम्हें नहीं मालूम कि अगर हड़ताल नाकामयाब हो गई, तो तुम्हारे-जैसे रतननगर के दस हजार मजदूर बेकार हो जायेंगे ?” मैंने पूछा।

“हो जायें तो मेरी बला से। दस हजार मजदूरों ने नहीं बेकार रह कर ही मेरे लिए क्या किया ? क्यों नहीं, किसी ने अपने साहब से सिफारिश करके मुझे नौकरी दिलवा दी ? और, जब दस हजार मजदूरों ने मेरे एक के लिए कुछ न किया, तो मैं अकेला भला दस हजार के किस काम आ सकता हूँ ?”

“अरे भाई, मजदूर तो खुद लाचार हैं, वे तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं ? कुछ करना होता, तो क्या मैं तुम्हारे लिए बाज आता ?”

“और मैं मजदूर नहीं तो क्या साहब हूँ ? चलो ।” इस तरह जवाब देकर हरि कारखाने के गेट की ओर देखने लगा । मैंने कहा, “तुम असल बात नहीं समझ रहे हो । माँग पूरी होते ही हड़ताली काम पर चले जायेंगे । भगवान के लिए तुम हड़ताली मजदूरों का साथ दो । छोड़ दो, काम पर मत जाओ ।”

“असल बात और कुछ नहीं है । मेरे लिए तो असल बात यह है कि मुझे पचास रुपए की *परमामिन्ट नौकरी लग गई है । तुम्हारे कहने पर मैं नौकरी छोड़ दूँ... हूँ... । पचास रुपए महीना देने का ठेका लेते हो ? रिक्शा खींचते-खींचते तो मैं बूढ़ा हो गया । तुमने देखा नहीं, बीमार पड़ने पर मुझे जानवरों के अस्पताल में एलाज कराना पड़ता था... ? तुम भी क्या बात करते हो, हरि इतना बेवकूफ नहीं है ।”

मैं उसका मुँह देखने लगा और वह बड़ी तेजी के साथ बढ़कर कारखाने के गेट में घुस गया । मैं भी वहाँ से सीधे युनियन के दफ्तर में चला आया । नदी के बीच बालू पर सभा करने का समय चार बजे निश्चित किया गया था । मजदूर डेढ़-दो बजे से ही नदी की ओर जाने लगे । मैं भी अपनी मोपड़ी से ढाई बजे निकला । रतननगर की सड़कों पर आकर देखता क्या हूँ कि घुड़सवार फौज चारों ओर गश्त लगा रही है । प्रत्येक फौजी जवान के साथ मोटी और मजबूत बेत थी । घोड़े की पीठ से एक ओर रायफल भी लटक रही थी । नदी रतननगर से पूरब की ओर थी । जैसे ही मैं अपने दो-चार हड़ताली दोस्तों के साथ रतननगर से निकलकर पूरब की ओर बाहर खेतों में आया कि देखा, हमलोगों से आगे जो मजदूरों का जत्था नदी की ओर जा रहा था, उसे घुड़सवार फौज तितर-बितर कर रही थी । फौजी जवान घोड़े दौड़ा-दौड़ाकर मजदूरों का पीछा करते हुए उन पर बेत चला रहे थे ! आगे का यह हाल होते देख हमलोग अपनी जगह पर खड़े हो गए और सोचने लगे कि अब

*स्थायी ।

क्या करना होगा । तभी हमलोगों के पीछे से घोड़ों की टाप सुनायी पड़ने लगी, टप् टप् टप् टप् टप्... । हमलोगों के पीछे फिरकर देखते-देखते घुड़सवार फौज की एक दूसरी टुकड़ी हमारे पास आ गई । उनमें से एक ने, जो तगड़े घोड़े का लगाम खींचता हुआ चारों ओर देख रहा था, हमलोगों को देखता हुआ बोला, “ठहरो मादरचोद ! कहाँ जाते हो ? अंग्रेज सरकार थी, तो साले को जूते मारती थी, क्या समझते हो साले, यह कांग्रेस सरकार कोई चीज ही नहीं... ?” तब घुड़सवार फौज ने हमलोगों को घेर लिया और बेटों की मार से हमलोग तितर-बितर हो गए ।

उस रोज मैंने अपने हाथों और पीठ पर घुड़सवार फौज की दर्जनों बेत बर्दाश्त कर ली थी। कितने लाल निशान उग आए थे। सभा नहीं हो सकी। रात में मैं पार्टी युनियन के सभापति से मिला। बाहर तो पुलिस का पहरा था। हड़ताल के सभी पहलुओं पर बहस हुई।

“अब ऐसे काम नहीं चलेगा।” वे बोले।

“कोई रास्ता निकालिए। सुना है, पेपर-फैक्टरी भी चालू हो रही है।”

“अच्छा?”

“हाँ, मैं पक्की खबर बतला रहा हूँ।”

“तो?”

“अब आप जो कहिए। हमें तो आपके ही बतलाये हुए रास्ते पर चलना है।”

“अब जमकर पिकेटिंग करने की जरूरत है। कॉंग्रेस-सरकार को अब पंख लग गए हैं। जब जुल्म की हद हो जाएगी, तभी हड़ताल को नाकामयाब कराने की नीयत से काम करनेवाले मजदूर हड़तालियों का साथ देगे।” मानिक सिंह ने कहा।

“जम कर पिकेटिंग करने का क्या अर्थ है?” मैंने पूछा। इस पर मानिक सिंह मेरा मुँह देखने लगे।

“हजारों-हजार की तादाद में, जहाँ तक अधिक हो सके, हड़ताली मजदूर कारखाने के मेन गेट और मॅनेजिंग एजेंट के बंगले के सामने नारे लगावे। ऐसे वक्त पर कुछ खास किस्म के नारे लगाने होंगे।

उन्हे नोट कर लो और इस बात की अपील करने के लिए मैं भी मजदूरों के क्वार्टरों में तुम्हारे साथ चलूंगा।” वे बोले।

“कब चलेगे?”

“रात को, दस बजे के बाद।”

“अच्छा, ठीक है।”

“तब तक तुम भी जाओ। अपने यहाँ जाकर खाना खा लो और थोड़ी देर आराम भी कर लोगे।” वे बोले।

बात तय हो गई। मैं अपनी फोपड़ी में चला आया। माँ या सनीचरी से मैंने बेत की चोट खानेवाली बात नहीं कही। वैसे तो रोज ही रूखा-सूखा भोजन करता था, मगर आज भरपेट रूखा-सूखा भोजन भी नहीं किया गया। मुँह धोकर मैं पेट के बल टाट पर सो रहा। जहाँ-जहाँ बेत लगी थी, वहाँ-वहाँ के अंग टिसटिसा रहे थे। नींद बिलकुल नहीं आयी। मैं जितनी देर अपनी उस किराए की फोपड़ी में टाट पर पड़ा रहा, उतनी देर यही अंदाज लगाता रहा कि अभी दस बजे हो गे या नहीं। एक बार अंदाज से ही मैं उठकर युनियन के दफ्तर की ओर चला। चलते वक्त माँ से कहा, “एक काम से जा रहा हूँ। लौटने में देर होगी, घबड़ाना मत।” और, वहाँ से सीधा युनियन के दफ्तर में आया। मानिक सिंह जैसे पहले से तैयार थे। बाहर से भी दो-तीन सोशलिस्ट साथी आ गए थे, जो दूसरी जगह के कारखानों में मजदूरों की युनियन चला रहे थे। उनके ऊपर दफ्तर छोड़कर मैं, सभापतिजी, और युनियन के सेक्रेटरी, तीनों आदमी कुली-क्वार्टर की ओर चल पड़े।

रतननगर में कोई भी ऐसा मजदूर नहीं था, जो सभापतिजी को न पहचानता हो। वहाँ पहुँचते ही हमलोग एक कुली के क्वार्टर में घुस गए। टाइट बिछी और उस पर हमलोग बैठ रहे। धीरे-धीरे क्वार्टरों में रहनेवाले कुली वहाँ इकट्ठे हो गए। क्वार्टर में रेल-पेल हो गई। कुछ कुली

बाहर ही बैठे और कुछ खड़े रहे। दफा १४४ लागू होने के कारण हमलोग एक जगह इतने आदमी इकट्ठे नहीं हो सकते थे, फिर सभा करने की बात तो अलग है। हथियारबंद पुलिस और घुड़सवारों का डर बना हुआ था। इसलिए इन कुलियों के बीच मानिक सिंह बहुत ही धीरे-धीरे भुन-भुनाने लगे। चाहे जैसे भी हो, मगर हम मजदूरों की इस गुप्त मिटिंग में आज उन्होंने यह साबित कर दिया कि अब काम पर जाते हुए मजदूरों को, उनको शर्मिन्दा करनेवाले नारे लगा लगाकर रोकना बहुत जरूरी है। इस काम में एक रोज की भी देर खतरे से खाली नहीं। मजदूरों को चाहिए कि वे ज्यादा-से-ज्यादा तादाद में कारखाने के मेन गेट के सामने खड़े होकर गद्दार मजदूरों को काम पर जाने से रोके।

रतननगर के हड़ताली मजदूर, जो जहाँ रह रहे थे, अपने नेता के हुक्म का इंतजार कर रहे थे। सुबह के नौ बजते-बजते यह खबर सभी हड़ताली मजदूरों को, उन मजदूरों ने पहुँचा दी, जो उस रात की गुप्त मिटिंग में शामिल थे। दिन के बारह बजते-बजते करीब छः हजार मजदूरों की भीड़ कारखाने के मेन-गेट पर खड़ी हो गई। किसी के हाथ में लाल झंडा, किसी के हाथ में लाल अगोछा ! इस भीड़ और पिकेटिंग का नेतृत्व मेरे ऊपर सौंपा गया था। मैं हड़ताली मजदूरों की इस बड़ी भीड़ के आगे खड़ा होकर नारे लगवा रहा था—

गद्दार मजदूरों, होशियार !

रोटी हमारी कौन छीन रहे, ये गद्दार, ये गद्दार !!

देशी अंग्रेज कौन है, कॉंग्रेस कॉंग्रेस !!!

‘रोटी हमारी कौन छीन रहे, ये गद्दार, ये गद्दार’ का नारा लगाते हुए हमलोग काम पर जाते हुए मजदूरों की ओर हाथ उठाते थे। काम पर जानेवाले मजदूर हमलोगों की ओर बहुत गुस्सा होकर देखते और कारखाने में घुस जाते थे। हम हड़ताली मजदूरों ने उस वक्त दो-तीन ऐसे नारे भी बुलद किये थे—

हिम्मत हो जाएगी पस्त, काँग्रेस सरकार की !

दमन-नीति यह बंद करो, नहीं तो गद्दी छोड़ दो !!

काँग्रेस-सरकार को, एक धक्का और दो !!!

लेकिन मैं देख रहा था कि हड़ताल-विरोधी मजदूर कारखानों में चले जा रहे हैं। जैसे उनके दिल पर हमारे नारों का कोई अमर न हो रहा हो, जैसे कारखानों के भीतर तक पहुँच जाने के लिए उनके पैरों में मशीनें लग गई हों। तभी मैंने देखा, उत्तर की ओर से, करीब पचास-साठ घुड़सवार फौज चली आ रही है। उनके पास वही दो हथियार थे—रायफल और बेट। मैंने भीड़ बनाकर खड़े हड़ताली मजदूरों की ओर देखकर बड़े जोरो के साथ कहा, ‘घबड़ाओ मत साथियो ! अब सोच लो कि अपना खून बेचकर तुम्हें अपनी रोजी और रोटी का मुकदमा लड़ना है।’ तब मैंने ये नारे लगवाने शुरू किए—

काँग्रेस का गहरा दाग, हमपर बेंतों की बौछार !

बेच रहे बापू का नाम, मिट जाएगी यह सरकार !!

बापू की टट्टी की आढ़, हो रहा मजूरों का शिकार !!

टप् टप् टप् टप् टप् टप्। घुड़सवार फौज हमलोगों के आगे आकर खड़ी हो गई।

“हटो साले, भागो, भागो मादरचोद...भागो, भागो ..।” फौज ने आवाज लगायी।

काँग्रेस सरकार को, एक धक्का और दो ।

नहीं हटेगे हम हड़ताली, जब तक माँग न पूरी होगी !!—नारे लग रहे थे।

“भागो मादरचोद...।” फौज कह रही थी।

संगीनों की नोक से, रोटी छीन रहे हो आज।

संगीनों की नोक पर, आज लटककर हम जायेंगे !!

काँग्रेस सरकार, मुर्दाबाद...मुर्दाबाद...

काँग्रेस.....।

“अबे साले, जम्प कर....।” तब इस तरह कहकर उस फौज की टुकड़ी के हेड ने अपने खतरनाक घोड़ों को हमारी छाती पर उछलने-कूदने का हुक्म दे दिया। दर्जनों अड़ियल घोड़े मजदूरों को भीड़ पर टूट पड़े, साथ ही फौज ने बेतों की मार शुरू कर दी। मजदूर बेतों की चोट खाने और घायल होने लगे। भीड़ की दोनों बगल से फौज बेत चलाती हुई आगे बढ़ी और उसने मजदूरों को आगे-पीछे दोनों ओर से घेर लिया। एक ओर कारखाने के गंदे पानी का नाला बह रहा था। मैंने देखा, नारे लगाते हुए कई मजदूर, फौज की मजबूत बेत से चोट लगने और सड़ फटने पर कटे पेड़ की तरह नालों में गिर गए।

बापू की टट्टी की आड़, हो रहा मजूरों का शिकार !

संगीनों की नोक से, रोटी छीन रहे हो आज !!

मैं चोट खाते हुए मजदूरों के बीच खड़ा होकर बड़े जोश के साथ नारे लगवा रहा था। तभी दो-तीन घुड़सवार फौज मेरे सामने चली आयी। मेरे कंधे और पीठ पर उनलोगों ने दर्जनों बेत लगायी। मुझे याद है कि मैं तब भी नारे लगा रहा था। तभी आगे बढ़कर एक घुड़सवार ने कहा, “नेता बना है मादरचोद ! साले टुकड़े-टुकड़े कर देगे।” और, तब उसने मेरे माथे पर कस-कसकर दो-तीन बेत मारी। मेरा सर चक्कर खा गया। आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा। मैंने देखा कि सामने का एक घुड़सवार सिपाही अपने घोड़े की दोनों अगली टापों को मेरी छाती पर रखना चाहता है। एक बेत रोकने के लिए जब मैंने अपने माथे पर हाथ रखा, तो मेरी हथेली और उँगलियाँ खून से सराबोर हो गईं। मेरे माथे से खून निकलने लगा। इसी बीच, जबकि मैं अपने को सम्हालने की कोशिश कर रहा था, सामने का घोड़ा मेरी छाती पर सवार होने लगा। इसके बाद याद नहीं कि भीड़ को फौज ने क्या किया, मैं बेहोश होकर वही जमीन पर गिर गया। मगर उस बेहोशी की ही हालत में,

मेरे कानों में थोड़ी देर तक हड़ताली मजदूरों के नारे बहुत धीरे-धीरे सुनायी दे रहे थे, जैसे मील-दो-मील की दूरी पर मजदूरों की भीड़ नारे लगा रही हो—

बेच रहे बापू का नाम, मिट जायगी यह सरकार...!

काँग्रेस सरकार को, एक धक्का और दो !!

संगीनों की नोंक पर, आज लटक कर.....

जब मुझे होश हुआ, तब मैंने अपने को बनगाँव के सरकारी अस्पताल में पाया। मेरे सिर में पट्टी बंधी थी और मैं थोड़ा-थोड़ा जख्म का दर्द महसूस कर रहा था। सुना कि मेरे कई दोस्त यहाँ भरती हैं और उस मार-पीट में दो-तीन मजदूर मौत के घाट उतर गए। जब मैंने आँखें खोलीं तो सबसे पहले मेरी नजर अपनी बूढ़ी माँ पर पड़ी। मेरे मुँह से निकला, “माँ, मैं यहाँ कैसे ?”

“.....।” जवाब देने के बदले मेरी माँ रोने लगी।

“तुम हड़ताल में शामिल थे न ?” बगल के एक आदमी ने पूछा।

“जी।”

“घुड़सवार फौज ने तुम लोगों पर बेत चलायी थी।”

“जी.. ...।”

“मुझे तो लोगों ने बतलाया है कि तुम्हे उसी वक्त चोट लगी।”

“जी, मैं हड़ताली दोस्तों के साथ.....।”

तब मुझे फिर सारी बातें याद आने लगीं। वह मारपीट की तसवीर ही मेरी आँखों के सामने नाचने लगी। उस वक्त का हो-हल्ला और कोहराम भी मेरे कानों में गूँजने लगा। मैंने माँ के रोने का अभी क्यों न कुछ खयाल न किया, नहीं कह सकता। मैंने उस आदमी से पूछा, “हाँ, घुड़सवार फौज हम लोगों की छाती पर घोड़े दौड़ाना चाहती थी। आपको मालूम है, फिर क्या हुआ उन हड़ताली मजदूरों का ?”

“मुझे नहीं मालूम, मैं तो पास के देहात का रहनेवाला हूँ।”

“अच्छा.....।”

यह सरकारी अस्पताल बनगॉव में, बिल्कुल नदी के किनारे पर था। अस्पताल के आस-पास तीन ओर सिर्फ आम, महुआ, नीम और पीपल के पेड़ थे। मैं जिस कमरे में था, वहाँ खिड़की की राह से झॉकने पर नदी का दूसरा किनारा बड़ी आसानी से नजर आता था। मैं धीरे-धीरे उठकर बैठ गया। खिड़की की राह से मैंने देखा कि पेपर फैक्टरी के लिए फुलिया बाँस के व्यापारी उन बाँसों की बड़ी-बड़ी मचाने पानी में दहलाते हुए लिये आ रहे हैं। उन मचानों को देखकर मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि अभी इन बाँसों को भला कौन खरीदेगा। पेपर-फैक्टरी में तो कुत्ते और गीदड़ दौड़ रहे होंगे। दैत्य की तरह उन बड़ी-बड़ी मशीनों में जंग लग रही होगी। शायद इस व्यापारी को नहीं मालूम कि रतननगर के दस हजार मजदूर अभी कारखानों को बद करके अपनी रोटी की लड़ाई लड़ रहे हैं। उन्हें इस बात की जानकारी कर लेनी चाहिए थी कि अभी कागज का कारखाना चालू हुआ है या नहीं। तभी माँ ने मुझसे कहा, “लेट जाओ न बेटा। डाक्टर बाबू ने उठने के लिए मना किया है।”

“उठने के लिए मना किया है?”

“हाँ...।” माँ बोली।

“तुम रोती क्यों हो माँ, अब तो हमलोगों ने बाजी मार ली है।”

“चुप रहो, लेट रहो...।” माँ ने कहा।

“अच्छा, लेट जाता हूँ। और जिउराखन कहाँ है, और उसकी माँ?” पलंग पर धीरे-धीरे लेटकर मैंने पूछा।

“वह पलानी में है। भात पकाती होगी।” माँ बोली।

भात पकाने की बात सुनकर तबियत ने जानना चाहा कि वह भात कैसे पका रही होगी। यहाँ तो रोज रिक्शा खींचकर कुछ लाता था, तब तुम चूल्हा गर्म करती थी। भात के लिए चावल का इंतजाम कहाँ से हुआ? मगर, बगल के सीटों पर मरीजों के पाम कर्ड लोग बैठे थे। इसीलिए इन सवालों को पूछने की इच्छा रहते हुए भी मैंने उन्हें दबा

दिया। तभी मैंने देखा कि सामने के दरवाजे से बीलट भाई भीतर घुसे और सीधे मेरे पास चले आए। माँ खिसककर जरा बगल हो गई और वे वही पर रखी स्टूल को खींचकर, मेरे मुँह के सामने बैठ रहे। मेरे मुँह से निकला, “पाव लागू, बीलट भाई।”

“पाव लागू।” वे बोले।

“क्या खबर है?” मैंने पूछा। देखा, उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आँखों में पहले की तरह रौनक नहीं थी।

“समाचार अब क्या पूछना है, समाचार तो खराब ही है।”

“सो क्या, हड़ताली मजदूर काम पर चले गए?”

“नहीं, मगर अब नहीं जाने से ही क्या होनेवाला है?”

“मतलब?”

“हड़ताल तो समझो, फेल ही हो गई। सभी कारखाने चालू हो गए।”

“सभी कारखाने चलने लगे? यह तुम क्या कह रहे हो, बीलट भाई?” मैंने पूछा। मुझसे रहा नहीं गया। मैं झट उठकर बैठ रहा।

“मैं ठीक कह रहा हूँ, मगरू। अस्पताल से बाहर निकलोगे, तो सब हाल मालूम हो जाएगा।” बीलट भाई बोले।

“एसिड प्लांट चल रहा है?” मैंने पूछा।

“कह तो दिया, सभी कारखाने चालू हो गए।” उन्होंने जवाब दिया।

“मानिक सिंह की क्या सलाह है, वे क्या कह रहे हैं?”

“वे हैं कहाँ, जो सलाह देगे। उस रोज पिकेटिंग को दबा देने के बाद पुलिस ने उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया।”

“वे भी गिरफ्तार कर लिये गये?”

“हाँ, युनियन के दफ्तर में पुलिस ने ताले लगा दिये हैं।”

“फिर तुमलोग क्या सोच रहे हो, कंपनी की ओर से क्या कहा ज रहा है?”

“अब तो कंपनी अड़ गई है।”

“सो क्या?”

“मैनेजिंग एजेंट ने हुकम दिया है कि अब हड़ताली मजदूरों में से वही मजदूर काम पर रखे जायेंगे, जिनको रखना फैक्टरी इंचार्ज ठीक समझेगा। बाकी हड़ताली मजदूरों को काम नहीं मिलेगा। जेनरल-आफिस और लेबर आफिस के दरवाजे पर एक नोटिस लगी है, जिसमें हड़ताली मजदूरों को यह आगाह किया गया है कि हड़ताल के पहले वे जिस फैक्टरी में काम करते थे, वहाँ के फैक्टरी इंचार्ज से मिलकर अपनी नौकरी का फैसला करा लें। अगर वे फिर रखने के काबिल नहीं समझे गए, तो उन्हें दरखास्त देकर हड़ताल होने के एक रोज पहले तक की मजदूरी ले लेनी चाहिए और अगर वे कंपनी के क्वार्टर में रहते हों; तो इसीके साथ उन्हें क्वार्टर भी छोड़ देना होगा, वरना पुलिस की मदद ली जाएगी।”

“यह तो बड़ी आफत हुई, बीलट भाई !”

“हाँ।”

“और, मजदूर भाइयों का क्या हाल है ?” मैंने पूछा।

“हाल अच्छा नहीं है। भुखमरी चल रही है और क्या ?”

“तुम अपनी नौकरी के लिए क्या सोच रहे हो ?”

“मैं तो काम पर चला जाना चाहता हूँ।”

मैं कुछ दिनों के बाद अस्पताल से छोड़ दिया गया। पीछे पता चला कि अपनी गिरफ्तारी के थोड़ी देर पहले सभापतिजी ने किसी आदमी के हाथ से मेरे यहाँ पचास रुपए भिजवा दिये थे। उन्हीं रुपयों से अब तक मेरे घर का खाना-खुराक चल रहा था। अब तक मानिक सिंह रिहा होकर नहीं आए थे। मेरे अस्पताल से आने के पहले तक आवे से अधिक हड़ताली मजदूर काम पर चले गए थे। पूरी फैक्टरी धकाधक चलने लगी थी। पहले की ही तरह समय पर भौपा बजता था, मजदूर मेन गेट की ओर दौड़ते हुए नजर आ रहे थे। ठेकेदार का मुंशी वैसे ही सिमेंट फैक्टरी के गेट से अपने आदमियों को कारखाने के भीतर लिवा जा रहा था। अभी तक शायद पाँच हजार मजदूर काम पर नहीं रखे गए थे। अपनी-अपनी फैक्टरी के इंचार्जों के पास दौड़ते-

दौड़ते उनके तलवे घिस रहे थे। खुशामदी बाते बोलते-बोलते जुबान से खुशामद की बू आने लगी थी। ऐसे वक्त पर देहातों में रहनेवाले हड़ताली मजदूरों ने फैक्टरी इंचार्ज के यहाँ कंटियो में घी पहुँचाये। सिफारिश करने लिए शीफ्ट इंचार्जों से महीने, दो महीने की तनखाह दे देने की बात तय हुई। हड़ताल के नाकामयाब होने से कंपनी ने बड़ा लाभ उठाया। हड़ताली मजदूरों को काम पर रख लेने के बदले जितना दबाया जा सकता था, उतना दबाया गया। हड़ताल नाकामयाब होने के बाद काम पर लिये जानेवाले मजदूरों से मेरी बातचीत हुई।

“फिर काम पर रख तो लिये गए न ?” मैंने पूछा।

“रख तो लिया गया, मगर अजीब-अजीब शर्तों पर।” उनलोगों ने कहा।

“शर्तें, कैसी शर्तें ?”

“हमलोगों की फिर बहाली हो गई। बहाल होते वक्त एक छपे हुए फारम को पढ़कर इंचार्ज ने सुना दिया। उसी फारम पर अपने अँगूठे का निशान देने के बाद काम पर आने का हुक्म हुआ और फिर हाजिरीवाला नया कार्ड मिला।” वे बतलाये।

“फारम में क्या लिखा था ?”

“चार-पाँच शर्तें थीं। पहली शर्त यह थी कि मैं वादा करता हूँ कि कंपनी के वर्क्स मैनेजर और मैनेजिंग एजेंट के हुक्म के प्रति हमेशा वफ़ादार रहूँगा। दूसरी शर्त यह थी कि मैं किसी भी युनियन के बहकावे में आकर कभी हड़ताल न करूँगा। तीसरी शर्त यह थी कि अगर मैं ऐसी युनियन का मेम्बर बनूँ, जो हड़ताल कराने के पक्ष में है, तो कंपनी को यह हक होगा कि वह मुझे नौकरी से बर्खास्त कर दे। चौथी शर्त थी, अगर कंपनी यह महसूस करे कि कारखाने में जरूरत से अधिक मजदूर हैं, तो वह अपने अफसरों के जरिए छँटनी करा सकती है और अगर मैं छँटने लायक समझा गया, तो नौकरी से हटने में न तो मुझे कोई एतराज होगा और न मैं इस तरह की कोई भी दरखास्त सरकार से

मंजूर युनियन या राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस में ही दे सकूँगा। और पाँचवीं शत यह थी दोस्त, इस फारम में जितनी बातें लिखी हैं, उन्हें मैंने पढ़वाकर अच्छी तरह समझ ली है और पूरा सोच-विचार करने के बाद ही इस पर अंगूठे का निशान दे रहा हूँ या दस्तखत कर रहा हूँ।”

मजदूरों ने मुझे इन शर्तों से वाकिफ कराया। मुझे यह भी पता लगा कि रतननगर के जो मजदूर, हड़ताली मजदूरों के अगुआ बने थे, उन्हें कंपनी किसी भी शर्त पर रखने को तैयार नहीं है और राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काँग्रेस के सभापति की सलाह से ही यह सब कुछ किया जा रहा है। इसलिए अपनी नौकरी के लिए फिर एसिड प्लांट के इंचार्ज के पास जाना मैंने उचित नहीं समझा। मैंने रतननगर में घूम-घूमकर देखा कि अब फौज का कैसा इतजाम है। घुड़सवार फौज वापस जा चुकी थी। टेलीफोन एक्सचेंज, पोस्ट आफिस, खजाना और जेनरल आफिस के दरवाजों पर सिर्फ एक-एक मिलिटरी पहरा दे रही थी। आस-पास के गाँवों से आनेवाले नए बहाल किये गए हड़ताल-विरोधी मजदूर अब पैदल आने-जाने लगे थे। पिकेटिंग का सवाल उठानेवाला अब कोई नहीं रह गया था। जिन हड़ताली मजदूरों को काम पर रख लिया गया था, उनके चेहरे पर मायूसी छायी हुई थी। वे बदन से बहुत थके और मन से बहुत ही हारे नजर आ रहे थे।

इन्हीं दिनों एक दिन मैं अपनी कोपड़ी से निकलकर रिक्शे के मालिक के यहाँ पहुँचा। सोचा था कि जब अपनी पार्टी के दिन लौटेंगे, तब नौकरी की कोशिश करूँगा। तबतक दिन-रात पेट भरने के लिए रिक्शा खींचना ही कुछ बुरा न रहेगा। मेरे सर पर जखम का गहरा दाग देखकर रिक्शे के मालिक ने पूछा, “तुम्हें यह क्या हो गया?”

“चोट लगी थी।”

“कैसे?”

“हड़ताल में। घुड़सवार फौज की बेंत से.....।”

“मुझे सब मालूम है। हरि आकर बतला गया था।” मेरी बात काटकर रिक्शे के मालिक ने बतलाया।

“जी, सरकार ! अब तो नौकरी भी जाती हुई नजर आ रही है।”

“इधर कैसे आए . . ?”

“रिक्शे के लिए सरकार ! सोचता हूँ, खटकर सवारी खींचने से भर-पेट आध-पेट रोटी का सवाल पूरा ही हो जाएगा।”

“सो तो है। मगर अब तो मैं रिक्शा भी नहीं दे सकता। एक तो तुम्हारी नौकरी नहीं रही, दूसरे तुम बहुत दूर के रहनेवाले हो। अगर तुमने गाड़ी ही इधर-उधर कर दी, तो बेकार तीन सौ, साढ़े तीन सौ के धन पर पानी फिर जाएगा। हरि कह गया है कि अब मैं मगरू की जिम्मेवारी नहीं ले सकता।”

“जो. . .।” मेरे मुँह से इतना ही निकला।

“हाँ भाई, अब रिक्शा नहीं मिल सकता। मैं रोजगारी आदमी हूँ, रोजगार करूँगा या मुकदमा लड़ूँगा।”

“लेकिन सरकार, मुझसे ऐसा नहीं होगा। मुझपर विश्वास कीजिए। अगर आपने कृपा न की, तो हम चार प्राणी भूखों मर जायेंगे। मेरे साथ मेरी माँ है, मेरी जनाना है और मेरा एक बच्चा भी है। बड़ा गरीब आदमी हूँ। घर पर रहने के लिए चार धुर अपनी परती जमीन तक नहीं है। आप से झूठ बोलकर क्या नफा होगा, अगर काम करके खाने का जरिया दे दिया जाय, तो मेरे रोएँ रोएँ आपके गुण गावेंगे।”

“नहीं भाई, मैं ऐसी माया में नहीं पड़ता।”

“क्यों, मुझ पर आप विश्वास कीजिए न।”

“नहीं, मैं आदमी पर विश्वास नहीं करता। मैं रुपए और जमानत पर विश्वास करता हूँ। एक रिक्शावाला ऐसे ही तीन सौ की चपत देकर चला गया। मैं रुपए तो बनाता नहीं हूँ।” रिक्शे के मालिक ने कहा और मेरी ओर से मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगा।

“सरकार, सभी सिक्के खोटे नहीं होते। मैं समझता हूँ कि आप हरि की बात मन में गड़ाए हुए हैं। उसने चिढ़ से ऐसा कह दिया होगा। जब हड़ताल जोरों से चल रही थी, तब उसने कारखाने में नौकरी पकड़ ली। मैंने उसे काम पर जाने से रोका था। कहा था कि ऐसी नौकरी छोड़ दो। वह भी इसलिए कि उस समय रततगर के दसों हजार मजदूर हड़ताल करके कंपनी के साथ हक की लड़ाई लड़ रहे थे, उनकी रोटी का सवाल था।”

“और अब क्या हो रहा है?”

“अब तो हड़ताल फेल हो गई सरकार...।” मैंने शरमाकर कहा।

“मिल-मालिक का क्या बिगड़ा? अरे, तुम्हारे जैसे लोग तो एक नहीं लाखों, नौकरी के लिए वहाँ नाक रगड़ते हैं।”

“जी ..।”

“तुम लोगों के हड़ताल करने से क्या हुआ?” तुम मेरा रिक्शा नहीं खींचते, तो इससे क्या, मेरा रोजगार चौपट हो गया या मैं भूखों मर रहा हूँ? अरे, अब तो ऐसा जमाना आ गया है मगरु कि मिल-मालिक और व्यापारी तो दूर रहा, एक मजदूर ही दूसरे मजदूर के मुँह की रोटी छीन लेगा। तुमलोग हो किस फेर में, जरा वक्त को पहचानने की कोशिश करो ..।”

“जी सरकार, आप ठीक कह रहे हैं।” मैंने कहा।

“ठीक है, जाओ। जैसे-तैसे कारखाने में घुसने की कोशिश करो। मैं अपना रिक्शा किसी तरह नहीं दे सकता।”

“जी ..।”

मैं वहाँ से निराश होकर लौट आया। शाम के पाँच बजे एसिड प्लांट के इंचार्ज के बगले पर इस नीयत से गया कि अगर वे आसानी से काम पर रखने को तैयार हो जायेंगे, तो काम पर चला जाऊँगा। अगर उन्होंने आना-कानी की, तो हड़ताल के एक रोज पहले तक की मजदूरी के लिए दरखास्त दे दूँगा। अब आगे राम हैं मालिक, देखा जाएगा।

मैंने इस तरह की दरखास्त लिखकर साथ में रख ली थी। साहब बँगले के बाहरी बरामदे में बैठे अपने दो दोस्तों के साथ चाय पी रहे थे। मैं धीरे-धीरे जाकर नीचे की सीढ़ी पर खड़ा हो गया। साहब ने जब मेरी ओर देखा, तो मैंने हाथ जोड़कर कहा, “सलाम हुजूर।”

“क्या है ?” सलाम के जवाब में साहब ने यही पूछा।

“सरकार, अब तो हड़ताल खत्म हो गई। काम के लिए आया था। पाँच रोज हुए, अस्पताल से निकला हूँ।”

“मुझे सब मालूम है। तुम-जैसे लोगों को अब काम नहीं मिलेगा। कारखाने में काम करने के लिए मजदूरी की जरूरत जरूर है, मगर जिनके दिमाग में मजदूरी करके पेट भरने की बात के सिवाय नेता बनने और नाम कमाने की भी धुन सवार हो, उनके लिए मेरे यहाँ कोई जगह नहीं। तुम तो नेताजी हो गए थे न ?” साहब ने ये बातें बड़ी कड़ी आवाज में कहीं।

“सरकार, हक के लिए तो हर कोई लड़ता है...।”

“तो जाओ, लड़ना छोड़ क्यों दिया ? लड़ो, अभी खूब लड़ो।” साहब ने मेरी बात काट दी।

“सरकार, मेरी यह दरखास्त ले ली जाए।” कहकर मैंने अपनी बाकी मजदूरी की दरखास्त उनकी ओर बढ़ायी।

“क्या है, दरखास्त कैसी ?”

“पढ़ लिया जाय, हुजूर ?”

साहब ने मेरी दरखास्त बहुत जल्द पढ़ ली। उसे टेबुल के नीचे गिराकर वे चाय की चुस्की लेने लगे। न जाने, तब मुझसे कुछ क्यों नहीं बोले। वे अपने दोस्तों से शायद इस विषय पर बातें कर रहे थे कि आजकल सबसे बढ़िया रेडियो कौन निकला है। मैं वहाँ खड़ा भी हूँ, साहब शायद इस बात को भूल गए। मैंने उन्हें याद दिलायी, “तो क्या हुक्म होता है सरकार ?” तब साहब ने मेरी ओर चौककर देखा, बोले, “दरखास्त वहीं ‘पे आफिस’ में दे देना। मैंने तुम्हारे

डिसमिसल की रिपोर्ट भेज दी है। पैसे मिलने में कोई दिक्कत हो, तो फिर मेरे पास आना। जाओ, अपनी दरखास्त उठा लो।”

“अच्छा, सलाम हुजूर !”

चाय की टेबुल के नीचे से झुककर मैंने अपनी दरखास्त उठा ली और वहाँ के साहब को सलाम कर वापस चला आया। करीब छः रोज तक बड़ी दौड़-धूप करने के बाद कंपनी ने बत्तीस रुपए ग्यारह आने दे दिये। अब मैंने सोच लिया था कि फिर घर चला जाऊँगा और फिर पहले की तरह बच्चा बाबू के यहाँ रहकर किसी तरह पेट पालूँगा। मन-ही-मन यह फैसला कर लिया था कि अब माँ हवेली कमाएगी, सनीचरी गोबर सानेगी, गोंडठा ठोकेगी और मैं कुट्टी काटूँगा। बच्चा बाबू के खेतों की रखवाली करूँगा। बीलट भाई को फिर नौकरी मिल गई थी, उन्होंने कंपनी की सारी शर्तें मान ली थीं। एसिड झाँट को अब मुक्त-जैसे मजदूरों का इंतजार नहीं था।

आखिर, एक रोज सुबह की गाड़ी से मैं अपने छोटे परिवार के साथ घर के लिए चल पड़ा। उस रात को मुझे नींद नहीं आयी थी। कभी मुझे रकटू याद आता, कभी बुधिया याद आती और कभी मूपसी भाई याद आते। रात को टाट पर पड़ा-पड़ा मैं कई बार रोया था। रेलगाड़ी में बैठा-बैठा मैं अपने गाँव पर की, अपनी आँखों देखी सारी घटनाएँ याद करने लगा। दादा किस तरह मारे गए, बाबू किस दुर्गति से मरे, हमलोगों की मजबूरी से जमींदार ने हमें कितना सताया था ? जब कारखाने में नौकरी लग गई थी, तब मैंने सोचा था कि मेरा नया जन्म हो गया है, मेरी तकदीर का सितारा गर्दिश के घेरे से निकल आया है। अब जमाना तरक्की कर रहा है, सरकार बदल रही है, लोग बदलते जा रहे हैं, गरीब किसानों की पीठ पर कोड़े लगवानेवाले बच्चा बाबू जेल जाने लगे। मगर, अब आँखों के आगे विचित्र दूरबीन लग गई थी। लगता था, जैसे जमाना दस-बीस वर्ष पीछे की ओर खिसक गया है। माँ मेरी हर सलाह पर हुँकारी भरती जाती थी, मगर उसके चेहरे को देखने से

ऐसा पता चलता था, जैसे उसका मन गाँव पर जाने का नहीं है। वह फिर उसी नर्क में नहीं समाना चाहती। अपने बेटे जिउराखन को गोद से चिपकाए सनीचरी कभी सोती, कभी जागती और कभी मेरा मुँह देखने लगती थी। गया तक गाड़ी में बड़ी भीड़ रही। यहाँ से एक गाड़ी एक बजे दिन में पटना जाने के लिए मिली। गया से पटना जाने के लिए ही यह गाड़ी थी, इसलिए यहाँ हमलोगों को भीड़ का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन, गाड़ी के डिब्बे भर जरूर गए। पैसिन्जर बहुत नारे नारे चलते थे। आगे आनेवाले स्टेशनों पर कुछ लोग उतरते, कुछ लोग चढ़ते। मगर रेल-पेल और धक्कम-धुक्की की नौबत नहीं आई। जहानाबाद स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो एक काले रंग का बूढ़ा आदमी मेरी बगल में बठ रहा। देखने में वह बड़ा बदसूरत था। उसके शरीर में साफ दुरता और मैली धोती थी। कंधे पर एक साफ गमछा रखे हुए था। पैर खाली थे। पास बैठते ही उसने पूछा, “कहाँ जाओगे?”

“छपरा।”

“यह जनाना लोग तुम्हारे साथ हैं?” उसने सनीचरी और माँ की ओर इशारा करके पूछा।

“हाँ।” मैंने कहा।

“मकान छपरा ही है?”

“हाँ, पटना अब यहाँ से कितने स्टेशन होगा?”

“बस, दो टीसन।”

“अच्छा।”

“कहाँ से आ रहे हो, कहीं परदेश कमाते हो?”

“हाँ, कमाता था। अब नौकरी छूट गई। घर लौट रहा हूँ।

“कौन * आसरे हो?”

* जालि।

“मोची...।” मैंने कहा, फिर मेरे मुँह से निकला, “और तुम ?”

“हम दोनों जाति-बिरादर ही हैं।”

“रहते कहाँ हो ?”

“पटना।”

“क्या करते हो ?” मैंने पूछा।

“रिक्षा चलाता हूँ। मेरा घर हाजीपुर है। बूझो, तो हमलोग जवारिएँ हैं। इस पार सोनपुर, बीच में गडक और उस पार हाजीपुर, इधर छपरा जिला, उधर मुजफ्फरपुर। है न बेटा ?” उसने कहा।

“हाँ, बस इतने ही का तो फर्क है। एक बात बतलाओगे ? पटने में कोई काम-धंधा लग सकता है ? तुम तो पुराने आदमी हो। मेरे बाप-पीतिया की उम्र होगी तुम्हारी। तुमसे क्या छिपाना है ? गाँव पर न अपने बाप-दादे का घर है, न कट्ठा भर खेत। कहीं भी खटकर ही खाना है। रिक्षा चलाना तो मैं भी जानता हूँ, कुछ रोज चलाया भी है।” मैंने कहा।

“चलाओगे रिक्षा ?”

“क्यों नहीं, कोई जोगार लगने की उमीद हो, तो कहो...।”

जहानाबाद से पटना जंक्शन तक गाड़ी के पहुँचते-पहुँचते थोड़े में मैंने अपना सारा हाल उसे बतला दिया था। समझ लो कि बूढ़ा मेरी हर मदद करने का तैयार था।

सताईस



गुदड़ी चाचा को भूल जाना मेरे लिए मुश्किल बात है। बांकीपुर जंकशन से बाहर निकलने पर उन्होंने मुझे जहाज-घाट नहीं जाने दिया। बड़ी हिम्मत करके मुझे परिवार सहित अपने डेरे में ले आए। डेरा उनका यहीं पुरदरपुर मुहल्ले में था और आज भी है। देखते होंगे, इस मुहल्ले में एक 'चमरटोली' भी है। यहाँ चमार, दुसाध, धोबी और मेहतर ही अधिक बसे हुए हैं। दो-एक घर कोइरी हैं, बस। पूरब की ओर कायस्थ लोगों के मकान हैं, उसे 'कैथटोली' कहकर पुकारते हैं। चार-पाँच दुसाधिनें कन्या विद्यालयों में दाई का काम करती हैं। उनलोगों को सालो-भर लड़कियों के उतारन ही पहनने को मिलते रहते हैं। अपने पैसे से नए कपड़े वे शायद ही खरीदती हैं। पूजा-पाठ और व्रत के अवसरों पर लड़कियों के घर से प्रसाद और भोजन भी मिलता है। जब लड़कियाँ इम्तहान में पास करती हैं, तब इनाम भी देती हैं।

चमरटोली कमीनों की टोली है न, इसलिए दिन-रात काँव-कीच होता रहता है। मुझे तो बड़ा ही अचरज होता है कि इनलोगों की बगल में रहकर तुम पुस्तकें कैसे लिख लेते हो। दिन-रात मार-पीट, धूकम-फजीहती। खैर, तो उसी मुहल्ले में गुदड़ी चाचा ने दूसरे रोज मुझे किराये पर एक कच्ची कोठरी दिलवा दी। किराया तय हुआ, सात रुपए मासिक। और, तीसरे रोज उन्होंने रिक्शा भी दिलवा दिया। रिक्शे का मालिक रमना रोड में रहता था। जहाँ आज डी-लक्स होटल है, ठीक उसी के सामने। दो-तीन रोज मैं अपनी फोटो के साथ मैंने लाइसेन्स भी ले लिया। अब लगा, रिक्शा चलाने। मालिक को दो रुपए देने

की बात तय हुई थी । किसी तरह मालिक को देकर डेढ़-दो रुपया बचने लगा । ज्यादा बचने की उमीद नहीं नजर आती थी । स्टेशन पर रेल-गाड़ी आने के वक्त हजारों रिक्शे लगे रहते हैं, जानते ही हो ।

एक रोज की बात है । मैं स्टेशन पर, रिक्शा लगाए खड़ा था । पूरब से कोई पैसेंजर गाड़ी आई थी । मैं स्टेशन से निकलकर बाहर आने वाले मुसाफिरों की ओर देख-देखकर कह रहा था—

“चलिए, चलिए । कदमकुआँ, लोहानीपुर, नयाटोला, मछुआटोली, मिखनापहाड़ी, अदालत, लोदीपुर, जहाज-घाट, महेद्रू, गर्दनीबाग बाकरगंज।”

तभी एक बूढ़ा सिक्ख अपने कंधे पर कोई वजनदार गट्टर लिये रिक्शा स्टैंड के नजदीक पहुँचा । मैंने सोचा, सवारी मिल गई, अब इसे छोड़ना नहीं चाहिए । पूछा, “कहाँ जाना है, सरदारजी ? कहाँ जाइएगा, आइए बैठिए ।”

“अबे साले, मैं कहीं भी जाऊँगा, तुम्हें इससे क्या ?” सिक्ख गुस्सा होकर बोला ।

“आइए, बैठिए हुजूर ! आराम से पहुँच जाइएगा।” मैंने पतित होकर कहा ; क्योंकि भय बना था कि वह कहीं दूसरा रिक्शा न कर ले ।

“कितना लेगा, मुरादपुर का ?”

“आइए, बैठिए हुजूर ! जो मुनासिब होगा, दे दीजिएगा ।”

“मैं तो दुअन्नी देता हूँ, चलोगे ?”

‘दुअन्नी मैं नहीं परता पड़ता, सरदारजी !’ मैं बोला ।

“तो चुप रह, मैं पैदल ही चला जाऊँगा ।” कहकर सिक्ख आगे बढ़ने लगा ।

“एक बात सुनिए न ।” मैंने पुकारकर कहा ।”

“क्या कहेगा ?”

“आइए बैठिए, मगर एक सवारी और ले लूँगा ।”

“नहीं, एक सवारी के लिए मेरी दूकानदारी हर्ज कराएगा ?”

“तो एक काम कीजिए, तीन आने दे दीजिएगा।”

“बस, एक बात।” कहता हुआ सिम्बल चला गया।

तो रिक्शेवालों की कमाई की यह हालत थी। उस रोज मुश्किल से मैं सवा दो रुपए पैदा कर सका था, जिसमें दो रुपए मालिक को दे देने पड़े। शाम को घर लौटा, तो चार इकन्रियाँ माँ के आगे रख दीं। जिउरखना पैसे के लिए तंग करने लगा। उसके लिए दिल में मुहब्बत नहीं थी, ऐसी बात नहीं, मगर उस वक्त मुझे बड़ा गुस्सा आया और मैंने उसके गालों पर जोर-जोर से दो तमाचे रख दिये। वह गला फाड़-फाड़कर रोने लगा और आखिर रोता-ही-रोता सनीचरी को गोद में चिपककर सो रहा। माँ, दौड़कर चार आने का चावल ले आयी और चूल्हा गर्म कर उसने घट्टा पका लिया। घट्टा तुमने कभी खाया है या नहीं? वह भात ही की तरह बनता है, मगर उससे माड़ नहीं निकाला जाता और जब चावल पक जाता है, तब उसमें हल्दी और नमक छोड़ देते हैं।

घट्टा खाकर जब मैं टाट पर लेटने गया, तो लेटा नहीं जा सका। शाम हो गई थी। सावन के बादल जमीन और आसमान के बीच गरज रहे थे। मैंने फिर हिम्मत की। सोचा, सात बजे से लेकर तीन बजे तक एक ट्रीप और मार लूँ। भाग्य साथ देगा, तो एक-डेढ़ रुपया बना लूँगा। मैंने माँ से कहा, “माँ, अब मैं चलता हूँ।”

“कहाँ?” माँ ने पूछा।

“रिक्शा लेने। आज रात भर चलाऊँगा। भोर होते-होते आ जाऊँगा।”

“अरे, अभी तो दिन भर चलाकर आया है। अब क्या चलाएगा, मरेगा क्या?” माँ बोली।

“मरूँगा नहीं, भोर में खाने के लिए भी तो कुछ नहीं है। तुम क्या खाओगी, तुम्हारी पतोहू, जिउरखना और मैं?”

“सबके राम हैं। अब मत जा बेटा, सो रह।” वह बोली।

“बेकार हर बात में राम का नाम मत लिया कर । देख, अपनी पुरानी आदत छोड़ दे ।”

“क्यों, भगवान सबके मालिक नहीं हैं ? जिसने मुँह चीरा है, वहीं आहार देगा ।” माँ बोली । मुझे गुस्ता आ रहा था । मैंने कहा, “तुमने भी तो मुझे अपने कोख में रखा था । क्यों नहीं, बैठे-बिठाये खिला रही हो ? कहाँ है वह भगवान, जो बैठे-बिठाये किसी को खाना दे देता है ? अजगर भी जब तक लंबी साँसें नहीं खींचता, तबतक उसके मुँह में भी कोई जीव-जंतु नहीं समाता । दस हजार हड़ताली मजदूरों के लिए राम कहाँ अंतर्ध्यान हो गए थे ? फिजूल की बातें मत बका कर । ला मेरा अँगोछा, मैं चला ।”

“ले, जब नहीं मानता, तब जा । मगर देख, पानी में रिक्शा मत खींचना । कहीं रुख-बीरिछ के नीचे खड़ा हो जाना । जब तू ही बीमार हो जाएगा, तब कहाँ से कमाएगा और कैसे हमलोगों को खिलाएगा ?” माँ ने मेरा गमछा मुझे देकर कहा ।

“अच्छा.. ।” मैंने कहा और उठकर चल दिया ।

बुरा न मानना भैया, तुम लेखक करोड़ों जनता के भाग्य-विधाता हो, तुमलोग बड़े भाग्युक होते हो । मन की बातें खुलकर कहने में बड़ा डर लगता है । तुम तो कहोगे कि मंगरूआ मार्क्सवादी छौंक से बातचीत की दाल में स्वाद डाल रहा है । मगर, बात ऐसी नहीं है । तुम्हारे विचार मुझसे बहुत हद तक मिलते जुलते हैं, इसीलिए कह दे रहा हूँ । दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है, तो मैं उससे नफरत करता हूँ । और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं समझता । जिंदगी में मैंने बड़ी-बड़ी हारे खायी हैं । मगर उसका बोझ ‘किस्मत’ नाम के जीव ने कभी न उठाया । मैं नहीं समझता, यह कौन-सी बला है । व्यवस्था का भार समाज पर है, प्रारब्ध पर नहीं ।

खैर, भाई ! तो मालिक के यहाँ जाकर मैंने फिर रिक्शा ले लिया और चला सवारी की खोज में । एक खेप सवारी लेकर स्टेशन आया,

तो बादल टिप-टिप कर धीरे-धीरे बरसने लगे। रात के पौने आठ बज रहे थे। मुंगेर की ओर से कोई गाड़ी आनेवाली थी। पाना बरसने की वजह से स्टेशन पर सवारियों की कमी थी। मैंने सोचा, पानी में भीग-भीगकर सवारी खोजते रहने से कहीं अच्छा है कि थोड़ी देर ठहर जाऊँ। मुंगेर से जो गाड़ी आनेवाली है, उसमें सवारी जरूर मिलेगी। मैंने पास की दूकान से दो पैसे की बीड़ी खरीद ली और एक को सुलगाकर लगा सोटने। कुछ ही मिनट के बाद गाड़ी झक-झक करती हुई आ गई। पानी की बौछार कुछ तेज हो गई थी। मैं रिक्शे का हैण्डल पकड़े सवारी का इंतजार करने लगा। मुसाफिर बाहर निकलने लगे। मेरे आस-पास में खड़े रिक्शेवाले सवारी लेकर निकलने लगे। मैं भी चिल्ला रहा था—“आइए, अदालत चलिए। मोटर-स्टैंड, महेद्र, जहाज-घाट, गर्दनी बाग, नयाटोला, कदमकुआँ, मछुआटोली, लोदीपुर...।”

“न्यू एरिया चलोगे ?” किसी मुसाफिर ने मेरे आगे आकर पूछा।

“चलूँगा मालिक, आइए...।” कहकर मैंने रिक्शे को आगे की ओर खींचा।

“कितना लोगे ? मुसाफिर ने पूछा।

“जो दे दीजिएगा मालिक, ले लूँगा ?” मैं बोला।

“नहीं, नहीं, बात पक्की कर लो। मैं लटपट-सटपट नहीं जानता।”

“क्या दीजिएगा सरकार, आप ही कहिए न।”

“नहीं, तुम बतलाओ और जल्दी करो। पानी बरस रहा है, ऐसे कब तक खड़ा रहूँगा ?”

“आइए बैठिए, छः आने दे दीजिएगा।

“छः आने ? लूट मची है क्या ?”

“छः आने अधिक तो नहीं है मालिक ! क्या दीजिएगा आप ?

“चार आने।”

“अच्छा आइए, पाँच आने दे दीजिएगा। पानी बरस रहा है सरकार, मैं भी तो भीगता-भागता चलूँगा।” मैंने कहा।

“चार आने से एक पैसा ज्यादा नहीं दूंगा। चलना है, तो चलो। तुम क्या समझते हो, पानी बरस रहा है, इसलिए लूट लिया जाय ? अरे आज न सही, कल ही जाऊंगा। फर्स्ट क्लास का वेटिंग रूम भी कहीं पानी में है ?” मुसाफिर बोला।

“अच्छा, आइए मालिक ! आप ही की बात सही।” मैं बोला।

मुसाफिर रिक्शे पर आकर बैठ गया। पानी की बौछार तेज होती जा रही थी, इसलिए मुसाफिर को पानी से बचाने के लिए मैंने आगे का भी परदा गिरा दिया और रिक्शा लेकर आगे बढ़ा। सड़क भींग जाने की वजह रिक्शे के पहियों के नीचे से ‘चप्-चप्’ की आवाज आ रही थी। पीरमुहानी के मोड़ पर पहुँचते ही मुसाफिर ने मुझसे कहा, “जरा रोको जी।”

“जी, बाबू ?”

“जरा रोको।”

“क्या है ?” मैंने उतरकर पूछा। अब तक मैं पानी से बिल्कुल भींग चुका था।

“देखो, वह सामने की दुकान खुली है न, जरा दौड़कर सिगरेट लेते आओ।”

“अच्छा।”

“यह लो।” कहकर मुसाफिर ने मेरी ओर एक दो रुपए का नोट बढ़ाया।

“कौन सिगरेट बाबू, कैची मार ?”

“अरे, कैची सिगरेट भी कोई सिगरेट है ? गोल्ड फ्लेक ले आओ। देखना, पाकेट भींग मत जाए।”

“अच्छा, सरकार !”

दौड़कर मैं गया और सामने की दुकान से एक पाकिट वही सिगरेट ले आया। फिर मैंने रिक्शा आगे की ओर बढ़ाया। मुसाफिर मुझे जिधर-जिधर रिक्शा ले चलने के लिए कहा करता, मैं उधर-उधर रिक्शा घुमा

दिया करता । आखिर एक बक्के मकान के सामने रिक्शा रोकना पड़ा । मुसाफिर ने मेरी ओर एक चवन्नी बढ़ाकर कहा, “यह लो, ठीक तो है ?”

“दूसरी चवन्नी है, तो दे दीजिए बाबू ।” मैंने बत्ती के नीचे देखकर कहा ।

“वह चवन्नी तुम्हीं ने तो लायी है । लाओ तो, जरा मैं देखूँ ।” कहकर मुसाफिर खुद बत्ती के सामने आकर चवन्नी को देखने लगा ।

“अरे, आप, लेखकजी ?” मेरे मुँह से निकला ।

“लेखकजी, तुम मुझे कैसे पहचानते हो ?”

“आपको मैंने रतननगर मजदूर लाईब्रेरी में देखा था । आप वही लेखकजी हैं न, जिनकी कविताएँ पी० सी० जोशी उन्नीस बार सुना करते हैं, आप ही न मजदूरों के लिए लिखते हैं, अपनी कलम के जरिए आप ही न हमलोगों के लिए संघर्ष कर रहे हैं ?” मैंने पूछा ।

“ओह, तो तुम पहचान गए । तुम्हारा नाम भी मुझे याद था । भूल गया । क्या नाम है, तुम्हारा ?” लेखकजी ने पूछा ।

“मेरा नाम मंगरुआ है, सरकार ।”

“अच्छा, अब याद आया । मगर तुम यहाँ कैसे ?” लेखकजी ने पूछा ।

“कारखाने की हड़ताल नाकामयाब होने पर नौकरी छूट गई । अब यहीं रिक्शा खींच रहा हूँ ।”

“खैर, कोई बात नहीं । संघर्ष करो, कामरेड । बिना संघर्ष के परिवर्तन संभव नहीं है ।”

“जी ।”

“देखो, मैं यही रहता हूँ । वह जो बायीं ओर का कमरा है, उसी में । आकर मिलोगे । मेरे दोस्त तो तुम्ही लोग हो बाबू । तुम्हें एक बात मालूम है या नहीं ? मैं प्रेसों के दफ्तरी और कंपोजिटरो के साथ भी बैठकर चाय पी लेता हूँ ।”

“जी, आप-जैसे लोग बिरले ही मिलते हैं। आप अपनी कोई किताब पढ़ने के लिए देते, तो बड़ी कृपा होती। दो रोज में पढ़कर लौटा दूँगा। पैसे की बड़ी किल्लत है, वरना मैं तो खरीद भी लेता।” मैंने कहा।

“नहीं, ऐसी क्या बात है ? कभी आओगे, मैं अपनी पुस्तकें तुम्हें दूँगा।” लेखकजी बोले।

“जी, मेरा अहोभाग्य !”

“अच्छी बात है। अब मैं चला। चवन्नी रख लो। अगर नहीं चले, तो फिर मुझे वापस करके चार आने पैसे ले लोगे।”

“जी, कोई बात नहीं।” मैं बोला।

मैंने वही चवन्नी रख ली और रिक्शा लेकर महेद्रू जहाज घाट की ओर दौड़ा। पहलेजा से जहाज के आने का वक्त हो गया था। सवारी मिलने की उम्मीद थी। रास्ते में मैं लेखकजी के बारे में बहुत कुछ सोचता रहा। लेकिन, उनकी लिखी हुई किताब पढ़ने की तमन्ना दबी नहीं। तीसरे ही रोज सूरज निकलते-निकलते मैं लेखकजी के यहाँ पहुँच ही गया। भेट होने पर दोनों हाथ जोड़कर मैंने उन्हें नमस्कार किया।

“आओ आओ, कामरेड !” कहकर लेखकजी ने मुझे अपनी चारपाई पर बैठने का इशारा किया। मेरी हिम्मत न हुई कि उस चारपाई पर उनके साथ बैठूँ। उसपर कई किस्म के बिछावन थे। कमरे के एक कोने में टेबुल पर पुस्तकें सजाकर रखी थीं। दूसरी ओर छोटी-सी टेबुल पर डिबियों में न-जानें क्या-क्या रखा हुआ था। दीवार में बहुत बड़ा एक कीमती आईना टंगा था, जिसमें कंधी रखने की भी जगह बनी थी।

“ठीक है, आपकी चारपाई पर मैं कैसे बैठूँ ?” मैंने संकोचवश कहा।

“क्यों ?”

“यह भी कहना होगा ?”

“अरे, बैठो-बैठो। मुझमें और तुममें क्या फर्क है यार ? मैं कलम का मजदूर हूँ और तुम रिक्शे के मजदूर हो। हम बराबर ही तो हैं।”

“और बुलाया था आपने, कोई अपनी किताब दीजिए न।”

“पहले बैठो तो प्यारे.....।” कहते हुए लेखकजी ने जबरदस्ती मुझे चारपाई पर बिठा लिया। अब मैं चुपचाप बैठ रहा। उन्होंने मुझसे कहा, “तुम तो किताबों के शौकीन हो। मैं अपना नया उपन्यास तुम्हें देता हूँ। इस साल का हिंदी का यह सबसे अच्छा उपन्यास माना गया है। विद्वानों का कहना है कि लेखक ने प्रेमचंदजी की कला को आगे की ओर बढ़ाया है।”

“अच्छा।”

“जरा, खूब ध्यान से पढ़ना।”

लेखकजी ने तब टेबुल पर रखी हुई पुस्तकों में से एक पुस्तक निकाल-कर मेरी ओर बढ़ायी और स्वयं एक पतली और लंबी डिबिया से चूना निकालकर ब्रश से दाँत साफ करने लगे। मैंने उस पुस्तक की जिल्द उलटी। उपन्यास के नाम के नीचे लिखा था—

[भारतीय मजदूर-जीवन पर एक महान प्रगतिशील उपन्यास]

लेखक

श्री युगांतर

लेकिन, तभी मेरी नजर लेखकजी के मुँह की ओर गई। मैंने देखा, वे एक बड़ी भूल कर रहे हैं। भला चूने से दाँत साफ करने की क्या जरूरत ? और इसके तीखापन को वे कैसे बर्दाश्त कर लें रहे हैं ? मैंने कहा, “एक बात कहूँ लेखकजी ?”

“कहो।”

“आप चूने से क्यों दाँत साफ कर रहे हैं ? दतवन ले लीजिए। पटना में दतवन तो बहुत बिकता है। अस्पताल के सामने तो कितने दतवन बेचनेवाले बैठे रहते हैं।”

“दतवन का काम इसी तरह चल जाता है।”

“अरे, आपका मुँह नहीं कट जाता ?”

“तुम जिसे चूना समझ रहे हो, वह चूना नहीं है मंगरू ?”

“तो फिर यह क्या है ?”

“यह मैक्लिन्स टूथ-पेस्ट है । इस पेस्ट की आजकल बड़ी तारीफ हो रही है । सिलोन रेडियो से इसका विज्ञापन होता है ।” वे बोले ।

“तो इससे दाँत साफ होता है ? मुझे तो जब कभी दंतव्रण नहीं मिलता, तो मैं मिट्टी या चूल्हे की राख से काम चला लेता हूँ ।”

“हाँ, वह भी ठीक है ।”

“मगर लेखकजी, आप तो कहते हैं कि मैं मजदूरों का दोस्त हूँ, कलम के जरिए मजदूर-जीवन की तरक्की के लिए संघर्ष कर रहा हूँ । लेकिन, हम मजदूर लोग तो पेस्ट का नाम भी नहीं जानते । है न यह बात.....” इतना कहते-कहते मुझे हँसी आ गई । मैं बोला, “मेरा तो खयाल है कि आप मजदूरों से कच्ची दोस्ती निबाह रहे हैं ।”

मेरे इतना कहने पर लेखकजी ने दाहिने हाथ के ब्रश को बायें हाथ में ले लिया और मुझसे हाथ मिलाते हुए बोले, “वाह कामरेड ! क्या क्लीयर सटायरबाजी की तुमने । जीते रहो !! मैं इस बात को कहीं जरूर लिखूँगा ।”

“नहीं, मैं लिखने के लिए नहीं कहता । क्यों, आपने बुरा मान लिया क्या ?”

“नहीं जी, बुरा क्यों मानूँगा ? इस तरह की आलोचनाएँ होनी चाहिए । खैर, यह सब तो चलता ही रहता है । लेकिन, मैं तुम्हारी सूझ की दाद देता हूँ । आदमी तुम बड़े जिंदादिल हो यार, इसमें कोई शक नहीं ।” लेखकजी बोले और फिर दाहिने हाथ में ब्रश लेकर दाँत साफ करने लगे ।

इसके बाद लेखकजी से मेरा बराबर मिलना-जुलना होता रहा । मैं उनसे राजनीतिक बातें करता, तो वे बहुत ही खुलकर दिलचस्पी लेते । हाँ, वे यह भी कहते कि जनता में सोशलिस्ट पार्टी की अब कोई आवाज नहीं रह गई । यह पार्टी और कुछ नहीं, कॉंग्रेस की छोटी बहन है । बड़ी बहन तो पावर में आ गई है, छोटी फिसड्डी होकर रह गई । उन्होंने

मुझे बतलाया कि ससार में कम्युनिस्ट पार्टी ही एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो जन-जीवन के लिए सुख और शांति की व्यवस्था कर सकती है। बातचीत के सिलसिले में वे स्तालिन और लेनिन की प्रशंसा करते हुए अघाते नहीं थे। उन्होंने मुझे बतलाया था कि स्तालिन सिर्फ सोवियत जनता का नायक ही नहीं, बहुत बड़ा क्रांतिकारी कवि भी था। सोलह वर्ष की उमर में ही स्तालिन ने अपनी एक कविता 'इवेरिया में छपवाई थी। उस वक्त स्तालिन का नाम 'सोसो' था। लेखकजी ने ही उस कविता का अनुवाद मुझे सुनाया—

“जिसकी कमर अन्तहीन मेहनत से टूट गई,
जो अभी कल तक दासता के सामने नतशिर था,
मैं कहता हूँ, वह उठेगा पर्वतों का ईर्ष्यापात्र हो,
आशा के पंखों पर, सबसे ऊँचे, ऊपर।”

प्रगतिशालि साहित्य का अर्थ मैंने इन्हीं लेखकजी से समझा। युगांतरजी का कहना था कि जिस साहित्य में जन-जीवन की तस्वीर न हो, वह साहित्य रद्दी की टोकरी में फेंकने के लायक है।

एक दिन मेरी उनसे बहस हो गई। बात उनके उसी उपन्यास की चल गई थी, जिसके लिए वे बहुत ही ख्याति पा चुके थे। उनके उपन्यास का हीरो एक मिल-मजदूर था। पूरा उपन्यास पढ़ लेने के बाद मैंने निश्चित रूप से यह समझ लिया कि कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के जीवन के बारे में उनको कोई वास्तविक जानकारी नहीं थी। उन्होंने कल्पना की उड़ान से काम चलाया था। जिस चीज के कारखाने में उनके उपन्यास का हीरो काम कर रहा था, उसके बारे में उन्होंने बहुत-सी गलत बातें लिखी थीं। मजदूरों पर मिल-मालिक की ओर से जो कानून लादे जाते हैं, उन्होंने इसका भी कहीं जिक्र नहीं किया था। लगता था, लेखक को न तो मजदूरों के बीच में रहने का मौका मिला है, न उसने कारखानों में घुसकर कारखाने की भीतरी हालतों की जानकारी

प्राप्त की है। जब मैं उन्हें उनका उपन्यास लौटाने गया, तो मैंने यह नहीं सोचा कि इस पर उनसे किसी तरह की बहस भी करनी होगी। उनके डेरे में जाकर मैंने वह उपन्यास उनके हाथ में दे दिया।

“पूरी किताब पढ़ गए न?”

“जी।”

“कैसा लगा?” लेखकजी ने पूछा।

“अच्छा लगा, बड़ा तगड़ा उपन्यास है।” मैंने कहा।

“अच्छा तो सभी कहते हैं, मगर मैं तो अपनी रचनाओं की शिकायते सुनने पर खुश होता हूँ। उसमें जो कमजोरियाँ हैं, मुझे बतलाओ।”

लेखकजी ने इतनी बातें कहकर मेरी आँखों में अजीब तरह से देखा था, जैसे उनकी पुस्तक में किसी तरह की कमजोरी न हो। वे यों ही पूछ रहे हैं। भला, मंगरुआ इतने बड़े लेखक की रचना में कैसे कोई गलती ढूँढ़ सकता है? मगर, न जाने, मुझमें कुछ हिम्मत क्यों कर हो आई। अपने संकोच का परदा हटाकर मैंने कहा, “यह तो आपमें बहुत बड़ी खूबी है कि आप अपनी शिकायते भी सुनना चाहते हैं। यह खूबी सभी लोगों में नहीं। यो अगर आप मुझसे पूछेंगे, तो मैं इतना कहूँगा कि उपन्यास में कुछ बड़ी-बड़ी भूलें अवश्य हैं।”

“तो क्या, कहो।”

“नहीं। आप कहेंगे, छोटा मुँह बड़ी बात कर रहा है। सो, मैं इस विषय का जानकार भी नहीं हूँ।” मैं बोला।

“नही, नहीं, बतलाओ कामरेड!” वे बोले।

“उपन्यास के हीरो के संबंध में आपने बहुत कच्ची सूचानाएँ दी हैं। आपको मिल-मजदूरों के बीच में रहने का मौका मिला है?” मैंने पूछा।

“नही, कोई खास मौका तो नहीं मिला। रतननगर कभी-कभी दो-चार रोज के लिए जाता था। वही लाइब्रेरियन मेरे दोस्त थे।”

“वही तो मैंने कहा, कच्ची जानकारी की मदद से किताबें नहीं लिखनी चाहिए। फिर मजदूरों के जीवन पर पुस्तकें लिखने में बड़ी

सावधानी बरतनी चाहिए। देखिए, मुझे भाषा की जानकारी नहीं है। लेकिन, बार-बार मन में यह विचार जरूर पैदा होता है कि लेखक को सिर्फ यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे क्या लिखना है। लिखने के पहले, मेरी समझ से, उसे यह भी सोचना चाहिए कि कैसे लिखा जाए। मुल्क में पुस्तकों की कमी नहीं है, मगर वैसी पुस्तकों की सचमुच बड़ी कमी है, जो आदमी को बहुत नजदीक से छू सके, इंसान को टोक सके। मेरा ख्याल है कि जब तक लेखक मजदूरों के बीच में घुसकर रहने की कोशिश नहीं करेगा, अपने दिमाग को उनकी तरह बनाएगा नहीं, तब तक मजदूरों के बारे में सिर्फ कूड़ा-कर्कट ही लिखता रहेगा। आपका हीरो अगर सिर्फ 'कम्युनिस्ट पार्टी, जिंदाबाद।' करे और अनाप-सनाप बके, तो क्या उससे मजदूर-साहित्य धनी हो जाएगा?" मैंने इतनी बातें बड़ी हिम्मत करके कहीं।

“मगर तुम्हे एक बात मालूम है, मंगरू?"

“क्या?"

“जितने प्रगतिशील लेखक या कवि हैं, वे सभी कम्युनिस्ट हैं।”

“हाँ, और वे सभी गोल्ड फ्लेक पीते हैं? रिक्शा-भाड़ा में एक आना कम कराने के लिए रिक्शेवाले से पंद्रह मिनट बहस करते हैं? जिन मजदूरों की छाती पर हिंदुस्तान में कम्युनिस्ट पार्टी की नींव डाली जा रही है, उन मजदूरों को तो बीड़ी भी मुहाल है। पटने में रिक्शा युनियन को कम्युनिस्ट पार्टी चलाती है। इससे क्या फायदा हुआ है? रिक्शेवाले तो हर महीने चंदा दिया करते हैं। क्या, अब रिक्शेवालों को नगर के सिपाही तंग नहीं करते, क्या मुझे मुफ्त में पुलिसवालों की सवारी नहीं ढोनी पड़ती, क्या पुलिसवाले हमलोगों को गालियाँ नहीं देते, क्या अब वे मुझ पर हाथ नहीं उठाते?"

“तुम इन बातों को युनियन के दफ्तर में क्यों नहीं कहते?"

“वहाँ पार्टी की शिकायतें सुनने के लिए किसी के पास कान नहीं हैं। देहातों से आनेवाले कामरेड कँटिया में भर-भर कर धी लाते हैं।

हैं। थाल में जब भोजन दिया जाता है, तब वे अपनी-अपनी कँटिया से छटाँक-छटाँक भर घी निकालकर दाल में डाल देते हैं। और, जिस बेचारे के पास घी नहीं है, वह चुपचाप उनका मुँह देखकर रह जाता है। क्या मार्क्स ने यही कहा था ? वे हर बात में मार्क्स और एंजल्स के सिद्धांतों का उदाहरण देते हैं, मगर मेरा अंदाज है कि इन दो महान विचारकों ने अपनी पुस्तकों में न तो ऐसे सिद्धांत दिये होंगे और न कहीं ऐसे सिद्धांतों का किसी रूप में समर्थन ही किया होगा। आपका क्या खयाल है ?”

“तुम ठीक कहते हो मंगरू, यही तो कामरेड लोग भूल करते हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं कि सभी पार्टी कामरेड ऐसे ही होते हैं। तुम्हें इतना सकुचित होकर नहीं देखना चाहिए। सरोवर में कुछ मेढकों के रहने से हंस का महत्त्व नहीं खत्म होता। जहाँ दस समझदार हैं, वहाँ दो नासमझ भी तो होते हैं।” वे बोले।

रतननगर के मजदूरों के बारे में मुझे यह खबर मिल रही थी कि अब वहाँ छँटनी हो रही है। बहुत मजदूर छाँट दिये गए। कंपनी अब बिलकुल मनमानी करने लगी। तभी १९५२ का चुनाव आ गया। चुनाव खत्म होने पर सुना कि मानिक सिंहजी, जो रतननगर में सोशलिस्ट मजदूर युनियन के सभापति थे, अपने इलाके से असेम्बली के लिए मेम्बर चुन लिये गए। मानिक सिंह मुजफ्फरपुर जिले के रहनेवाले थे। पता चला कि उन्हें चुनाव में विजयी बनाने के लिए सोशलिस्ट पार्टी ने रुपए और अखबार से बड़ी मदद की थी। उस इलाके में हंगामा किया गया था कि इनकी सेवाओं का कोई अंत नहीं है। इसकी सबूत है, रतननगर के मजदूरों की हड़ताल। सो, हमलोगों की उस हड़ताल के पीछे तो ऐसी की तैसी हुई ही, मगर मानिक सिंह इस चुनाव में एम० एल० ए० होकर ही रहे।

दस रोज पहले की बात है। एम० एल० ए० क्वार्टर से मैं एक एम० एल० ए० साहब के दो बच्चों को रोज ही रिक्शे पर स्कूल लो० पं०—२८

पहुँचा आता और छुट्टी होने पर ले आता था। इसके लिए मुझे रोज ही निश्चित पैसे मिल जाते थे। एक दिन मैं अपनी बोली की वजह से हटा दिया गया। मैं उन बच्चों को रिक्शे पर बिठा रहा था कि एम० एल० ए० साहब दरवाजे पर आ गए। मुझसे पूछा, “तुम्हारे भी बच्चे हैं न ?”

“जी, सरकार। एक है।”

“क्या करता है ?”

“पढ़ता है।”

“अच्छी बात है। जरूर पढ़ाओ।”

“पैसे की बड़ी कमी है, सरकार ! मेरा जिउरखना बहुत तरक्की करेगा, तो कहीं चपरासी हो जाएगा, उसके लिए भी आप-जैसे बाबू, राजा लोग सिफारिश करेंगे, तभी होगा। और, हुजूर के बबुआ लोग तो अफसर होंगे।” मैंने कहा।

“तो कैसे ?”

“हुजूर, सुनता हूँ कि सेण्ट जेबियर्स में बड़े-बड़े लोगो के लड़के ही पढ़ते हैं और आगे चलकर उनका अफसर होना जरूरी हो जाता है। मेरा बेटा, जिउरखना तो अच्छी तरह हिंदी भी नहीं बोल सकता। बबुआ लोग तो फटर-फटर अंग्रेजी बोलते हैं।”

शायद उसी रोज मेरी बातों से एम० एल० ए० साहब रंज हो गए। दूसरे रोज मैं रिक्शा लेकर पहुँचा, तो मुझे लौटा दिया गया। मैं तुरंत लौट आया।

अटार्स



दिन तो अब भी परेशानी में गुजर रहे हैं, तब भी गुजर रहे थे। मैं रिक्शा युनियन का मेम्बर हो गया था। युनियन की देख-रेख कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी। उन्हीं दिनों रिक्शावालों को युनियन ने हड़ताल मनाने की आज्ञा दी। किसी रिक्शेवाले को एक सिपाही ने बुरी तरह पीटा था। बेचारा अस्पताल भेजा जा चुका था। यहाँ तो रोज का कमाना-खाना था। पास में कहाँ पैसे थे, जो हड़ताल की शान रखता! सड़क पर रिक्शों का चलना बंद हो गया। युनियन के अधिकारी नुकड़ों और चौक पर खड़े-खड़े हड़ताल का नेतृत्व कर रहे थे। साथ में कुछ रिक्शेवाले भी थे। अगर कहीं से कोई रिक्शा आ भी जाता, तो वे लोग उसे घेरकर पहिए से हवा निकाल देते थे। खजांची रोड से मैं भी एक सवारी लेकर गर्दनीबाग जा रहा था। रूपक सिनेमा के पास मुझे हड़ताली रिक्शावालों ने घेर लिया और पहिए की हवा निकाल दी।

आज मेरे घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं पका था। थोड़ा-सा बासी भात था, जिसे सनीचरी ने जिउरखना को खिला दिया। शाम में माँ रात-भर के लिए एक ललाइन के साथ अस्पताल चली गई। उनका दुल्हा घर पर नहीं था। उन्हें बच्चा होनेवाला था और जानते ही हो, पटना अस्पताल के जच्चा वार्ड में जच्चा की देख-रेख के लिए कोई औरत ही तो रह सकती है। मर्दों के रहने का हुक्म नहीं है। ललाइन ने कहा था कि जितने रोज रहेगी, डेढ़ रुपए के हिसाब से मजदूरी दे दूँगी। और बाइली दाइयो को, जो मरीजों की सेवा के लिए यहाँ अस्पताल में रहती हैं, उन्हें शायद दो रुपए के हिसाब से लोग मजदूरी देते हैं। माँ मेरी सस्ते ही पट गई।

गुदड़ी चाचा की हालत मुझसे कुछ अच्छी थी। उनके तीन बेटे थे। एक की शादी हुई थी, दो ब्वारे थे। गुदड़ी चाची मर चुकी थी। जो दो बड़े-बड़े थे, रिक्शा खींचते थे। सबसे छोटा अभी इस काम के लायक नहीं था। नाम था उसका—पतरुआ। गुदड़ी चाचा के डेरे से मेरा डेरा बहुत नजदीक था। सिर्फ पचास-साठ कदम की दूरी थी। सनीचरी और माँ, गुदड़ी चाचा के डेरे में बराबर आती-जाती रहती थीं। कभी-कभी उनकी पतोहू भी मेरे यहाँ चली आती। वह मुझसे शर्म करती थी, मगर नल पर पानी के लिए जाते वक्त मैंने उसे कई बार देखा था। वह मेरी सनीचरी से अवस्था में बड़ी थी। सनीचरी का कहना था कि स्वभाव की बड़ी अच्छी है।

मैं हड़ताल का मजा चख चुका था। सवारी को रिक्शे से उतारकर रिक्शा मालिक को लौटा आया। मगर फिर भी, न जाने क्यों, मन में यह बात पैदा हो आई कि अपने रिक्शा-मजदूर दोस्तों की इस हड़ताल में साथ देना चाहिए। मैं बाहर-ही-बाहर मुरादपुर की ओर चला गया। शहर के लोग रिक्शे के लिए परेशान थे। आउटो रिक्शा और बसे खूब चल रही थीं। आज इक्केवालों को भी सवारी की कमी नहीं थी। गर्मी के दिन थे। आजकल जहाँ टी० बी० हास्पिटल है, उसीके सामने एक पनशाला चल रही थी। पानी पिलानेवाला पानी पिलाने के पहले थोड़ा फुलाया हुआ चना और गुड़ भी खिलाता था। अपनी भुखमरी और मजबूरियों का बयान कहाँ तक करूँ, दोस्त। बड़ी भूख लगी थी। प्यास तो उतनी नहीं लगी, मगर चना और गुड़ खाने की लालच से बार-बार पानी पीने लगा। और, इस तरह शाम तक मैंने किसी तरह अपना पेट भर लिया। डर तो लगता था कि पानी पिलाने वाला कहीं पहचान न ले। मगर दोस्त, जिंदगी में सचमुच कई बार ऐसी मजबूरियाँ आती हैं, जब आदमी लाज-शर्म त्याग देता है, इसान जलील किये जाने की फिकर नहीं करता।

यो, पटना-जैसे शहर में रिक्शेवालों की कमी नहीं थी और उनमें से करीब-करीब सभी कम्युनिस्ट पार्टी की देख-रेख में काम करनेवाली नगर-रिक्शा-मजदूर-युनियन के मेम्बर थे। मगर रतननगर की तरह, इस युनियन में भी, मैं एक खास तरह का रिक्शा-मजदूर समझा जाता था। मैं इस युनियन की सलाहकारिणी समिति में भी भाग लेता।

शाम के सात बजे के बाद रिक्शेवालों की भीड़ तितर-बितर हो गई और मैं वहाँ से युनियन के दफ्तर में पहुँचा। भीतर जाते ही युनियन के सेक्रेटरी और कई पार्टी कामरेड ने, जो उस वक्त दफ्तर में मौजूद थे, मुझे बैठने के लिए कहा। मैं एक स्टूल पर चुपचाप बैठ रहा। वे लोग आपस में कॉग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी की बुराइयाँ कर रहे थे। वे अमरीका की युद्धनीति की भी आलोचना कर रहे थे। उनका कहना था कि संसार में अगर तीसरे विश्व-युद्ध को कोई पार्टी रोकनेवाली है, तो वह है कम्युनिस्ट पार्टी। दुनिया के बड़े-बड़े कम्युनिस्ट-विरोधी नेता भी मानते हैं कि मार्शल स्तालिन ने जहाँ-जहाँ और जब भी युद्ध की नीति अपनायी, वहाँ-वहाँ और तब उनके दिल में विश्व-शांति की भावना काम कर रही थी।

“मैं ख्वाहमखाह किसी की तारीफ करना ही नहीं चाहता। स्तालिन हो या लेनिन, उनमें भी कुछ कमजोरियाँ रही होंगी।” मैंने कहा।

“तुमने अभी समझा नहीं है, कामरेड। स्तालिन की पुस्तकें बारह खंडों में प्रकाशित हुई हैं। हर एक का दाम आठ आने है। पढ़कर देखो, तो तुम्हारा दिमाग खुल जाए। यही तो हमारी पार्टी के साथ खूबी है कि इसके पास अपने कामों की फिहरिस्त है। और, कम्युनिस्ट पार्टी के लोग ऐसे नहीं हैं कि कि अपनी कोई भूल स्वीकार ही नहीं करते। हम अपनी भूल खुलकर स्वीकार करते हैं और उसके सुधार के लिए हर कोशिश करते हैं। इस तरह की छिछली आलोचनाओं से काम नहीं होता, कामरेड।” एक पार्टी कामरेड ने कहा।

“....।” मैं चुप रहा।

यह तब की घटना है, जब १९५२ के बाद भी कई महीने गुजर चुके थे। चीन में कम्युनिस्ट राज्य कायम किया जा चुका था। मैंने देखा कि बीच की चौड़ी टेबुल पर एक गोल प्याले में छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े रखे हुए थे। उनपर मेरी नजर तो पड़ी, मगर मैं समझ न सका कि ये पत्थर के टुकड़े यहाँ और इस प्याले में क्यों रखे हुए हैं। मैंने एक पार्टी कामरेड से पूछा, “ये पत्थर किसलिए हैं?”

“नहीं, जानते?”

“नहीं, जानता तो पूछता क्यों?”

“तब क्या तुम ससार की राजनीति पर बातें करते हो?”

“आखिर बतलाओ तो सही, कामरेड।”

“यह चीन के एक लाख कम्युनिस्टों के खून से रंगे पत्थर हैं।” पार्टी कामरेड ने कहा।

“चीन के एक लाख कम्युनिस्टों के खून से रंगे पत्थर हैं... ..।” मुझे बड़ा अचरज हुआ और मैं उस प्याले से उन पत्थर के लाल-लाल दो-चार टुकड़ों को उठाकर देखने लगा। मैंने कहा, “यह तो तुमने अजीब बात सुना दी कामरेड! इसीलिए इनका रंग कुछ-कुछ लाल है क्या? मगर इन पत्थरों में खून के रंग की तरह लाली नहीं है।”

“तुम बड़े उल्लू-बसंत है मंगरू! आखिर रिक्शा ही तो खींचते हो। तुम्हारी बुद्धि कुछ जानवरों-सी हो गई है।” सेक्रेटरी ने कहा।

“सो तो मानता हूँ। मगर माफ करना, क्या सचमुच ये पत्थर खून से रंगे हैं?” मैंने पूछा।

“अरे, सचमुच तो ये खून से नहीं रंगे हैं। मगर हाँ, ये पत्थर के टुकड़े उस इलाके के हैं, जहाँ लगभग एक लाख कम्युनिस्टों की हत्या च्याग-काई-शेक ने करवा दी थी। हाल में अभी जो लोग चीन गए थे, ये पत्थर उन्हीं के लाये हुए हैं।”

“हाँ, मुझे उनलोगों के भाषणों को सुनने का मौका मिला था। रूस से आनेवाले स्तालिन-चालीसा सुनाते हैं, चीन से आनेवाले माओ-चालीसा

का पाठ करते हैं। यहाँ भी कोई विदेश का राजदूत आता है, तो उसे सेक्रेटेरियट और हाईकोर्ट की सड़कों से टहलाया जाता है। गर्दनीबाग के आर० ब्लाक की सड़कों से उनकी मोटरगाड़ी जरूर दौड़ती है। अदालत के पास जो मिखमंगों की टोली है, वे वहाँ कहाँ जा पाते हैं ? नाला रोड पर जो अछूतों का गंदा मुहल्ला बसा है, वे उधर कहाँ जाते हैं ? वे मछुआटोली के मछुवों से कहाँ मिल पाते हैं ? वे राजदूत मुक्त-जैसे मजदूर मंगरूआ की गंदी और तग कोठरी कहाँ देख पाते हैं ? वे तो मजबूर होकर अपने देश के लोगों से कहते फिरते होंगे कि इंडिया के लोग बड़े सुखी हैं। वहाँ की सड़कें बड़ी अच्छी बनी हैं। लोगो के रहने के लिए बड़े अच्छे-अच्छे क्वार्टर और बंगले हैं।”

“तुम्हारा मतलब ?” युनियन के सेक्रेटरी ने पूछा। और तभी उनके हाथ में एक छोटे से मटके में कोई हलवाई का नौकर, रसगुल्ले दे गया। मुक्तसे, “तुम्हारा मतलब ?” सवाल करके वे भीतर के कमरे में जाने लगे। मैंने कहा, “आइए, तो मतलब समझाऊँ।”

वे लौटकर आए तो मैंने कहा, “मेरा मतलब यह है कि यह सोचना बिल्कुल गलत बात है कि रूस या चीन में एक-एक आदमी सुखी है। इसकी सच्चाई तो वही आदमी बता सकता है, जो वहाँ के देहातों में वर्षों तक रह चुका हो। हिंदुस्तान के कामरेड जो जाते हैं, हफ्ते-हफ्ते भर रहकर लौट आते हैं। रूस की सारी जनता सिर्फ क्रेमलिन और रेड-स्क्वायर में ही तो नहीं बसती है ? वहाँ भी हिंदुस्तान के एक मंगरू की तरह कितने मंगरू होंगे, जिन्होंने बहुत दूर से क्रेमलिन और रेड-स्क्वायर का नाम भर ही सुना होगा, देखा नहीं होगा। जैसे मैं राष्ट्रपति भवन, पार्लियामेण्ट और इंडिया गेट का नाम भर ही सुना करता हूँ, देखा कभी नहीं। दिल्ली तक का रेलभाड़ा जुटाने में तो मेरी जिंदगी ही बिक जाएगी।”

“हटाओ यार ! क्या यह सब चंद्रखाने की गप करने लगे। जानकारी नहीं है, तो चुप रहो। किसी भी पार्टी के पास जादू की छड़ी या

अलाद्दीन का चिरग नहीं होता, जो मिनटों में सारी व्यवस्था बदल दे। संगठन और संघर्ष के लिए सबको मरना होता है।” अब कामरेड लोग झल्ला पड़े।

वहाँ से भागा-भागा मैं वहीं पुरदरपुर की गलियों में आया, जहाँ मेरी तग और छोटी कोठरी थी। देखा, दीया जल रहा है। सनीचरी को देखा, सिंगार किये हुई है। पूछा, “आज क्या बात है, किसी से वादा है क्या?”

“.....।” सनीचरी हँस पड़ी। मैंने चिराग की रोशनी में देखा, उसके होठों पर पपड़ी पड़ गई थी। सुबह से भूखी जो थी। जिउरखना सो गया था। मैंने पूछा, “बाल में तेल कहाँ से?”

“गुदड़ी चाचा की पुतोंहू ने डाल दिया था। उसी ने जूड़ा भी बाँधा है।” सनीचरी बोली।

“और यह छटाँक भर सेनुर कैसे लगाया?” मैंने पूछा। वह गँवारिन जो थी। नाक से लेकर आधे माँग तक सिंदुर पहन रखा था।

“यह तो मेरा सुहाग है। जिसके पास सेनुर होगा, वही तो पहनेगी।” वह बोली।

“आज कुछ खाया भी तो नहीं होगा?”

“.....।” सनीचरी मुस्कराकर रह गई। उसने पूछा, “तुमने कुछ खाया है?”

“हाँ, भरपेट।”

“कहाँ?”

“एक दोस्त ने खिलाया है।” मैं बोला।

इसके बाद उसने मेरे आगे एक लोटा पानी लाकर रख दिया। बोली, “हाथ-पैर धो लो। अब सोओगे न?”

“हाँ।” मैं बोला। वह लौटकर टाट पर चली गई। मैंने देखा, चलने-फिरने में वह थरथरा रही थी। मैं लोटे में पानी लिये बड़ी देर तक चौखट पर बैठा रहा। सनीचरी को अब शायद आलस सता रही थी।

वह बार-बार टाट पर सोयी-सोयी ही मुझे बुलाती, “आओ न, वहाँ क्या कर रहे हो ?”

इस तरह रात के दो बज गए। सारा मुहल्ला सो गया। गलियों में सिर्फ कुत्ते भूँक रहे थे। मुझे बार-बार बुलाती हुई सनीचरी शायद सो गई। आज भूखी रहने पर भी, जरा सिंदूर पहनने और बाल सँवार लेने की वजह से बड़ी भली लग रही थी। दिल बार-बार चाहता कि उसके पास जाकर बैठूँ, उसे जगाकर जरा मुहब्बत की दो-चार बातें करूँ। मगर, तुरत ही यह बात याद आ जाती कि वह भूखी जो है। उसका बच्चा मारे भूख के रोता-रोता सो गया है। एक बार धीरे-से उठ कर टाट के बिछावन तक गया भी। उसके पेट पर से आँचल हटाकर देखा, भूख से उसका पेट पीठ से सट चुका था। तब मुझे अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आया। मुझे इस वक्त ऐसी बात सोचनी नहीं चाहिए थी। वह मेरी बीबी है, जनाना। उसकी माँ ने सिखलाया होगा कि औरतों को अपने मर्द के लिए हर तकलीफ बर्दाश्त करनी चाहिए। मगर, दो मिनट की गुदगुदाहट के लिए क्या मैं राक्षस हो जाता ? नहीं नहीं, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए। मैंने उसके आँचल से उसका पेट ज्यों-का-त्यों ढँक दिया और फिर चौखट पर बैठा-बैठा ही मैं रूपकियाँ लेने लगा। मगर अभी पूरी तरह नींद भी न आ पायी थी कि कानों में कौओं और मुरगों के बोलने की आवाज सुनायी पड़ने लगी। मस्जिदों में अजान पड़ने लगे।

थोड़ी देर बाद मैं रिक्शा चलाने के लिए दौड़ा। दोपहर में कुछ पैसे लेकर लौटा, तो सनीचरी ने खिचड़ी पकायी। खिचड़ी खाकर मैं फिर रिक्शा खींचने चला गया। शाम में जब लौटने लगा, तो पता चला कि लॉन में बिजली-मजदूरों की एक बहुत बड़ी सभा होनेवाली है। बिजली कंपनी के मालिक और सरकार ने उनकी माँगें नहीं पूरी की हैं, इसलिए वे हड़ताल की घोषणा करेंगे। राजनीति से दिल तो बार-बार उचट रहा था, मगर फिर दौड़ा-दौड़ा लॉन में पहुँच गया। बिजली-

कंपनी के मजदूरों की बड़ी भीड़ थी। नेताजी समय से कुछ देर करके आए। मगर, आए तो मोटरगाड़ी में बैठकर। मजदूरों ने छाती ऊँची कर-करके उनकी जयजयकार मनायी। बिजली-कंपनी के मालिक और सरकार की दमन-नीति पर उन्होंने बड़ा लंबा-चौड़ा भाषण किया। फिर हड़ताल की घोषणा करने के बाद बोले, "साथियो। यदि मैं जेल के बाहर रहा, तो तुम लोगों के बीच रहकर तुम्हारी उचित सेवा करता रहूँगा... और मान लो, इस सरकार ने मुझे कहीं जेल में बंद कर दिया तो याद रखो, हमारी पार्टियों के साथ हजार सदस्य हैं, वे तुम्हें भूखो नहीं मरने देगे। हड़ताल में पैर पीछे मत होने पावे...।"

और, मैंने देखा कि एक छोटे नेता ने सतरे के रस से भरा गिलास उनके हाथ में थमा दिया। सतरे का रस पीकर अभी वे आगे भी कुछ और बोलना ही चाहते थे कि मजदूरों की भीड़ से एक मजदूर उठ खड़ा हुआ। उसने बड़े जोरो की आवाज लगायी और कहा, "जनाब, आप हमारे नेता नहीं हो सकते। आप तो मोटरगाड़ी पर चढ़कर आते हैं और सतरे का रस पीकर स्पीच फाड़ते हैं और कहते हैं कि मजदूर भाइयो, मैं तो तुम्हारी ही तरह मजदूर हूँ। मेरा जीवन तुम्हीं लोगों के लिए है।"

'चुप रहो। किसी के बहकावे में मत पड़ो। मैंने मार्क्स और लास्की का अध्ययन किया है। मुझे लास्की के लाखों सिद्धांत जुबानी याद हैं। मैंने एम० ए० तक पालिटिक्स पढ़ी है, कोई घास नहीं काटी है। सुनो, मैं जो कह रहा हूँ...।" नेताजी बोले।

तब वह मजदूर और तनकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "मैं बी० ए० पास करके पचास रुपए तनखाह पर वर्क-शॉप में रोज हथौड़े चला रहा हूँ। मार्क्स और लास्की की किताबें याद कर लेने से मजदूरों का सच्चा नेता हो जाना कोई जरूरी नहीं है। मजदूरों का सच्चा नेता वो वही होगा, जो खान्दानी मजदूर रहा हो, जिसने मजदूर-जीवन की तकलीफें खुद बर्दाश्त की हों। यहाँ पावर-हाऊस में कोयला

भोकनेवाले मजदूर छुट्टी मिलते ही मीठापुर की ओर दौड़ते हैं और दो-दो आने की सकरकद खाकर भरपेट नल का पानी पीते हैं। नल के पानी की उस मोटी धार से उनकी छाती पर जो धक्के लगते हैं, आपने उन धक्कों की तकलीफ कभी महसूस की है, नेताजी ? मेरे ऊपर बूढ़ी माँ, बूढ़ा बाप, तीन छोटी बहनें और दो छोटे भाई का भार है। मेरे यहाँ सप्ताह में चार बार चूल्हा ठंडा रहता है, आपके घर में तो बराबर हीटर गर्म रहता होगा, आप कैसे मजदूर हो सकते हैं.....?

उस मजदूर के इतना बोलते ही सभा का सारा रंग भग्न हो गया। बाकी मजदूरों ने शोर किया, “मारो-मारो गद्दार है।” और, सैकड़ों मजदूर उसके ऊपर थप्पड़-लात चलाने लगे। जहाँ तक मुझे याद है, सैकड़ों थप्पड़ की चोट वह बर्दाश्त न कर सका था और सभा-मैदान में ही बेहोश हो गया। मैंने समझा, अब मीटिंग आखिरी कोशिश करने पर भी नहीं जमेगी। मैं वहाँ से लौट आया। अब किसी-किसी तरह मैं रिकशा खींचता हूँ। माँ और सनीचरी मिलकर, इस छोटी-सी कचड़ी, घुघुनी और पकौड़ी की दूकान चलाती हैं। स्कूल से आकर जिरखना भी अपने ग्राहकों को पानी पिलाता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि देश के नेताओं ने तरह-तरह के सिद्धांतों की रट लगा-लगाकर मजदूर-किसानों के दिमागी कंधे पर लोहे के पंख बाँध दिये हैं ! वे इतने बोझिल हो गए हैं कि सुख और शांति के आसमान में उड़ने की बातें सोच तो सकते हैं, लेकिन उड़ नहीं सकते। वे सोच नहीं सकते कि किस पार्टी का झंडा मुझे ऊपर उठायेगा। देखो न, इस छोटी दूकान का किराया हरामी मकान-मालिक पंद्रह रुपए लेता है। हर पहली तारीख को छाती पर आकर सवार हो जाता है। दो रोज भी देर हुई, तो दूकान के सामान फेंकने पर उतारु हो जाता है। जब पास में पैसे नहीं होते, और हालत नाजुक देखता हूँ, तो दौड़कर अस्पताल में जाकर पंद्रह रुपए का खून दे आता हूँ। अभी महीने रोज में खुद मेरे मुँह से खून आ रहा है। कल किराया देने के लिए ही खून बेचने गया था, मगर जाँच करने पर डाक्टर ने खून खरीदने

से इन्कार कर दिया । उसने सलाह दी है कि मुझे अपनी जाँच टी० बी० हास्पिटल में करानी चाहिए ।

लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं वर्त्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ । यह दूसरी बात है कि दिन-रात रिक्शा खींचने के कारण दिल जला रहता है और क्रोध के कारण तुमसे कुछ अनाप-सनाप भी बक गया हूँ । लेकिन, हर पार्टी में अच्छे-बुरे लोग हैं । मजदूरों को आज जो भी सुविधाएँ मिली हैं, पार्टियों के सगठन और संघर्ष के ही फल हैं वे । तुम्हीं सोचो न, आखिर उद्धार का रास्ता क्या है ? कभी-कभी कुछ कामरेड भूल कर बैठते हैं, और पूरी पार्टी बदनाम हो जाती है । राजनीति को वर्त्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे ? अपनी-अपनी खूबियों के लिए हर पार्टी के आदर्श को अपनाना चाहिए, मैं अपनी ही घुटन अथवा चिढ़ से सारी पार्टी को तौलना अनुचित समझता हूँ । हृदय के एक कोने से बार-बार यह आवाज आती है कि मजदूरों का समाज उठेगा और उसकी ऐसी स्थिति होगी, जब वह चैन की साँस लेता हुआ यह सोचेगा कि हम भी मनुष्य हैं—हमारी रक्षा के साधन हमें मिल गए हैं और उनके दिमागी कंधे पर जो लोहे के पंख लगे हैं—वे धीरे-धीरे कट रहे हैं ।

नए उपन्यास के लिए कहाँ-कहाँ हीरो खोजते फिरोगे ? मुझे ही अपने उपन्यास का हीरो बना लो न । लेकिन, एक बात । अपनी कला को लेकर एक-एक पाठक या आलोचक को खुश करने के फेर में पड़ोगे, तो मेरी सच्ची कहानी के साथ इसाफ नहीं कर सकोगे । कोई कहेगा, मंगरुआ को ऐसा नहीं होना चाहिए था । कोई कहेगा, मंगरुआ वैसा होता, तो ठीक था । मगर, तुम तो जानते हो कि मंगरुआ वास्तव में क्या है ?